गांधीजी की छत्रछाया में

[व्यक्तिगत संस्मरण]

●

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के प्राक्कथन सहित

●

लेखक

घनश्यामदास बिड़ला

●

१९५५

सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

पहली बार : १९५५

मूल्य

अजिल्द : दो रुपये
सजिल्द : अढ़ाई रुपये

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

विषय-सूची

प्रकाशकीय

इस पुस्तक में मुख्य रूप से गाँधीजी तथा श्री घनश्याम दासजी बिड़ला का पत्र-व्यवहार है। कहीं-कहीं पर अन्य प्रसंगोचित सामग्री जोड़ कर लेखक ने इसे अधिकाधिक उपयोगी तथा पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है।

श्री बिड़लाजी की रचनाओं से हिन्दी के पाठक भलीभांति परिचित हैं। उनकी लिखी 'बापू' 'डायरी के पन्ने' 'ध्रुवोपाख्यान' 'विखरे विचार' आदि पुस्तकें हिन्दी में बहुत लोकप्रिय हुई हैं। पहली दो पुस्तकों के तो एक से अधिक संस्करण हुए हैं।

हमें हर्ष है कि उनकी नवीन कृति पाठकों के हाथों में पहुँच रही है। गाँधीजी के अमूल्य पत्रों का संग्रह होने के कारण तो इस पुस्तक का मूल्य है ही, साथ ही भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम के कुछ अंशों पर महत्वपूर्ण सामग्री उपस्थित करने के कारण भी इसका अपना स्थान है। पुस्तक को पढ़कर यह भी पता चलेगा कि लेखक के किन गुणों के कारण गाँधीजी उनकी ओर आकर्षित हुए थे और लेखक ने अनेक बातों में उनसे मतभेद होते हुए भी उनके प्रति कितनी भक्ति रक्खी थी और उनके लोकोपयोगी कार्यों में कितनी उन्मुक्तता से योग दिया था।

ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा, आगे आने वाली पीढ़ियों में गाँधीजी-विषयक साहित्य के लिए अधिक-से-अधिक जिज्ञासा-भाव उत्पन्न होगा। इस दृष्टि से इस प्रकार के साहित्य का आगे चल कर क्या मूल्य होगा, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

हमें विश्वास है कि हमारे राष्ट्रीय साहित्य में इस पुस्तक का ऊंचा स्थान होगा और हिन्दी के पाठकों में यह बहुत ही लोकप्रिय होगी। सामान्य पाठक भी इससे लाभ उठा सकें, इसलिए इसका मूल्य इतना कम रक्खा गया है। हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक प्रत्येक सुशिक्षित भारतीय परिवार में पहुंचेगी।

—मंत्री

*

प्राक्कथन

मुझसे इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखने को कहा जाने पर मैं तुरत राजी हो गया। श्री घनश्यामदास बिड़ला से मेरा बहुत पुराना और घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वतन्त्रता-संग्राम के समय उन्होंने हमेशा हमारा साथ दिया और आवश्यकतानुसार रुपये-पैसे से हमारी सहायता की। पर पुस्तक का प्राक्कथन लिखना स्वीकार करने का यही एकमात्र कारण नहीं था, बल्कि पुस्तक के प्रूफ देखकर मुझे यह रचना भविष्य में एक महत्वपूर्ण विषयपर बहुमूल्य साहित्य सिद्ध होती जान पड़ी।

भारतीय इतिहास में स्वातंत्र्य-सग्राम का युग एक क्रान्तिकारी युग था। उस समय महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन छेड़ा था और उसमें कामयाबी हासिल की थी। उन महत्वपूर्ण वर्षों में देश में होनेवाली घटनाओं से समाचार-पत्रों का प्रत्येक पाठक परिचित है। समाचार-पत्रों की मिसिलें उन दिनों के समाचारों से रगी पड़ी है; पर महात्मा गांधी तथा सरकार के बीच पर्दे की आड़ में होने वाली बातों के सम्बन्ध में लोगों को बहुत ही कम जानकारी है। इस पुस्तक से वह कमी एक हद तक पूरी होती है। घनश्यामदासजी और महात्मा गांधी तथा देश के अन्य राजनीतिक नेताओं के बीच पिछले २५ वर्षों मे हुआ पत्र-व्यवहार इस पुस्तक में दिया गया है। इसमें तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के उच्चपदस्थ अधिकारियों तथा वहां के सार्वजनिक जीवन में प्रमुख अन्य अंग्रेजों के साथ की गई घनश्यामदासजी की भेंटों का विवरण भी है। गोलमेज-परिषद् का तथा स्वतंत्रता-प्राप्ति के कुछ ही समय पहले तक सरकार और कांग्रेसी नेताओं में होने वाली चर्चा का विवरण भारतवासियों के तथा उस समय के इतिहास से परिचित होना चाहनेवालों के लिए समान रूप से रोचक होगा। तत्कालीन इतिहास के प्रेमियों के लिए तो यह पुस्तक विशेष महत्त्व-पूर्ण होगी। घनश्यामदासजी के अपने पास विद्यमान सामग्री में से एक अंश के प्रकाशित करने के निश्चय का मैं स्वागत करता हूं।

महात्मा गांधी पत्र-व्यवहार में बड़े नियमित थे। वह पत्रों का उत्तर स्वयं देते या अपने सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई के द्वारा दिलवाते या अपने

साप्ताहिक पत्रों के मार्फत देते। इस प्रकार वह देश के तथा बाहर के असंख्य नर-नारियों के जीवन से सम्बन्ध बना रखते और उनकी विचारधारा को प्रभावित करते थे। मनुष्यों के सद्‌गुणों को परख लेने की उनमे एक विशेष शक्ति थी। परख लेने पर वह उन मनुष्यों का देशहित के निमित्त पूर्ण उपयोग करते थे। अपने जीते-जी उन्होंने ऐसे अनेक आदमियों को गढ़ा, जो उनकी अनेक योजनाओं से सहमत न होते हुए भी उनसे स्फूर्ति पाते और अपने-अपने क्षेत्र मे बहुमूल्य सेवाएं करते रहे। घनश्यामदासजी की गणना इन्ही लोगों में थी। यह नहीं कि वह महात्माजी से सदा सब विषयों में सहमत रहे हों, तथापि एक सैनिक की भांति वह अपने नेता के आदेश का पालन करते थे। पुस्तक से पता चलेगा कि अनेक विषयों मे, विशेषत: आर्थिक विषयों में बापू से कभी-कभी उनका दृष्टिकोण भिन्न होते हुए भी वह उनके द्वारा हाथ मे लिये गए कामों में सोलह आना योग देते थे। गांधीजी की राजनीतिक कार्य-योजना के संबंध मे, अनेक अंग्रेजों के सामने उन्होंने अपने को गांधीजी के दृष्टिकोण का विश्वासी व्याख्याता सिद्ध किया। आगे के पृष्ठों से पता चलेगा कि किस प्रकार उन्होंने स्वयं बार-बार इंग्लैंड जाकर वहां के अधिकारी वर्ग को इस बात से पूर्ण परिचित रखा कि गांधीजी का दिमाग किस दिशा मे काम कर रहा है। उन्होंने गांधीजी की ओर से अधिकार के साथ बोलने का कभी दावा नही किया, पर उनकी विचारधारा का उन्होंने इतना अध्ययन और मनन किया था कि उन्होंने गण्यमान्य व्यक्तियों को उसका मर्म समझाने का दायित्व स्वयं ही ले लिया। स्वेच्छा से अपने ऊपर लिये हुए इस दायित्व को पूरा करने मे उन्हें निस्संदेह असाधारण सफलता प्राप्त हुई, घनश्यामदासजी गांधीजी का मानस ठीक समझ पाते थे। राजनीतिक विषयों के सिवा अन्य विषयों के संबंध मे भी यह बात घटती है। घनश्यामदासजी उन गिने-चुने व्यक्तियों में से थे जो गांधीजी के लिए एक संतान के समान थे। उनकी शिक्षा उनमे अंकुरित होकर फलित हुई। संबंध घनिष्ठ होने के साथ-साथ वह प्रभाव बढ़ता गया। दोनों का यह अंतरंग संबंध बत्तीस वर्ष तक बना रहा। मुझे उनका यह पारस्परिक संबंध वर्षों तक देखने का गौरव प्राप्त है। क्योंकि गांधीजी के जितना ही अंतरंग संबंध उनका मेरे साथ भी था।

गांधीजी की अनेक शिक्षाओं में से एक शिक्षा थी कि लक्ष्मी के कृपा-पात्रों को अपने आपको धरोहरधारी और अपनी सम्पत्ति को दूसरों के उपकार के निमित्त एक धरोहर की भांति समझना चाहिए। बिड़लों ने यह शिक्षा भलीभांति हृदयंगम की है। देश के कोने-कोने में बिखरी हुई अनेक शिक्षण-संस्थाएं, मन्दिर, धर्मशालाएं और अस्पताल इसके साक्षी है। पिलानी

इनमें शीर्ष स्थानीय हैं। जैसे उन्होंने खूब कमाया है, वैसे ही भांति-भांति के सत्कार्यों मे उदारता-पूर्वक मुक्तहस्त होकर खर्च भी किया है। अपनी स्थापित-संचालित संस्थाओंके सिवा ऐसी भी अनगिनत संस्थाएं है, जो इनके दान से लाभान्वित हुई है। कहना तो यह उचित होगा कि ऐसा कदाचित् ही कोई सत्कार्य होगा, जिसके लिए मांग करने पर उन्होंने उसपर ध्यान न दिया हो। स्वातंत्र्यसंग्राम के संबंध मे भी यही बात थी। उसमें भी बापू और अन्य राजनीतिक नेताओं के मार्फत मुक्तहस्त होकर निस्संकोच भाव से उन्होंने धन-दान दिया। गांधीजी के कोई भी सत्कार्य, कोई भी अच्छी योजना हाथमें लेने पर बिड़लों की उदारता का उपयोग हुआ। इन पृष्ठों मे यह सब भलीभांति देखने को मिलेगा। वास्तव मे आवश्यकता होने पर गांधीजी कभी इनके साधनों का उपयोग करते न हिचकते थे, न ये अपने साधन उनकी सेवा में अर्पित करनें में संकोच करते थे।

इन पृष्ठों मे यह भी देखने को मिलेगा कि किस प्रकार भांति-भांति के कामों से घिरे रहने पर भी गांधीजी बिड़लों से संबंध रखने वाली ज़रा-ज़रा-सी बातमें व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी लेते थे—ठीक वैसे ही, जैसे कोई पिता अपनी संतान के कार्यकलाप मे रस लेता है। उनकी दिलचस्पी यहां तक बढ़ गई थी कि वह घनश्यामदासजी जैसे व्यक्ति को, जिन्हें डाक्टरी मशवरे का कोई अभाव न था, चिकित्सा-संबंधी नुस्खे बताते, क्योंकि उन्हें पूरा भरोसा था कि उनकी नसीहत श्रद्धापुर्वक सुनी जाकर उसपर अमल किया जायगा।

अतएव इस पुस्तक को प्रकाशित होते देखकर मुझे प्रसन्नता होती है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक गांधीजी के जीवन और उनकी विचारधारा का अध्ययन करनेवाले प्रत्येक विद्यार्थी के लिए ही नही, उन इतिहासकारों के लिए भी उपयोगी और सहायक सिद्ध होगी, जो उन घटनाओं में रुचि रखते हों, जिनकी इति-श्री भारत में स्वतंत्रता स्थापन के रूप मे हुई।

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली

—राजेन्द्रप्रसाद

लेखक : गांधीजी के साथ

प्रास्ताविक

इस पुस्तक का नाम क्या रखा जाय, यह मेरे सामने एक बड़ी समस्या थी। एक सुझाव था कि "गांधीजी के साथ मेरा पत्र-व्यवहार" नाम रखा जाय। पर मुझे प्रस्ताव पसन्द नहीं आया। यह सही है कि पुस्तक में गांधीजी व उनके सेक्रेटरी महादेव देसाई के साथ मेरे पत्र-व्यवहार का विशेष रूप से संग्रह है। गांधीजी को जब स्वयं लिखने का अवकाश नहीं मिलता था तब महादेवभाई उनके निर्देश से मुझे समय-समय पर लिखते रहते थे और उनके कैंप की आवश्यक घटनाओं से परिचित करते रहते थे। पर यदि पत्र-व्यवहार तक ही इस पुस्तक को मैं सीमित रखता तभी यह नाम सही होता। जो चित्र मैं पाठकों के सामने रखना चाहता था वह तो इससे कुछ भिन्न था। मैंने जान-बूझकर अनेक संस्मरणों और भेंटों का भी उसमें समावेश कर लिया है, जो समय-समय पर वाइसरायों, कूटनीतिज्ञों और अन्य लोगों के साथ मैंने की थीं। यदि मैं इन सब विवरणों को छोड़ देता तो यह पुस्तक अधूरी रह जाती। इनके सिवाय इस पुस्तक में मैंने कई राजनीतिज्ञों से प्राप्त कुछ ऐसे पत्र भी दे दिये हैं, जिन्हें विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से मैं आवश्यक समझता हूं। इसलिए मैंने "बापू की छत्रछाया में—कुछ व्यक्तिगत संस्मरण" यही नाम रखना उचित समझा। मुझे लगता है कि यह नाम सार्थक होगा, क्योंकि अपने सब कामों में मैंने अपने को, बापू के सान्निध्य में और उनकी छत्रछाया में हूँ, ऐसा माना है।

गांधीजी सन् १९१५ के अंत में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे थे। तबसे लेकर हत्यारे की गोली से मारे जाने के दिन तक

वे भारत का एक प्रकार से मंथन करते रहे। प्रायः रोज-रोज ही उन्होंने इतिहास का निर्माण किया। नये विचार, नई अभिलाषाएं और नये स्वप्न उन्होंने जनता के सामने रक्खे। जब मंथन हुआ तो कुछ मक्खन भी ऊपर आने लगा और साथ-साथ में थोड़ा मैल भी तैरने लगा। गांधीजी हमारे बीच से अब चले गये; किन्तु इस मंथन-क्रम को वे जो गति दे गये हैं, उसमें आज भी कोई शिथिलता नहीं आई है। इस मंथन में हमें शुद्ध ताजा मक्खन मिलेगा या मैल-मिश्रित घी, या केवल मैल ही पल्ले पड़ेगा, इसकी भविष्य-वाणी करना मेरे बूते के बाहर की बात है। अंत में तो यह सब-कुछ हमारे लोक-समाज पर ही निर्भर है।

यह मेरे लिए कठिन नहीं था कि पत्र-व्यवहार तथा अन्य सामग्री के आधार पर मैं एक ऐसी रचना कर डालूं, जो पाठकों को एक क्रम-बद्ध चित्र दे दे। पर यह कार्य मेरा नहीं था। यह तो इतिहास-लेखकों का काम है। मैंने तो जैसी सामग्री मेरे पास थी उसको उसी अनगढ़ रूप में ही प्रस्तुत करके संतोष कर लिया है। इसमें कुछ ऐसे विवरण भी हैं, जो अबतक अज्ञात थे और अब प्रकाश में आकर भारत के राजनीतिक इतिहास की शृंखला में एक नई कड़ी जोड़ने में सहायक होंगे। भविष्य के इतिहासकार वर्तमान युग का चित्रण करने जब बैठेंगे तो अवश्य ही उन्हें इस पुस्तक में कुछ नई सामग्री मिलेगी, जिसके सहयोग से वे अपने चित्र में कुछ नये रंग भर सकेंगे। इस विवरण में तिथि की शृंखला बीच-बीच में टूटी हुई दिखाई देती है, उसका भी कारण है। गांधीजी द्वारा लिखित और उनके निर्देश से महादेवभाई द्वारा लिखे गये सब पत्रों को मैंने अत्यंत सावधानी से सुरक्षित रखा। महादेवभाई तथा गांधीजी के अन्य सेक्रेटरियों द्वारा लिखे गये पत्रों को भी मैं गांधीजी के ही पत्र मानता था, क्योंकि वे सब उनके निर्देश से लिखे जाते थे, इसलिए मैंने

उन्हें सुरक्षित रखा। पर जो पत्र मैंने उन्हें लिखे, दुर्भाग्यवश उन्हें मैं संभालकर नहीं रख सका। मुझे इस बात का दुःख है कि समय-समयपर उनके साथ हुई अपनी चर्चा का भी कोई विवरण मैंने नहीं रखा। पुस्तक मोटी हो जाने और उसकी कीमत बढ़ जाने के डर से गांधीजी के सभी पत्रों का भी मैंने इसमें समावेश नहीं किया है। उन्हीं पत्रों को इस पुस्तक में मैंने स्थान दिया है, जो मेरी दृष्टि में महत्वपूर्ण या ज्ञानवर्द्धक थे। कहीं-कहीं शृंखला की कड़ियां टूटी हैं, उसका और भी एक कारण है। जब-जब मैं स्वयं गांधीजी के साथ होता था उस समय कोई पत्र-व्यवहार हो नहीं सकता था। जहां अधिक दिनों का अंतर पड़ गया है, जैसे कि एक बार सन् १९३१ में और १९४२ या १९४४ के बीच, उसका यह कारण था कि गांधीजी उस समय जेल में थे और उनके साथ पत्र-व्यवहार उस जमाने में सम्भव नहीं था। इसके सिवा बहुत से ऐसे कागज-पत्र भी थे जो कि मुझे महादेवभाई से मिले थे। उन्होंने उन कागजों की अपने कई पत्रों में चर्चा भी की है, पर दुर्भाग्यवश इस तरह की सारी-की-सारी सामग्री उपलब्ध नहीं है। इसलिए कुछ अंशों में यह कहा जा सकता है कि यह पुस्तक अधूरी है। किन्तु अवलोकन करने से पता लग जाता है कि इसके कारण कोई ज्यादा क्रम-भंग नहीं हुआ है। इतिहासकार को घटनाओं की कड़ियाँ जोड़ने में, मेरा विश्वास है, कोई कठिनाई नहीं होगी। जहां शृंखला टूटी भी है वहां अन्य सामग्री इतनी स्पष्ट है कि वह उस कमी को पूरा कर देती है।

गांधीजी के साथ मेरी पहली मुलाकात सन् १९१६ में हुई थी। तब वह दक्षिण अफ्रीका से लौटने के कुछ दिन बाद कलकत्ता आये थे। उस दिन हमारा जो सम्पर्क स्थापित हुआ, वह पूरे ३२ वर्ष तक, अर्थात् उस दिन तक बना रहा जिस दिन दिल्ली में मेरे ही निवास-स्थान पर उनकी मृत्यु हुई।

मैं उनके सम्पर्क में किस प्रकार आया? मेरे जीवन की इस सौभाग्यपूर्ण घटना का एकमात्र श्रेय प्रारब्ध को ही मिलना चाहिए, जिसका रहस्यमय हाथ भीतर-ही-भीतर अपना काम करता रहता है। मेरी कोई राजनीतिक पृष्ठभूमि नहीं थी, इसलिए मैं इस योग्य कहाँ था कि किसी विश्वविख्यात व्यक्ति की दृष्टि में आ पाता। मेरा जन्म सन् १८९४ में एक गांव में हुआ था, जिसकी जनसंख्या मुश्किल से तीन हज़ार रही होगी। रेल, पक्की सड़क या डाकघर के जरिये बाहरी दुनिया से सम्पर्क का कोई आधुनिक साधन उपलब्ध न होने के कारण हमारा गाँव राजनीतिक हलचल से एक प्रकार से बिलकुल अलग-सा था। यात्रा के साधन ऊंट, घोड़े या बैलों द्वारा चलनेवाले रथ थे। बैलों द्वारा चलनेवाले रथ विलास की वस्तु थे और साधारणतः सम्पन्न लोगों द्वारा महिलाओं और अपाहिजों के लिए रखे जाते थे। घोड़ा दुर्लभ जानवर था और अधिकतर भू-स्वामियों द्वारा उसका उपयोग किया जाता था। हमारे परिवार में तो बहुत अच्छे ऊँट थे और बाद में हमारे पास बैलों-वाला एक रथ भी हो गया। किन्तु ऊंट ही सदा यातायात का सबसे अधिक उपयोगी और लोकप्रिय माध्यम रहा। आजकल ऊंट पर लम्बी यात्रा की सम्भावना को लोग कोई उत्साह के साथ नहीं देखते हैं। किन्तु अपनी सहन-शक्ति, धीरज और भोलेपन के कारण इस पशु ने मुझे सदा आकर्षित किया। मुझे याद है कि जब एक बार मुझे लगातार छह दिनों तक ऊंट की पीठ पर यात्रा करनी पड़ी थी तो कितना आनन्द आया था!

हमारे गांव में कोई भी अखबारों के पीछे सिर नहीं खपाता था। दो-चार आदमी ही अखबार पढ़ पाते होंगे और उन दिनों अखबार थे भी कहां? देहात में अंग्रेजी पढ़ना-लिखना कोई न जानता था। वहां कोई स्कूल भी नहीं था। बहुत कम लोग ही, शायद सौ में एक, मामूली हिन्दी या उर्दू लिख-पढ़ सकते थे।

चार वर्ष की आयु में मुझे पढ़ाने को एक ऐसे अध्यापक रखे गये, जो लिखाई-पढ़ाई की अपेक्षा हिसाब अधिक जानते थे। इस प्रकार मेरी शिक्षा का आरम्भ अंकों के साथ हुआ—जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि। नौ वर्ष की आयु में मैंने थोड़ा-बहुत लिखना-पढना सीख लिया। कुछ अंग्रेजी भी आ गई; किन्तु मेरी स्कूली शिक्षा का अन्त प्यारेचरण सरकार द्वारा लिखित अंग्रेजी की पहली पुस्तक (फर्स्ट बुक ऑव रीडिंग) के साथ ही हो गया। उस समय मैं ग्यारह वर्ष का था।

मेरे परदादा एक व्यापारी के यहाँ दस रु० मासिक पर मैने-जरी का काम करते थे। उनकी मृत्यु हो जाने पर मेरे दादाजी ने अठारह वर्ष की आयु में अपना निजी व्यापार चलाने का निश्चय किया और किस्मत आजमाने बम्बई चले गये। बाद में मेरे पिता-जी ने काम-काज बढ़ाया और जब मेरा जन्म हुआ, उस समय तक हम लोग काफी सम्पन्न समझे जाने लगे थे। हमारे पैंतीस वर्ष पुराने कारबार की जड़ उस समय तक अच्छी तरह जम चुकी थी। इसलिए जब मेरे तथाकथित स्कूली जीवन का अन्त हुआ तो मुझसे खान्दानी कारबार में हाथ बंटाने को कहा गया और बारह वर्ष की उम्र में ही मैं उसमें लग गया। पर मुझे विद्या से लगन थी, इसलिए स्कूल छोड़ने के बाद भी मैं अपनी शिक्षा स्वयं चलाता रहा। न मालूम क्यों, मुझे किसी अध्यापक द्वारा पढ़ने से चिढ़ थी। इसलिए स्कूल छोड़ने के बाद पुस्तकों और अखबारों के अलावा एक शब्दकोष और कापीबुक ही मेरे मुख्य अध्यापक रहे। इसी ढंग से मैंने अंग्रेजी, संस्कृत, एक-दो दूसरी भारतीय भाषाएं, इतिहास और अर्थशास्त्र सीखा और काफी जीवनियां तथा यात्राओं के विवरण भी पढ़ डाले। मेरा यह मर्ज़ आज भी ज्यों-का-त्यों बना हुआ है।

सम्भव है, इस पठन-पाठन द्वारा ही मुझे देश की राज-नीतिक स्वतंत्रता के लिए काम करने और उस समय के राज-

नीतिक नेताओं से सम्पर्क स्थापित करने का लोभ पदा हुआ। उन दिनों रूस-जापान युद्ध से एशियाई प्रजा में एक जोश लहराने लगा था। उससे भारत भी बचा न रहा। एक बालक के रूप में मेरी सहानुभूति सोलह आने जापान के साथ थी और भारत को स्वतंत्र देखने की लालसा मेरे मन को उद्वेलित करने लगी थी। किन्तु, जैसा कि मै कह चुका हूं, हमारे परिवार, गांव या जाति में किसी प्रकार की राजनीतिक पृष्ठभूमि नहीं थी, इसलिए राजनीति के प्रति मेरी इस रुचि को मेरे आसपास वालों ने कुछ अधिक पसन्द नहीं किया। पर यह सब मुझे गांधीजी की ओर खींच ले जाने को काफी नहीं था, इसलिए मेरा अब भी यही विश्वास है कि कृपालु प्रारब्ध ही मुझे उनके पास ले गया।

सोलह वर्ष की आयु में मैंने दलाली का अपना एक स्वतंत्र धंधा शुरू कर दिया और इस प्रकार मैं अंग्रेजों के सम्पर्क में आने लगा। वे मेरे संरक्षक भी थे और मुझे काम भी देते थे। उनके सम्पर्क में आने पर मैंने देखा कि जहां वे अपने कामकाज के ढंग में, अपनी संगठन-संबंधी क्षमता में तथा कितने ही अन्य गुणों में बेजोड़ हैं, वहां वे अपने जातीय दर्प को भी छिपा नहीं पाते हैं। उनके दफ्तरों में जाने के लिए मुझे लिफ्ट का इस्तेमाल नहीं करने दिया जाता था, न उनसे मिलने के लिए प्रतीक्षा करते समय उनकी बेंचों पर ही बैठने दिया जाता था। इस प्रकार के तिरस्कार से मैं तिलमिला उठता था और सच पूछिये तो इसीने मेरे भीतर राजनीतिक अभिरुचि जागृत की, जिसे मैंने सन् १९१२ से लेकर आजतक उसी प्रकार बनाये रखा है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और गोखले को छोड़कर ऐसा कोई राजनीतिक नेता नहीं हुआ, जिससे मेरा सम्पर्क न रहा हो। न देश में ऐसा कोई राजनीतिक आन्दोलन ही हुआ, जिसमें मैंने गहरी दिलचस्पी न ली हो और जिसमें मैंने अपने ढंग से सहायता करने की चेष्टा न की हो।

उन दिनों के आतंकवादियों का साथ करने के कारण एक बार मैं बड़ी विपत्ति में पड़ गया और लगभग तीन महीने तक मुझे छिपकर रहना पड़ा। कुछ कृपालु मित्रों के हस्तक्षेप ने मुझे जेल जाने से बचा लिया। फिर भी मैं यह तो कह ही दूं कि आतंकवाद के लिए मेरे मन में कभी कोई गहरी रुचि नहीं रही और उसके जो कुछ भी अणु मुझमें शेष रह गये थे वे गांधीजी के सम्पर्क में आने के बाद से तो बिलकुल ही नष्ट हो गये।

ऐसी पृष्ठभूमि के कारण मेरा गांधीजी की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। मैंने आरम्भ उनके आलोचक की हैसियत से किया और अंत में उनका अनन्य भक्त बन गया। फिर भी यह कहना बिलकुल गलत होगा कि मैं सब बातों में गांधीजी से सहमत था। सच तो यह है कि अधिकांश मामलों में मै अपना स्वतंत्र विचार रखता था। जहां तक रहने-सहने के ढंग का सवाल था, मेरे और उनके बीच बहुत कम समानता थी। गांधीजी संत पुरुष थे। उन्होंने सुख-ऐश्वर्य के जीवन का परित्याग कर दिया था। उनकी प्रधान निष्ठा धर्म में थी और उनकी यह निष्ठा ही मुझे बरबस उनकी ओर खीच ले गई। पर अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में उनका दृष्टि-कोण मेरे दृष्टिकोण से भिन्न था। उनकी आस्था चरखा-घानी जैसे छोटे-छोटे घरेलू उद्योगों में थी; इधर मैं काफी ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करता था और बड़े-बड़े उद्योगों की सहायता से देश के औद्योगीकरण में विश्वास रखता था। तो फिर मेरे और उनके बीच इतनी निकटता का सम्बन्ध कैसे स्थापित हुआ? क्या कारण था कि मेरे प्रति उनका विश्वास और स्नेह अंत तक बना रहा? इसका श्रेय तो मै मुख्यत: उनकी महत्ता और उदारता को ही दूंगा। इतना आकर्षण, इतना स्नेह, मित्रों के प्रति इतनी प्रीति मैंने बहुत कम आदमियों में पाई। इस संसार में संतों का पैदा होना

कोई बहुत बड़ी बात नहीं है और राजनीतिक नेता भी ढेरों आते-जाते ही रहते हैं; पर सच्चे मानव इस पृथिवी पर बहुतायत से नहीं पाये जाते। गांधीजी एक महामानव थे—एक ऐसे दुर्लभ प्राणी, जो विश्व में शताब्दियों के बाद पैदा हुआ करते हैं। पर लोगों को एक मानव के रूप में गांधीजी के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी है। यही कारण था कि बहुत-सी समस्याओं पर उनसे सहमत न होते हुए भी मैंने उनकी इच्छाओं का पालन करने से कभी इन्कार नहीं किया और उन्होंने भी न केवल मेरे विचार-स्वातंत्र्य को ही सहन किया, बल्कि इसके लिए मुझसे और भी अधिक स्नेह किया—ऐसा स्नेह जो केवल एक पिता के द्वारा ही सम्भव है। इसलिए हमारे सम्बन्ध ने पारिवारिक स्नेह का रूप ले लिया था। मेरे प्रति उनका यह पितृ-सुलभ स्नेह उनके जीवन की अंतिम घड़ियों तक ज्यों-का-त्यों बना रहा।

अंतिम बार मुझे उनके शव के ही दर्शन हो पाये। यह प्रारब्ध की क्रूरता ही कही जायगी कि मैं उनके जीवन के अंतिम क्षणों में उनके पास मौजूद न था। मै उनकी मृत्यु से दस घंटे पहले ही उनसे अलग हुआ था। मुझे दिल्ली से लगभग एक सौ बीस मील दूर अपने गांव जाना पड़ा था, जहां मैं एक प्रभावशाली मंत्री महोदय को पिलानी की शिक्षा-संस्था दिखाने ले गया था। मै अपने घर से सबेरे सात बजे चला था और जाने से पहले गांधीजी के कमरे में प्रणाम करने गया था; पर वह आराम कर रहे थे और गहरी नीद में थे, इसलिए मैंने उन्हें जगाया नहीं। दस घंटे बाद पिलानी में मेरा लड़का मेरे पास दौड़ा आया और बोला कि रेडियो ने गांधीजी के गोली से मारे जाने की खबर सुनाई है। मुझे सहसा विश्वास नहीं हुआ। किन्तु भाग्य के आगे चारा ही क्या था।

तत्काल दिल्ली लौट आना सम्भव न था, क्योंकि आज भी मेरे गांव तक न रेल गई है, न पक्की सड़क। इसलिए मुझे

रातभर वहीं ठहरना पड़ा। पर नींद ठीक तरह नहीं आई और मैंने सपना देखा कि मैं अपने दिल्ली वाले मकान में (जहाँ गांधीजी ठहरे हुए थे) लौट आया हूं। वहां जैसे ही मैं उनके कमरे में घुसा, मैंने देखा कि उनका शव भूमि पर पड़ा हुआ है। मेरे प्रवेश करते ही वह उठ बैठे और बोले, "आ गये, बहुत अच्छा हुआ। बड़ी खुशी की बात है। मुझे जो गोली मारी गई है, वह कोई एकाकी घटना नहीं है, इसके पीछे एक गहरा षड्यंत्र है; किन्तु मुझे खुशी है कि उन्होंने मेरा अन्त कर दिया। मेरा काम पूरा हो गया है, इसलिए मुझे अब इस संसार से विदा होते हुए क्लेश नहीं हो रहा है।" फिर हम दोनों ने कुछ देर तक बातचीत की, बाद को उन्होंने अपनी घड़ी निकाल कर कहा, "अब मेरी अन्त्येष्टि का समय हो चला, लोग मुझे ले जाने के लिए आयेंगे, इसलिए मै लेटा जा रहा हूं।" यह कहकर वह फिर लेट गये और बिलकुल निश्चेष्ट हो गये। कैसा आश्चर्यजनक स्वप्न था वह! किन्तु शायद यह सब मेरे हृदय की प्रतिध्वनि-मात्र थी ।

अगले दिन तड़के ही दिल्ली लौटा और उस कमरे में गया, जहां उनका शव रक्खा हुआ था। लाखों की भीड़ बिड़ला-भवन को घेरे खड़ी थी। वह शांत और स्थिर लेटे हुए थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता ही नहीं था कि उनके शरीर से प्राण निकल चुके हैं। मेरे लिए यही उनके अंतिम दर्शन थे।

वर्षों पहले १६ जून, सन् १९४० को एक पत्र में महादेव देसाई ने मुझे लिखा था कि उन्हें लार्ड लिनलिथगो के प्राइवेट सेक्रेटरी का एक पत्र मिला है, जिसमें लिखा है कि जर्मन रेडियो से यह खबर प्रसारित की गई है कि अंग्रेजों के गुरगे गांधीजी की हत्या कराने की योजना कर रहे हैं। उसी पत्र में यह भी आशंका प्रकट की गई थी कि कौन जाने जर्मन गुरगे स्वयं ही अंग्रेजों के विरुद्ध प्रचार करने के लिए ऐसा कोई षड्यंत्र रच रहे हों; इसलिए सतर्क रहना चाहिए। क्या गांधीजी यह पसन्द करेंगे कि उनकी

रक्षा के लिए सादी पुलिस तैनात कर दी जाय? वाइसराय महोदय को ऐसी व्यवस्था करने में बड़ी प्रसन्नता होगी। महादेवभाई ने लिखा था कि उन्होंने वाइसराय को यह उत्तर दे दिया है कि गांधीजी ऐसी कोई व्यवस्था नहीं चाहते; क्योंकि वह बीसों वर्षों से हत्या की आशंका का सामना करते आ रहे हैं और अनुभव ने उन्हें सिखा दिया है कि ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता है, और न तो कोई हत्यारा किसी के जीवन की अवधि में कमी ही कर सकता है, न कोई मित्र उसकी रक्षा ही कर सकता है। महादेवभाई ने लिखा था कि ये बापू के अपने शब्द हैं। सचमुच ही होनी लगभग आठ वर्ष पहले से ही अपनी काली छाया डालने लगी थी। परंतु उस होनी का प्रतिनिधि न कोई जर्मन था, न कोई अंग्रेज; उनका हत्यारा एक भारतीय था—एक कट्टर हिन्दू। जब गांधीजी की बम से हत्या करने का प्रथम प्रयत्न निष्फल हुआ था तभी से भारत सरकार ने उनकी रक्षा के लिए कड़ा प्रबन्ध कर दिया था, यहां तक कि मेरे मकान के कोने-कोने में संतरी और सफेदपोश पुलिस के हथियारबंद सिपाही चक्कर लगाते दिखाई देते थे। यह अतिशय सतर्कता मुझे दुःखदायी लगती थी।

सन् १९१६ में तत्कालीन वाइसराय लार्ड हार्डिंज काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का शिलान्यास करने बनारस गये हुए थे। इससे कुछ समय पूर्व जब उनका जलूस नई राजधानी में प्रवेश कर रहा था तो उनपर एक बम फेंका गया था। इसलिए बनारस में उनकी रक्षा का कड़ा प्रबन्ध किया गया था। राइफलों और रिवालवरों से लैस पुलिस आसपास के तालाबों तक पर तैनात कर दी गई थी। गांधीजी को यह तमाशा बेहूदा प्रतीत हुआ था और उन्होंने खुले आम इस बात की आलोचना की थी कि वाइसराय का जीवन मृत्यु से भी बदतर है।

एक बार मैंने गांधीजी को उनके इन शब्दों की याद दिलाई और कहा, "क्या यह अशोभनीय नहीं है कि हमारी प्रार्थना-सभाएं तक संगीनों के साये में हों? मुझे आपके जीवन की बड़ी चिन्ता है; पर उससे भी अधिक चिन्ता मुझे आपकी कीर्ति की है। आप जब स्वयं ही जीवन भर इस प्रकार के प्रबन्धों से घृणा करते आये हैं तब क्या अब आप यह सब सहन कर लेंगे?" गांधीजी मेरी बात से सहमत हुए और बोले, "वल्लभभाई से पूछो; क्योंकि आखिर यह सब इंतजाम उसने ही तो किया है। मुझे यह सब पसन्द नहीं है; पर मैं यह सब अपनी रक्षा के लिए नहीं, सरकार के नाम की खातिर सह रहा हूं।" बाद में मैंने सरदार से बातचीत की और, जैसी कि उनकी आदत थी, उन्होंने संक्षेप में उत्तर दिया, "तुम्हें चिन्ता क्यों? तुम्हारा इन बातों से सरोकार नहीं है। जिम्मेदारी मेरी है। मेरा बस चले तो मैं बिड़ला-भवन में घुसनेवाले एक-एक आदमी की तलाशी लूं, पर बापू मुझे ऐसा करने नहीं देंगे।" निष्ठुर नियति की यही इच्छा थी और महादेव के शब्दों में—पर गांधीजी की भाषा में – उन्हें कोई मित्र नहीं बचा सका। मैं स्वयं प्रार्थना-सभा में अपनी कमर-पेटी में पिस्तौल छिपा-कर जाया करता था और बापू की ओर बढ़नेवाले हर आदमी पर निगाह रखता था, पर यह सब मिथ्या गर्व मात्र था। 'ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता है।'

इस घटना के लगभग दो वर्ष बाद एक दूसरा महान व्यक्ति इस संसार से उठ गया। इनके साथ भी मेरा उतना ही घनिष्ठ सम्बन्ध था। वह थे सरदार पटेल। वह हर बात में महात्माजी के सबसे कट्टर अनुयायी थे, विशेषरूप से संयम के मामले में। वह लौह पुरुष कहे जाते थे; पर उनकी बाहर से वज्र-जैसी दिखाई देनेवाली कठोरता के पीछे अतिशय कोमलता छिपी रहती थी। उनके भी अपने स्वतंत्र विचार थे, फिर भी

प्रत्येक आन्दोलन में, चाहे वह राजनीतिक हो, चाहे सामाजिक, उन्होंने सदैव अपने गुरुदेव का अनुसरण किया। एकान्त में वह उनसे लड़-भिड़ लेते थे, परंतु प्रकाश में उनका अनुसरण करते थे। यह कुछ विचित्र-सी बात थी कि देश के अनेक महान व्यक्ति गांधीजी से मतभेद रखते हुए भी उनका अनुसरण करते थे, बहुधा आँख मूंदकर। गांधीजी अपने आकर्षक व्यक्तित्व और मित्रों के प्रति वफादारी के बल पर ही इस प्रकार का असम्भव-सा चमत्कार दिखा सके थे। यही कारण था कि बहुत-सी बातों में गांधीजी से सहमत न होते हुए भी सरदार प्राय: सभी अवसरों पर उनका आंख मूंदकर अनुसरण करते रहे।

गांधीजी के मरने के बाद सरदार को कारोनरी थ्रामबोसिस (एक जटिल हृदय-रोग) हो गया। गांधीजी की मृत्यु से जो धक्का लगा, उससे उनका दिल टूट गया था। कोई साधारण कोटि का मनुष्य होता तो रो-धो कर अपने मन का उफान निकाल लेता; पर सरदार ने अपने शोक का प्रदर्शन नहीं किया, इसीलिए उनका हृदय शोक से जर्जर हो गया था। मुझपर उनका जादू उनकी मृत्यु से लगभग अट्ठाईस साल पहले चला था और उनके जीवन के अन्त तक हममें स्नेह का सम्बन्ध बना रहा।

यद्यपि सरदार की मृत्यु भी मेरे ही घर पर हुई, तथापि प्रारब्ध की क्रूरता का यह दूसरा उदाहरण है कि उनके अंतिम क्षणों में भी मैं उनके पास मौजूद न था। अपनी मृत्यु से चार दिन पहले वह दिल्ली से बम्बई चले गये थे। उनके बहुत से मित्र, जिनमें कुछ मंत्री भी थे, उन्हें बिदा करने हवाई अड्डे पर गये थे। उन्होंने कुर्सी पर बैठे-बैठे ही हवाई जहाज के द्वार से एक उदास मुस्कान के साथ सबको नमस्कार किया था। उन्हें भासित हो गया था कि जल्दी ही इस संसार से विदा लेनी है। मैं भी जानता था कि वह शीघ्र ही अपनी महा-यात्रा के लिए प्रस्थान करने वाले हैं; किन्तु अपने मन

को इस भुलावे में रखकर कि अन्त इतना निकट नहीं है, मैं दिल्ली में ही रह गया। चार दिन बाद ही वह चल बसे। सरदार की अंतिम झांकी भी मुझे उनके शव की ही मिली।

महादेव देसाई की मृत्यु सन् १९४२ में आगाखां महल में हुई थी, जो उन दिनों बंदीगृह बना दिया गया था। महादेव-भाई भी मेरे एक अभिन्न मित्र थे। उन्होंने अपने गुरुदेव की गोद में ही शरीर-त्याग किया। उस समय उनके इष्ट-मित्र उनके पास नहीं थे। वह सबके ही प्यारे थे। यह ठीक है कि महात्मा-जी ने उन्हें बनाया था; पर यह कहना भी गलत न होगा कि कुछ सीमा तक महादेव ने भी महात्माजी को अपने सांचे में ढाला था। महादेव देसाई के व्यक्तित्व में बड़ा आकर्षण था, बड़ी मोहिनी थी। वह बड़े विद्वान थे और दूसरों से अपनी बात मनवाने की उनमे असाधारण क्षमता थी। जब कभी बापू किसी मामले में हठ पकड़ लेते थे तो केवल सरदार और महादेव ही उस महान संकल्पी को दूसरी ओर मोड़ पाते थे। कितनी ही बार गांधीजी को महादेवभाई की बात माननी पड़ी, कभी उबल पड़ने के बाद, कभी खिलखिलाकर हँसते-हँसते।

आज यदि ये तीनों व्यक्ति जीवित होते और इतने स्वस्थ होते कि आगे पन्द्रह वर्ष और जीवित रह सकते तो भारत के इतिहास की रूपरेखा क्या होती, यह एक वृथा कल्पना है। मेरा तो विश्वास है कि मनुष्य अपना कार्य समाप्त करने के बाद ही इस संसार से विदा लेता है। हमारा शोक करना बेकार है। उत्तरदायित्व का भार अब आज की, और आगे आनेवाली, पीढ़ियों पर है। सम्भव है, इन महापुरुषों की प्रेरणा का कुछ अंश इन पृष्ठों के द्वारा उन पीढ़ियों के हिस्से में आ जाय।

१८ जुलाई, सन् १९३५ को मैं लंदन में श्री बाल्डविन से मिला था। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने निम्नलिखित बातें कहीं, जिन्हें मैंने उसी समय नोट कर लिया था—

"प्रजातंत्रीय शासन-प्रणाली त्रुटियों से सर्वथा मुक्त हो, ऐसी बात नहीं है। किन्तु अबतक की शासन-प्रणालियों में वही सबसे अच्छी सिद्ध हुई है। भगवान को धन्यवाद है कि इस देश में तानाशाही नहीं है। जन-हितकारी तानाशाही स्वत: एक बहुत अच्छी चीज है; पर इस प्रकार की तानाशाही में जनता को कुछ करना नहीं पड़ता, केवल चुपचाप बैठे रहना होता है, जो कि ठीक नहीं है। प्रजातंत्र में सबको काम करना पड़ता है,यही इस प्रणाली का सबसे अच्छा गुण है। भारतवर्ष में भी यदि सब लोग काम करेंगे तो यह प्रयोग सफल सिद्ध होगा। यह प्रयोग-मात्र है, यह समझ कर यदि सब लोग काम में नहीं जुटेंगे तो यह कभी सफल नहीं होगा। प्रजातंत्रीय व्यवस्था में समाज के कुछ लोग भले ही उत्पात करें; पर हमें इन इने-गिने लोगों को समाज का मापदण्ड नहीं बनाना चाहिए। कांग्रेस को तो अपने वास्तविक स्वरूप को ध्यान में रखकर इस बात को समझ लेना चाहिए कि उसे काफ़ी बड़े क्षेत्र में देश की सेवा करने का अवसर मिल रहा है।"

१८ जुलाई, सन् १९३७ को, जब हमने प्रजातंत्रीय सरकार बनाने का दायित्व सम्हाल लिया तो बापू ने मुझे लिखा था, "हमारी असली कठिनाई तो अब आरम्भ होती है। यह बात तो अच्छी है कि हमारा भविष्य अब हमारी शक्ति,सत्यवादिता, साहस, संकल्प, परिश्रमशीलता और अनुशासन पर निर्भर है। अन्त में जो कुछ किया है वह ईश्वर के नाम से ईश्वर के भरोसे से। अच्छे होंगे, अच्छे रहो। तुम्हें मैं आशीर्वाद देता हूं।"

श्री बाल्डविन ने कहा था,"प्रजातंत्र में सबको काम करना होता है।" बापू ने इस बात पर जोर दिया कि हमारा भविष्य हमारी शक्ति, सत्यवादिता, साहस, संकल्प, परिश्रमशीलता और अनुशासन पर निर्भर है। दोनों ने एक ही बात भिन्न-भिन्न ढंग से कही और ये दोनों ही हमारे लिए मार्गदर्शक सिद्ध होने चाहिए।

गांधीजी की छत्रछाया में

: १ :

मेरा सामाजिक बहिष्कार

इस पुस्तक में मैंने इस बात की काफी चर्चा की है कि लोगों से जान-पहचान करने और व्यक्तिगत सम्पर्क करने का क्या महत्व है। इसमें मैंने अपनी फाइलों में सुरक्षित उन पत्रों का संकलन किया है, जो मेरे और दूसरे लोगों के बीच पिछले पच्चीस वर्षों में या उससे भी कुछ अधिक समय से जाते-आते रहे हैं। इसमें वे पत्रादि भी संग्रहीत किये गए हैं, जो गांधीजी तथा दूसरे लोगों ने मुझे राष्ट्र के इस संकटकाल में भेजे थे। हम भारतवासी स्वभाव से ही भावुक होते हैं। हम मित्रता से पिघलते हैं, प्रेम और सहानुभूति से द्रवित हो जाते हैं और करुणा की अनुभूति करते हैं। हम घृणा करना भी जानते हैं; परंतु यह घृणा साधारण तौर पर किसी एक व्यक्ति के प्रति नहीं, बल्कि व्यक्तियों के समूहों और उनकी कार्य-प्रणालियों के विरुद्ध होती है। यदि कभी वह किसी व्यक्ति विशेष के प्रति होती भी है तो अक्सर ऐसे व्यक्ति के प्रति होती है जिसके साथ हमारी जान-पहचान या साक्षात्कार नहीं होता है या जिसका नाम किंवदंती ने हमारे लिए घृणास्पद बना दिया है। सम्पर्क से सत्य का पता चल जाता है, कभी-कभी तो बहुत ही अप्रिय सत्य का। हंस माना गया व्यक्ति बगुला निकल आता है। स्वर्गीय महादेव देसाई ने अपने एक मर्मस्पर्शी पत्र में उन साथियों की करतूतों

का जिक्र किया है, जिन्होंने राष्ट्रीय हित के लिए पहले तो अपना पेशा छोड़ दिया; पर जिन्हें बाद में अपना पेट भरने के लिए बाध्य होकर तरह-तरह के हथकंडे अपनाने पड़े। उस पत्र में महादेव देसाई ने चेतावनी दी थी कि भविष्य में भी ऐसा संकट उपस्थित हो सकता है। लेकिन,जैसा कि मेरी यह कहानी बतायेगी, लोगों के अधिक निकट सम्पर्क में आने से हमें उनकी जिन अच्छाइयों का पता चलता है उनका पलड़ा कुल मिलाकर उनकी बुराइयों से कहीं भारी होता है। बुद्धिमानों ने तो 'अपने को पहचानो' के सिद्धान्त-वाक्य को सर्वोपरि स्थान दिया है। उसके बाद शायद 'एक-दूसरे को पहचानो' का नम्बर है, और तीसरा नम्बर है 'तुम्हारे साथ जैसा व्यवहार किया जाय वैसा ही तुम औरों के साथ करो' के सिद्धांत-वाक्य का। इन सभी कामों के लिए व्यक्तिगत सम्पर्क जरूरी है। हां, उन लोगों की बात दूसरी है, जो सिर्फ एकांत जीवन व्यतीत करते-करते ही मर जाते हैं। पर हममें से अधिकांश के लिए तो यह सम्भव नहीं है।

अधिकांश देशवासियों की तरह मुझपर भी गांधीजी का गहरा प्रभाव पड़ा है। इसलिए मै भारत के स्वतंत्र होने के दिन की बड़ी उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करता था। पर साथ ही जब अंग्रेजों और उनकी पार्लमेंट ने यह घोषणा की कि भारत को स्वतंत्र करना उनका भी लक्ष्य है तो मैने उनकी नेकनीयती पर कभी संदेह नहीं किया। अपने कार्यकलाप के प्रारम्भिक युग में गांधीजी का भी ऐसा विश्वास था; पर रौलट-रिपोर्ट ने और उसके फलस्वरूप बने हुए कानून ने, जिसे वास्तव में कभी अमल में नहीं लाया गया, इस विश्वास की नींव खोखली कर दी। राजनीति के साथ मेरा जो कुछ भी सम्बन्ध रहा है, वह उसके आर्थिक क्षेत्र में ही रहा है, लेकिन मैं भारत में रहने वाले अंग्रेजों के मन में गांधीजी के उच्च उद्देश्यों के बारे में अविश्वास की बढ़ती हुई भावना को, और साथ ही भारतवासियों

के मन में भारत-प्रवासी अंग्रेजों के प्रति ही नहीं, बल्कि अंग्रेज कूटनीतिज्ञों और ब्रिटिश पार्लमेंट तक के प्रति अविश्वास की जबरदस्त भावना को रोकने में सचेष्ट रहा।

एक हिन्दू के नाते मेरा जो भावना थी उसके कारण मेरे जीवन पर गांधीजी का प्रभाव सबसे अधिक था। मेरा जन्म एक ऐसे व्यापारी परिवार में हुआ है, जो सदा से सनातनधर्म की परम्परा का पालन करता आया है। मेरे दादा और उन-जैसे दूसरे लोगों की तुलना इंग्लैड और अमरीका के 'क्वेकरों' के साथ की जा सकती है। 'क्वेकरों' की ही तरह उन्होंने भी व्यापार में खूब धन कमाया, साथ ही उन्होंने अच्छे कामों में खुले हाथ खर्च करना अपना कर्त्तव्य समझा। 'क्वेकरों' की तरह ही वे भी कट्टरपंथी नहीं थे, अर्थात् वे जात-पात के किसी कठोर बंधन में जकड़े हुए नहीं थे। 'बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट' के द्वारा महिलाओं के उत्थान-कार्य को बड़ी प्रेरणा मिली है। गांधीजी हरिजनों के हितों के जबरदस्त समर्थक थे। ट्रस्ट ने इन हरिजनों को अन्य वर्गों के लोगों की बराबरी के दर्जे के पेशों के लिए तैयार करने में भी बड़ा काम किया है। लेकिन यहां मैं 'बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट, के कार्य के बारे में कुछ कहने नही बैठा हूं। मेरे कहने का अभिप्राय तो यही है कि गांधीजी का मुझपर जो प्रभाव पड़ा है वह उनके एक शक्ति-शाली राजनीतिक नेता होने के कारण उतना नहीं पड़ा, जितना कि उनकी धर्मपरायणता, उनकी नेकनीयती और उनकी सत्य की खोज करने की प्रवृत्ति के कारण पड़ा। अक्सर मै उनके तर्कों को नहीं समझ पाता था और कभी-कभी मै उनसे असहमत भी हो जाता था; लेकिन मुझे यह विश्वास सदा बना रहता था कि वह जो कुछ कहते या करते है वह अवश्य ही ठीक होगा, मैं उनका अभिप्राय न समझा होऊं, यह बात दूसरी है। उन्होंने मुझसे जितना भी रुपया मांगा (और वह कहा करते थे कि जिन कामों में वह लगे हुए हैं, उनकी खातिर उनका भिक्षा-पात्र सदैव आगे

बढ़ा रहता है) इस विश्वास के साथ मांगा कि उन्हें वह रकम अवश्य मिल जायगी; क्योंकि उनके लिए मेरा सर्वस्व हाजिर था। पर उन्होंने तानाशाही कभी नहीं अपनाई। वह तो स्वभाव से ही विनयशील थे। इतना ही नहीं, जब कभी मैं उनकी बातों को समझ नहीं पाता था और अपने मन की बात कह देता था तो वह मेरी आलोचना को रत्ती भर भी नाराज हुए बिना ग्रहण कर लेते थे, जैसा कि हमारे पत्र-व्यवहार से जाहिर होगा। उनका यह कहना कि वह अपने दोस्तों को अपना पथ-प्रदर्शक मानते हैं, न तो उनकी कोरी नम्रता ही थी, न दूसरों के मनोभावों को ठेस न पहुंचाने की इच्छा ही; वह सचमुच ही उनकी सलाह मानने को तैयार रहते थे, बशर्तेकि वह सलाह उन्हें उस अंतिम सत्य की खोज से न डिगाए—उस चिरंतन सत्य की खोज से, जो हम सबका सृजन करता है ।

गांधीजी ने अपनी 'आत्मकथा' सन् १९२४ में समाप्त की। बस, तभी से मैंने उनके और दूसरे लोगों के साथ अपने पत्र-व्यवहार को सुरक्षित रखना आरम्भ किया। मैं बड़े कष्ट में था, इसलिए स्वभावतया मैं नसीहत के लिए बापू की शरण में आया। मारवाड़ी समाज रूढ़िवादी है ही। उसने हमारे परिवार की आधुनिकता के कारण हमारा सामाजिक बहिष्कार आरम्भ कर दिया था। इससे मेरे मन में बड़ा रोष भरा हुआ था और मैं गांधीजी की अहिंसा की नीति का पालन करने और यह सबकुछ चुपचाप सहन करते जाने को तैयार नहीं था। मैं गांधीजी को लिख भी चुका था कि वह विरोधियों के साथ पेश आने के मामले में जरूरत से ज्यादा नम्रता और विश्वास से काम लेते हैं और जिन्हें वह हंस समझते हैं उनमें से कुछ तो बगुले मात्र हैं। इसके उत्तर में उन्होंने लिखा, "मैं किसी पर भी आवश्यकता से अधिक विश्वास नहीं करता हूं। पर जब दोनों पक्ष दोषी होते हैं तब यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि एक का दोष दूसरे के दोष से कितना अधिक है। इसलिए मैंने एक सीधीसादी

युक्ति सोच ली है—बुरा करने वाले के साथ भी नेकी ही करो।" और जब मैंने अपनी बिरादरी के अंधकार में पड़े पोंगा-पंथियों के विरुद्ध दिल का गुबार निकाला तो गांधीजी ने आश्वासन देकर मुझे शांत किया। उनके वे आश्वासन अब सच्चे सिद्ध हो चुके हैं। उन्होंने लिखा :

जुहू, बम्बई
१३-५-२४

भाई श्रीयुत् घनश्यामदास,

आपका पत्र मुझको मिला है।

मेरा विश्वास है कि यदि जातिवालों के विरोध आप बरदाश्त कर सकेंगे तो आखिर मे फल अच्छा ही होगा। हम सबमें दैवी और आसुरी प्रकृति कार्य कर रही है। इसलिए थोड़ी बहुत अशांति अवश्य रहेगी। उससे डरने की कुछ आवश्यकता नही है। प्रयत्नपूर्वक निग्रह करते रहने से आसुरी प्रकृति का नाश हो सकता है। परंतु दिल में पूरा विश्वास होना चाहिए कि दैवी प्रकृति को ही सहायता देना हमारा कर्तव्य है। मुझे फिक्र आपके पिता और बन्धु के लिये है। यदि वे आपके पक्ष का संगठन कर संग्राम चाहते हे और आप उनको शांति-मार्ग की ओर न ला सकें तो आपके ही कुटुम्ब में दो विरोधी प्रवृत्ति होने का सम्भव है। ऐसे मौके पर धर्म-संकट खड़ा होता है। मैं तो अवश्य उनसे भी प्रार्थना करूंगा कि आपके ही हाथ से जाति में दो गिरोह पैदा न हों।

जिस चीज को आपने अच्छी समझकर की है और जिसकी योग्यता के लिए आज भी आप लोगों के दिल में शंका नही है, उसके लिए माफी मांगना मै हरगिज उचित नही समझूगा।

आपकी तरफ से मुझे ५,०००) रु० मिल गये हे। 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' के लिए आप उचित समझे, उतना द्रव्य भेज दे। करीब ५० नकल मुफ्त देने की आवश्यकता है।

आपका
मोहनदास गांधी

११ जून को मैंने गांधीजी को लिखा :

पिलानी
११ जून, १९२४

परम पूज्य महात्माजी,

आपके पत्र सदैव मुझे कुछ-न-कुछ नई शांति देते रहते है। यद्यपि दो गिरोह होगये हैं तथापि कुछ बहुत ज्यादा अविवेक से कार्य नहीं हो रहा है।

हालांकि हम लोगों ने इस मामले मे अबतक थोड़ा कष्ट सहन कर एक छोटा-सा स्वार्थ त्याग किया है, फिर भी जो पवित्रता ऐसे कार्यों मे होनी चाहिए वह हम लोग धारण नही कर सके है । कुछ धर्म-संकट भी है और कुछ कौटुम्बिक दौर्बल्य भी है । आप 'नवजीवन' मे सामाजिक विषयों पर कुछ लिखे तो लोगों का अत्यंत उपकार भी हो सकता है ।

स्वराजियों ने सिराजगंज की कांफ्रेन्स में हिंसा की घोषणा कर दी है और अपनी अहिंसा के पुराने बुरके को उतार कर फेक दिया है । अहिंसा के नाम से जो हिंसा का नाटक खेला जा रहा था, उसका इस प्रकार अंत हो गया । सभव है, आप अल्पसंख्यक रह जायं, किन्तु जिस पवित्रता से आपका काम होगा, उसकी ताकत कितनी बढ़ी-चढ़ी होगी, इसकी तो कल्पना भी मेरे लिए असम्भव-सी है ।

आपने मुझे अहिसा का उपदेश दिया और मैने भी उसे बिना शंका के सुन लिया; किन्तु आपसे दूर होने के पश्चात मुझे फिर समय-समय पर शंकाएं होती है । इसमे तो मुझे रत्तीभर भी शंका नही कि अहिंसा एक उत्तम ध्येय है । किन्तु आप जैसे द्वंद्व-विमुक्त पुरुष संसार की भलाई के लिए किसी मनुष्य का यदि वध कर दें तो क्या इसको हिंसा कहा जा सकता है ? समझ मे तो ऐसा आता है कि निष्काम भाव से किया हुआ कर्म एक प्रकार से अकर्म ही है; किन्तु जो साधारण श्रेणी के मनुष्य द्वंद्व से छूट नही गये है उनके हाथ से किया हुआ वध तो अवश्य हिंसा ही है । क्या ऐसी हिसा के लिए विधि नही है ? आपने तो स्वयं ऐसा कहा है कि भाग जाने की अपेक्षा प्रहार करना कही अधिक अच्छा है । इस हालत में लोगों को अंतिम श्रेणी की शिक्षा देकर प्रहार करने से रोकना कहां तक फलदायक होगा, सो मेरी बुद्धि में नही आता । आप लाठियां खाने का उपदेश भी देते है । लोग इस अंतिम ध्येय को पहुंचने का प्रयत्न कर सकते है या नही, इसमें मुझे पूरा शक है । मुझे तो ऐसा भय भी होता है कि कही ऐसा न हो कि लोग न तो उस उच्चतम अहिंसा को प्राप्त कर सकें और न अपनी बहू-बेटियों की रक्षा के लिए तलवार ही चलायं । हिंदूसभा एवं आर्य-समाजी भाइयो ने जबसे तलवार चलाने के लिए लोगों को उत्तेजित किया तबसे मुसलमान लोग भी वार करने में थोड़ा भय मानते है । मैं जानता हूं कि ऐसा होने से झगड़ा एक दफा बढ़ता ही है; किन्तु इसी संग्राम में झगड़ा तय न हो जायगा, यह भी तो नही माना जा सकता ।

हम लोग ऐसा भी देख रहे है कि जिन हिन्दुओं को २०० वर्ष पूर्व जबर-दस्ती मुसलमान बना लिया गया था वे यद्यपि उस समय मुसलमानों से रुष्ट हुए होंगे, तथापि आज वे वैसे ही कट्टर मुसलमान है जैसे अरब, ईरान से आये

हुए आदिम मुसलमान। इससे तो यही सिद्ध हो जाता है कि हिंसात्मक उपायों से की गई शुद्धियां भी, संभव है, हिन्दुओं का बल बढ़ाकर अन्त में प्रेम उपस्थित कर सकें। यद्यपि आपने मुझसे ऐसा कहा था कि पशु बल से कोई सुधार स्थाई नही हो सकता, किन्तु जब यह देखता हूं कि पशुबल से ही सती की घृणित प्रथा को ब्रिटिश सल्तनत ने बन्द कर दिया तो फिर यह समझ में नही आता कि पशुबल से अन्य सुधार भी क्यों नहीं किये जा सकते ? आप मुझसे कहते थे कि मुसलमानों के धर्म की वृद्धि तलवार से नही हुई। किन्तु पुराने लेखों के पढ़ने से इतना तो पता लगता है कि मुसलमानों ने जबरदस्ती बहुतसे हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था। सन् १८२९ ईस्वी में लार्ड बेंटिक के ईस्ट इंडिया कंपनी के डाइरेक्टरों के नाम लिखे हुए पत्र से ऐसा स्पष्ट पता भी चलता है कि मुसलमान जबरन तबलीग करते थे।

पशुबल से अर्थात् प्राटेक्टिव टैरिफ (रक्षात्मक चुगी) द्वारा खादी का प्रचार एवं विदेशी माल का बायकाट भी किया जा सकता है। यदि गवर्नमेंट चाहे तो अनेक सामाजिक कुप्रथाओं को रोक सकती है। इस हालत में मुझे यह भी शंका होती है कि समाजी लोग पशुबल से शुद्धियां कर ले और हिन्दुओं का बल बढ़ा ले तो इसमें कौनसी बुराई है ? इसमें तो कोई शक नहीं कि जिन मुसलमानों को हम किसी भी प्रकार हिन्दू बना लेंगे वे हिन्दुओं को उतना ही प्यार करेंगे जितना कि हिन्दू एक हिन्दू से कर सकता है।

मैं आपसे यह स्पष्ट कर देता हूँ कि मुझे यह हिसात्मक नीति बिलकुल पसंद नही है। अहिंसात्मक नीति मुझे प्रिय भी मालूम पड़ती है, किन्तु कभी-कभी मन में उठता है कि कहीं यह वृत्ति आलस्य के कारण तो नही है। मैंने आपको ये शंकाएं इसलिए लिखी हैं कि मुझे इनका माकूल जवाब मिले।

यदि आप यह कहें कि कार्य सिद्ध हो या असिद्ध, हमें कर्म की पवित्रता को नही बिगाड़ना चाहिए तब तो मेरे लिए कोई प्रश्न ही नही रह जाता। किन्तु जो लोग मुक्ति के मार्ग के पथिक नही हैं और मध्यम श्रेणी में विचरते हैं वे फलाफल को तौले बिना कोई उत्तम कार्य नहीं कर सकते। उन्हें 'आब्जेक्ट' (लक्ष्य) की चिन्ता है, न कि 'मैथड' (साधन) की, इसलिए आप कृपाकर मुझे यह लिखें कि यदि 'आब्जेक्ट' हिंसात्मक प्रणाली से प्राप्त कर सके तो क्यों न किया जाय।

यह मैं फिर निवेदन कर देता हूं कि हिंसात्मक नीति मुझे दिन-दिन अप्रिय होती जा रही है। और यह पत्र मैंने केवल अपनी शंकाओं के समाधान के लिए ही लिखा है।

विनीत
घनश्यामदास

२० जून, १९२४

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है।

कार्य सिद्ध हो या न हो तो भी हमें अहिंसक ही रहना चाहिये। यह सिद्धांत को प्राकृत रूप से बताने का तरीका है। ठीक कहना यह है कि अहिंसा का फल शुभ ही है। ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। इसलिये आज मिले या वर्षों के बाद, उससे हमे कुछ वास्ता नही है। २०० वर्ष के आगे जिनको जबरदस्ती इस्लाम में लाया गया उससे इस्लाम को लाभ हो ही नही सकता, क्योंकि इससे बलात्कार की नीति को स्थान मिला है। इसी तरह यदि किसी को बलात्कार से या फरेब से हिन्दू बनाया जावे तो उसमें हिन्दू धर्म के नाश की जड़ है। सामान्यत: तात्कालिक फल देखकर हम धोखा खाते हैं। बड़े समाज मे २०० वर्ष कोई चीज नही है।

कानून के जरिये से किसी की बुरी आदत छुड़ाना, इतनी-सी हिंसा पशुबल नही कहा जाय। कानून से शराब का धधा बन्द करना और इसीलिए शराबियों का शराब को छोड़ना बलात्कार नही है। यदि ऐसा कहा जाय कि शराब पीनेवालों को बेत लगाये जायंगे तो अवश्य पशुबल माना जाय। शराब बेचने का हमारा कर्त्तव्य नही है।

आपका
मोहनदास

स्पष्ट ही इससे मुझे संतोष नही हुआ और, जैसा कि उनके दूसरे पत्र से प्रकट होता है, मैंने वही शिकायत की होगी :

२० जुलाई, १९२४

भाई श्री घनश्यामदास,

ईश्वर ने मुझको नीति-रक्षक दिये हैं, उन्हींमें से में आपको समझता हूँ। मेरे कई बालक भी ऐसे हे और कई बहने भी हे और आप, जमनालालजी-जैसे प्रौढ़ भी हें जो मुझको सम्पूर्ण पुरुष बनाना चाहते हे। ऐसा समझते हुए आपके पत्र से मुझे दु:ख कैसे हो सकता है। मै चाहता हूं कि हर वक्त ऐसे ही आप मुझे सावधान बनाते रहें।

आपकी तीन फरियाद हे। एक, मेरा स्वराज्य दल को तखत के आरोप से मुक्त रखना, दूसरा, सोहरावर्धी को प्रमाण-पत्र देना और तीसरा, सरोजनी देवी को सभापतित्व दिलाने की कोशिश करना।

प्रथम बात यह है कि मनुष्य का धर्म है कि साधना के पश्चात् जो अपने को सत्य लगे उसी चीज को कहना, भले जगत को वह भूल-सी प्रतीत हो।

इसके सिवा मनुष्य निर्भय नहीं बन सकता है। अपनी मोक्ष के सिवा और किसी चीज का मैं पक्षपाती नहीं बन सकता हूं, परन्तु यदि मोक्ष सत्य और अहिंसा के प्रतिकूल हो तो मुझे मोक्ष भी त्याज्य है। उक्त तीनों बातों में मैंने सत्य का ही सेवन किया है। आपने जो कुछ मुझे जुहू में कहा था उसे स्मरण में रखते हुए मैंने जो कुछ भी कहा है वह कहा। जब मेरे नजदीक कुछ भी प्रमाण न हो तो मेरा धर्म है कि मैं स्वराज्य दल को आरोप से मुक्त समझूं। यदि आप मुझको प्रमाण दे देंगे तो मैं अवश्य निरीक्षण करूंगा और आप उसका उपयोग करने देंगे तो मैं जाहिर में भी कह दूंगा, वरना मेरे दिल में समझकर मैं खामोश रहूंगा।

सरोजनी देवी के लिये आप खामखा घबराते है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उन्होंने भारतवर्ष की अच्छी सेवा की है और कर रही हैं। उनके सभापतित्व के लिये मैंने कुछ प्रयत्न इस समय नही किया है। परंतु मेरा विश्वास है कि इस पद के लिए वह योग्य हैं, यदि दूसरे जो आजतक हो गये हैं वे योग्य थे तो। उनके उत्साह पर सब कोई मुग्ध हैं। उनकी वीरता का मैं साक्षी हूं। मैंने उनका चरित्र-दोष नही देखा है।

इन सब बातों का आप यह अर्थ न करें कि उनके या किसी के सब कार्यों को मैं पसन्द करता हूं।

जड़ चेतन गुणदोषवत्, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।।

आपका

पुनश्च : मोहनदास गांधी

शरीर को अच्छा रखो तब तो मैं काफी काम ले लूंगा और कुछ दूंगा। कम-से-कम पन्द्रह दिन दूध की आवश्यकता लगे तो अवश्य पिओ। फल खाओ। रोटी नुकसान करेगी। दही अवश्य लेना।

१५ सितम्बर, १९२४

भाई घनश्यामदासजी,

आपके पत्र मिलते रहते हैं। जबलपुर के मामले से मैं घबराता नहीं हूं। मैंने जो आत्म-प्रायश्चित्त करने की मेरी शक्ति थी वह कर लिया, इसलिये मैं शांत रह सकता हूं। फल का अधिकार हमको नहीं है, यह तो ईश्वर के ही हाथ में है। मेरा स्वास्थ्य ठीक होने से कई अग्रगण्य नेताओं को साथ लेकर दौरा करने का मेरा इरादा तो है ही, सबसे पहले मैं कोहाट जाना चाहता हूं। संभव है कि मैं ८ दिन में तैयार हो जाऊंगा।

समय आने पर आपकी सब भांति की सहाय मैं मांग लूंगा ।
आपके लोगों से मुझे यहाँ खूब सहाय मिल रही है ।
रुपये आप जमनालालजी को या तो आश्रम साबरमती को भेजने की कृपा करें ।

आपका
मोहनदास गांधी

हिन्दुओं और मुसलमानों के आपसी संबंध की दृष्टि से यह एक बहुत ही बुरा साल था। कितनी ही जगहों पर भयंकर दंगे हुए और सदा की भाँति तब भी बापू ने समझौता कराने की प्राण-पण से चेष्टा की। सर्दियों में उन्होंने दिल्ली में इक्कीस दिन तक अनशन किया; लेकिन उससे कोई ठोस लाभ न हुआ। उन दिनों हमारा पत्र-व्यवहार अधिकतर इसी विषय पर होता था। बापू ने लिखा :

"हिन्दू औरतों पर जो हमला हो रहा है उस बारे में हमारा ही दोष मैं समझता हूं। हम ऐसे नामर्द बन गये है कि हमारी बहनों की रक्षा भी नही करते हैं। इस विषय मे मैं खूब लिखूंगा। इसका कोई सादा इलाज मेरे नजदीक नही है। कई बात जो आपके सुनने मे आई हैं, उसमें अतिशयोक्ति का संभव है, परंतु अतिशयोक्ति काट देने के बाद जो शेष रहता है हमको लज्जित करने के लिए काफी है।"

पर इन घटनाओं के बावजूद मुसलमानों के प्रति उनकी हितैषिता में कोई कमी नहीं हुई, जैसा कि उनके अगले पत्र से स्पष्ट हो जाता है :

बीकानेर
२१-२-१९२५

भाई श्रीयुत् घनश्यामदासजी,

अलीगढ़ में राष्ट्रीय मुस्लिम यूनिवर्सिटी चलती है, उसकी आर्थिक स्थिति बहुत ही कठिन है। मैंने उन भाइयों को कहा है, मैं सहाय दिलवाने का प्रयत्न करूंगा। वे लोग एक रकम इकट्ठी कर रहे हैं। मैंने कहा है कि उसमें रु० ५०,०००) की सहाय मांगने की कोशिश में

करूंगा। आप भी इस बात को सोचिये और आपका दिल यदि इस सहायता में पूरी या कुछ भी देना चाहता है तो मुझे लिखियेगा। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न का मैं खूब अभ्यास कर रहा हूं। मेरा यह विश्वास हिन्दू समाज पर पड़ता जा रहा है, अगरचे मुसीबतें ज्यादा देखता हूं तो भी।

मैं आजकल काठियावाड़ में घूम रहा हूं। आज मेरा प्रवास खतम होगा।

आपका
मोहनदास गांधी

२२-३-२५

भाई घनश्यामदासजी,

आपके दो पत्र मिले हैं।

मुस्लिम यूनिवर्सिटी के बारे में आपने मुझको निश्चिन्त कर दिया है। मैं तो यह हरगिज नहीं चाहता हूँ कि आपके दान से आप भाइयों में कुछ भी विवाद हो। आपका नाम मैं प्रगट नहीं करूंगा।

आपने जो जमीन छोटा नागपुर में ली है उसको नौकरों की मृत्यु के कारण छोड़ने की सलाह मैं नहीं दूंगा। धातुरूप और जमीनरूप द्रव्य में बड़ा फरक नहीं है। द्रव्य के कारण झगड़ा होना, खून भी होना अनिवार्य है। आपके धर्म-संकट का एक ही इलाज है, मिलकियत छोड़ देना। यह तो आप इस समय करना नहीं चाहते हैं। हां, एक बात तो मैंने कही है, क्योंकि मिलकियत फिसादों का कारण बनती है और हमारे पास अकर्तव्य भी करवाती है। उसे छोड़ देना और जबतक उसको हम सम्पूर्णतया छोड़ने के लिये तैयार नहीं हैं तबतक उसका व्यय पारमार्थिक भाव से ट्रस्टी की हैसियत से करना और अपने लोगों के लिये उसका कम-से-कम व्यय करना। एक बात और संभावित है। जो सज्जन झगड़ा करता है उसको मिलने की कुछ कोशिश हुई है? उसकी अशांति का कारण क्या है? उसकी मूर्खता भले हो; परंतु उसकी जमीन पानी के दाम से तो नहीं मिली है। दुष्ट पुरुष भी अपनी मिलकियत फेंक देना नहीं चाहता है। यह तो दूसरा तात्विक प्रश्न मैंने छेड़ा है।

आपकी धर्मपत्नी का स्वास्थ्य कुछ ठीक है क्या? मैं मद्रास २४ तारीख को छोड़ूंगा।

आपका
मोहनदास गांधी

२६ मार्च, १६२५

भाई घनश्यामदासजी,

यह है हकीम साहब का तार। क्या आप मुझको २५,०००) रु० अब भेज सकते हो ? यदि भेजा जाय तो दिल्ली में हकीम साहब के यहां भेजोगे कि मुझको मुंबई मे जमनालालजी के यहां भेजोगे। मुझे यदि क्रेडिट दिल्ली मे मिले तो कमीशन का शायद बचाव होगा। मै पहली अप्रैल तक आश्रम में हूँगा। उसके बाद काठियावाड में दुबारा जाऊंगा। मई दो तारीख को फरीदपूर पहुचना होगा।

आपका
मोहनदास गांधी

बापू ने मुझे एक खास तरह का चरखा उपहार में दिया और मेरी कताई में बड़ी दिलचस्पी दिखाई, यहां तक कि मेरे काते हुए सूत की बारीकी पर मुझे बधाई भी दी :

३० मार्च, १६२५

भाई श्री घनश्यामदासजी,

आपका खत मिला है।

आपका सूत अच्छा है। जिस पवित्र कार्य का आपने आरम्भ किया है उसको आप हरगिज न छोड़ें। आपकी धर्मपत्नी के बारे में आप प्रतिज्ञा ले सकते हैं कि यदि उनका स्वर्गवास हो तो आप एक पत्नीव्रत का सर्वथा पालन करेंगे। यदि ऐसी प्रतिज्ञा लेने की इच्छा और शक्ति हो तो मेरी सलाह है कि आप आपकी धर्मपत्नी के समक्ष यह प्रतिज्ञा लें।

२० हजार रुपये के लिए मै जमनालालजी की दुकान से पूछूगा।

श्री रायचंदजी से मेरा खूब सहवास था। मै नही मानता हूं कि सत्य और अहिंसा के पालन में वे मेरे से बढ़ते थे, परंतु मेरा विश्वास है कि शास्त्र-ज्ञान में और स्मरण-शक्ति में मेरे से बहुत बढ़ते थे। बाल्यावस्था से उनको आत्मज्ञान और आत्मविश्वास था। मै जानता हूं कि वे जीवनमुक्त नहीं थे और वे खुद जानते थे कि वे नही थे। परन्तु उनकी गति उसी दिशा में बड़े जोर से चल रही थी। बुद्धदेव इत्यादि के बारे मे उनके ख्यालों से मै परिचित था। जब हम मिलेंगे तो उस बारे में बातें करेंगे। मेरा बंगाल में प्रवास मई मास में शुरू होता है।

अलीगढ़ के बारे में मैंने आपसे २५,०००) रु० की मांगनी की है। हकीमजी का तार भी आपको भेजा है।

आपका
मोहनदास गांधी

आश्रम, साबरमती
६ अप्रेल, १६२५

भाई घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला है। आपने जो चेक भेजा उसमें से देशबन्धु स्मारक के पैसे की जो रसीद जमनालालजी के यहां से आई है आपको देखने के लिये भेज देता हूं। चेक पर जो हुंडियावण काट लेते है वह काटकर रसीद दी जाती है उसका मुझको यह पहला अनुभव है।

हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों के लिये मैं और क्या लिखूं? भलीभांति समझता हूं कि हमारे लिये क्या उचित है। परंतु आज मेरा कहना निरर्थक है, यह भी जानता हू। शहद पर बैठी हुई माख को कौन हटा सकता है, बत्ती के इर्द-गिर्द घूमते परवाने की गति को कौन रोक सकता है?

मसूरी न जाने से मै बहुत लाभ उठा रहा हूं। आपका अभिप्राय यहां मिलने के बाद आपने क्यों दिल्ली से मसूरी जाने का तार भेजा? परंतु जिसको ईश्वर बचाना चाहता है, उसको कौन मिटा सकता है?

फिनलेंड के बारे में मैं नही जानता हूं मैं क्या करना चाहता हूं। जाने न जाने के मेरे नजदीक बहुत से कारण हैं। और क्योंकि मैं निश्चय नही कर सका हूं, इसलिये निमंत्रण देनेवालों को मैंने मेरी शर्त सुना दी। शर्त के स्वीकार के साथ अगर वे लोग मेरी हाजिरी चाहें तो मै समझूगा कि मेरा जाना आवश्यक है।

आल इंडिया कांग्रेस कमेटी में क्या होगा, देखा जावेगा।

आपका
मोहनदास

कहने की जरूरत नहीं कि एक जाति-बहिष्कृत के रूप में मुझे जो अनुभव प्राप्त हुए थे उनके कारण दलित जातियों के प्रति मेरी सहानुभूति बढ़ गई थी। फलत: बापू के हरिजन-आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए मैं लालायित हो गया था। हमारे पत्र-व्यवहार का बहुत बड़ा भाग इसी आन्दोलन के सम्बन्ध में था। परंतु मैं अपने पाठकों को इन विस्तार की बातों से परेशान नहीं करूंगा, क्योंकि हरिजनों का विषय इस पुस्तक में आगे चलकर फिर आयेगा। फिर भी यह तो बता ही दूं कि बापू ने अपने सुझावों के द्वारा कि चेकों को कहां जमा कराया जाय, जिससे उनके भुगतान का कमीशन न देना पड़े, अपनी वणिक-

सुलभ व्यापार-कुशलता का परिचय दिया। यहां यह भी बता दूं कि हरिजनों से व्यक्तिगत सम्पर्क न होने के कारण ही कट्टर हिन्दुओं के मन में, जिनमें मालवीयजी जैसे साधु पुरुष भी थे, हरिजनों के लिए उपेक्षा की भावना ने जड़ पकड़ ली थी। पत्र-व्यवहार को देखने से पता चलता है कि राष्ट्रीय प्रश्न को छोड़कर और सभी बातों में बापू और मालवीयजी में मौलिक मतभेद था। यद्यपि बापू स्वराज्य-पार्टी बनाने और उसके विधान-सभाओं में भाग लेने के विरोधी थे, फिर भी उनकी सहानुभूति पार्टी के कट्टरपंथी नेताओं—मोतीलाल नेहरू और सी० आर० दास—के साथ अपेक्षाकृत अधिक थी।

शुक्रवार ७ अगस्त, १९२५

भाई श्री घनश्यामदासजी,

आपके पत्र का उत्तर मैंने जमनालालजी के मार्फत भेजा था, वह मिला होगा। आपका लम्बा पत्र जब मुझे मिला था तब मैंने उसका सविस्तार उत्तर भेज दिया था और उसकी निज की रजिस्ट्री भी है। वह उत्तर सोलन में भेजा गया था। कैसे गुम हो गया, मैं नहीं समझ सकता हूं।

उसमें मैंने जो लिखा था उसकी तफसील यहां देता हूं। आपने एक लाख का दान देशबंधु स्मारक में किया, उसकी स्तुति की और यथाशक्ति शीघ्रता से देने की चेष्टा करने की प्रार्थना की।

पू० मालवीयजी और पू० लालाजी को मैं साथ नहीं दे सकता हूं, उसका कारण बताया और मेरे उनके लिये पूज्य भाव की प्रतिज्ञा की। पं० मोतीलाल और स्वराज्यदल को सहाय देता हूं, क्योंकि उनके आदर्श कुछ-न-कुछ तो मेरे से मिलते हैं। उसमें व्यक्तिगत सहाय की बात नहीं है।

और बातें तो बहुत-सी लिखी थीं, परन्तु इस समय वे सब मुझे याद भी नहीं हैं।

आप दोनों का स्वास्थ्य अच्छा होगा। मेरे उपवास की कथा आपने सुन ली होगी। मेरे इस खत के लिखने से ही आप समझ सकते हैं कि मेरी शक्ति बढ़ रही है। उम्मीद है कि थोड़े दिनों में मैं थोड़ा शारीरिक श्रम उठा सकूंगा।

मैं ता० १० को वर्धा पहुंचूंगा। वहां कुछ दस दिन रहने को मिलेगा।

आपका
मोहनदास

मेरी धर्मपत्नी को एक ऐसी बीमारी लग गई थी जो बाद में घातक सिद्ध हुई। बापू की शुभ कामनाएं और उनके चिकित्सा-सम्बन्धी सुझाव लगातार आते रहते थे। इसी बीच उन्होंने यौन-प्रश्नों पर भी अपने विचार लिखे :

बम्बई, १३ अप्रैल, १९२५

भाई घनश्यामदासजी,

आपके दो पत्र मिले है। आपने तिथि या तारीख का देना छोड़ दिया है। देते रहिये, क्योंकि मेरे भ्रमण मे पत्र मिलते है इससे कौनसी तारीख के कौन पत्र है, उसका पता बगैर तारीख मुझे नही मिल सकता।

हकीमजी तो यूरोप गये है। मैंने ख्वाजा साहब को पुछवाया है कि द्रव्य मिल गया है या नही। आपको कुछ पता मिले तो बताइये। जमनालालजी की दुकान से मैंने जांच की तो पता मिला कि उनको आपकी तरफ से रु० ३०,०००) अबतक मिले है। मुनीम ने पहुंच तो दी थी, ऐसा कहते है। मिलने की तिथि अनुक्रम से १०,०००) की १-१-२४ और २०,०००) की ५-१-२५ है।

यदि डाक्टर लोग आशा बताते है तो आपको धर्मपत्नी के मृत्यु का भय क्यों रहता है? विकारों का वश करना मेरे अनुभव में बहुत कठिन तो है ही; परंतु वही हमारा कर्त्तव्य है। इस कलिकाल मे मै रामनाम को बड़ी वस्तु समझता हूं। मेरे अनुभव में ऐसे मित्र है जिनको रामनाम से बड़ी शांति मिली है। रामनाम का अर्थ ईश्वर नाम है, मंत्र भी वही फल देता है। जिस नाम का अभ्यास हो उसका स्मरण करना चाहिये। विषयासक्त ससार मे चित्तवृत्ति का निरोध कैसे हो, ऐसा प्रश्न होता ही रहता है। आजकल जनन-मर्यादा के पत्रों को पढ़कर मै दु:खित होता हूं। मै देखता हूं कि कई लेखक कहते है कि विषय-भोग हमारा कर्त्तव्य है। इस वायु में मेरा संयम-धर्म का समर्थन करना विचित्र-सा मालूम होता है। तथापि मेरे अनुभव को मै कैसे भूलूं? निर्विकार बनना शक्य है, इसमें मुझे कोई शक नही। प्रत्येक मनुष्य को इस चेष्टा को करना अपना कर्त्तव्य है। निर्विकार होने का साधन है। साधनों में राजा रामनाम है। प्रात:काल उठते ही रामनाम लेना और राम से कहना 'मुझे निर्विकार कर', मनुष्य को अवश्य निर्विकार करता है। किसी को आज, किसी को कल। शर्त यह है कि यह प्रार्थना हार्दिक होनी चाहिये। बात यह है कि प्रतिक्षण हमारे स्मरण में हमारी आंखों के सामने ईश्वर की अमूर्त मूर्ति खड़ी होनी चाहिये। अभ्यास से इस बात का होना सहल है।

में बंगाल में प्रथमा को पहुंचूंगा । उसी रोज कलकत्ता फरीदपुर के लिये छोड़ूंगा ।

मोहनदास के वंदेमातरम्

गोरक्षा की लक्ष्य-सिद्धि के प्रयास के मामले में बापू की व्यावहारिक विवेक-बुद्धि की झलक निम्नलिखित पत्र से मिलेगी :

१ जुलाई, २५

भाई श्री घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला । लौहानी के बारे में आपको विशेष तकलीफ इस समय तो नहीं दूगा ।

जमनालालजी मुझे कहते थे कि जो २५,०००) रुपये आपने मुस्लिम यूनिवर्सिटी को दिये वे जो ६०,०००) जुहू में देने की प्रतिज्ञा की थी उसीमें के थे, । मेरी समझ ऐसी थी और मैंने ६०,०००) रुपये दूसरे कामों में खर्चने का इरादा कर रखा था । परंतु यदि आपकी समझ ऐसी न थी कि मुस्लिम यूनिवर्सिटी के रुपये अलग न माने जायं तो मुझे कुछ कहना नही है ।

दूसरी बात यह है । गोरक्षा के बारे में मेरे ख्याल आप जानते हे । श्री मधुसूदनदास की एक टेनरी कटक में है, उसकी उन्होंने कम्पनी बनाई है उसमें ज्यादा शेयर लेकर प्रजा के लिए गोरक्षा के कारण कब्जा लेने का दिल चाहता है। उसपर १,२०,०००) का कर्ज होगा। उस कर्ज मे से उसकी मुक्ति आवश्यक है । टेनरी में चमड़े केवल मृत जानवरों के लिए जाते हैं, परंतु पाटलघो को मरवाकर के भी उसके चमड़े लेते हे । यदि टेनरी ले तो तीन शर्त होनी चाहिए :

(१) मृत जानवर का ही चमड़ा खरीदा जाय ।

(२) पाटलघो को मरवाकर उसका चमड़ा लेने का काम बन्द किया जावे ।

(३) सूत लेने की बात ही छोड़ दी जावे। यदि कुछ लाभ मिले तो टेनरी का विस्तार बढ़ाने के लिए उसका उपयोग किया जावे।

मै चाहता हूं कि यदि इस शर्त से टेनरी मिले तो आप ले लें। उसकी व्यवस्था आप ही करें तो मुझको प्रिय लगेगा। यदि न करें तो व्यवस्थापक मैं ढूंढ लूंगा । टेनरी की अपनी ही जमीन कुछ बीघा है। मैंने देख ली है। श्री मधुसूदनदास ने इसमें अपने बहुत पैसे खर्च किये हे ।

तीसरी बात है चर्खा-संघ की। आप इसमें साथ दे सकते हैं। आप अखिल भारत देशबन्धु-स्मारक में अच्छी रकम दें, ऐसा मांगता हूं।

इन तीनों बात के बारे में आपसे जमनालालजी ज्यादा बात करेंगे, यदि आपका उनके साथ दिल्ली में मिलना हुआ तो।

आपकी धर्मपत्नी को कुछ आराम हुआ है क्या ?

मैं बिहार मे १५ तारीख तक रहूंगा।

आपका
मोहनदास गांधी

मुझे ठीक याद नहीं कि मैंने उन्हें ऐसी क्या बात लिखी थी, जिसपर उन्होंने निम्नलिखित पत्रों में मुझे डांट बताई :

नवम्बर, १९२५

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है।

मेरे लेख के बारे में मुझे विश्वास है कि मैंने बा को अन्याय से बचा लिया है। बा भी दिल मे यही समझती है, ऐसा मुझको प्रतीत होता है, अन्यथा इतने प्रफुल्लित चित्त से मेरे साथ घूम न सकती। कई वृथा दोषारोपण से बा और छगनलाल आदि को मैंने बचा लिया है। दोष के जाहिर स्वीकार का मीठा अनुभव मैंने जितना लिया है इतना शायद ही और किसी ने हमारे समाज में लिया हो। मुझको आश्चर्य है कि यह बात आपने नही पहचान ली।

आपका
मोहनदास

पाठकों ने देखा होगा कि बापू ने अपने पत्रों में बारबार आर्थिक बातों की चर्चा की है। दलित जातियों की सहायता के लिए किये जाने वाले संघर्ष में मैं रुपये-पैसे से उनकी जितनी भी सहायता कर सकता था, करता रहा, क्योंकि यही एक ऐसी चीज थी जो उनके पास नहीं थी। ये चर्चाएं उनके पत्रों में बारबार आयेंगी। इन पत्रों में व्यावसायिक मामले में उनकी व्यवहार-कुशलता के दर्शन होते हैं :

साबरमती
३ जनवरी, १९२६

भाई रामेश्वरदासजी,

आपका पत्र मिला। जमनालालजी आजकल यहां हैं। उन्होंने मुझे खबर दी है कि १०,०००) रु० उनको पेढी पर मिल गये हैं। उसका व्यय अन्त्यज-सेवा में करूंगा।

आपका स्वास्थ्य अच्छा है, जानकर आनन्द हुआ।

आपका
मोहनदास गांधी

उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम समस्या विकट रूप में मौजूद थी।

आश्रम, साबरमती
शुक्र० १६-४-२६

भाई घनश्यामदास,

आपका खत और २६ हजार रुपये का चेक मिला है। हिन्दू-मुसलमान-झगड़े के बारे में आपने जो प्रश्न पूछे हैं उनका उत्तर मैं देता हूँ, परन्तु अखबारों के लिये नही। मैंने आपसे कहा था कि आजकल हिन्दू जनता पर या तो हिन्दू जनता के उस विभाग पर कि जो इन झगड़ों में दखल देता है, मेरा कोई असर नही है। इसलिये मेरे कहने का अनर्थ हो जाता है। इसलिये मैं शात रहना, वही मेरा कर्तव्य समझता हूं।

(१) जुलूम यदि सरकार ने बन्द कर दिये हैं और कोई धार्मिक कार्य के लिये जुलूस की आवश्यकता हो तो सरकार की मनाही होते हुए भी जुलूस निकालना मैं धर्म समझूगा। परंतु जुलूस निकालने के आगे मैं मुसलमानों से मेलजोल की बात कर लूगा। और इतनी भी विनय करने पर वह न मानें तो मैं जुलूस निकालूगा और वे मारपीट करें उसको बरदाश्त करूंगा। यदि इतनी अहिसा की मेरे मे शक्ति न हो तो मैं लड़ाई का सामान साथ रखकर जुलूस निकालूगा।

(२) मुसलमान सईस वि० नौकरों के बारे मे किसी को उसके मुसलमान होने के कारण नही निकालूंगा। परंतु किसी मुसलमान को मैं नही रखूगा जो वफादारी से अपना काम नही करेगा या तो मेरे से उद्दंड बनेगा। मेरा ऐसा अभिप्राय नही है कि मुसलमान अन्य कौमों से ज्यादे कृतघ्न हैं। ज्यादा लड़ाकू हैं, यही बात मैंने उनमें देखी। किसी मुसलमान को मुसलमान होने के कारण ही त्याग करना मुझको तो बहुत ही अयोग्य मालूम होता है।

(३) जो हिन्दू शांति-मार्ग को नापसन्द करता है या तो उसके लिये तैयार नही है उसको लड़ाई करने की शक्ति हासिल कर लेनी चाहिये।

(४) यदि सरकार मुसलमानों का पक्षपात करती है तो हिन्दुओं को बेफिकर रहना चाहिये। सरकार से बेपरवाह रहे, खुशामद न करें, परंतु अपनी शक्ति पर निर्भर होकर स्वाश्रयी बने। जब हिन्दू इतना हिम्मतवान बन जायगा तब सरकार अपने आप तटस्थ रह जायेगी और मुसलमान सरकार का सहारा लेना छोड़ देगा। सरकार की मदद लेने मे न धर्म का पालन होता है, न कुछ पुरुषार्थ बनता है। मेरी तो सलाह है कि आप इस चीज को तटस्थता से देखे और कार्य करें। इसी में हिन्दू जाति का भला है, हिन्दू धर्म की सेवा है। यह मेरा दीर्घकाल का— कम-से-कम ३५ वर्ष का—अनुभव है। झगड़ा होने के समय जिस शाति और वीरता से आपने काम लिया वह मुझको बहुत ही प्रिय लगा। इसी शांति को कायम रखकर आप जो कुछ योग्य हो वह करे। यदि मेरे उत्तर मे कही भी स्पष्टता का अभाव है तो अवश्य दुबारा पूछियेगा।

जो लोन चर्खा संघ को देने का आपने कहा है उसमे से कुछ हिस्सा बम्बई के माल पर लेने का इरादा है। बम्बई में चर्खा संघ के दो गोडाउन हैं। आप चाहे तो उसमे से एक का कब्जा ले लेंवें और इसी मे लोन कवर करने के लिये जितना माल चाहिये उतना रखा जाय, और उससे ज्यादा माल भी आप संमत हों तो हम रखना चाहते है, जिससे एक गोडाउन का किराया हम बचा सके। और वह माल हम जब चाहे तब ले सके ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये। जो माल चर्खा संघ सीक्योरिटी के बाहर रखे उसमे हमेशा बढ-घट होनी होगी। इसलिए हमेशा उसमे प्रवेश करने का सुभीता मिलना चाहिये।

आपका
मोहनदास

आश्रम साबरमती
२३-५-२६. रवि०

भाई घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला था। खादी के विषय मे जो लोन आपने देने की प्र तिज्ञा की है इस बारे मे आपके खत की नकल जमनालालजी को भेज दी है।

साबरमती समझौते के बारे में मे तो स्तब्ध हो गया। अबतक मै कुछ समझ सकता नही हूँ। हिन्दू-मुसलमान के बारे मे मै सब समझ सकता हूं, परंतु लाचार बन गया हूं, क्योंकि मै आत्मविश्वास को नही छोड़ सकता

हूं, इसलिए निराश नहीं होता। इतना तो समझता हूं कि जिस ढंग से आज हिन्दू धर्म की रक्षा करने की कोशिश होती है उस ढंग से रक्षा नहीं हो सकती है। परंतु मैं तो निर्बल के बल राम वस्तु को सम्पूर्णतया मानता हूं। इसलिए निश्चिन्त हो बैठा हूं।

आपका
मोहनदास

अगले पत्र में उनके और मालवीयजी के मतभेद की चर्चा है, खासतौर से मेरे राजनीतिक क्षेत्र में क्रियात्मक रूप से प्रवेश करने के बारे में।

आश्रम साबरमती
८-६-२६. मंगल.

भाई घनश्यामदासजी

आपका पत्र मिला है। खादी प्रतिष्ठान को चर्खा संघ की मार्फत से आजतक कम-से-कम ७० हजार रूपये दिये हैं। मुझको स्मरण है, वहां तक ३५ हजार अन्य आश्रम को और ६ हजार प्रवर्तक संघ को। और भी छोटी-छोटी रकमें दी गई हैं। सब मिलकर करीब सवा लाख रुपये होंगे। और भी बंगाल में पैसे दिये जायेंगे। मैं जानता हूं कि खादी प्रतिष्ठान की आवश्यकता बहुत बड़ी है। सतीशबाबू अपना काम बहुत ही बढ़ाना चाहते हैं। मुझे यह बात प्रिय भी है। परंतु चरखा संघ में आज तो पैसे बहुत ही कम हैं। इसलिए यद्यपि चरखा संघ के मार्फत से जो कुछ हो सकता है वह किया जावेगा तदपि आप जितना दे सकें उतना सतीशबाबू को अवश्य दें।

कौन्सिल के बारे में क्या लिखूं? पूज्य मालवीयजी से इस बारे में मेरा तात्विक मतभेद है। मैं केवल इतना ही कह सकता हू कि यदि आप मानें कौन्सिलों में आपके जाने से लोकोपकार होगा तो आप अवश्य जायें। स्वराज्य दल का विरोध और राजनैतिक शिक्षण प्राप्ति का प्रलोभन यह दोनों बातें नैतिक दृष्टि से ख्याल करने में अप्रस्तुत हैं। यदि आप ऐसा समझते हैं कि आपने कौन्सिलों मे न जाने की प्रतिज्ञा मेरे समक्ष की है तो इस समझ को आप दूर करें। ऐसा कोई प्रतिबन्ध का निश्चयपूर्वक स्वीकार नहीं किया है। ऐसे बन्धन से मुक्त समझ कर केवल औपकारिक दृष्टि से आप कौन्सिलों मे जाने के बारे में आपका अभिप्राय निश्चित करें।

आपका
मोहनदास

आश्रम साबरमती
२५-७-२६

प्रिय घनश्यामदासजी,

मैं इस पत्र के साथ एक वक्तव्य भेजता हूं जो उस पत्र के साथ जाना चाहिये था, जो आपको उस दिन भेजा था।

आपके खादी प्रतिष्ठान वाले पत्र के सम्बन्ध में बापू का कहना है कि कोई ऐसी खास बात नहीं जिसके लिए उनके उत्तर की जरूरत हो। वह इस बात मे आपसे सहमत हैं कि व्यापार और परोपकार को मिलाना ठीक नहीं है, और प्रतिष्ठान की आप केवल एक ही प्रकार से सहायता कर सकते हैं, और वह यह है कि उसे ३०,०००) रूपये का कर्ज दिया जाये, जो वह जनवरी १९२७ मे अदा कर देगा।

आपका
महादेव

बापू को यह बात तो बहुत भायी कि मैंने नाइटहुड की उपाधि लेने से इन्कार कर दिया, पर उन्हें यह बात जितनी पसंद थी उतनी ही विधान सभा के लिए मेरे खड़े होने की बात नापसंद थी। (सन् १९२७ में मै असेम्बली का सदस्य था, बाद में उनकी सलाह से मैंने उसे त्याग दिया था।) 'सर' की उपाधि के बारे में उन्होंने लिखा, "किसी उपाधि को इन्कार करने के लिए न तो यह जरूरी है कि सरकार को अपना दुश्मन समझा जाय और न यह कि उपाधियों को बुरा माना जाय, यद्यपि आजकल की परिस्थितियों में तो मैं उन्हें बुरा ही समझता हूं।"

मेरे सन् १९२७ में यूरोप जाने के बारे में शुरू में तो उन्होंने कोई उत्साह नहीं दिखाया, पर जैसा कि हम देखेंगे, मेरा जाना एक बार निश्चित हो गया तो उन्होंने उसमें पूरी दिलचस्पी ली।

: २ :

लाला लाजपत राय

मेरे शुरू के पथ-प्रदर्शकों में पंडित मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपत राय थे। मालवीयजी बहुत बड़े विद्वान् थे और उनमें देश-भक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी; किन्तु सामाजिक विषयों में वह पक्के सनातनी थे। लाला लाजपत राय रूढ़िवादी विचारों के नही थे; पर थे बड़े ही भावुक और तुनकमिजाज। मेरे मन में अछूतों के प्रति अभिरुचि सबसे पहले उन्होंने ही जागृत की थी। 'हरिजन' और 'परिगणित' जाति जैसे शब्द तो उस समय कोई जानता भी न था। ३० दिसम्बर १९२३ को उन्होंने मुझे एक पत्र में लिखा :

जेल से छूटकर आने के बाद से ही मै तुमसे मिलने को छटपटा रहा था, पर बीमारी के कारण कलकत्ता न आ सका, और मुझमें इतना साहस नही हुआ कि तुममें से किसीको यहा आकर मिलने के लिए लिखूं। मै तुमसे हिन्दुओं की एकता और हिन्दू अछूतों की शुद्धि के मसले पर बातचीत करना चाहता हू। मै समझता हूं कि हिन्दू संस्थाएं और हिन्दू नेता शोरगुल तो बहुत मचाते है, परंतु ठोस काम बहुत कम करते है। कुछ लोग ऐसे है जिन्हे आगे की पीढियों के लिए पैसा इकट्ठा करने का तो चाव है, पर इस बात में कोई रुचि नही है कि उस पैसे का इस समय किस तरह अच्छे-से-अच्छा उपयोग किया जाय। कुछ दूसरे लोग ऐसे है जो एकसाथ बहुतसी योजनाएं बना लेते है, और अपनी सारी योजनाओं को विशाल रूप दे देते है, पर निश्चय-निर्णय करने मे बहुत समय लेते है। इस दूसरी श्रेणी के लोगों मे हमारे पूज्य नेता पडित मदनमोहन मालवीय है। मेरा उनके प्रति स्नेह है और मै उनकी श्रद्धा करता हूं, किन्तु उनकी जिस बात से मुझे दुख होता है वह यह है कि वह निर्णय करने और उसे कार्य-रूप में परिणत करने में देर लगा देते है। मै समझता हूं कि यह जमाना

झटपट निर्णय करने और तत्परता से काम करने का है। यदि हम अपने हिन्दू समाज की महत्वाकांक्षी और साहसिक शत्रुओं से रक्षा करना चाहते हैं तो हमारे आगे सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या यह है कि इसमें किस तरह से एका हो और हम दलित वर्गो की रक्षा किस प्रकार करें। इस दूसरी समस्या मे तो जरा भी देर करना आत्मघातक सिद्ध होगा। मालवीयजी का खयाल है कि हिन्दू विश्वविद्यालय से ही हमारा बेड़ा पार हो जायगा। वह सारा रुपया और सारा समय उसीमे लगा रहे हैं। यह तो ठीक है कि विश्वविद्यालय के लिए उन्होंने शानदार काम किया है और हम मालवीयजी तथा उनके कार्य पर गर्व कर सकते हैं; पर विश्वविद्यालय को और फैलाने का काम अभी रोका जा सकता है।

आगे चलकर लालाजी ने एक संस्था का रेखाचित्र दिया और उसके लिए मेरा सहयोग मांगा। उनकी और मालवीयजी की प्रेरणा से ही मै बनारस और गोरखपुर से व्यवस्थापिका सभा का सदस्य बना था और उनकी रिसपान्सिविस्ट पार्टी में शामिल हुआ था। राजनीति के क्षेत्र में मानो मेरा यह रैन-बसेरा था।

सन् १९२७ आते-आते हम एक-दूसरे को और भी अच्छी तरह से जानने और समझने लगे और लालाजी ने मुझे खरी-खरी बातें सुनाने का निश्चय किया। जुलाई के महीने में, जब हम दोनों लंदन में थे तो उन्होंने मुझे लिखा :

तुम्हारे बारे में मेरी जो धारणा है वह मै तुम्हे साफ-साफ और दिल खोलकर बता देना चाहता हूं। जहाज पर और जिनेवा मे साथ-साथ रहने के कारण अब मै तुम्हे पूरी तरह समझने लगा हू। इतने पास से तुम्हारा अध्ययन करने का अवसर मुझे पहली बार मिला। तुममे कुछ ऐसे गुण हैं जिनकी मै मुक्त कंठ से सराहना करता हूं; पर तुममे कुछ ऐसी आदतें हैं जिन्हे मै चाहूंगा कि तुम बदल दो। तुममें मेरी दिलचस्पी एक पिता की दिलचस्पी है, जो चाहता है कि उसका बेटा उससे भी अधिक बड़ा और अच्छा बने। तुममे एक महान नेता बनने के गुण विद्यमान हैं, वे सभी गुण जो एक सच्चे नेता मे होने चाहिए। बस, तुम्हें अपने व्यवहार के ढंग में कुछ परिवर्तन करना होगा। इस समय तुम्हारे व्यवहार से कुछ रुखाई का और धैर्य के अभाव का आभास मिलता है और इस कारण जो लोग

तुम्हें अच्छी तरह से नहीं जानते, वे तुम्हें अभिमानी समझ बैठते हैं। बात-चीत और व्यवहार के मामले में हमें महात्मा गांधी से अच्छा व्यक्ति कोई नही मिलेगा। वैसे तो इस संसार में किसीको भी सर्व-गुण-सम्पन्न व्यक्ति नही कहा जा सकता; पर महात्मा गांधी को लगभग पूर्णता-प्राप्त पुरुष अवश्य कहा जा सकता है। वह महान् हे, हमसब से महान्, पर वह अपने मित्रों और सहकर्मियों के प्रति अपने व्यवहार का बड़ा ध्यान रखते हे। उन्हें उपेक्षा या उदासीनता या अशिष्टता का दोष देना सम्भव ही नही है। तुमसे उनका लाख मतभेद होते हुए भी वह तुम्हारी सारी बातें धैर्य के साथ सुनेंगे और अपना निर्णय सुनाने में कभी जल्दबाजी से काम नहीं लेंगे। वह अडिग हे, उन्हें कोई दुर्बलता का दोषी नही ठहरा सकता। पर उनकी दृढ़ता को कोई उद्दडता समझ बैठे, यह सम्भव नही है। वह तो उनसे भी दिल खोलकर तर्क-वितर्क करते हे जो किसी भी दृष्टि से उनके समकक्ष नही माने जा सकते। तुम अभी युवक ही हो और अभी तुमने दुनिया नही देखी हे; पर तुम्हारी बुद्धि अच्छी है और निश्चय करने में तुम्हे देर नही लगती है। पर बुरा न मानना। एक राजनीतिक नेता के रूप में, जो कि आगे चलकर तुम बनोगे ही, तुम्हे मस्तिष्क और आचार-विचार-सम्बन्धी जिन गुणों की दरकार होगी वे उन गुणों से भिन्न होंगे जिन्होंने तुम्हे एक सफल उद्योगपति बनाया हे।

मेरे जीवन की तो संध्या आ गई। गांधीजी और मालवीयजी भी तिल-तिल करके मर ही रहे हे। भगवान करें वे चिरायु हों। हिन्दुओं में आज ऐसे बहुत ही कम लोग हे, जिनपर हम अपने देश के नेतृत्व का भार छोड़ना पसन्द करेगे। मेरी आशाएं तो बुद्धिजीवियों में जयकर पर और उद्योगपतियों में तुमपर बंधी हुई हे। लेकिन जयकर बम्बई के हे। हमें एक ऐसे हिन्दू नेता की जरूरत है, जो उत्तर भारत के हिन्दुओं का नेतृत्व करने के लिए अपने साथियों और सहकर्मियों का पूरा-पूरा स्नेह तथा विश्वास प्राप्त कर सके। आज मुझे एक भी ऐसा आदमी दिखाई नही देता हे। मुझे तुमसे आशा हे। यही कारण है कि मेंने तुम्हें यह पत्र लिखने का जिम्मा लिया। मेरे स्नेह और देश-प्रेम ने ही मुझे ऐसा करने को प्रेरित किया है। यदि तुम समझो कि मे व्यर्थ ही टांग अड़ाने की धृष्टता कर रहा हूं तो मुझे क्षमा कर देना और इस पत्र को रद्दी की टोकरी में डाल देना और फिर कभी इसकी याद न करना। भगवान तुम्हारा भला करे, यही मेरी कामना है।

तुम्हारा सच्चा हितैषी
लाजपत रया

मै कह नही सकता कि इस पत्र का मुझपर कितना असर पड़ा, पर मै अपनी त्रुटियों की ओर से सचेत था और मुझे नेता बनने की कोई आकांक्षा भी नही थी। इसलिए मैंने उनकी सलाह को उसी रूप मे ग्रहण किया, जिस रूप में एक युवक अपने बुज़ुर्गो की सलाह को ग्रहण करता है।

इसके बाद उन्होंने पेरिस से यह डांट लिखकर भेजी :

पेरिस, ६ जुलाई, १९२७

मै अभी पेरिस मे ही हूं। दिल की बात कह रहा हूं, माफ करना। मेरे लन्दन छोड़ने से पहले तुम मुझसे मिलने नहीं आये, इससे मेरे दिल को चोट पहुंची है। तुम सर शादीलाल के भोज और श्री पटेल के स्वागत-समारोह मे नही आये सो मेरी समझ मे ठीक नही हुआ। चाहे तुम कुछ खाते नही; पर तुम्हे आना जरूर चाहिए था। लोगो के साथ नम्रता और शिष्टता का व्यवहार करना और उनपर अच्छा प्रभाव डालना बड़े काम आता है। तुमपर लक्ष्मी की कृपा है, इसलिए तुम्हारे लिए यह और भी आवश्यक है कि तुम जीवन के इन औपचारिक शिष्टाचारों का पालन करो। मैं चाहता हूं कि लोग तुम्हें तुम्हारे धन के लिए नही, बल्कि तुम्हारे गुणों के लिए प्यार करे। मेरी राय मे तुम्हे अपने मे थोड़ा-सा परिवर्तन करना चाहिए और अपने दोनों पूज्य नेताओं (गांधीजी और मालवीयजी) के आदर्श का अनुकरण करते हुए छोटी-छोटी बातों में भी उदार बनना सीखना चाहिए।

मै कल या परसों विशी जा रहा हूं। मै इस यात्रा के लिए बड़ा आभारी हूं और तुम्हे विशी पहुंचकर पत्र लिखूगा। मै यहां अपने दांतों की परीक्षा कराने का प्रयत्न कर रहा हूं। इन बातों में लन्दन इतना मंहगा है कि मैने आगे की डाक्टरी परीक्षा पेरिस के लिए रोक रखी थी।

तुम्हारा हितैषी
लाजपत राय

इस उलाहने के बाद भी मुझमें पार्टियों और भोजों के लिए कोई विशेष रुचि उत्पन्न नहीं हुई।

होटल रेडियो
विशी
९-७-२७

प्रिय घनश्यामदास,

तुम्हारा पत्र आज सबेरे मिला। धन्यवाद। मैं तुम्हारे दृष्टिकोण को समझता हूं और मैंने कभी यह आशा नही की थी कि तुम स्टेशन पर मुझे छोड़ने आओगे। मैंने तो केवल यह आशा की थी कि तुम या तो क्लब मे मुझसे आकर मिल लोगे या टेलीफोन पर ही नमस्ते कर लोगे। मैं समझता हूं कि शिष्टाचार की ये छोटी-छोटी बाते मित्रों और परिवार के लोगों मे भी अच्छी ही लगती है। इनसे सम्बन्ध मीठे बने रहते है।

मेरा खयाल है कि तुम्हे सर शादीलाल के भोज और श्री पटेल के स्वागत-समारोह, दोनो मे ही जाना चाहिये था। मेरी राय में तो तुम्हारा ग्लासगो जाना उतना जरूरी नही था। मै चाहता था कि स्वागत-समारोह में विद्यार्थीगण और भोज मे सिख लोग, तुम्हे देख-समझ सके। खैर, अब तो बात बीत गई। मैं यह सब सिर्फ इसलिए लिख रहा हूं कि तुममें मुझे बहुत ज्यादा दिलचस्पी है और मुझे इस बात की खुशी है कि तुम मेरी नुक्ताचीनी का बुरा नही मानते।

यहां मै कल पहुंच गया। आज वर्षा हो रही है, पर एक घंटे में मैं जो कुछ भी देख सका हूं, उसके आधार पर कह सकता हूं कि स्वास्थ्य के लिए यह स्थान बहुत ही लोकप्रिय है। इस समय यहां हजारों यात्री हैं और होटलों तथा शहर में उनके लिए हर तरह से आराम की व्यवस्था की गई है। सभी खास-खास सड़कों के किनारे बरामदे बने हुए है जो धूप और वर्षा से यात्रियों की रक्षा करते है।

मै जिस होटल में ठहरा हुआ हूं वह अच्छा खासा है। फिर भी मैं हमेशा की तरह यही चेष्टा कर रहा हूं कि साधारण आराम को ध्यान में रखते हुए जितना भी कम खर्च किया जा सके, करूं। मैंने अपने लिए एक पौंड तीन शिलिंग पर एक कमरा लिया है, जिसमें गुसलखाना नहीं है। गुसलखाने के साथ कमरे का किराया २२५ फ्रेंक यानी लगभग दो गिन्नी है, पर मेरे कमरे के सामने का दृश्य बड़ा सुन्दर है, और उसमें एक छोटा-सा कक्ष है जिसमें दिनरात गर्म और ठंडा पानी मिल सकता है। पेरिस में मुझे नीद न आने की बहुत शिकायत थी। अब फिर लिखूंगा।

तुम्हारा हितैषी
लाजपत राय

विशी से उन्होंने अपने देश की राष्ट्रीय विशेषताओं पर एक बार फिर लिखा :

रविवार, १७ जुलाई, १९२७

जब लोकसभा में भारत के ऊपर बहस हुई थी तो क्या तुम वहां मौजूद थे ? यह तो ठीक है कि वहां बहुत-सी वाहियात बातें भी हुईं, पर मैं समझता हूं कि भारत सरकार के उपसचिव का अपने भाषण में यह कहना कि भारतीयों की भौतिक उन्नति में उनकी चित्तवृति एक बहुत बड़ी बाधा हैं, बहुत कुछ सत्य है। परलोक पर जरूरत से ज्यादा जोर और जीवन से संघर्ष करने की मनोवृति का अभाव इहलौकिक उन्नति के मार्ग में बहुत बड़ी रुकावटें हैं। मेरा तो दिन-पर-दिन यह विश्वास पक्का होता जा रहा है कि हमारा खास काम जनता की प्रवृत्ति को बदलना और उसे अधिक महत्वाकांक्षी और आक्रामक विचारों का बनाना है। उसके विचार आक्रामक न हों, न सही, उसमें अपने व्यक्तित्व को आगे आने की प्रवृत्ति तो अवश्य मौजूद रहनी चाहिए।

मेरा विचार यहां से २९ या ३० को चलने का है। यहां से मैं नाइस या मान्टेकार्लो जाना चाहता हूं, और फिर ५ अगस्त को जहांज में बैठ जाने का इरादा है। पता नही, तुम जर्मनी जा रहे हो या नही, या तुम्हारे पास वहां जाने के लिए समय भी है या नही।

सोच रहा हूं, ज्यादा घूमना-फिरना बंद कर दूं और किसी एक जगह (लाहौर, दिल्ली या बनारस में) जमकर कुछ अधिक स्थायी साहित्यिक कार्य करूं।

पत्र समाप्त करने के बाद उन्होंने "पुनश्च" करके ये मर्मस्पर्शी शब्द लिखे :

पुनश्च :

पत्र का एक अंश काटने-कूटने से गंदासा हो गया है, क्षमा करना। कोई खास बात नही लिखी थी, कुछ शौकीनी की चीजों के लिए लिखने की मूर्खता की थी, पर बाद को सोचने पर मैंने उसे काट देना ही उचित समझा।

लंदन के 'कलकत्ता यूरोपियन एसोसियेशन' के कार्य-कलाप से उन्हें चिन्ता हो गई थी जैसा कि नीचे के पत्र से स्पष्ट है :

२१-७-२७

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे उम्मीद है कि लदन मे भारत से आये हुए अग्रेजों की जो सभा हुई थी उसकी उस कार्रवाई को तुमने जरूर पढा होगा, जो २० तारीख के 'टाइम्स' के पृष्ठ १८ पर छपी है। अब तुमने देख लिया होगा कि दोस्त कर्नल क्राफर्ड क्या कर रहे हं। यह बहुत ही जरूरी है कि तुम पूरे मनोयोग के साथ प्रतिरोध आरम्भ कर दो, नही तो व्यापार और उद्योग-धधों के क्षेत्र मे भारतीय हित हमेशा के लिए पिछड़ जायंगे। मं इस समय तुम्हारे जैसे विचारों वाले देशभक्तों का भारत से बाहर रहना ठीक नही समझता। एक-एक दिन महत्वपूर्ण है। अब राजनीति के क्षेत्र मे उतरने के बाद तुम्हारे लिए राजनीतिक समस्याओं की उपेक्षा करना सम्भव नहीं हं। यह तो ठीक है कि तुम्हारे उद्योग-धंधे-सम्बन्धी हित बड़े महत्वपूर्ण हं, क्योंकि वहीं युद्ध की सज्जासामग्री जुटाते है। लेकिन मेरा अपना खयाल है कि अगले छः महीने आमतौर पर सारे भारतवर्ष के लिए और खासतौर पर भारतीय व्यापार और उद्योग के लिए बडे ही महत्व के हं। अग्रेज कुछ भारतीयो को अपने जाल मे फंसाकर एक मजबूत सस्था बनाने और एक जबरदस्त आन्दोलन का आरम्भ करने की चेष्टा कर रहे हं। इस आन्दोलन का जवाब देना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है और मैं समझता हूं कि तुम बहुत कुछ कर सकते हो। मेरा मतलब तुम्हारे धन से नहीं हं, बल्कि भारतीय उद्योगपतियों मे तुम्हारे प्रभाव स है। मैं जितना सोचता हूं उतना ही मेरा विश्वास दृढ होता जाता हे कि तुम्हे असेम्बली मे लौट जाना चाहिए और शिमला-अधिवेशन के समय जोर-शोर के साथ काम करना चाहिए। इसके अलावा और किसी तरह इतने प्रमुख व्यक्तियों को इकट्ठा करना मुश्किल है। मुझे अपने धेवते के एक पत्र से पता चला है कि मालवीयजी ने तुम्हे भारत मे बाहर रहने की अनुमति दे दी है। मैं समझ नहीं पाता कि इसका मतलब क्या है। जो कुछ भी हो, मेरा मन्तव्य इससे भिन्न है। घटनाओ का विकास बड़ी तेजी से हो रहा है और यह समय बाहर रहने का नहीं है। स्वयं मुझे इस बात का दुःख हो रहा है कि मैं भारत मे चला आया।

तुम्हारा हितैषी
लाजपत राय

पुनश्च :

अभी-अभी मुझे ध्यान आया कि मैं तुम्हे अपने और तुम्हारे शिमला रहने के बारे मे कुछ लिखू। मैं समझता हूं कि हम दोनों का पास-

पास रहना बहुत फायदेमन्द होगा। मेरे पास गत वर्ष जो कमरे थे उन्ही के लिए मैंने इस बार भी लाला मोहनलाल को लिख दिया है। परंतु उनका मकान बहुत दूर है और वहां से इधर-उधर आना-जाना बहुत मुश्किल होता है। मैं समझता हूं कि मिलने-जुलने के लिए तुम्हारा मकान केन्द्रीय स्थान सिद्ध होगा। अगर तुम शिमले लिखो तो तीन कमरे मेरे लिए भी सुरक्षित करा लेना—ऐसे कमरे जिनमें एक या दो अलग गुसलखाने भी हों।

इसके बाद उसी महीने उन्होंने लंदन से एक पत्र भेजा, जिसमें धर्म को आलोचना का विषय बनाया। उन्होंने लिखा कि यूरोपियन राष्ट्रों की महत्ता का कारण यह नहीं है कि वे ईसा का अनुकरण करते हैं, बल्कि यह है कि वे उसका अनुकरण नहीं करते! भारत में साधु-संतों की भरमार है और गांधीवाद का त्यागमय जीवन एक भूल है।

बहुत ही भावुक होने के कारण लालाजी को उस जगह भी षड्यंत्र और शत्रुता दिखाई देने लगी थी, जहां शायद वह मौजूद नहीं थी। असेम्बली के प्रेसिडेंट विट्ठलभाई पटेल से उन्हें सख्त नफरत हो गई थी। उन्होंने वस्तुस्थिति का वर्णन जिस निराशकारी ढंग से किया, उसके कारण राजनीति से पीछा छुड़ाने की मेरी इच्छा और भी बलवती हो गई। इस प्रकार मुझे राजनेता बनाने की उनकी योजना असफल हुई। इस चिट्ठी की सबसे मार्के की बात यह है कि इससे स्पष्ट हो जाता है कि जिन लालाजी ने साइमन कमीशन का बहिष्कार करने में अन्त में अपने प्राण गंवा दिये, वह शुरू-शुरू में बहिष्कार के पक्ष में नहीं थे और दूसरों के प्रति अपनी निष्ठा की खातिर ही उन्होंने बहिष्कार में भाग लिया था।

२ कोर्ट स्ट्रीट, लाहौर
२६-९-२७

प्रिय घनश्यामदास,

मेरे तार के उत्तर में तुम्हारा तार मिला। इस समय कलकत्ते की ओर जाने का मेरा कोई इरादा नहीं है; पर साथ ही मैं तुमसे जल्दी-से-जल्दी मिलना चाहता हूं। इसके दो कारण हैं: एक तो यह कि मैं तुमसे रिजर्व

बैंक के बारे में बातें करना चाहता हूं, और दूसरी यह कि अपनी पार्टी के भविष्य के सम्बन्ध में भी तुम्हारे साथ विचार-विनिमय करना है। इन दोनों ही मामलों में पूज्य मालवीयजी से मेरा मतभेद रहा है। पिछले अधिवेशन में हम एक प्रकार से एक-दूसरे के खिलाफ रास्तों पर चलते रहे। पटेल नारद मुनि का काम कर रहे हैं। उन्होंने स्वयं बताया है कि जब वह अधिवेशन से लौटे तब वायसराय उनसे इस बात पर नाराज हुए कि उन्होंने वायसराय से सलाह लिये बिना ही अंग्रेज-राजनेताओं के सामने क्रान्तिकारी-योजनाएं क्यों रख दीं।

पटेल चाहते थे कि हम यह घोषणा कर दें कि यदि रायल कमिशन में भारतीयों का बहुमत नही हुआ तो हम उसका बहिष्कार कर देंगे। मैंने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया। इसके बाद उन्होंने मालवीयजी को फांसना चाहा और उनके और मेरे बीच एक खाई खोदने की हद से ज्यादा कोशिश की, यहां तक कि एक दिन मैंने पार्टी के सामने अपना त्यागपत्र रख दिया और मेरे उसे वापस ले लेने के बाद भी मालवीयजी ने उसे मेरे पास लिखित रूप मे भेजा। मुझे खूब मालूम है कि यह सलाह पटेल और श्रीनिवास आयंगर ने मालवीयजी को पटेल के घर पर दी थी। दुर्भाग्यवश इस अधिवेशन के दौरान में मालवीयजी पटेल से बहुत ज्यादा मिलते रहे और पटेल के दाव-पेंच को भांप न पाये। तब पटेल ने जयकर को बुलाया और सुझाया कि हम अपनी पार्टी भंग करके कांग्रेस-पार्टी में मिल जायं और इस पार्टी के नेता मोतीलाल, डिप्टी नेता मैं और आयंगर, और मंत्री जयकर हों। उन्होंने जयकर से यह बेकार ही कहा कि इंगलैंड में मोतीलाल के हाथ मजबूत करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। जयकर ने उनके सामने साफ-साफ मेरा नाम लिया और कहा कि पार्टी के नेता होने के नाते बातचीत मुझसे ही की जानी चाहिए। तब पटेल ने मुझे बुलाया और कहा कि वह इसी सप्ताह में दोनों दलों को एक देखना चाहते हैं। मैंने कहा कि इस सप्ताह तो मुझे अपनी पार्टी के लोगों से सलाह करने का समय नहीं है, हां, अगले सप्ताह में ऐसा अवश्य कर लूंगा। इसपर वह बोले कि हमारे शिमला छोड़ने से पहले ही यह काम पूरा हो जाना चाहिये। तब मैंने पार्टी की एक बैठक बुलाई, जिसमें सर्वसम्मति मे यह तै हुआ कि जबतक मोतीलाल का दृष्टिकोण मालूम न हो जाय जब तक इस बात की गारंटी न मिले कि ऐसा कोई काम नही किया जायेगा, जिससे हमे फिर से कांग्रेस-पार्टी से अलग होने को बाध्य होना पड़े तबतक पटेल की सलाह न मानी जाय।

इस समय तो खुद कांग्रेस-पार्टी ही दलबंदी का शिकार है। जयकर ने तो मुझे बताया कि कांग्रेस-पार्टी के बहुत से सदस्य हमारी पार्टी में आने को

तैयार हैं। साफ जाहिर है कि मालवीयजी ने पटेल को कोई-न-कोई वचन दिया था। इस प्रकार पटेल हमारी पार्टी का अंत करने की चेष्टा कर रहे हैं। पिछले अधिवेशन मे उन्होंने जयकर का विरोध किया और मेरी पीठ थपथपाई। इस अधिवेशन में वह जयकर की पीठ थपथपा रहे हैं, जिससे मुझे नीचा देखना पड़े और हमारी पार्टी में फूट पड़ जाय।

कांग्रेस-पार्टी भी पटेल से बहुत तंग आ गई है। जयकर पूरे तौर पर हमारे साथ हैं और पटेल की चाल को समझ गये हैं; पर मालवीयजी नहीं समझ पाये हैं। इसके लिए मैं अपने को ही दोषी समझता हूं, क्योंकि मैं मालवीयजी से इतनी दूर रहता हू और इस प्रकार उन्हे पटेल के जाल में फंसने का अवसर देता रहा हूं। मै इसी विषय पर तुमसे विस्तार के साथ बाते करना चाहता हूं, क्योंकि भविष्य में इसीपर हमारा सारा राजनीतिक कार्यकलाप निर्भर है।

रिजर्व बैंक के मामले में भी पटेल की चाल यह रही है कि उसकी असफलता की सारी जिम्मेदारी मालवीयजी पर आ पड़े। मालवीयजी उनकी इन कुटिल चालों को नही समझ पाये है। पटेल एक ओर तो कांग्रेस-पार्टी और उसके नेता से सरकार के साथ समझौता करने को कहते रहे है, और दूसरी ओर वह सरकार का डटकर विरोध करने के लिए मालवीयजी को उकसाते आ रहे हैं। उनकी सारी चाल यह रही है कि वह (यानी मा०) सरकार और कांग्रेस-पार्टी दोनों ही के बुरे बन जायं।

इन कारणों से मै चाहता हूं कि तुम एक-दो दिन के लिए लाहौर चले आओ और अपने यूरोप के अनुभवों पर लाहौर तथा अमृतसर में जनता के सामने भाषण दो। तुम्हारे लिए यह बहुत जरूरी है कि सारे देश मे तुम्हारा नाम हो। राजनीति मे हिन्दुओं के भावी नेतृत्व के लिए मेरी आंखें तुमपर और जयकर पर लगी हुई है और मै चाहता हूं कि तुम सभी प्रांतों में कुछ सार्वजनिक सभाओं मे बोलो। बनारस जाते हुए क्या तुम एक दिन के लिये लाहौर नही आ सकते? यदि तुम्हारी खातिर दलित जातियों का कोई अधिवेशन कराया जाय तो क्या तुम उसकी अध्यक्षता करने यहां नही आ सकोगे? एक बार तुम कलकत्ता पहुंच गये तो फिर कुछ दिनों तक तुम्हारा वहां से निकलना मुश्किल हो जायगा।

हिन्दू स्वयसेवक-आन्दोलन के बारे में हमने जो योजना पेरिस से ड्यूविले जाते समय बनाई थी, मै उसे भी हाथ में लेना चाहता हूं।

इन सब बातों पर सलाह-मशवरा करना जरूरी है। अगर तुम्हारा लाहौर आना संभव न हो तो मै तुमसे दिल्ली में ही मिल लूंगा। जैसा भी हो, तुम्हारे कलकत्ता जाने से पहले ही हमारा मिलना जरूरी है। मेरे लिए

बनारस या कलकत्ते तक आना सम्भव नही होगा। अक्तूबर और नवम्बर में लाहौर मे ही जमकर बैठना और मिस मेयो की पुस्तक का जवाव लिखना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि इन उलझनों में तुम मेरा हाथ बंटाओगे।

तुम जयकर से मिलकर उनसे भी इन मामलो पर सलाह-मशवरा कर सकते हो। इधर मैं एक बंगला अपने लिए और दूसरा मालवीयजी के लिए सुरक्षित करा रहा हू, जिससे हम दोनो एक-दूसरे के पास रह सकें और मिलने और बातचीत करने मे आसानी हो। तुम्हारी क्या योजनाएं है, सो विस्तार के साथ लिखना।

तुम्हारी उस नये बैंकवाली योजना का क्या रहा? मैं समझता हूं कि उसे ठोस रूप देने का यही ठीक समय है। सस्नेह,

तुम्हारा ही
लाजपत राय

किन्तु मैं भारत-व्यापी नेतृत्व की सम्भावित स्थिति से उत्तरोत्तर दूर खिसकता जा रहा था। मेरे ३० सितम्बर के पत्र से, जिसमे मैंने इन सब झगडों को शांत करने की चेष्टा की थी, लालाजी की नजरों मे मेरी प्रतिष्ठा बढी नही होगी।

मैंने लिखा :

रविवार को मैं बनारस जा रहा हूं। पार्टी के बारे मे कोई चिन्ता मत करिये। मेरा खयाल है कि जब हमारे दल के सदस्य शिमले के शीतोष्ण वातावरण से मैदान मे लौटेंगे तो अपने को अपेक्षाकृत अधिक शीतल वातावरण मे पायेंगे। मुझे यकीन है कि दिल्ली मे फिर से एकत्र होने से पहले ही हमारी स्थिति बहुत कुछ सुधर जायगी। हमारे दल की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसमें एक-से-एक बढकर विवेकशील व्यक्ति हैं। इसलिए मुझे तो किसी अड़चन की आशंका नहीं है।

शिमला मे जो एकता-सम्मेलन हुआ था, उसकी कार्रवाई मैंने पढ़ी। मेरी अपनी राय तो यह है कि हमारे कट्टर हिन्दू भाई माने या न माने, हमे धार्मिक स्वतंत्रता स्वीकार करनी ही होगी, अर्थात् एक ओर गोवध की और दूसरी ओर मसजिदों के सामने बाजा बजाने या सुअर मारने की स्वतंत्रता। यदि हमे गौओं की रक्षा करनी है तो हमे दूसरे धर्मवालों की सद्भावना पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि मुसलमानों को अनावश्यक रूप से अपना शत्रु बनाकर हम गोवध में कमी नही कर सकेंगे। वैसे यदि हमारा भला होता हो तो मैं मुसलमानों से मोर्चा लेने में भी आनाकानी नहीं करूँगा।

सम्भव है, खिलाफत कमेटी के सेक्रेटरी ने आपके कथनानुसार भ्रामक वक्तव्य दिया हो; पर मेरी अपनी धारणा तो यह है कि हमारे लिए एक ओर मुसलमानों को उनके धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन करने की आजादी न देना और दूसरी ओर मसजिदों के सामने बाजा बजाने की स्वतंत्रता की मांग करना बिल्कुल ना-समझी का आचरण करना है। बनारस पहुचकर मैं मालवीयजी से विचार-विनिमय करूंगा। उम्मीद है कि नवम्बर या दिसम्बर मे दिल्ली आकर आपसे भी मिलूं।

यदि आपने बालचरो की दीक्षा की कोई सविस्तर योजना बनाई हो तो लिखने की कृपा करिये और आपके पास योजना की कोई प्रति हो तो मेरे पास भेज दीजिए।

इसके उत्तर में लाला लाजपत राय ने मुझे लिखा कि गोवध के बारे में सिद्धांत रूप मे तो वह मुझसे सहमत है, पर जबतक जोर-शोर के साथ प्रचार न किया जाय तबतक पारस्परिक सहिष्णुता की यह भावना व्यावहारिक राजनीति की बात नही मानी जा सकती, क्योंकि हिन्दू लोग ऐसी बातों की ओर कान नही देगे। इस बीच हमें दिल्ली एकता-सम्मेलन के प्रस्ताव को ही अपने सामने रखना चाहिए।

लालाजी ने अपनी पुस्तको—'यग इडिया' और "इग्लैड्स डेट टु इंडिया' को पुनः प्रकाशित करने में सहायता मांगी। ये दोनों पुस्तकें अमरीका मे प्रकाशित हुई थीं, पर भारत मे उनपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था और लालाजी मिस मेयो की 'मदर इडिया' का उत्तर लिख रहे थे। इधर यह प्रतिबन्ध उठा लिया गया था।

लाला लाजपत राय भावुक आदमी थे और उनपर रह-रह कर घोर निराशा के दौरे से पड़ा करते थे। उनका अगला पत्र, जो उन्होंने २७ अक्तूबर को लाहौर से भेजा, मालवीयजी की आलोचना से भरा हुआ था : 'मुझे इस बात का अफसोस है कि इस पार्टी को बनाने में मैने मालवीयजी का साथ दिया।' 'सारे अधिवेशन में पटेल का व्यवहार बड़ा ही कपटपूर्ण रहा। उन्होंने श्रीनिवास आयंगर को तो एक तरह की सलाह दी और

मालवीयजी को दूसरी तरह की।' वह अब यही चाहते थे कि मालवीयजी 'अपना सारा समय विश्वविद्यालय के कामों में लगायें, जिसकी दशा बड़ी दयनीय हो रही है।' उन्होंने मुझसे दिल्ली आने का अनुरोध किया और लिखा : 'बात यह है कि आजकल मेरा चित्त बड़ा ही उद्विग्न हो रहा है और मै कोई ऐसा आदमी चाहता हूं जिसके सामने मैं अपने दिल को खोल कर रख सकूं।'

लालाजी के धार्मिक संशयवाद ने उन्हें निराशा के दलदल में ला पटका था। १२ जुलाई, १९२८ को उन्होंने पूना से एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने (स्वयं अपने शब्दों में) 'निराशा का लावा' उंडेल दिया। यह पत्र टाइप किये हुए पूरे पांच पृष्ठों में है। हृदय को टूकटूक कर देने वाला ऐसा पत्र मैंने शायद ही कभी पढ़ा हो। कुछ वाक्यों में ही पत्र के दुःखद विषय की कुंजी मिल जायगी :

मुझे अब किसी में आस्था नहीं है: न अपने में, न भगवान में, न इन्सानियत में, न जीवन मे, न संसार में। सब कुछ मुझे क्षणभंगुर और मनुष्य के मिथ्या गर्व का परिणाम प्रतीत होने लगा है। मेंने सारे जीवन इस प्रकार की धारणा का सामना किया। सैकड़ों रंगमंचों से मैंने गर्ज-गर्ज कर कहा कि जो धारणा यह कहती है कि यह संसार असत्य, अनित्य और भ्रान्तिमात्र है वह स्वयं असत्य है। पर आज यह कहावत कि जीवन ही सत्य है और जीवन में ही उत्साह है, मुझे अचेत मिथ्या गर्व का चीत्कार मात्र मालूम देने लगा है। जीवन में ऐसी क्या चीज है जिसे हम सत्य मानें या जिसे हम लगन के साथ अपनाना चाहें? मै उस ईश्वर मे कैसे विश्वास करूं, जो न्यायपूर्ण, परोपकारी, सर्वशक्तिमान और सर्वत्र विद्यमान कहलाकर भी इस मूढ़ संसार पर राज्य करता है?

अब लालाजी को मित्रता, यहां तक कि कुटुम्बियों के स्नेह से भी कोई लगाव नहीं रह गया था। अब न वह उनकी चिन्ता करते थे, न वे उनकी।

संक्षेप में बात यह है कि ईश्वर या धर्म, किसी में मेरी आस्था नहीं रही है। मैं जानता हूं कि जरूरत से ज्यादा बाल की खाल निकालना बुरा होता

है। यह मार्ग आनन्द की ओर नहीं ले जाता है। फिर भी अक्सर मुझमें तल-स्पर्शी आलोचना करने की प्रवृत्ति जाग उठती है। मेरे आदर्श की कसौटी पर कोई भी पूरा नही उतरता है। मै गांधीजी की सराहना करता हूं, मैं मालवीयजी को भी सराहता हूं, पर अक्सर मै खुद ही उनकी कड़ुई आलोचना करने लग जाता हूं। सार्वजनिक जीवन, सार्वजनिक कार्यकलाप, सार्वजनिक भोज-सहभोज। इन सबमें मुझे अब कोई आकर्षण नहीं दिखाई देता। वे मुझे अपनी ओर नहीं खींच पाते। उनसे मुझे कोई आनन्द नहीं मिलता। फिर भी मै देखता हूं कि मैं उनके बिना रह भी नही सकता। ओह, मै क्या करूं? मै बड़ा ही संतप्त हूं, अपनेको बिलकुल अकेला पाता हूं और बहुत ही दुःखी हूं; फिर भी मैं अपने संताप, अपने एकाकीपन, अपने दुःख से चिपटा हुआ हूं। मै अपनी इस मानसिक अवस्था से निस्तार पाना चाहता हूं, पर नहीं जानता कि कैसे।

लाला लाजपत राय की संतप्त आत्मा को यदि कहीं चैन मिलता था तो केवल काम में। नवम्बर में उन्होंने मुझे लाहौर से लिखा : "अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूं और उम्मीद करता हूं कि अगले दिसम्बर में मै तुमसे मिलने कलकत्ते आ सकूंगा। मै चाहता हूं कि उस समय मै समुद्र के रास्ते या मोटर से सैर करूं।"

इसके कुछ दिन बाद ही वह शहीद हो गये। उनका योग राष्ट्र के स्वतंत्रता-संग्राम में जितना महान था उतना ही सामाजिक सुधारों में भी था। पर गांधीवाद के आगमन पर उन्होंने शायद अपनेको परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल बनाने में कठिनाई का बोध किया। जो हो, अपने तमाम दोषों के बावजूद वह निस्संदेह एक महान व्यक्ति थे और स्वतंत्रता के आन्दोलन में उन्होंने जो योगदान किया था, उसका मूल्य कभी ठीक-ठीक नही आंका जा सकेगा।

: ३ :

मेरी लंदन-यात्रा

सोमवार १६ मार्च, १९२७ के अपने पत्र में गांधीजी ने मेरे लिए जो कार्यक्रम निश्चित किया वह इस प्रकार था :

यूरोप में आरोग्य रहने के लिये इतने नियमों का पालन आवश्यक समझता हूं।

(१) अपरिचित खोराक न लेना।

(२) वे लोग छ सात बार खाते हैं। हम तीन बार से ज्यादा न खायं। बीच मे चाकोलेट इत्यादि खाने की बुरी टेव न रखें।

(३) रात्रि को एक बजे तक भी खा लेते हैं। हम रात्रि को आठ बजे के बाद न खायं। किसी जगह जाने पर चाह इत्यादि लेने के लिये हम मजबूर होते हैं, ऐसा माना जाता है। ऐसा कुछ नही है।

(४) नित्य कम से कम ६ मील पैदल घूमने का अभ्यास रखना आवश्यक है। प्रातःकाल में और रात्रि को, दोनों समय घूमना चाहिये।

(५) हद के बाहर कपड़े पहनने की आवश्यकता न मानी जाय। रहस्य यही है कि शरीर को ठंडी न लगे। घूमने से ठंडी चली जाती है।

(६) इंग्रेजी कपड़े पहनने की कोई आवश्यकता नही है।

(७) यूरोप के गरीब लोगों का परिचय करने की कोशिश की जाय। इस परिचय के लिये बहुत काम पैदल करना आवश्यक है। जब समय है तब पैदल ही जाना अच्छा है।

(८) यूरोप में गये तो कुछ न कुछ करना ही है, ऐसा कभी न सोचा जाय। स्वच्छ प्रयत्न से और निश्चिन्तता से जो बन पड़े, वह किया जाय।

(९) मेरे ख्याल से तो आपके जाने का एक परिणाम अवश्य आ सकता है। शरीर वज्र सम बनाया जाय यह बात बन सकती है।

(१०) ईश्वर आपको मानसिक व्यभिचार से बचा ले। बहुत कम हिन्दी इस दोष से बचते हैं। वहां का रहन-सहन यद्यपि उन लोगों के लिये स्वाभाविक है, हमारे लिए मद्यपान-सा बन जाता है।

(११) गीताजी और रामायण का अभ्यास हो तो हर्गिज न छोड़ा जाय। यदि नही है तो अब रखा जाय।

आपने इतनी सूक्ष्म सूचना की तो आशा नही रखी होगी। मैंने दी है, क्योंकि आप सब भाइयों की सज्जनता पर मेरा विश्वास है। आप जैसे जो थोड़े धनिकों मे धन के साथ नम्रता और सज्जनता है, उनकी नम्रता और सज्जनता मे मै बहुत वृद्धि चाहता हूं और उस वस्तु का देश कार्य के लिये उपयोग चाहता हू। "शठं प्रति शाठ्य" के सिद्धान्त को मै मानता नही हूं। इसलिये जिस जगह शुद्धता, सत्य, अहिंसा इत्यादि का थोड़ा-सा भी दर्शन करता हूं तो सूम जैसे धन का संग्रह करता है ठीक उसी तरह मै ऐसे गुणों का सग्रह करने की चेष्टा कर आनन्दित होता हूं।

और पूछना है तो पूछोगे। २३।२४ बम्बई, २५।२६ कोल्हापुर, २७।४ अप्रैल बेलगाम, ५।१२ मद्रास।

आपका
मोहनदास

इस समय मै इस बात के लिए बड़ा उत्सुक था कि गांधीजी यूरोप जायं और लोगों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करें। अपने पत्र की तो कोई नकल मेरे पास नही है, पर उन्होंने जो उत्तर दिया वह इस प्रकार था :

२७ मार्च, १९२७

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है।

योरोप जाने के बारे मे मै अब तक कुछ निश्चय नही कर सका हूं। जाने का दिल नही है। रोमेरोलां को मिलने की इच्छा है सही, परंतु इस बारे मे मै उनके पत्र की प्रतीक्षा करता हूं। एक पत्र आया है उससे जाने का निश्चय नही होता है। यदि जाने का हुआ भी तो मई में होगा। और अक्तूबर मे वापिस आ जाऊंगा। थोड़े दिन भी यदि मै आपके साथ मसूरी मे रह सकता हूं तो प्रयत्न करूंगा। एप्रिल १३ तारीख तक तो यही रहना चाहता हूं। विदेशी कपडों के बहिष्कार के बारे में मैंने जो कुछ लिखा है उसपर मुझे आपका अभिप्राय भेजे।

स्वास्थ्य के पूरे हाल मुझे दे दे। अब कुछ खा सकते हो ?

आपका
मोहनदास

नंदी दुर्ग, २६-५-२७

भाई घनश्यामदासजी,

दो दिन से जमनालालजी यहाॅ आ गये है। उन्होंने आपका संदेशा दिया है। जो कुछ मैंने आपको लिखा है उससे ज्यादा लिखने का कोई खयाल नही आता। बादशाह की मुलाकात के बारे में मेरा अभिप्राय यह है कि उस मुलाकात की आप कोशिश न करें। यदि हिन्दी प्रधान या तो मुख्य प्रधान मुलाकात कराने के लिए चाहे तो उस बात का इन्कार भी न करें। जहां तक मुझे ज्ञान है मेरा ऐसा मंतव्य है कि बादशाह के पास कुछ राज्य प्रकरण की बाते नही की जा सकती है। केवल क्षेम कुशल की ही बात होती है। प्रधानों को अवश्य मिले। और उनके साथ जो कुछ भी दिल चाहे वह बात कर सकते है। वहां की जेलों का सूक्ष्म निरीक्षण करें और लंडन के गरीब प्रदेश मे किसी जानकार मनुष्य के साथ खूब भ्रमण करें और गरीबों की स्थिति का अवलोकन करें। शनीचर की रात्रि को एक या दो बार गरीब और धनिक प्रदेश के शराबखानों के नजदीक खड़े रहकर वहां की भी चेष्टा देखे।

मेरा स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन अच्छा होता जाता है।

पू० मालवीयजी को मैंने बहुत दिनों के पहले खत लिखा। उसके उत्तर की आशा नही रखता हूं क्योंकि पत्रों का उत्तर देना उनका स्वभाव नही है। तारों का उत्तर तार से अवश्य देते है।

मै तो दुबारा भी लिखने वाला हूं।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

आपका
मोहनदास

कुछ दिनों बाद उन्होंने फिर हिन्दी में पत्र लिखा और उसमें अपने और मालवीयजी के स्वास्थ्य की चर्चा करने के साथ-ही-साथ जीवन और मरण पर बड़े ही रोचक ढंग से एक दार्शनिक निबन्ध ही लिख डाला। पत्र नीचे दे रहा हूं :

नंदी दुर्ग
ता० ३१-५-१९२७

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला। यह खत लिखाते हुए महादेव मुझसे याद दिलाते हैं कि आपने जमनालालजी से सूचना दी थी कि मै आपको अंग्रेजी में खत

लिखूं। परंतु ऐसी कोई बात मैं लिखना ही नहीं चाहता हूं जो किसी को बताने की आवश्यकता रहे। इसलिये इस पत्र को मैं हिन्दी में ही लिखवाता हूं।

आपका खत स्टीमर पर से लिखा हुआ मिला है। मैंने दो खत इसके पहले भी लिखे हैं जिनिवा के पते से। वह मिल गये होंगे। मेरा स्वास्थ्य सुधरता जाता है। पू० मालवीयजी से मैं खत लिखता जा रहा हूं। मैंने लिखा था वैसे ही उनका इस हफ्ते में लम्बा तार आ गया। उसमें बताते हैं कि स्वास्थ्य है तो अच्छा लेकिन अशक्ति है। आजकल बम्बई में हैं। मेरा तो यह ख्याल है कि मेरे लिये यह कहना कि मैं स्वास्थ्य की दरकार नहीं करता हूं, वह ठीक नहीं है। जितना मैं आवश्यक समझता हूं उतना प्रयत्न स्वास्थ्य रक्षा के लिये ठीक ठीक कर लेता हूं। पू० मालवीयजी ऐसा नहीं करते हैं। ऐसा मैंने बहुत दफे लिखा है और उन्होंने आराम लेने की प्रतिज्ञा करने के बाद भी आराम न लिया। वे वैद्यों के उपचार पर बहुत विश्वास करते हैं और मान लेते हैं कि उनकी गोलियां और भस्मादि की पुड़िया लेकर अच्छे रहते हैं, रह सकते हैं, और उनका आत्मविश्वास इतना जबरदस्त है कि दुर्बल होते हुए भी, बीमार होते हुए भी, कम से कम ७५ वर्ष जीने का निश्चय कर लिया है। ईश्वर उस निश्चय को सफल करें। उनको ज्यादा कौन कह सकता है? मैंने तो विनय के साथ जितनी सख्ती हो सकती है उतनी सख्ती, विनोद करके लिखी है। वस्तु यह है कि प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि कर्मानुसारिणी रहती है। ऐसी बातों में पुरुषार्थ के लिये बहुत ही कम जगह है। प्रयत्न करना कर्त्तव्य है ही और करना चाहिये, परतु प्रत्येक मनुष्य के लिये एक समय तो आता ही है जब सब प्रयत्न व्यर्थ बनता है और सद्भाग्य से और पुरुषार्थ की रक्षा के कारण ईश्वर ने इस आखिरी समय का पता किसी को नहीं दिया है। तब इस अनिवार्य होनारत के लिये हम क्यों चिन्ता करें? राष्ट्र का कारोबार न मालवीयजी पर निर्भर, न लालाजी पर, न मुझपर। सब निमित्त मात्र रहते हैं और मेरा तो यह भी विश्वास है कि सत्पुरुष के कार्य का सच्चा आरम्भ उसके देहान्त के बाद ही होता है। शेक्सपीयर का यह कथन कि मनुष्य का भला कार्य प्रायः उसी के साथ जल जाता है और बुरा कार्य उसके पश्चात् रह जाता है ठीक नहीं है। बुराई की कभी इतनी आयु नहीं रहती है। राम जिन्दा है और उसके नाम से हम पवित्र होते हैं। रावण चला गया और अपनी बुराइयों को अपने साथ ले चला। कोई दुष्ट मनुष्य भी रावण नाम का स्मरण नहीं करते हैं। राम के युग में न जाने राम कैसा था। कवि ने इतना तो बता दिया है कि अपने युग में राम पर भी आक्षेप रहा करते थे। परंतु आज राम की सब अपूर्णता राम के

शरीर के साथ भस्म हो गई और उसको अवतारी समझकर हम पूजते है और राम का राज्य आज जितना व्यापक है उतना हरगिज राम के शरीरस्थ रहते हुए नही था। यह बात मै बड़ी तत्वज्ञान की नही लिख रहा हू न हमारे लिये शांति रखने के कारण। परंतु मै दृढता से यह कहना ही चाहता हूं कि जिसको हम संतपुरुष मानते है उनके देहांत का कुछ भी दुःख नही मानना चाहिये। और इतना दृढ विश्वास रखना चाहिये कि सत पुरुष के कार्य का सच्चा आरम्भ या कहो सच्चा फल उसके देहान्त के बाद ही होता है। अपने युग में जो उसके बडे-बडे कार्य माने जाते है वह भविष्य में होने के परिणाम के साथ केवल यत्किन्चित है। हा, हमारा इतना कर्तव्य है सही कि हम हमारे ही युग में जिनको हम सत्पुरुष माने उनकी सब साधुता का यथाशक्ति अनुकरण करें।

आपके स्वास्थ्य के लिये मेरी यह सूचना है कि यदि आपका विश्वास ऐलौपेथिक पर नही—और न होना चाहिये—तो आप जर्मनी मे लूई कूने और जुस्ट की सस्था है उसे देखे। वहां खुली हवा और पानी के उपचार होते है और उसमे सैकडों लोगो ने लाभ उठाया है। लडन और मैन्चेस्टर दोनों जगह पर वेजिटेरियन सोसाइटी है उसका भी परिचय करें। उस समाज में हमेशा थोड़े अच्छे, गम्भीर, विनयी और मध्यवर्ती मनुष्य रहते है। मूर्ख लोग भी और मदान्ध तो देखने मे आयेगे ही।

आपका
मोहनदास

अगला पत्र एक सप्ताह बाद लिखा गया, जो अंग्रेजी में था :

कुमार पार्क
बंगलौर, ९ जून, १९२७

भाई घनश्यामदासजी,

आपके बम्बई से रवाना होने के बाद से मै आपको यह चौथा पत्र लिख रहा हूं। जमनालालजी ने मेरे पास आपका विलायत से भेजा हुआ तार भेजा है, इसीलिए यह अंग्रेजी का पत्र जाता है। में खुद पत्र लिखने की कोशिश नही करूंगा, क्योंकि मुझे अपनी शक्ति बनाये रखनी है, इसलिए मै अधिकांश पत्र व्यवहार अंग्रेजी, हिन्दी या गुजराती में बोलकर लिखाता हू।

मालवीयजी आज मेरे पास ही है। वह स्वास्थ्य सुधारने के लिए ऊटी जा रहे है। आज सुबह ही आये थे और संध्या को चले जाते, पर मेरे यह कहने पर कि परसों मैसूर के महाराज का जन्मदिन है, इसलिए उन्हें ऊटी के लिए रवाना होने से पहले मैसूर जाकर उन्हे आशीर्वाद देना चाहिए, उन्होंने दीवान को तार भेजा है। उन्होंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी है

और शायद कल को मैसूर के लिए रवाना होंगे। मै उनके साथ बराबर पत्र-व्यवहार करता आ रहा हूं और वह तार द्वारा उत्तर देते आ रहे है। काफी दुबले हो गये हैं, पर सारे मामलों में उनकी आशावादिता ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं। उन्हे किसी प्रकार की शारीरिक व्याधि नही है। यह सारी दुर्बलता तो लगातार परिश्रम करने के कारण है। महीना भर आराम लेने का वचन देते है। साथ में डाक्टर मंगलसिंह है और एक रसोइया तो है ही। गोविन्द बम्बई तक तो उनके साथ ही था, पर उसे इलाहाबाद जाना पड़ा, क्योंकि उस कौए वाले मामले में नयी तारीख नही मिल सकी।

याद नही आता कि मैंने आपसे मिस म्यूरियल लेस्टर से मिलने को कहा था या नही। वह लंदन की बस्तियों में काम कर रही है। पिछले साल किसी समय यहा भारत में आई थी और आश्रम में कोई एक माह ठहरी थी। बड़ी ही उत्साही और योग्य कार्यकर्त्री है। पूर्ण मद्यपान-निषेध के लिए काम कर रही है और इसके लिए वहां जनमत जागृत कर रही है। उनका पता है:

मिस म्यूरियल लेस्टर, किंग्सवे हाल, योविस रोड, बो, ई, ३

आशा है आपका स्वास्थ्य सुधरा होगा, लालाजी का भी। मै पिछले रविवार को ही नदी से नीचे उतरा था। मेरे स्वास्थ्य में काफी सुधार हुआ है। डाक्टरों का कहना है कि मै अगले महीने तक थोड़ा बहुत सफर करने लायक हो जाऊंगा।

आपका
मोहनदास

मै कुछ समय बाद भारत लौट आया। हमारे पत्र-व्यवहार में अनेक तत्कालीन समस्याओं की चर्चा जारी रही। पर बापू के पत्रों मे अक्सर आत्मीयता से भरी वे बातें रहती थीं, जिनके कारण वह सबके इतने प्रिय हो गए थे।

१-१०-२७.

भाई घनश्यामदासजी,

आपका खत मिला है।

जमनालालजी के खत से पता चलता है कि आप योरप से स्वास्थ्य बिगाड़ के आये है। अब कही आराम पाकर स्वास्थ्य दुरस्त करना आवश्यक समझता हूँ। भोजन की पसन्दगी करने में मैं कुछ सहाय अवश्य दे सकता हूं। परंतु उसके लिए तो कुछ दिनों तक मेरे साथ रहना चाहिए।

आपने अपनी राय विषय विषय मे भेजी है वह ठीक किया।

असहयोग के कारण दो दल हो गये है ऐसा कुछ नहीं है। दो दल तो थे ही। जो कुछ हुआ है वह प्राकारातर ही है। मेरा विश्वास कायम है कि असहयोग के सिवा हमारी शक्ति बढ़ ही नही सकती है। लोग उसका चमत्कार समझ गये हैं, परतु उसको कुछ करने की शक्ति अबतक नही आई है। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा उसमे और बाधा डाल रहा है। कौंसिलों की सहाय की चेष्टा मै नही कर सकता हू। परंतु मेम्बर चाहें तो खादी और मद्यपान के विषय मे मदद दे सकते है। परंतु मेम्बर लोग स्वार्थ, अज्ञान और आलस्य के लिये कुछ कर नही सकते है। खादी इ० का काम मन्द और तेज चल रहा है। मंद इस कारण कि हम परिणाम नही देख पाते। तेज इस कारण कि जितना हो रहा है वह स्वच्छ है और स्वच्छ होने से उसका शुभ परिणाम अवश्य होनेवाला है।

धन की भूख तो मुझे हमेशा रहती है। खादी, अछूत और शिक्षा का कार्य करने में ही मुझे कम से कम दो लाख रुपये आवश्यक रहते है। दुग्धालय का जो प्रयोग चल रहा है उसको आज रु० ५०,०००) दरकार है। आश्रम का खर्च तो है ही। कोई काम रुक नही जाता, परतु ईश्वर रोवा-रोवा कर धन देता है। मुझे उससे सन्तोष है। जिस काम मे आपका विश्वास है और जितना उसके लिये दे सके दे।

मेरा भ्रमण इस वर्ष के अत तक तो चलता ही रहेगा। जनवरी मास में आश्रम पहुँचने की आशा करता हूं।

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न के बारे में पू० मालवीयजी को एक पत्र लिखा है। इस बारे मे कुछ न कुछ कार्य योग्य रास्ते से बनाना चाहिये। आज जो चल रहा है उसमे मै धर्म नही देखता हूं।

आपका
मोहनदास

बिड़ला हाउस
काशी
११ अक्टूबर, १९२७

परम पूज्य महात्माजी के चरणों मे प्रणाम।

मैं यहां पर २० रोज तक केवल विश्राम ही लेता रहूंगा। यहां पर मेरे विश्वस्त वैद्य त्र्यंबक शास्त्रीजी है, उनकी औषधि में खा रहा हू। मैं जिस तरह वैद्यों की शरण में जाकर प्रायः स्वस्थ बन जाता हूं उसी तरह मुझे

अब तक प्राकृतिक इलाज करनेवाला कोई वैद्य नही मिला है जिसे मै अपना शरीर सौंपकर निश्चिन्त हो जाऊं।

पूज्य मालवीयजी यहां नहीं है। मै ५०,०००) और १,००,०००) के बीच में सम्भवतः आगामी साल के लिए दे सकूंगा।

धन के अभाव में कही काम रुकता हो तो आप बिना संकोच के मुझे लिख दिया करें। वैसे भी कुछ कुछ भेजता रहूंगा। मै आपको अधिक धन भी दे सकता हूं किन्तु मै भी अपनी कुछ व्यापारी स्कीमो के पीछे लगा हूं और उनको पूरा कर देना देशहित के लिए आवश्यक समझता हूं, इसलिए कुछ कंजूसी कर रहा हूं।

विनीत
घनश्यामदास

बेतिया
सोमवार, १४-१२-२७

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है।

रु० ८०००) जमनालालजी को भेजे है वह चर्खा संघ के लिये समझता हूं।

शुद्धि के बारे में मै खूब विचार कर रहा हूं। जिस ढंग से आज शुद्धि की जाती है वह धार्मिक नही है। जो बलात्कार से या अनजानपन में विधर्मी हो जाते है उनकी शुद्धि क्या करनी थी, वे तो शुद्ध ही है। केवल हिन्दू धर्मी की उदारता का प्रश्न है। हमारा आन्दोलन ख्रीस्ती, इस्लामी शुद्धि के विरोध में होना चाहिये। इसमें विचार परिवर्तन की ही आवश्यकता है। यदि हम मानें कि शुद्धि की प्रणाली दोषित है तो हम क्यों उसकी नकल करे? हम पर आक्रमण हो जाये उसको दूर करने के लिये शुद्ध इलाज ढूंढ़कर हमें उसको ही उपयोग में लाना चाहिये। शुद्धि के आन्दोलन से हम गन्दगी की वृद्धि करते है और हिन्दू धर्मियों में जो सुधारणा होनी चाहिये उसको रोकते है। आजकल के आन्दोलन में मै विचार का अत्यन्त अभाव देख रहा हूं। जब आपको कुछ स्थिरता मिले तब इस बारे में हम शान्ति से विचार कर सकते है। मैं यह नहीं चाहता हूं कि मेरे ही कहने से कोई भी कार्य रोक दिया जाय। उससे हमको फायदा नही हो सकता है, जो मै सोच रहा हूं वह स्वतंत्रतया यथार्थ है तब ही और उतना ही परिवर्तन होना उचित है। इसलिये मै धैर्य और खामोशी धारण कर रहा हूं। मेरी सलाह है कि जब

आपको धारा-सभा में से फुर्सत मिले तब मेरे भ्रमण में मेरे साथ चन्द दिनों के लिये हो जायं।

फेब्रेवरी पहली तारीख को मै गोंदिया जाते हुए कलकत्ते में हूंगा।

आपका
मोहनदास

बिड़ला हाउस, पिलानी
१०-१-१९२८

प्रिय महादेवभाई,

मुझसे जमनालालजी ने पूछा है कि मेरा ७८,०००) रु० का ताजा दान किस काम मे लगाया जाय। मैंने यह बात महात्माजी के ऊपर छोड़ दी है। यदि उन्हें रुपये की बहुत अधिक आवश्यकता न पड़ गई हो तो मेरा सुझाव है कि यह रुपया ऐसी योजनाओं मे लगाया जाय जिनसे स्वराज्य निकटतर आवे। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और अस्पृश्योद्धार भी इन्हीमे से हैं और स्वराज्य-प्राप्ति के लिए इनकी नितान्त आवश्यकता है।

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

आश्रम
ता० ७-२-२८

प्रिय घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिलने से चिन्ता तो अवश्य होती है। दवा से तो थकान लगना चाहिए। मेरी दृष्टि मे प्रथम उपाय तो सम्पूर्ण उपवास ही है। मुझको इसका कोई डर नही है। उपवास से नुकसान हो ही नही सकता है। और उपवास एक-दो दिन का ही नही किन्तु १०।१५ दिन का होना चाहिए। यदि उपवास करना ही है तो आपको यहाँ रहना ही चाहिए। उपवास का शास्त्र जाननेवाले एक दो सज्जन हैं, उनको बुला सकते हैं, रहने का प्रबन्ध तो है ही। आजकल यहाँ की आबोहवा अच्छी है। अगर उपवास-शास्त्रज्ञ को पिलानी मे बुलाना चाहते हैं तो भी प्रबन्ध हो सकता है।

मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि आपको देहली हरगिज जाना नही चाहिए। पूज्य मालवीयजी व लालाजी को मै आज ही लिख भेजता हूँ। हकीमजी अजमलखां के बारे में जो स्मारक के लिए मैंने यं. इं. और न. जी. में प्रार्थना निकाली है उसके लिए मै आपसे और आपके मित्रों से द्रव्य चाहता

हूं। यदि आप अधिक न देना चाहें और आप अगर सम्मति देंदे तो आपने ७५,०००) दिया है उसीमें से बड़ी रकम निकाल लूं। आपका नाम देना न देना आप पर छोड़ दूं। यदि उसमे से कुछ देने का दिल न चाहे तो बगैर संकोच मुझको लिख भेजे।

मेरे स्वास्थ्य के बारे में अखबारों में कुछ पढ़ने से आप न डरें। ऐसी कोई बात चिन्ताजनक नही। डाक्टर लोग अवश्य डराते है परंतु उसका कुछ प्रभाव मेरे पर नही पड़ता है।

आपका
मोहनदास

२-७-२८

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र और रु० २,७००) की हुंडी मिली है। मैं चीन के साथ सम्बन्ध तो रखता हूं परंतु उन लोगों को तार भेजने का दिल नहीं चाहता। उसमें कुछ अभिमान का अंश आता है। यदि आयु है तो चीन जाने का इरादा अवश्य है। कुछ शांति होने के बाद वह लोग मुझको बुलाना चाहते हैं।

आप सब भाइयों के पास से आर्थिक मदद मांगने से मुझको हमेशा संकोच रहता है, क्योंकि जो कुछ मांगता हूं आप मुझे दे देते हैं। दक्षिणा-मूर्ति के बारे मे मैं समझता हू। बात यह है कि मुल्क में अच्छे काम तो बहुत हैं; परंतु दान देनेवाले कुछ कम हैं। अच्छा काम रुकता नही है परंतु नये देनेवाले उत्पन्न नही होते हैं। नये काम तो हमेशा बढ़ते जाते हैं।

ठीक कहते हो, नियमावली की कीमत केवल नियमों के पालन करने वालों पर निर्भर है।

रुपये आस्ट्रिया के मित्रों को भेज दिये हैं।

आपका
मोहनदास

१४-१-२९

भाई घनश्यामदासजी,

आपका तार मिला था। पत्र भी मिला है। लालाजी स्मारक के लिए मै इस मास के अन्त में सिंध जा रहा हूं। कलकत्ते में आपने कुछ इकट्ठा किया?

दुग्धालय के बारे में एक मद्रासी का नाम मैंने दिया था; उसको पत्र लिखा। यदि वह अनुकूल न लगे तो दूसरा नाम मैं दे सकता हूं। खादी भंडार के बारे में जो उसका उद्देश्य है उसको मत भूलिएगा। केवल वणिक वृत्ति से न चलना चाहिए। भडार को पारमार्थिक दृष्टि से चलाना है।

मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। आजकल मेरा खुराक १५ तोला बादाम का दूध, १४ तोला रोटी भीगी। सब्जी, टमाटर कच्चा, अलसी का तेल ४ तोला, दो तोला आटे की रबड़ी प्रातःकाल में। यहाँ फल छोड़ दिये हैं। एक हप्ते में १।। रतल वजन बढ़ा है। शक्ति ठीक है।

आपका
मोहनदास

बरेली
१३-६-२९

भाई घनश्यामदासजी,

हरभाई दक्षिणा-मूर्ति भवन में नानाभाई के साथी हैं। नानाभाई बीमार हो गये हैं। वर्धे में इस विद्यालय के बारे में हमारे बीच में बात हुई थी इस पर से मैं उनको आपके पास भेजता हूं। इस संस्था को क्या मदद देना वह आप ही सोचने वाले थे। आज तो मैंने नानाभाई को अभय वचन दिया है। वह आप ही के दान के आधार से है। अब आप हरभाई से सब बात सुन लेंगे, संस्था का हिसाब देखेंगे और उचित करेंगे।

आपका
मोहनदास

सन् १९२९ के अन्त मे गांधीजी के गोलमेज-परिषद् में लंदन जाने का सवाल उठा। इस परिषद् को बुलाने का उद्देश्य यह था कि साइमन कमीशन में सिर्फ ब्रिटिश पार्लामेंट के सदस्यों को रखने से भारतवासियों के मन पर जो बुरा असर पड़ा था वह दूर हो जाय और जिस गवर्नमेंट आफ् इंडिया बिल का रास्ता साफ करने के लिए साइमन कमीशन नियुक्त किया गया था उसका मसविदा तैयार करने में भारत के लोग भी हिस्सा ले सकें। मैंने इस बात की कोशिश की कि भारत की ओर से गांधीजी इस परिषद् में जायं। लेकिन उन दिनों वह अपने सविनय अवज्ञा

आन्दोलन का दूसरा दौर शुरू करने वाले थे और उसमें बहुत ही व्यस्त थे। मैंने उन्हें यह पत्र लिखा :

पिलानी
११ नवम्बर, १९२९

परम पूज्य महात्माजी के चरणों में सप्रेम प्रणाम।

मैं पिलानी आया हूं। ५-७ दिन के बाद जाऊंगा। सामन्त सभा और कामन्स की बहस तो आपने पढ़ ही ली होगी। मेरी राय में तो परिस्थिति को देखते हुए बेन की स्पीच अच्छी थी। यदि हम उनकी ईमानदारी में सन्देह न करें तो कहना होगा कि उनकी कठिनाइयों को देखते हुए वे इससे ज्यादा नहीं कह सकते थे। बेन ने भावना में परिवर्तन हुआ है ऐसा तो स्पष्ट ही कहा है। नेताओं के वक्तव्य का प्रतिवाद नहीं किया, यह भी शुभ चिह्न है। लायड जार्ज के बार-बार पूछने पर भी बेन ने कमोबेश कहने से इन्कार किया और एक प्रकार से 'मौनं सम्मति लक्षणम्' के न्याय से हमारी धारणा का पोषण भी किया। मेरी राय में वाइसराय एवं बेन नेकनीयती के साथ हमें सहायता देना चाहते हैं; किन्तु मैं नहीं मानता कि हमें पूर्ण औपनिवेशिक दर्जा मिलने वाला है। यह मैं जरूर मानता हूं कि यदि आप वहाँ पहुंच गये तो हमें अधिक-से-अधिक लाभ हो सकेगा। वहाँ की सरकार आपको असन्तुष्ट करके वापस नहीं जाने देगी, ऐसा मेरा पक्का विश्वास है। शायद फौज के रिजर्वेशन के साथ हमें कुछ देदे। इसके विपरीत आप लोगों के न जाने से मुझे परिस्थिति बिगड़ती दिखाई देती है। इसी चिन्ता से प्रेरित होकर यह पत्र लिख रहा हूं और आपको बिना पूछे परामर्श देना चाहता हूं कि आप सम्मान-पूर्वक परिस्थिति को अवश्य सम्हाल लें। मैं जानता हूं कि आपका रुख भी यही है, किन्तु फिर भी लिख देना मैंने उचित समझा है। मैं राजनीतिक मामलों में आपको कभी सलाह नहीं देता हूं, किन्तु परिस्थिति को देखते हुए ऐसा करना आवश्यक समझा है। देश की शांति के साथ-साथ इसकी कमजोरी का आपसे अधिक मुझको ज्ञान नहीं है, किन्तु इसके कारण मैं कभी-कभी बहुत निराश हो जाता हूं, और इसलिए यही सूझता है कि यदि आपके तप का—हमारी शक्तियों का नहीं—फल हमें मिलना चाहता हो तो हमें उसे ले लेने का प्रबन्ध कर लेना चाहिए। यदि पूरा औपनिवेशिक दर्जा मिले तब तो आप झटपट ले लेंगे, यह मैं जानता हूं; किन्तु मुझे ऐसी आशा नहीं है। बहुत से बहुत, और सो भी आपके सहयोग से, फौज छोड़कर अन्य सब चीजें हमें सम्मान-पूर्वक इस समय मिल सकती हैं, मुझे तो इतनी ही आशा है। आप

शायद इतना स्वीकार न करें और कान्फ्रेन्स में जाने से मुंह मोड़ लें, इस भय से चिन्तित था और पत्र लिखने का भी यही प्रयोजन है।

आपके जाने के बाद वाइसराय से मैं डिनर पर मिला था। उनकी बातों से इतनी बात मुझ पर स्पष्ट हो गई :

१. कैदी छोड़ने में आनाकानी करेगा, किन्तु उन्हें छोड़ देगा।
२. कान्फ्रेन्स का संगठन आप लोगों की राय और मशवरे से होगा।
३. शायद १९३० की जुलाई तक कान्फ्रेन्स कर लेंगे।
४. पूर्ण औपनिवेशिक दर्जा देना कठिन है।

किन्तु इस अन्तिम बात को वे अभी तो कान्फ्रेन्स पर हो छोड़ देंगे। न तो वे यही कहना चाहते हैं कि औपनिवेशिक दर्जे की पूर्णता में अभी देर है, न यही कहना चाहते हैं कि शीघ्र ही औपनिवेशिक दर्जा स्थापित हो सकेगा। किन्तु मेरी समझ यह है कि पूर्ण औपनिवेशिक दर्जा हमें अभी नहीं मिलेगा, तो भी हम बहुत कुछ सम्पादन कर सकते हैं और बचा-खुचा भी ५-१० साल तक ले सकते हैं। आज की परिस्थिति में हम इससे अधिक की आशा भी कैसे कर सकते हैं? मेरी राय का निचोड़ यह है कि आपका ब्रिटिश केबिनेट से मिल लेना हमारे लिए बहुत हितकर है और इस मौके को हमें छोड़ना नहीं चाहिए। यदि कान्फ्रेन्स असफल भी हो जाय तो भी हमारा लाभ ही है, क्योंकि इससे गरम दल वालों का प्रभाव बढ़ेगा। हमारे तो दोनों हाथ लड्डू दीखते हैं। मैंने अपनी राय लिख दी है, बाकी तो आप सोच ही लेंगे।

विनीत
घनश्यामदास

मैं गांधीजी को पहली परिषद् में भाग लेने के लिए राजी कराने में असफल रहा। गांधीजी तो समझे बैठे थे कि उन्हें जेल जाना पड़ेगा। जब हमारी मुलाकात वर्धा में हुई तो उन्होंने मुझसे यह साफ तौर पर कह दिया कि उन्हें अंग्रेजों पर घोर अविश्वास है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि अब भारतीय सदस्यों को धारा-सभा से बिलकुल अलग रहना चाहिए। २८ फरवरी, १९३० को उन्होंने लिखा : "वे (अर्थात् अंग्रेज लोग) केवल हमारे अज्ञान और भीरुता से लाभ उठाते हैं। असेम्बली से जितनी जल्दी विदा ली जाय उतना ही अच्छा है। मैं तो मार्च

की समाप्ति तक जेल से बाहर रहने की बहुत कम आशा रखता हूं।"

इस मौके पर स्वराज्य-पार्टी ने उनकी सलाह मान ली और सारे सदस्य असेम्बली को छोड़कर चले आये। पर मुझे तो यह काम अक्लमंदी का नहीं लगा, क्योंकि असेम्बली के द्वारा भारतवासियों को संसदीय कार्यशीलता का बड़ा अच्छा अनुभव मिल रहा था। स्वराज्य पार्टी की समझ में यह बात अच्छी तरह आ गई। फलतः वह अगले चुनाव में फिर खड़ी हुई और असेम्बली में गई। अगले वर्ष गांधीजी ने वाइसराय लार्ड विलिंगडन के तर्क मान लिये और मालवीयजी तथा मुझ जैसे मित्रों की प्रार्थना स्वीकार कर वह दूसरी गोलमेज परिषद् में जाने के लिए तैयार हो गये। इस परिषद् के लिए काँग्रेस ने उनको अपना एकमात्र प्रतिनिधि नियुक्त किया। मै कांग्रेस का सदस्य नहीं था, इसलिए मैंने व्यापारी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में परिषद् में भाग लेने का सरकारी निमत्रण स्वीकार कर लिया। गांधीजी की इंग्लैंड-यात्रा के बारे में इतने विस्तार के साथ लिखा जा चुका है कि यहां कुछ लिखना अनावश्यक होगा। लार्ड हैलीफैक्स के वायसराय के पद पर रहते हुए जब गांधीजी उनसे मिले थे और दोनों ने मिलकर गांधी-अरविन पैक्ट की रूप-रेखा तय की थी, तभी से लार्ड हैलीफैक्स और गांधीजी, दोनों एक-दूसरे पर अधिकाधिक विश्वास करने लगे थे। किन्तु एक वर्ष पहले की परिषद् के बाद से दृश्य अब बदल चुका था। श्री रैमजे मैक्डॉनल्ड अब भी प्रधान मंत्री थे और बदस्तूर परिषद् की अध्यक्षता कर रहे थे। पर अब वह मजदूर सरकार के नेता न रहकर एक संयुक्त सरकार के नेता थे, जिसमें श्री बाल्डविन और उनके अनुदार साथियों का स्थान प्रमुख था। भारत मंत्री के पद पर अब श्री बेजवुड बेन के बदले अनुदार दल के सदस्य सर सेम्युअल होर (बाद में लार्ड टेम्पिलवुड) थे। इसलिए गांधीजी की तरह मुझे भी अंग्रेजों की

नीयत पर शक होने लगा था, जैसा कि मेरे नीचे लिखे पत्र से प्रकट होगा :

लंदन
३१ अक्तूबर, १९३१

प्रिय सर तेज बहादुर सप्रू

जब मैंने संघ-विधायक-समिति (Federal Structure Committee) की रिपोर्ट की १८वी, १९वी और २०वी धाराओं का आपकी सम्मति से भिन्न अर्थ निकाला तो आपको तथा श्री जयकर को मेरा ऐसा करना बड़ा ही मूर्खतापूर्ण लगा होगा। पर मेरा उद्देश्य अपनी आशकाओ को व्यक्त करना था और यदि मे उन आशकाओं द्वारा अनावश्यक रूप से प्रभावित हो गया होऊं तो मै समझता हूं कि अतीत को देखते हुए मेरा ऐसा करना अनुचित भी नही था। यदि मेरा निर्वचन निराधार हो तो अच्छा ही है। पर जो हो, हमें आर्थिक नियत्रण-सम्बन्धी जो वचन दिया गया है, यदि उसमें किसी प्रकार का व्याघात उपस्थित करने की कौशलपूर्ण चेष्टा की गई तो मेरा यह पत्र आपको उसके खिलाफ चौकन्ना अवश्य कर देगा। हमे आर्थिक नियंत्रण तो प्राप्त होना ही चाहिए, उसमें किसी प्रकार के प्रतिबंध की गुजाइश नही।

अब मेरा दृष्टिकोण यह है कि हमारे अर्थविभाग सम्बन्धी नियंत्रण का मापदंड सचमुच की रकम पर हमारा नियत्रण माना जाना चाहिए। फर्ज करिये, हमे एक प्रतिशत नियंत्रण का अधिकार मिले और बाकी ९९ प्रतिशत आरक्षण के अधीन रहे तो मैं एक व्यावहारिक व्यापारी के नाते कहूंगा कि हमारा नियंत्रण केवल एक प्रतिशत है। यदि हमें शत-प्रतिशत नियत्रण का अधिकार मिले और उसमें से ५० प्रतिशत आरक्षण के बतौर बाद दे दिया जाय तो मै कहूंगा कि हमे केवल ५० प्रतिशत नियंत्रण का अधिकार मिला है। अब इस आधार को सामने रखकर हमे देखना चाहिए कि हमें अर्थ-विभाग में किस हद तक नियत्रण का अधिकार मिला है।

यदि आप १९वी धारा के पूर्वांश का अवलोकन करेंगे तो ऐसा प्रतीत होगा कि कुछ परिसीमाएं लगाकर हमें शतप्रतिशत नियत्रण का अधिकार दिया गया है। अब हमें देखना चाहिए कि वे परिसीमाएं क्या है। मेरी राय में १८, १९ और २०वी धाराओं में निम्नलिखित परिसीमाएं लगाई गई है :

१. रिजर्व बैंक की स्थापना,
२. पत्र मुद्रा या टंक वर्ग विधान मे संशोधन करने से पहले गवर्नर जनरल की स्वीकृति,
३. स्थायी रेल्वे बोर्ड की स्थापना,

४. ऋण-व्यय, ऋण-व्यय के लिए शोधन कोष, वेतन और पेंशन और सैनिक विभाग के लिए धन की व्यवस्था करने के हेतु संघनित कोष (Consolidated fund charge) भार का संगठन,
५. जब गवर्नर जनरल समझें कि जो ढंग अपनाये जा रहे हैं उनके कारण भारत की साख को गहरा धक्का लगेगा तो उसे बजट संबंधी और उधार लेने की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का अधिकार।

मेरी राय मे इन अधिकारो के अन्तर्गत समूचा आर्थिक क्षेत्र आ जाता है। अतएव मेरा कहना है कि इन धाराओं के द्वारा हमें कोई उत्तरदायित्व नही मिलता है। मै यहां अर्थ-विभाग का सक्षिप्त ढांचा देता हूं जिससे आप अनुमान कर सकेंगे कि मै ठीक बात कहता हू या गलत। रेल्वे बजट को मिलाकर अर्थ-विभाग की आय और व्यय लगभग एक अरब तीस करोड़ है। इसके अलावा अर्थ-विभाग के जिम्मे भारतीय मुद्रा और विनिमय की भी देखभाल करना है। मै यह मानकर चलता हूं (और यदि मै अविश्वास का आचरण करूं तो धाराओ के बुरे-से-बुरे अर्थ लगा सकता हूं) कि रिजर्व बैंक का सृजन हम नही करेंगे और व्यवस्थापिका सभा का उसपर कोई अधिकार नही रहेगा। मै स्वय नही चाहता हूं कि रिजर्व बैंक के दैनिक कार्यक्रम पर किसी प्रकार का राजनीतिक प्रभाव रहे, पर रिजर्व बैंक की नीति निर्धारित करने के मामले मे अतिम अधिकार व्यवस्थापिका सभा को रहे, और मै समझता हूं, पत्र मुद्रा विधान में संशोधन के लिए गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त करने की शर्त लगाकर हमसे अधिकार छीन लिये गये है। स्थायी रेल्वे बोर्ड की स्थापना के द्वारा जिसकी रचना में भी हमारा हाथ बिलकुल नही रहेगा। हमसे और भी चालीस करोड़ रुपये ले लेने की व्यवस्था की गई है। अब हमारे पास रह गये ९० करोड़। इनमे से ४५ करोड़ सेना के लिए चाहिए, १५ करोड़ ऋण व्यय के लिए, और १५ करोड़ रुपये पेन्शन और अन्य मदों के लिए चाहिए। इस प्रकार ७५ करोड़ रुपये सघनित कोषभार के लिए चाहिए और इस मद का आय पर पहला दावा रहेगा। इस प्रकार हमारे पास १३० करोड़ में से केवल १५ करोड़ रह गये। जिस किसी को भी १३० करोड़ की आय पर ११५ करोड़ व्यय का सर्वप्रथम अधिकार रहेगा वह हमारी बजट-संबधी और उधार लेने की व्यवस्था में पद-पद

> पर हस्तक्षेप करना चाहेगा, और यही कारण है कि गवर्नर जनरल को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है। अनिश्चित भारतीय ऋतु में बजट में ५ से १० करोड़ तक उतार-चढाव अवश्यम्भावी है, इसलिए कदम-कदम पर गवर्नर जनरल के अर्थ-सदस्य के ऊपर चढ दौड़ने का खतरा बना रहेगा। अतएव अर्थ-सदस्य को गवर्नर जनरल के हाथ की कठपुतली बनने को बाध्य होना पड़ेगा। अतः मेरी राय में इन तीन धाराओं के अन्तर्गत लोकप्रिय अर्थ-मंत्री को किसी प्रकार का नियंत्रण-सम्बन्धी अधिकार नही दिया गया है। मेरा कहना है कि ये धाराएं रिजर्व बैंक तक ही सीमित नही है, जैसा कि आपका कहना है, बल्कि समूचे क्षेत्र पर व्याप्त है।

आप पूछ सकते है, तो फिर चारा ही क्या है ? मैंने कल कहा था कि ये धाराएं संघनित कोष-भार के संगठन का स्वाभाविक परिणाम है। इसके दो विकल्प हो सकते है। या तो संघनित कोषभार को सुझाई गई मात्रा की अपेक्षा अत्यधिक संकुचित कर दिया जाय, और या गवर्नर जनरल को हमारी चूक होने तक हस्तक्षेप करने का अधिकार न रहे। मेरी राय में तो हमें इन दोनों ही विकल्पों की मांग करनी चाहिए। संघनित कोष को सेना के लिए निश्चित रकम मे कमी करके और हमारे ऋण-व्यय में सहायता की मांग करके संकुचिन किया जा सकता है। बेंथल ने मुझे बताया है कि इस प्रकार की सहायता की मांग की जा सकती है। उनका कहना है कि अपने ऋणों में से कुछ के रद्द किये जाने की मांग करने के बजाय, जैसा कि कांग्रेस कर रही है, हम ब्रिटेन से उन ऋणों को पूंजी का रूप देने की मांग कर सकते है। जो हो, यदि हमें भारत के लोकोपकारी विभागों के लिए रुपये की व्यवस्था करनी है तो हमें ठोस सहायता के लिए अवश्य झगड़ना चाहिए। यदि सैनिक व्यय घटाकर ३५ करोड़ कर दिया जाय और ब्रिटेन से सहायता मिलने के बाद ऋण-व्यय और अन्य मदों पर किया जाने वाला व्यय २० करोड़ रह जाय तो कुल संघनित कोष-भार ५५ करोड़ से अधिक नही रहेगा। यदि रिजर्व बैंक और स्थायी रेलवे बोर्ड की स्थापना सोलह आने हमारे हाथ की बात और उस पर आम नीति के मामले में व्यवस्थापिका सभा का पूरा नियंत्रण रहे तो मै समझता हूं अर्थ-सदस्य को काफी स्वच्छंदता रहेगी। वैसी अवस्था में यह उचित तर्क पेश किया जा सकता है कि कुल १३० करोड़ की आय में गवर्नर जनरल का सर्व-प्रथम व्यय केवल ५५ करोड़ है। इसलिए उसे बजट-सम्बन्धी और आंतरिक उधार सम्बन्धी व्यवस्था में दखल देने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

मैं समझता हूं, मैंने अपने विचारबिन्दु को पूरी तौर से स्पष्ट कर दिया है। मुझे इसमे तनिक भी सदेह नही है कि मेरी आशंका पूर्णतया सकारण है। मैंने इन तीन धाराओं का जो अर्थ निकाला है, मेरी राय में उनका यही अर्थ सम्भव भी है। मेरी राय में अंग्रेज इन धाराओं का दूसरा अर्थ नही निकालेंगे, पर यदि आपका अब भी यही विश्वास हो कि ये धाराएं रिजर्व बैंक की स्थापना तक ही सीमित हैं, तो मेरा सुझाव है कि उनके वाक्य-विन्यास में परिवर्तन कराके आप इस बात को साफ करा लीजिये। मैंने इनका दूसरा अर्थ निकाला है। इसीलिए तो मैंने कहा था कि उनका स्थान प्रस्तावित अर्थ-परिषद नही ले सकती है। यदि प्रस्तावित अर्थ-परिषद का गठन हमारे ऊपर छोड़ दिया जाय तब तो वह बिलकुल निर्दोष वस्तु सिद्ध होगी, जबकि इन तीनों धाराओं के द्वारा गवर्नर जनरल को हमारे समूचे आर्थिक ढांचे पर पूरा अधिकार दे दिया गया है। वास्तव में आर्थिक विभाग के तथा-कथित नियंत्रण को शून्य कर दिया गया है।

आशा है, आप मेरे नोट पर ध्यान-पूर्वक विचार करेंगे।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

पुनश्च :

मैंने इतने विस्तार के साथ केवल इसलिए लिखा है जिससे आपको अपना यह मन्तव्य स्पष्ट कर दूं कि यदि फार्मूला को उसी रूप मे स्वीकार कर लिया गया, जिस रूप मे हम लोगों ने १८ पैरे के आधार पर कल विचार किया था, तो जबतक सैनिक-व्यय और ऋण-व्यय की मदों में भारी कमी करने की व्यवस्था नही की जायगी तबतक बजट-सम्बन्धी व्यवस्था में गवर्नर जनरल द्वारा हस्तक्षेप बराबर होता रहेगा। यदि उपरिलिखित सुझाव के अनुसार इन दोनों मदों में कमी कर दी गई तो ब्रिटिश सरकार और व्यापारिक हितों को यह मांग करने का अधिकार नही रहेगा कि गवर्नर जनरल बजट सम्बन्धी व्यवस्था में दखल दे। मैं यह "पुनश्च" सारी बात थोड़े शब्दों मे बताने के लिए दे रहा हूं।

उन दिनों सर तेज बहादुर सप्रू भारत में एक मंत्री जैसी हैसियत रखते थे। वह साम्राज्य परिषद् में भारत का प्रतिनिधित्व भी कर चुके थे। इसलिए अंग्रेजों के अनोखे तरीकों से वह मेरी अपेक्षा अधिक परिचित थे। मैं जानता था कि अंग्रेज मुँह से जो

कह देता है वह उसकी लिखित प्रतिज्ञा के बराबर होता है। इसलिए एक व्यापारी की हैसियत से मैं अंग्रेजों के शब्दों की ही छानबीन किया करता था, और समझे बैठा था कि वे किसी भी शर्त का अक्षरशः पालन करने में विश्वास रखते हैं। लेकिन ब्रिटिश संविधान की परम्परा ही कुछ ऐसी कृत्रिम है कि जो रुख अंग्रेज लोग व्यापार के मामले में अपनाते हैं ठीक उसका उल्टा ऊंचे सरकारी मामलों में दिखलाते हैं। वे कहते एक बात है, जबकि उनका अभिप्राय कुछ दूसरा ही होता है। इसका प्रारम्भ तब हुआ जब उन्होंने अपने राजा की शक्ति-सामर्थ्य के क्षेत्र को पीड़ा-रहित ढंग से संकुचित करना शुरू किया। अब यह सिलसिला उपनिवेशों और आश्रित प्रदेशों पर पार्लमेण्ट की शक्ति-सामर्थ्य के क्षेत्र को उनके स्वतंत्र होने की घड़ी तक संकुचित करते रहने तक जारी रहता है। इसलिए सोचिये कि मुझे कितना आश्चर्य हुआ होगा जब सर तेज और उनके निकट के साथी श्री जयकर ने मेरे पत्र मे कही गई बात मानना तो एक ओर, उल्टे मेरे तर्क से असहमति प्रकट की। अतएव मैं नीचे का पत्र लिखने को प्रेरित हुआ :

लंदन
२ दिसम्बर, १९३१

प्रिय डाक्टर जयकर,

कल किंग स्ट्रीट में बातचीत के दोरान मे आपने मेरी गोलमेज परिषद मे दी गई स्पीच को नापसन्द किया था। मैं आपकी सम्मति का आदर करता हूं, इसलिए मुझे बड़ा दुख हुआ कि आपको मेरे विचारों से असहमत होना पड़ा। पर मैं इतना अवश्य कहूंगा कि मैंने कोई बात अचानक ही नही कह दी है। मैंने गत ३१ अक्तूबर को सर तेज बहादुर सप्रू को जो पत्र लिखा था उसकी एक प्रति आपके पास भी भेज दी थी, और उसके बाद मुझे यह समझाने के लिए कि मैं गलती पर हूं, न आपने ही मुझसे बात की, न सर तेज ने ही; इसलिए मैं इसी नतीजे पर पहुंचा कि १४, १८ और २१ धाराओं का मैंने जो अर्थ निकाला है उससे आप सन्तुष्ट हैं। वास्तव में आपने तो मेरे पत्र की पहुंच तक स्वीकार नही की। पर

मुझे जिस बात से निराशा हुई वह यह थी कि संघ-विधायक-समिति में सर तेज ने मेरी आशका को दूर करने के स्थान पर और भी आगे बढ़कर १४, १८ और २१वे पैरों का उनके मूल रूप में समर्थन करने के बाद अभिरक्षणों के सम्बन्ध में सर सेमुअल होर के वक्तव्य का भी समर्थन ही किया। आर्थिक अभिरक्षणों पर संघ-विधायक-समिति की जो अंतिम रिपोर्ट निकली है, उसमें एक प्रकार से सर सेमुअल होर के वक्तव्य को ही नये परिच्छेदो मे रख दिया गया है। सर पुरुषोत्तमदास ने तो संघ-विधायक-समिति मे दोष दिखाने की चेष्टा की भी थी, पर उन्हे आपकी ओर से कोई सहायता नही मिली।

अब स्थिति यह है कि १४, १८ और २१वे पैरों में अभिरक्षणों को जिस रूप मे रखा गया है उसका स्थिरिकरण हो गया है, और इसके अलावा यह भी सुझाया गया है कि फिलहाल उन अभिरक्षणों की विस्तृत व्याख्या करना जरूरी नही है। मेरी राय में तो अब इस सम्बन्ध मे कोई भी सदेह नही रहना चाहिए कि अभिरक्षणों का क्या मर्म है। उनकी उपलक्षणाएं अब मेरे लिए बिल्कुल स्पष्ट है, और मैंने ३१ अक्तूबर की सर तेज के नाम अपनी चिट्ठी मे जो विचार व्यक्त किये थे, अब उनकी पुष्टि हो गई है।

मुझे यह कहते हुए बड़ा खेद होता है कि जब सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने संघ-विधायक-समिति मे स्थायी रेल्वे बोर्ड का प्रश्न उठाया, तब भी उनका वैसा ही अनुभव रहा। प्रबंध सम्बन्धी मामलों मे विवेचना से काम लेने के प्रश्न तक पर सर तेज बहादुर सप्रू ने इस विचार का समर्थन किया कि इसका निर्णय सुप्रीम कोर्ट के द्वारा किया जाय। इस मामले मे भी सर पुरुषोत्तमदास पर वैसी ही बीती। मेरी राय मे इस प्रकार एक बड़े ही खतरनाक सिद्धात को जन्म देने की बात सोची जा रही है। यह सचमुच बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि जिन मामलों के विषय मे हम अंतरंग ज्ञान रखने का दावा कर सकते है उनमे भी हमें आपका और सर तेज का समर्थन प्राप्त नही हो सका।

मै आपसे इस मामले मे सहमत नही हू कि १४, १८ और २१वे पैरों को दुहराने के प्रश्न पर अब भी विचार-विमर्श की गुजाइश है। पर मुझे यह देखकर दु:ख होता है कि हम उन्हे यहां दुहराने का अवसर मिलने पर भी ऐसा नही कर सके। आपने कल महात्माजी से कहा था कि प्रधान मंत्री के भाषण के द्वारा अब सारे प्रश्न पर दुबारा विचार करने की गुंजाइश पैदा हो गई है। मुझे ताज्जुब है कि आपने इस स्पीच का यह अर्थ कैसे निकाला है। भावी ढांचे का निर्माण उन रिपोर्टों के आधार पर ही किया

जा सकता है जो मैंने पेश की है और जिनपर आप अभी तक दृढ हैं, और जिनके द्वारा जहां तक अर्थ-विभाग का सम्बन्ध है हमें रत्ती बराबर भी नियंत्रण नही मिलता है—सेना और विदेश विभागों की तो बात ही जुदी है।

जो कुछ किया जा चुका है, जो कुछ तय हो चुका है, गोलमेज परिषद की कार्यकारिणी समिति उसमे कोई परिवर्तन नही कर सकती है। वह तो केवल उन्ही मामलों को आगे बढ़ा सकती है जिनपर निश्चय किया जा चुका है; पर अभी न उसकी कार्य-सीमा ही निर्धारित की गई है, न यही तय किया गया है कि उसके जिम्मे क्या-कुछ सौपा गया है।

मै आपको आश्वासन देता हू कि मै बात समझने के लिए तैयार हूं, और यदि मेरी समझ में आ जाय कि मैं ही गलती पर हूं तो मेरी चिन्ता दूर हो जायगी; पर मुझे कहना पड़ता है कि आपने हमें यह बताये विना कि हमारी आशकाएं निर्मूल है, कुछ विशेष निष्कर्ष को स्वीकार कर इस दिशा में मेरी सहायता नही की। जो हो, यह तो मैं व्यक्तिगत विचार व्यक्त करने के लिए लिख रहा हूं। मुझे आशा करनी चाहिए कि आप ठीक मार्ग पर हैं। क्या मैं व्यवस्थापिका सभा की पुरानी नेशनेलिस्ट पार्टी के एक पुराने सहयोगी के नाते यह सुझाव रख सकता हूं कि आप यह स्पष्ट करदे कि गोलमेज परिषद मे बहुमत से जो आर्थिक अभिरक्षण पास किये है वे आपको स्वीकार नही है, और आप इस प्रश्न पर और ऊपर कहे अन्य प्रश्नों पर दुबारा विचार किये जाने की मांग करेंगे? मुझे हृदय से विश्वास है कि आप अब भी ऐसा करने मे समर्थ होंगे।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

सन् १९३७ में भारतीय शासन-विधान लागू हुआ। गवर्नर जनरल और प्रांतों के गवर्नरों ने कांग्रेसी प्रधान मंत्रियों तथा उनकी सरकारों के काम में दखल देने की कोई कोशिश नही की और जब अंत में गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार को इस बात का पूरा विश्वास दिला दिया कि भारत एक राष्ट्र है तब उन्होंने बड़ी अच्छी तरह से अपने को हटा लिया। आज हमने रिजर्व बैंक और रेलवे बोर्ड को जो बनाए रखा है, या गणतंत्र होकर भी

जो हम अभी तक राष्ट्रसमूह में ही बने हुए हैं सो सब स्वेच्छा से। इन सब बातों से प्रमाणित होता है कि एक-दूसरे के तौर-तरीकों को समझने-बूझने का कितना महत्व है। शुरू-शुरू में तो ब्रिटेन ने हम लोगों को समझने की चेष्टा नहीं की थी; पर जब दोनों पक्षों ने एक-दूसरे को समझ लिया तो उसका परिणाम बड़ा ही सुन्दर रहा।

: ४ :

वैधानिक संरक्षण

मैं तो यहां तक आगे बढ़ गया था कि मैंने आर्थिक संरक्षणों पर विचार करने के लिए एक विशेष समिति के नियुक्त किये जाने पर जोर दिया। जब परिषद् भंग हो गई और मैं भारत लौट आया तो मुझे सर सेम्युअल होर का एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने मेरे सुझाव को मानने से इन्कार कर मुझे एक दूसरे ही प्रकार की समिति में शामिल होने का निमंत्रण दिया :

इंडिया आफिस
व्हाइट हाल
२७ जनवरी, १९३२

व्यक्तिगत

प्रिय श्री बिड़ला,

मैंने आपको वचन दिया था कि मैं आपको आपके इस सुझाव के सम्बन्ध मे अपनी राय बताऊंगा कि आर्थिक अभिरक्षण का प्रश्न एक ऐसी समिति के सिपुर्द कर दिया जाय जिसमें ऐसे लोगों को भी शामिल किया जाय जिन्हे आर्थिक मामलों की जानकारी हो, पर जो गोलमेज परिषद की परामर्श-दायिनी समिति के सदस्य न हों। मैं कुल मिलाकर इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि अब, जब कि हमने एक ऐसी परामर्शदायिनी समिति का गठन कर लिया है जिसका काम गोलमेज परिषद द्वारा बताई गई आम नीति का अनुसरण करना होगा, उस पर एक ऐसी व्यवस्था लादना जिसके अंतर्गत ऐसी समितियां स्थापित करना हो, जिनके सदस्य बाहर से लिये जायं, अनुचित होगा। मेरी धारणा है कि ऐसी व्यवस्था में से अस्तव्यस्त करनेवाली शाखाएं फूट निकलेंगी। मै समझता हूं, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास परामर्शदायिनी समिति में भाग लेने में असमर्थ हैं। आपको उसमें अपने लिए स्थान की मांग करने की स्वतंत्रता है,

और यदि आप ऐसा करेंगे तो आप उसके सदस्य नामज़द हो ही जायंगे।

भवदीय
सेमुअल होर

इधर गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर से शुरू कर दिया था। मै भारतीय वाणिज्य-उद्योग संघ का एक भूतपूर्व अध्यक्ष था ही। उसने भी गोलमेज परिषद् से नाता तोड़ लिया था। मैंने नई दिल्ली से १४ फरवरी १९३२ को सर सेम्युअल होर को पत्र लिखा और उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा :

बिड़ला हाउस
अलबूकर्क रोड
नई दिल्ली
१४ फरवरी, १९३२

प्रिय सर सेम्युअल,

आपके गत मास की २७ तारीख के पत्र के लिए धन्यवाद। मुझे यह देखकर खेद हुआ कि आपको मेरा यह सुझाव कि सारे आर्थिक मामलों पर विचार करने के लिए एक उपसमिति अलग बनाई जाय, ग्राह्य नही है। मै तो आपसे अब भी इस सुझाव पर दुबारा विचार करने का अनुरोध करूंगा, क्योंकि आर्थिक समस्याओं का विवेकपूर्ण विचार इस विषय को समझने वाले व्यक्तियों की अनुपस्थिति में सम्भव नही है।

आपने यह सुझाकर कि यदि मै समिति में शामिल होना चाहूं तो मुझे नामज़द किया जा सकता है, बड़ी कृपा की। पर मेरी राय में मेरे लिए ऐसा रुख अपनाना ठीक नही रहेगा। वैसी अवस्था मे मै संघ के प्रति वफादारी का सबूत नही दूंगा और अपने आपको कोई अच्छा कार्य-सम्पादन करने के अयोग्य प्रमाणित करूंगा। मै अपने देश और सहयोग के हित में जो सबसे अच्छी सेवा कर सकता हू वह यही है कि संघ को बाकायदा सहयोग प्रदान करने के लिए राजी करू। मै जानता हूं कि कार्य-कारिणी के कार्यकलाप में हमारे भाग लेने के सम्बन्ध में सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास का भी वही मत है जो मेरा है। इसके अलावा भारतीय व्यापारी वर्ग के प्रतिनिधि की हैसियत से वह मुझसे कई बातों मे अच्छे है। उनमें अपेक्षाकृत अधिक व्यवहार-कुशलता, अधिक योग्यता और अधिक अनुभव है। यदि हम दोनों सघ से अपने रुख में संशोधन कराने मे समर्थ

हुए तो मुझे इसमें तनिक भी संदेह नही है कि भारतीय व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के लिए वह सबसे योग्य व्यक्ति हैं।

एकमात्र इसी प्रश्न पर विचार करने के हेतु संघ की बैठक बुलाई जा रही है। उसके बाद मे मैं आपको फिर लिखूगा। मैं यह भी चाहूंगा कि हमारे बीच मे जो कुछ विचार विनिमय हुआ है उसकी खबर वायसराय महोदय को भी रहे, जिससे आवश्यकता पड़ने पर हम आपको कष्ट दिये बगैर ही उनसे बातचीत कर सकें।

मैं संघ के प्रमुख सदस्यों के साथ इस समस्या की चर्चा करने दिल्ली आया था और अब फिर कलकत्ते के लिए रवाना हो रहा हूं। वहां मैं श्री बेथल और अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवसाय और वाणिज्य मे दिलचस्पी रखनेवाले दोनों वर्गो के अपेक्षाकृत निकटतर सहयोग के प्रश्न पर बातचीत करूंगा।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

अपने अगले पत्र में सर सेम्युअल ने एक नया प्रश्न उठाया, वह था साम्राज्य अधिमान (इम्पीरियल प्रेफरेन्स) के बारे में ओटावा में होने वाली परिषद् का प्रश्न, जिसका उस समय अपना निजी महत्व था।

इंडिया आफिस
व्हाइट हाल
२५ फरवरी, १९३२

प्रिय श्री बिड़ला,

आपके १४ फरवरी के पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। मुझे यह जानकर सचमुच प्रसन्नता हुई कि आप और सर पुरुषोत्तमदास वैधानिक विचार-विमर्श में सहयोग प्रदान करने के मामले में संघ को उसके रवैये मे सशोधन करने को राजी करने की चेष्टा कर रहे हैं। मैं आपके इस कार्य मे सफलता की कामना करता हूं। संघ की बैठक की समाप्ति पर आपके पत्र की प्रतीक्षा करूंगा। मुझे यह जानकर भी प्रसन्नता हुई कि आप व्यवसाय और वाणिज्य के मामले में दोनों वर्गो के निकटतर सहयोग के लिए श्री बेथल से बातचीत कर रहे हैं।

एक और अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसकी ओर आपका और सर पुरुषोत्तमदास का ध्यान दिलाना आवश्यक है। वह प्रश्न है ओटावा परिषद का। जैसा कि आपको मालूम ही है, आगामी यह परिषद ग्रीष्म ऋतु

में होनेवाली है। जहां तक भारत का सम्बन्ध है, साम्राज्य के विभिन्न उपनिवेशों के चुंगी संबंधी पारस्परिक सम्बन्ध का अबतक का इतिहास मुझे मालूम है; पर मुझे आशा है कि आप समझ लेंगे कि सम्राट की सरकार की नई नीति इस प्रश्न को एक बिलकुल नये आधार पर रखने की है—ऐसे आधार पर जिसमें भावुकता और राजनीति को गौण और आर्थिक हितों को मुख्य स्थान दिया जायगा। यदि ओटावा-परिषद में भारत का प्रतिनिधित्व उस मनोभाव के साथ नहीं हुआ जिसके द्वारा दोनों देशों के लिए एक समान लाभदायक व्यवसाय और वाणिज्य सम्बन्धी वार्त्तालाप सम्भव हो सके, तो मुझे बड़ी निराशा होगी।

भवदीय
सेमुअल होर

मैंने संघ समिति के सदस्यों से परामर्श करके नीचे लिखा जवाब दिया :

बिड़ला हाउस
नई दिल्ली
१४ मार्च, १९३२

प्रिय सर सेम्युअल,

आपके २५ फरवरी के पत्र के लिए धन्यवाद। हमारी समिति की बैठक हो गई। इस पत्र के साथ पास किये गए प्रस्ताव की एक प्रति भेजता हूं। जैसा कि आप स्वयं देखेंगे, प्रस्ताव के द्वारा समस्या का तुरंत हल तो उतना नहीं होता है, पर उसके द्वारा सहयोग की नीति अपनाने की बात निश्चित रूप से तय कर दी गई है। प्रस्ताव के पहले भाग में हमने सरकार से दमन की वर्तमान नीति में परिवर्तन करने का अनुरोध किया है; दूसरे भाग में हमने उस अर्थ का खंडन किया है जो सर जार्ज रेनी ने हमारे पहले प्रस्ताव का लगाया था; और तीसरे भाग में हम उस समिति को अपना सहयोग निश्चित रूप से प्रदान करते हैं, जिसकी नियुक्ति हमारे सुझाव के अनुरूप सारे आर्थिक मामलों पर विचार करने और उसका सर्व-सम्मत हल खोज निकालने के लिए होनी चाहिए। हमने इस मामले पर विशद रूप से विचार-विमर्श किया और बैठक में यह स्पष्ट रूप से तय कर लिया गया कि यदि सरकार ने हमारे सुझाव को अपना लिया और हमारे अनुरोध के अनुसार एक समिति की नियुक्ति की तो संघ उस नई समिति में भाग लेने को तो तैयार होगा ही, साथ ही वह परामर्श-दायिनी समिति में भी भाग लेगा।

इससे आगे बढ़ना सम्भव नहीं था। संघ की सदस्य संस्थाओं से जो सम्मतियां प्राप्त हुईं वे अत्यधिक बहुमत से भाग न लेने के पक्ष में थी। पर समिति ने इस मामले में पथप्रदर्शन करने का जिम्मा अपने ऊपर लेकर इन अनेक मण्डलों के दृष्टिकोण के बावजूद सहयोग प्रदान करने का निश्चय किया—हां, कुछ शर्तों के साथ। वार्षिक अधिवेशन २६ और २७ मार्च को होगा। उस समय इस प्रस्ताव की पुष्टि करानी होगी। यह पुष्टि आवश्यक है, क्योंकि हमने अपने मण्डलों की आम राय के खिलाफ आचरण किया है। पर समिति ने एक मत से इस प्रस्ताव पर अपने अस्तित्व की बाजी लगा दी है। और यदि यह प्रस्ताव पास नही हुआ तो सबने मिलकर इस्तीफा देने का निश्चय कर लिया है। उन्होंने सब प्रकार से भारी साहस का परिचय दिया है और मुझे आशा है कि प्रस्ताव अपने वर्तमान रूप से पास हो जायगा। वैसी अवस्था में, मैं समझता हूं, मुझे आप पर अपने मूल सुझाव के स्वीकार किये जाने का जोर डालना चाहिए, क्योंकि अब यह सुझाव संघ ने वर्तमान प्रस्ताव के रूप मे अपना लिया है।

आपको पिछली बार लिखने के बाद मैंने लार्ड लोदियन और सर जार्ज शुस्टर से बात की और उन्हें बताया कि जो लोग आर्थिक मामलों को समझते ही नही है उनसे आर्थिक अभिरक्षणों की चर्चा करना व्यर्थ समय नष्ट करना है। मैंने उन्हे यह बात सुझाई कि ऐसे मामलों का व्यावहारिक हल तलाश करने का एकमात्र मार्ग यही है कि दोनों पक्षों के अनुभवी व्यापारी एक साथ बैठें और सर्वसम्मत हल ढूंढ़ निकालें। लार्ड लोदियन और सर जार्ज शुस्टर, दोनों को मेरा सुझाव बहुत ही पसन्द आया और उन्होंने आपको पत्र लिखने का वचन दिया। आशा है, उन्होने लिखा होगा। मै दो-एक दिन मे शुस्टर से मिलूंगा और १७ तारीख को वायसराय से भी मिल रहा हूं, पर मेरा आपसे यही अनुरोध है कि आप अपने रुख पर दुबारा विचार करिये। यदि आप ऐसी समिति नियुक्त कर सकें, चाहे वह परामर्शदायिनी समिति के तत्वाधान में ही क्यों न हो, जिसमें एक ओर लार्ड रीडिग और सर बैसिल ब्लैकैट जैसे आदमी हों और दूसरी ओर हमारे पक्ष के भी उतने ही व्यक्ति हों, और सब मिलकर सारे आर्थिक मामलों पर चर्चा करें, तो मुझे यकीन है कि उसका फल बहुत अच्छा निकलेगा।

शायद एक उन्मूलनवादी भारत और एक अत्यंत अनुदार पार्लमिंट में इस समय समझौता सम्भव न हो, पर मेरा निवेदन यह है कि वर्तमान पार्लमिंट तथा कांग्रेस से असम्बद्ध प्रगतिशील भारतीय लोकमत के बीच समझौता अवश्य सम्भव है। बस, मै इसी दिशा में आपकी सहायता

और पथप्रदर्शन चाहता हूं। मै चाहता हूं कि आप यह बात समझें कि यदि विधान को कांग्रेस की तो बात ही क्या, प्रगतिशील वर्ग तक की सहमति के बगैर अमल में लाया जायगा तो उसके निष्कंटक रूप से चलने की बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती है। इसके विपरीत, यदि आप हमें ऐसा शासन विधान प्रदान करेंगे जो प्रगतिशील वर्ग को रुचिकर होगा तो उसे गांधीजी तक का आशीर्वाद प्राप्त हो जायगा। मै गांधीजी और कांग्रेस में हमेशा से भेद करता आया हूं, और मेरा आपसे कहना यही है कि आपके लिए हमें ऐसा विधान प्रदान करना संभव है जो कांग्रेस को ग्राह्य न होते हुए भी गांधीजी द्वारा नामंजूर नहीं किया जाय और जिसका भविष्य में निष्कंटक रूप में अमल में आना संभव हो। यदि विधान के जारी किये जाने के दूसरे ही दिन उसका विध्वंस करने के लिए कोई आन्दोलन खड़ा कर दिया गया तो शांति असम्भव हो जायगी, और मै चाहता हूं दोनों देशों में स्थायी शांति। अतएव हमने जो प्रस्ताव पास किया है, मेरा अनुरोध है कि आप उसपर गंभीरतापूर्वक विचार करे और यह देखे कि हम जो प्रगतिशील लोकमत को अपने निकटतर लाना चाहते है उसके निमित्त हमारी सेवाओं को काम में लाना आपके लिए संभव होगा या नही। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप हमें शांति के निमित्त कार्य करने का अवसर दें। मेरा आपसे अनुनय है कि आप हमारे सुझाव पर विचार करें।

रही दोनों वर्गों के निकटतर सहयोग की बात, सो मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि मुझे श्री बेथल से विशेष प्रोत्साहन नही मिला। लंदन में हमने प्रगाढ़ मैत्री का आचरण किया और हरेक ने दूसरे के दृष्टिकोण को देखने और समझने की चेष्टा की, और मुझे आशा थी कि यह सिलसिला भारत में भी जारी रहेगा। पर अब तो वह बिलकुल बदल गये दिखाई देते है, और उनकी एक स्पीच की रिपोर्ट ने तो मुझे सचमुच अचम्भे में डाल दिया है। उस स्पीच की एक प्रति इस पत्र के साथ भेजता हूं। मेरी तो समझ में नहीं आता कि लंदन में अत्यंत मैत्रीपूर्ण सहयोग के बाद वह हम लोगों को "कभी न मनाये जा सकने वाले" कैसे कह सके और गांधीजी की खिल्ली कैसे उड़ा सके! इससे खुद उनकी भी बड़ाई नहीं होती है और इसका भारतीय व्यापारी वर्ग के मन पर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ा है। इतने पर भी जहां तक मेरा सम्बन्ध है, हम लोग अपने मण्डलों को गलत मार्ग पर नहीं ले जाना चाहते इसलिए मेरा ठीक दिशा में शुरू किया गया प्रयत्न जारी रहेगा।

किन्तु रचनात्मक कार्य के लिए विश्वास और मैत्री के वातावरण की दरकार है, और फिलहाल दुर्भाग्यवश भारत में इसका अभाव है।

वास्तव में इस क्षोभकारी स्थिति में आपके पत्रों से चैन मिलता है। यह स्पष्ट ही है कि आप सहज ही विश्वास कर लेते हैं, अतएव मेरी जिम्मेदारी भी बढ़ गई है। इसलिए मैं चाहूंगा कि मै जैसा कुछ हूं, आप मुझे जान जाय। मेरे लिए यह कहना अनावश्यक है कि मै गांधीजी का बहुत बड़ा प्रशंसक हूं। वास्तव में, यदि मै यह कहूं कि मै उनका एक लाड़ला बालक हूं, तो अनुचित न होगा। मैने उनके खद्दर और अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी कार्यकलाप में हाथ खोलकर धन दिया है। मेरा यह भी अचल विश्वास है कि भारतीय जनता के लिए अतिरिक्त धंधे के रूप मे खद्दर अच्छा काम करता है। मैने न तो कभी सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग ही लिया है और न उसमें कभी रुपया ही दिया है। पर मै सरकार की आर्थिक नीति का कड़ा आलोचक रहा हूं, इसलिए मै अधिकारी वर्ग को कभी अच्छा नही लगा हूं। इस समय भी मैं सरकारी नीति से सहमत नही हूं। काश, मैं अधिकारियों को यह विश्वास दिला सकता कि गांधीजी और उनके जैसे व्यक्ति अकेले भारत के ही नही, ब्रिटेन के भी मित्र है, और कि गांधीजी शांति और व्यवस्था में विश्वास रखने वाले पक्ष के सबसे बड़े समर्थक है! अकेले वही भारत के वामपंथियों को काबू में रखे हुए है। अतएव मेरी राय में उनके हाथ मजबूत करना दोनों देशो की मैत्री की पाश को मजबूत करना है। पर मुझे आशंका है कि वर्तमान वातावरण में गांधीजी के सम्बन्ध में समझाना एक कठिन कार्य है। शायद इस मिशन में सफलता प्राप्त करने का सबसे अच्छा मार्ग है जहां तक सम्भव हो, आपको सहयोग प्रदान करना। और मेरी त्रुटियों के बावजूद यदि आप समझते है कि मै दोनों देशों में मैत्री-पूर्ण सम्पर्क स्थापित करने में उपयोगी सिद्ध हो सकता हूं तो आप मेरी तुच्छ सेवाओं पर हमेशा निर्भर कर सकते है।

ओटावा-परिषद के सम्बन्ध में मेरा कहना यही है कि यदि आपकी यह अभिलाषा है कि उसमें भारतीय व्यवसाय और वाणिज्य का भी प्रतिनिधित्व रहे, जैसा कि मै आपके पत्र से समझा हूं, तो जब कभी सर पुरुषोत्तमदास को निमंत्रण दिया जावेगा वह खुशी-खुशी स्वीकार कर लेंगे। मैं यह उनकी पूरी रजामन्दी से लिख रहा हू। संघ की समिति इस योजना के खिलाफ नही होगी। हम लोग इस परिषद की महत्ता को समझते है और, आप निश्चिन्त रहिये, ठीक दिशा में हमारा समर्थन मौजूद रहेगा।

क्या मैं इस सम्बन्ध मे एक और सुझाव दे सकता हूं? ओटावा में जो कुछ भी निर्णय हो, उसपर उस समय तक व्यवस्थापिका सभा द्वारा सही न हो जबतक नया विधान अमल में न आ जाय, और मेरी विनम्र

सम्मति में समझौता उस समय तक अमल में न आवे जबतक उसपर नई सरकार सही न कर दे। हम सब आर्थिक मामलों में प्रतिव्यवहार के कायल हैं। हां, यह अवश्य है कि व्यवस्था ऐसी हो कि वह लोकमत के अनुकूल हो। पर ऐसी योजना कोई कठिन कार्य नही है।

मुझे आपकी यह बात बड़ी अच्छी लगी कि आप इतिहास की बातों की ओर से उदासीन नहीं हैं। जहां तक हमारा सम्बन्ध है, आप हमे भावुकता और राजनीति को छोड़कर आर्थिक हितों के लिए काम करने को सदैव तत्पर पायगे।

मैं यहां एक पखवाड़े रहूंगा और उसके बाद कलकत्ता वापस चला जाऊंगा।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

बाद को प्रस्ताव के तीसरे पैरे में थोड़ा-सा संशोधन कर दिया गया। मैंने फिर लिखा :

बिड़ला हाउस
नई दिल्ली
२८ मार्च, १९३२

प्रिय सर सेम्युअल,

सघ का वार्षिक अधिवेशन कल समाप्त हो गया और हम लोगों ने गर्मागर्म बहस के बाद प्रस्ताव पास कर ही लिया। इस पत्र के साथ उसकी एक प्रति जाती है। जैसा कि आप स्वय देखेंगे, मूल प्रस्ताव के तीसरे पैरे में कुछ रद्दोबदल किया गया है, पर सार वही है। कई लिहाज से यह प्रस्ताव समिति द्वारा पास किये गए प्रस्ताव से अच्छा है, क्योंकि यह गोलमटोल बात न कह कर कुछ शर्तो के साथ निश्चित रूप से सहयोग प्रदान करता है।

मैंने अपने अंतिम पत्रमे जो कुछ कहा है, मुझे उससे अधिक कुछ नहीं कहना है। मैंने लदन मे आपके साथ बातचीत के दौरान में जो विचार रखे थे मुझे यह कहते हुए सतोष होता है कि मै सघ को उन्हे अपनाने को राजी करने में समर्थ हुआ हू। अतएव आप जब कभी समझे कि हम भारत मे शांति और प्रगति के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे, हम सहर्ष सहायता करने को तत्पर रहेंगे। मेरा तो आपसे यही अनुरोध है कि आप दूरदर्शिता से काम ले। मै ऐसा इसलिए कह रहा हू कि भारत का अधिकारी वर्ग दिन-प्रतिदिन की नीति बरत रहा है और अपने पथप्रदर्शन के लिए अनिश्चित और अज्ञात बातों पर निर्भर करता है। यह नीति राजनेताओं की नही है।

मैं भारतीय स्थिति के इस पहलू पर और अधिक टिप्पणी करना नहीं चाहता हूं, पर मेरी बड़ी अभिलाषा है कि सरकार दोनों देशों के कामचलाऊ शांति के स्थान पर स्थायी शांति की चेष्टा करे। मैं तो समझता हूं, ऐसा वर्तमान अनुदार पार्लमेंट के होते हुए भी सम्भव है। बीच-बीच में आपका समय लेता रहता हूं, क्षमा करियेगा।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

८ अप्रैल को सर. सेम्युअल होर ने उत्तर दिया कि वह मेरे द्वारा उठाये गए मुख्य-मुख्य प्रश्नों पर सावधानी के साथ विचार कर रहे हैं। उन्होंने बाद में इस विषय पर लिखने का वचन दिया। मेरी डायरी में लिखा मिलता है :

मैं बंगाल के गवर्नर से १० अप्रैल, १९३२ के साढ़े दस बजे प्रातःकाल मिला। बड़े चतुर और बुद्धिमान प्रतीत हुए। बहुत कम बोलते हैं और आर्थिक समस्याओं को अच्छी तरह समझते मालूम होते हैं। मैंने मौसम को लेकर बातचीत आरम्भ की और पूछा कि उन्हें गर्मी के कारण कुछ असुविधा तो नहीं होती है। इसके बाद ही हम अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की चर्चा में लग गये। मैंने आशा प्रकट की कि उनकी शिमला-यात्रा का परिणाम अपेक्षाकृत अधिक अच्छा होगा। उन्होंने पूछा कि क्या मेरा अभिप्राय आर्थिक मामलों से है। मैंने कहा कि मैं आर्थिक मामलों में किसी प्रकार के सुधार की आशा नहीं रखता, मेरा अभिप्राय तो राजनीतिक मामलों से है। आर्थिक सुधार असम्भव कल्पना है। संसार दोषपूर्ण मौद्रिक व्यवस्था से पीड़ित है, और जबतक इस व्यवस्था में परिवर्तन न होगा उसमें स्वाभाविक समायोजन (Natural adjustment) को छोड़कर और किसी प्रकार सुधार होना संभव नहीं है, और इसमें काफी समय लगेगा; संभव है, इसके कारण समाज के ढांचे में असाधारण अव्यवस्था उत्पन्न हो जाय। वह मुझसे इस बारे में सहमत हुए कि मूल्यों के स्तर में स्थिरता अधिक उत्तम है; पर बोले कि प्रबंधित चलार्थ (Managed Currency) का प्रबन्ध करने का जटिल काम किसके सुपर्द किया जाय ? मैंने कहा कि यह तो कोई मुश्किल काम नहीं है। यदि हम रुपये के एवज में अमुक मात्रा में सोना लेने को तैयार हैं, तो हम रुपये के एवज में १०० दशनांक क्यों नहीं दे सकते हैं ? उन्होंने कहा कि दशनांक एक जटिल काम है। मैं सहमत तो हुआ, पर बोला कि संसार में कोई वस्तु पूर्ण नहीं है। उन्होंने कहा सट्टेबाजी, का बाजार गर्म होगा। मैंने बताया कि सोने को छोड़कर और सारी चीजों में सट्टेबाजी कम होगी।

उन्हें मेरा सुझाव पसन्द तो आया, पर साथ ही उन्होंने इस व्यवस्था को कार्यान्वित करने के मामले में घबराहट जाहिर की। मैंने कहा कि यह कार्य केवल तानाशाही के लिए ही सम्भव है। संसार मूर्ख प्रजातंत्र से पीड़ित है। हमें प्रजातंत्रीय तानाशाहों की दरकार है। बात में विरोधाभास-सा दिखाई अवश्य पड़ा, पर मेरा आशय उनकी समझ में आ गया। मैंने बताया कि १५ प्रतिशत राजनीतिक व्याधियों का कारण दोषपूर्ण आर्थिक व्यवस्था है। भारत मूल्यों के नीचे स्तर से पीड़ित है। इस स्तर को ५० प्रतिशत ऊपर उठा देना चाहिए। उन्होंने पूछा कि क्या मूल्यों का स्तर इतना ऊंचा उठाना आवश्यक है। मैं बोला, हां, सर बैसिल ब्लेकेट की भी यही राय है। मैंने उन्हे समूचे प्रश्न का अध्ययन करने की सलाह दी। १९२१ में किसानों में कोई हलचल नहीं थी। सारी राजनीतिक अशांति मजदूरों तक सीमित थी। अब यह क्या बात है कि मजदूर खामोश हैं और देहाती जनता में इतना असंतोष फैला हुआ है? वह सहमत हुए और बोले कि कांग्रेस ने मजदूरों में अशांति फैलाने की चेष्टा तो की थी, पर वह असफल रही। मैंने बताया कि मैंने इस प्रश्न का अध्ययन किया है, और देखा है कि कपड़े की खपत को छोड़कर किसान ने अन्य दिशाओं में बचत की है। इस बर्ष उसने सोना बेचकर, आंशिक लगान भुगता कर और सूद अदा न करके अपना गुजारा किया है। अगले वर्ष बेचने के लिए उसके पास सोना नही बचा है, इसलिए वह लगान और कर नहीं देगा। मैंने बताया कि मैं छोटा नागपुर में केवल ५ प्रतिशत लगान वसूल कर सका, पर वास्तव में अवस्था उतनी बुरी नहीं है। भारत में और चाहे जो हो, आगामी १५ वर्षो में उस समय तक शांति नही होगी जबतक मूल्यों का स्तर ऊंचा नहीं किया जायगा। परंतु यदि राजनीतिक अशांति को दूर कर दिया जाय तो इस अशांति की स्थिति पर बहुत ही साधारण-सा प्रभाव पड़ कर रह जायगा। मैंने उन्हे बताया कि मुझे यह सारा व्यापार बड़ा परेशान करने वाला भी लगता है और बड़ा सहज भी। सहज इसलिए कि हमारा ध्येय एकसमान है। फिलहाल आरक्षणों और अभिरक्षणों सहित औपनिवेशिक स्वराज्य ही हम दोनों का लक्ष्य है। गांधीजी अभिरक्षणों के सम्बन्ध में चर्चा करना चाहते थे। इस विषय की चर्चा क्यों नहीं की गई और गांधीजी को अनेक मामलों पर विचारविमर्श का अवसर क्यों नही दिया गया?

वह खामोश रहे। मैंने उन्हें बताने की चेष्टा की कि गांधीजी मुनासिब बात मानने को तैयार रहते हैं, और उन्हें यह भी बताया कि गांधीजी के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है। मैंने उन्हें बताया कि मैं गांधीजी को १९१६ से जानता हूं, १९२१ से उनका पक्का प्रशंसक रहा हूं और उनके साथ

गोलमेज परिषद में काम कर चुका हूं। मैंने यह भी कहा कि राजनीतिक और आर्थिक मामलों में मैं सरकार का कड़ा आलोचक रहा हूं। यद्यपि मैंने सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग नही लिया है और न उसमें रुपया ही लगाया है, तथापि मैंने भी सरकार को अस्तव्यस्त करने की भरसक चेष्टा की है और गांधीजी के रचनात्मक कार्यो में हाथ खोलकर रुपया दिया है। अतएव मै गांधीजी के मन की बात जानने का दावा करूं तो बेजा नही होगा। गांधीजी बड़े ही विवेकशील और बड़े ही विनयशील आदमी है। मै मानता हूं कि कांग्रेस की मांग को पूरे तौर से स्वीकार करना सम्भव नही है, पर साथ ही ऐसा शासन-विधान अमल में लाना सम्भव है जिसे गांधीजी अस्वीकार न करें। ऐसा विधान अमल में लाने से लाभ ही क्या, जो स्वीकार्य न हो ? वह मुझसे सहमत हुए और बोले कि कुछ भी सही, शासन-विधान तो आ ही रहा है। कहा, यदि शासन-विधान को निष्क्रिय रूप से भी मंजूर न किया गया तो उसे अमल में लाना ही बेकार है। मैंने कहा कि वह बहुत कुछ कर सकते है। मैंने गांधीजी का जो वर्णन किया था उससे वह सहमत हुए। फिन्डलेटर स्टूआर्ट ने उनसे गांधीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। उन्होंने बताया कि किस प्रकार उन्होंने आशंका प्रकट की थी कि सम्भव है, गांधीजी से जल्दबाजी में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करा दिया जाय, पर किस प्रकार फिन्डलेटर स्टूआर्ट ने कहा कि संसार में ऐसा कोई प्राणी नही है जो गांधीजी से उनकी मर्जी के खिलाफ जल्दबाजी करा सके, पर यह अवश्य दुर्भाग्य की बात है कि अपने सहकारी लोगों के कारण उन्हें उलझन में फसना पड़ता है। मैंने उन्हे आश्वासन दिया कि उन्होंने वस्तुस्थिति को गलत समझा। गांधीजी को जल्दबाजी से काम लेने को बाध्य किया लार्ड विलिंगडन ने। भारत में कोई विवेक-बुद्धिवाला आदमी मौजूद ही नही था। अब हेली विवेकशील आदमी है, वह स्वयं (अर्थात् एण्डरसन) विवेकशील आदमी है। लार्ड विलिंगडन को गांधीजी से कोई सहानुभूति नही है। वह उन्हे जानते नही, उन्हें समझते नही। गवर्नर ने पूछा कि क्या गांधीजी व्यावहारिक व्यक्ति है ? मैंने उत्तर दिया, बेहद। उन्होंने कहा कि उन्हें फिन्डलेटर स्टूआर्ट ने बताया है कि वह अधिक व्यावहारिक नही है। मैंने कहा कि एक पाश्चात्य मस्तिष्क के लिए गांधीजी जैसे दार्शनिक मस्तिष्कवाले व्यक्ति को समझना कुछ कठिन है। उन्होंने जानना चाहा कि क्या गांधीजी आरक्षण और अभिरक्षण स्वीकार करेंगे। सेना के सम्बन्ध में मैंने उन्हें बताया कि हम जानते है कि हमें तुरन्त ही पूरा अधिकार नही मिलेगा, पर इस सम्बन्ध में गांधीजी ऐसा फार्मूला रखेंगे जो सबके लिए ग्राह्य होगा। आर्थिक मामलों में हम एक ऐसे फैक्टरी के स्वामी

जैसा आचरण करने को तैयार है जिसने अपने डिबेन्चर बंधक रख दिये हों। डिबेचर होल्डर को उस समय तक फैक्टरी के दैनिक कार्यकलाप में टांग नही अड़ानी चाहिए जबतक उसे उसका रुपया नियमित रूप से मिलता रहे। मै एक कदम और भी आगे बढ़ा और भविष्य के सम्बन्ध में कुछ ठोस सुझाव पेश किये। यदि गांधीजी को रिहा कर दिया जाय और आतंकवादी आन्दोलन की समस्या के सम्बन्ध में कोई संतोषजनक हल निकल आवे तो खिंचाव दूर हो सकता है और गांधीजी के लिए सहयोग करना सम्भव हो सकता है। उन्होंने सारी बातों को बड़े ध्यान के साथ सुना और कहा, "आपको भारत के अनेक व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक जानकारी है।" उन्होंने दार्जिलिग से लौटने पर मुझसे और भी बातचीत करने की इच्छा प्रकट की और कहा आप भी दार्जिलिग चलें तो क्या बुराई है?" मैंने जाने का वचन दिया।

: ५ :

लार्ड लोदियन का भारत-आगमन

सन् १९३२ में लार्ड लोदियन भारतीय मताधिकार समिति के अध्यक्ष बनकर भारत आये। वह इंडिया आफिस में पार्लमेंटरी उपसचिव थे और भारत से उन्हें बड़ी सहानुभूति थी। मेरी उनकी खुलकर बातचीत हुई और समिति की रिपोर्ट प्रकाशित होने से पहले मैंने उन्हें एक पत्र लिखा। मेरी चेष्टा थी कि गांधीजी, जो उन दिनों जेल में थे, व्यावहारिक दृष्टि से विजयी सिद्ध हों, जिससे भविष्य में असहयोग-आन्दोलन चलाने की आवश्यकता ही न रह जाय। किन्तु मेरी यह चेष्टा सफल न हो सकी। पत्र इस प्रकार था :

कलकत्ता
४ मई, १९३२

प्रिय लार्ड लोदियन,

समाचार-पत्रों में छपा है कि आपका मिशन पूरा हो गया और अब आप ११ तारीख को इंगलैंड हवाई जहाज द्वारा वापस जा रहे हैं। आपकी समिति की रिपोर्ट शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगी और मैंने जो कुछ सुना है उसके आधार पर मुझे आशा होती है कि वह संतोषप्रद सिद्ध होगी। आप भारत में अपने प्रति मैत्री की भावना उत्पन्न कर सके, यह भी कोई कम लाभ की बात नही है। ईश्वर से प्रार्थना है कि भारत के साथ आपके सम्पर्क के फलस्वरूप दोनों देशों का सम्बन्ध मधुर हो।

मैं अभी आपको वर्तमान अवस्था के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखना चाहता हूं। अपनी अवलोकन सम्बन्धी असाधारण क्षमता और मैत्रीपूर्ण अवबोध (appreciation) के फलस्वरूप आप भी हालत को उतना ही समझने लग गये हैं जितना एक भारतीय के लिए सम्भव है। मैं आपको केवल इसलिए लिख

रहा हूं कि इस नाजुक अवसर पर, जबकि अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों का निपटारा होनेवाला है, इस तथाकथित दुहेरी नीति की सफलता के सम्बन्ध में अपना संदेह प्रकट कर सकूं। जब हमने इस विषय की चर्चा कलकत्ता क्लब में की थी तो आपने विश्वासपूर्वक कहा था कि भारत की सहायता करने का सबसे अच्छा मार्ग यही है कि सुधार जल्दी-से-जल्दी अमल में लाये जायं। मैंने यह बात उठाई थी कि ऐसे सुधारों से क्या लाभ जब राष्ट्रवादी उनसे अलग रहेंगे ? बस, मेरे दिमाग में यही बात वार-बार उठ रही है। मैं एक प्रकार से निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि जबतक सुधारों को भारत के प्रगतिशील लोकमत का समर्थन प्राप्त नही होगा तवतक वे चाहे जैसे भी हों, सफल नही होंगे। मै स्वीकार करता हूं कि फिलहाल एक उन्मूलक भारत और एक प्रतिक्रियावादी पार्लमेंट में समझौता शायद सम्भव न हो, पर अच्छी तरह विचार करने के बाद मुझे बोध होता है कि ऐसा शासन-विधान अमल मे लाना असम्भव नही है जिसे गांधीजी और उनके जैसे विचारोंवाले व्यक्तियों की मूक सहमति प्राप्त हो। इससे कम-से-कम भारत को कुछ शांति तो मिलेगी, और यह विश्वास करने को मेरा जी नहीं करता कि कम-से-कम इस लक्ष्य की सिद्धि का कोई उपाय ढूढ़ निकालना सम्भव नही है। मै समझता हू, इस उद्देश्य की सिद्धि दो प्रकार से हो सकती है: या तो गांधीजी का प्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त करके, या उनके अप्रत्यक्ष सहयोग के द्वारा। गांधीजी और सर सेमुअल होर में जो पत्र-व्यवहार चल रहा है उससे मुझे अधिक आशापूर्ण दृष्टिकोण अपनाने का प्रोत्साहन मिलता है। १९३० की असुविधा यह थी कि गांधीजी का शासकों से कोई सम्पर्क नहीं था। सौभाग्य से अब यह असुविधा गायब हो गई है, अतएव यदि दोनों पक्षों में सद्भावना मौजूद हो तो रास्ता निकल सकता है।

अब हमें दोनों विकल्पों का विश्लेषण करना चाहिए। सबसे पहले हमें यह देखना चाहिए कि क्या उनका प्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त करना सम्भव है ? मैं तो इसे उतना कठिन नही समझता। फर्ज़ करिये, आर्डिनेंसों को पुनः जीवित नही किया जाय। वैसी अवस्था में गांधीजी की क्या स्थिति होगी ? कार्यकारिणी का अन्तिम प्रस्ताव था कि यदि आर्डिनेंसों के मामले में ठोस राहत न मिले तो सविनय अवज्ञा की जाय। यदि आर्डिनेन्स दुबारा जारी नही किये जायंगे तो अवस्था में आमूल परिवर्तन हो जायगा। फिर केवल सीमाप्रान्त और बंगाल की समस्याओं का हल बाकी रह जायगा। युक्तप्रान्त में जवाहरलालजी ने लगान में जितनी छूट की मांग की थी, मेरी समझ में उससे भी अधिक छूट दे दी गई है, इसलिए वहां नई कठिनाइयां उत्पन्न नहीं होंगी। अतएव यदि आर्डिनेंसों की अवधि न बढ़ाई गई और

गांधीजी को रिहा कर दिया गया, उन्हें वायसराय से भेंट करने दी गई, बंगाल और सीमाप्रान्त में आर्डिनेंसों से उत्पन्न अवस्था पर विचार-विमर्श किया गया, और इन दोनों स्थानों में गुत्थी सुलझ गई तो उसके बाद विधान-रचना-कार्य में सहयोग और राजनीतिक बंदियों की रिहाई तो आनन-फानन में हो जायगी। इस दिशा में मुझे एकमात्र कठिनाई यही दिखाई पड़ रही है कि भारतीय लोकमत गत वर्ष के मार्च मास की अपेक्षा कही अधिक कड़ुआ है। सम्भव है, गाधीजी के लिए केवल आर्डिनेंसों की मियाद न बढ़ाये जाने मात्र से कांग्रेस को सहयोग के लिए राजी करना कठिन हो। जनसाधारण का यह प्रश्न करना सम्भव है: "भारत को क्या मिला जो हम सरकार के साथ शांति की बात करें?" इसम संदेह नही कि गांधीजी कांग्रेस को अपने पक्ष में कर लेगे, पर उसके लिए उन्हें कठोर प्रयास करना पड़ेगा।

दूसरा मार्ग अपेक्षाकृत अधिक आसान है। फर्ज़ करिये, आर्डिनेंसों की मियाद नही बढ़ाई गई, वैसी अवस्था में क्या यह सभव नही है कि कोई गांधीजी के मैत्रीपूर्ण पथप्रदर्शन के अनुसार विधान-रचना-कार्य मे भाग ले? इस प्रकार जो समझौता होगा उसे गांधीजी का अप्रत्यक्ष आशीर्वाद तो प्राप्त होगा ही। कह नही सकता, गांधीजी को यह तरीका कितना रुचेगा, पर मैं समझता हूं, इसकी व्यावहारिकता की खोज करना ठीक ही होगा। कुछ भी कहिये, गाधीजी एकमात्र यही चाहते है कि अच्छा शासन-विधान प्राप्त हो, और यदि ऐसा विधान मिल सके जो गांधीजी को नापसन्द न हो, तो विधान के निष्कंटकरूप से अमल में आने की सम्भावना बहुत बढ़ जायगी।

मै ये सारी बाते आपके विचारार्थ लिख रहा हूं, क्योंकि मेरी प्रबल धारणा है कि यदि सरकार मुसलमानों, अस्पृश्यों और नरेशों पर निर्भर करके विधान अमल में लाई और उसे राष्ट्रवादी भारत की सहमति प्रदान न हुई तो वह बहुत भारी भूल करेगी। वैसी परिस्थिति मे कशमकश जारी रहेगी और भारत को बहुत दिनों तक शांति नही मिलेगी। सरकार को केवल उसी हालत में कांग्रेस की उपेक्षा करनी चाहिए यदि उसका यह इरादा हो कि कोई ठोस प्रगति नही करनी है। और इस दुहेरी नीति को देखकर जनसाधारण को स्वभावतया ही सरकार की नीयत पर संदेह होता है, और उमे जिज्ञासा होती है कि कांग्रेस के सहयोग की उपेक्षा करने का और क्या कारण हो सकता है? कलकत्ते में जो धारणा व्याप्त है उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि गैर-सरकारी यूरोपियन तक यह प्रश्न उठा रहे है कि सुधारों को अमल में कौन लायगा। परसों के 'इंगलिशमैन' मे जो अग्रलेख निकला उसमे भी यही भाव व्यक्त किये गए है। इसलिए मै चाहता हूं कि

सरकार ऐसी कोई भूल न करे, और कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के लिए सभी उपायों को खोज निकाला जाय।

आपकी सकुशल समुद्र-यात्रा की कामना करता हूं और आपकी रिपोर्ट प्रकाशित होने पर आपको बधाई भेजने की आशा करता हू।

मैं १० तारीख को सर जान एंडरसन से मिल रहा हू। आपको जो कुछ लिखा है, उन्हें भी बताने का इरादा है।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

लार्ड लोदियन ने तुरंत वचन दिया कि भारत-मंत्री के इंगलैंड लौटते ही वह इन विषयों को लेकर उनसे बातचीत करेंगे।

१४ मई, १९३२

प्रिय लार्ड लोदियन,

आपके १८ तारीख के पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। आशा है, आपकी यात्रा बड़ी सुखद और आनन्ददायक सिद्ध हुई होगी। क्या आपको यह यात्रा समुद्र-यात्रा की अपेक्षा अधिक अच्छी लगी? कम-से-कम मुझे तो हवाई जहाज से यात्रा करना अच्छा नही लगता।

कांग्रेस के आत्मत्याग के सम्बन्ध मे आपने जो कुछ कहा, बड़ा ही सुंदर रहा। ऐसे उद्गारो का जो अच्छा प्रभाव पडता है उसका ठीक-ठीक अंदाजा लगाना सम्भव नही है।

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि मैने अपने पत्र में जिन बातो को उठाया है उनकी चर्चा आप भारत-सचिव के साथ करेंगे। मुझे ऐसा लगता है कि यहां रंग-ढंग मे परिवर्तन होनेवाला है, पर सम्भव है, यह मेरा खयाली पुलाव मात्र हो। मैने अपने पिछले पत्र मे जो कुछ कहा है उसकी पुष्टि में मुझे इतना और कहना है कि नेताओं की रिहाई के बगैर साम्प्रदायिक प्रश्न तक के निपटारे की सम्भावना नही है। यह प्रसन्नता की बात है कि अभी तक सरकार ने हस्तक्षेप नही किया है, और मेरी समझ में श्री जयकर, डा० मुंजे या पंडित मालवीय जैसे हिन्दू-सभाई नेताओं के लिए मुसलमानों की मांगों के स्वीकार किये जाने के लिए आवश्यक बुनियादी तैयारी करना सम्भव नही है। यह अकेले गांधीजी के बूते की बात है, और जबतक गांधीजी और अधिकांश नेता जेल मे बंद है तबतक सरकार का भारतीयों को इस मामले का निपटारा करने में असमर्थ रहने के लिए दोष देना बेकार है। आप

पूछ सकते हैं कि गांधीजी के लंदन के लिए रवाना होने से पहले ही भारत में इस प्रश्न का निपटारा क्यों नही कर लिया गया ? मैं इस अभियोग को आंशिक रूप में स्वीकार करता हूं, पर मेरा कहना है कि भारतीयों ने साम्प्रदायिक फूट को दूर करने की आवश्यकता को जितना अब समझा है, उतना पहले कभी नही समझा था। मेरी समझ में यदि नेताओं को रिहा कर दिया जाय और सारे महत्वपूर्ण मामलों पर शात भाव से विचार करने योग्य वातावरण तैयार कर दिया जाय तो साम्प्रदायिक समझौते की सम्भावना बहुत बढ़ जायगी और साम्प्रदायिक मामले के निपटारे के वाद यदि सर सेम्युअल होर गांधीजी को आगामी सितम्बर मास में लदन बुला ले और उनसे अर्विन-प्रणाली के अनुरूप बर्ताव करें तो मै समझता हूं कि हम लोग बहुत-कुछ प्रगति कर सकेंगे।

एक और ऐसी समस्या है, जिसकी ओर गम्भीर भाव से ध्यान देना आवश्यक है: वह है आर्थिक मदी। मुझे आशका है कि इंगलैड मे इस बात को अच्छी तरह नही समझा जा रहा है कि भारत मे कैसी नाजुक अवस्था उत्पन्न हो गई है। यदि मूल्यों का स्तर अच्छी तरह ऊँचा नही उठा तो मुझे भय है कि अगले वर्ष में परले दर्जे की अव्यवस्था हुई रखी है। मैंने इसकी चर्चा सर जान एंडरसन से भी की थी और मै समझता हू उन्होने अवस्था की गुरुता को समझा भी।

ओटावा-परिषद तो आरम्भ से ही एक प्रकार से श्मशान-भूमि के सिपुर्द हो गई। सरकार को अपने ही ढंग से काम करने की टेव-सी है। १९३० में रेनी रुई की चुंगी के मामले में ब्रिटेन के पक्ष में अधिमान देना चाहते थे, यद्यपि भारत का समूचा व्यापारी-समुदाय इसके खिलाफ था। परिणाम जो हुआ हम सब जानते ही हैं। इस बार भी ओटावा-परिषद में भारतीय व्यापारी वर्ग के मनोभावों के विपरीत कुछ करने की बात सोची जा रही है, और इसका परिणाम यह हुआ है कि ओटावा-परिषद के खिलाफ लोकमत इतना प्रबल हो उठा है कि सम्बद्ध विषयों पर उन्हींके गुण-दोषों के अनुरूप शांतभाव से विचार करना असम्भव हो गया है। मैत्रीपूर्ण समझौते के द्वारा क्या कुछ प्राप्त करना सम्भव था, इसका अदाजा तो मैनचेस्टर में अधिमान के पक्ष में गांधीजी के उद्गारों से ही लग सकता था। पर भारत में सरकार उचित मनोवृत्ति के साथ काम करना तो चाहती ही नही। वह तो चीज़ लादना चाहती है। यह सब मै आपको यह बताने के लिए लिख रहा हूं कि किस प्रकार भारत में यदाकदा व्यवहार-कुशलता के अभाव के कारण उपद्रव हुआ करते हैं।

मुझे आपके इन मनोभावों से बड़ा ही अह्लाद हुआ कि नवीन विधान

के द्वारा विधान के मुख्य अंगों को समान रूप से अधिकार मिलने चाहिए।

आपने पूछा है कि क्या मेरा इन गर्मियों में लंदन में आपसे मिलना सम्भव है? मैं यही प्रश्न तो आपसे करना चाहता हूं। आप गांधीजी को बुलाइये, हम सब भी साथ हो लेंगे।

आशा है, आप सानन्द हैं।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

उसी साल १९ जुलाई को मैंने सर जॉन एंडरसन से मुलाकात करके उनकी और गांधीजी की भेंट कराने की चेष्टा की। सर जॉन इस बात के लिए बड़े उत्सुक थे कि अपने कार्यकाल में वह गांधीजी से मिल लें। सच पूछिये तो प्रायः सभी ब्रिटिश गवर्नर ऐसा ही चाहते थे, यद्यपि उनमें से कुछ सिर्फ कौतूहलवश ऐसा करना चाहते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि उन्हें अपने देश लौटकर यह कहना पड़े कि भारत के सबसे महान् व्यक्ति से उनकी मुलाकात नहीं हुई। पर जहांतक सर जॉन एंडरसन का सम्बन्ध था, उनमें सिर्फ कौतूहल की भावना नहीं थी, वह तो कई गम्भीर कारणों से गांधीजी से मिलने के इच्छुक थे। किन्तु वायसराय लार्ड विलिंगडन प्रान्तीय गवर्नरों के गांधीजी से मिलनेपर राजनीतिक दृष्टिकोण से आपत्ति किया करते थे। फिर भी मुझे यह कहते खुशी होती है कि सर जॉन और गांधीजी के बीच मुलाकात हुई, यद्यपि वह बड़ी ही कठिनाइयों और परेशानियों के बाद सम्भव हो पाई। इन कठिनाइयों और परेशानियों से आसानी के साथ बचा जा सकता था। मैंने उनसे प्रस्ताव किया था कि मुझे गांधीजी से जेल में मिलने दिया जाय। इन दिनों की मेरी डायरी में, जो कभी लिखी गई और कभी नहीं लिखी गई, सर जॉन से की गई मेरी बातचीत के बारे में यह संक्षिप्त नोट दर्ज है:

१६ जुलाई १६३२ को जान एंडरसन के साथ मुलाकात....उन्होंने बताया कि वह वायसराय से दो बार बात कर चुके हैं....वायसराय

को आपत्ति नही है....जान एंडरसन लिखेगे....मैने कहा, गांधीजी अनुमति बगैर राजनीति की चर्चा नही करेंगे....जान एडरसन ने उत्तर दिया कि मै वायसराय के नाम चिट्ठी और उनका उत्तर दिखा सकता हूं। ....मै स्वयं अपने पथप्रदर्शन के लिए जाता हूं....यह स्पष्ट हो ही जायगा....उन्होंने मेरे भाषण की चर्चा की....मैने उत्तर दिया कि वास्तव मे वह मुलाकात थी....उन्होंने मेरी स्थिति को समझा.... मैने स्पष्ट रूप से कह दिया कि हमारा भाग लेना गाधीजी पर निर्भर करता है....हम लोग खुद कुछ नही कर सकते....मैने सुझाया कि आर्डिनेंस के बावजूद भी गाधीजी को आमत्रित क्यो न किया जाय....उन्होने कहा, अनुदार दलवाले अडचन पैदा करेंगे....मैने कहा, इसकी समाप्ति कैसे होगी....वह सहमत हुए....आर्थिक मामलों की चर्चा हुई.... उन्होंने कहा, आबकारी की चुगी पर बातचीत की जा रही है।

इसके बाद गांधीजी का आमरण अनशन आरम्भ हुआ।

इस समय मेरी मुख्य चिन्ता यह थी कि गांधीजी को जेल से छुड़ा लिया जाय। उन्होंने जेल में हरिजनों के मताधिकार के प्रश्न पर अनशन शुरू कर दिया था। मैंने सर तेज बहादुर सप्रू, सर सेम्युअल होर और लार्ड लोदियन को निम्नलिखित तार भेजे :

जरूरी तार
सर तेज बहादुर सप्रू, इलाहाबाद

अनुरोध करता हूं, आप गांधीजी की रिहाई के लिए चेष्टा करिये। मै समझता हूं अस्पृश्यों के साथ समझौता करने से संकट टल सकता है, पर यह केवल गांधीजी के व्यक्तिगत प्रभाव के द्वारा ही सम्भव है। इसके अतिरिक्त उनकी रिहाई से अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्यों की भी सिद्धि होगी। इसलिए आशा है, आप सभी आवश्यक कार्रवाई करेंगे।

घनश्यामदास बिड़ला

समुद्री तार
सर सेम्युअल होर
इडिया आफिस, लंदन

संकट इतना गभीर है कि आपको यह तार भेजना कर्त्तव्य समझता हूं। मेरी विनम्र सम्मति मे यदि सरकार सचमुच सहायता करे तो समस्या

हल हो सकती है। सबसे पहले गांधीजी को अन्य प्रमुख नेताओं के साथ तुरत रिहा कर देना चाहिए। गांधीजी की उपस्थिति अस्पृश्यों के साथ समझौता करने मे बड़ी सहायक होगी। बाद को सरकार को इस समझौते की पुष्टि करना चाहिए। इससे अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं के हल का मार्ग भी खुल जायगा। अतएव अनुनय है कि गाधीजी की रिहाई मे विलम्ब न किया जाय। कहना अनावश्यक है, उनकी मृत्यु भारत के लिए ही नही, समूचे साम्राज्य के लिए दुर्भाग्य की बात होगी। व्यक्तिगत रूप से विश्वास-पूर्वक कह सकता हू और आशा है, आपका भी यही विश्वास है कि वह ब्रिटेन के भी उतने ही बडे मित्र है, जितने भारत के।

जी० डी० बिडला
८, रायल एक्सचेंज प्लेस
१३.९.३२

इस अंतिम तार के उत्तर में मुझे इंडिया आफिस से यह पत्र मिला :

इडिया आफिस
ह्वाइट हॉल
१४, सितम्बर, १९३२

प्रिय श्री बिडला

मै आपको यह पत्र यह बताने के लिए लिख रहा हू कि सर सेम्युअल होर के नाम आपका १३ सितम्बर का तार मिल गया है। इस समय सर सैम्युअल बालमोरल केसल गये हुए है, वही आपका तार भेज रहा हू।

भवदीय
डब्ल्यू० डी० क्रोफ्ट

मैंने लार्ड लोदियन को जो तार भेजे थे उनकी शायद कोई नकल मैंने नही रखी है; पर मुझे उनकी पहुंच की निम्न-लिखित सूचना मिली। बाद में मैंने उन्हें नीचे लिखा पत्र भेजा :

इंडिया आफिस
ह्वाइट हॉल
१४ सितम्बर, १९३२

प्रिय श्री बिड़ला

लार्ड लोदियन ने मुझे आपके १३ सितम्बर के तार की, जिसमे आपने बताया है कि गांधीजी का अनशन करने का विचार है, पहुंच स्वीकार करने की आज्ञा दी है। उन्होंने आपके तार की नकल लार्ड अर्विन के पास भेज दी है।

१६ सितम्बर, १९३२

प्रिय लार्ड लोदियन

मैंने आपके पास गांधीजी की रिहाई के सम्बन्ध मे एक तार भेजा था और मै समझता हू, आपके पास ऐसे ही और बहुत सारे तार पहुंचे होंगे। मैंने सर सैम्युअल के पास भी ऐसा ही तार भेजा था, और आज सुबह के पत्रों मे देखता हू कि गांधीजी को कुछ शर्तो पर रिहा किया जायगा। ये शर्ते उनके अनशन आरम्भ करने के बाद लागू होंगी। यह कुछ हद तक ठीक ही हुआ; पर मुझे कहना पड़ता है कि इस मामले मे भी काम भौड़े ढग से किया गया। यदि सरकार उन्हे तुरंत और बगैर किसी शर्त के रिहा कर देती तो उसका कुछ बिगड़ता नही। यदि सरकार उनके कुछ प्रमुख सहयोगियों को भी रिहा कर देती तो और भी अच्छा रहता, क्योकि इस सकट के अवसर पर सभी को उनकी सहायता की जरूरत पड़ेगी। प्रधान मंत्री की तर्क-शैली समझ में नही आई। वह सर्वसम्मत समझौता चाहते हैं; पर इस वृद्ध को वम्बई तट पर पांव रखते ही जेल में ठूंस देते है और मरणासन्न अवस्था मे रिहा करते है। ऐसी अवस्था में सर्वसम्मत समझौता क्योंकर सम्भव है, यह साधारण कोटि के मनुष्यों की समझ के बाहर की बात है। इस गर्मी के लिए क्षमा करियेगा, पर जब हम देखते है कि इस संकट के अवसर पर अच्छे ढग से पेश आने के बजाय सरकार स्थिति को और भी कठिन बना रही है, तो हमारे चित्त की अवस्था का आप खुद अंदाजा लगा सकते हैं।

आप जैसी भी सहायता कर सकते हैं, अवश्य करिये। हमें सलाह भी दीजिये। मै कुछ हफ्ते गांधीजी के पास रहूंगा और बम्बई में मेरा पता "विड़ला हाउस, मलाबार हिल, वम्बई" रहेगा। आप मंत्री अवश्य हैं, पर मुझे आशा है कि आप सरकारी कायदे-कानून की परवाह न कर यथा-सम्भव हमारी सहायता करेंगे।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

अम्बेदकर के साथ किये गए समझौते के इतिहास का ब्यौरा यहां देने की आवश्यकता नहीं है। उसे सम्पन्न कराने में मेरा काफी हाथ था।

: ६ :

फिर संरक्षण

सर सेम्युअल होर के इस समय के रुख से मुझे बड़ी निराशा हुई। जब गांधीजी गोलमेज-परिषद् में भाग लेने के लिए लंदन गये थे तब तो ऐसा लगा था कि उनके महत्व को सर सेम्युअल कुछ-कुछ समझते हैं; पर अब ऐसा मालूम दे रहा था जैसे वह इस बात को समझ ही नहीं पा रहे हैं कि ब्रिटिश सरकार की कोई भी योजना, या भारत के लिए विधान बनाने का कोई भी वचन, उस समय तक सफल नही हो सकता, जबतक वह गांधीजी को पसन्द न हो। इसलिए मैंने सर सेम्युअल को एक पत्र लिखा, जिसमें मैंने अपनी निराशा की भावना साफ-साफ व्यक्त कर दी। पत्र लिखने का तात्कालिक कारण वह निमत्रण था, जो सर सेम्युअल ने गोलमेज-परिषद् की आर्थिक और व्यावसायिक संरक्षणों की विशेष समिति में भाग लेने के लिए मुझे भेजा था। मैंने अपने पत्र में लिखा :

बिड़ला हाउस, नई दिल्ली
२ नवम्बर, १९३२

प्रिय सर सेम्युअल

आज मुझे बगाल के गवर्नर महोदय के पास से तार मिला है, जिसमे उन्होंने मुझे आपकी ओर से उस विशेष उपसमिति मे भाग लेने को आमत्रित किया है जो आर्थिक और व्यापारिक अभिरक्षणों पर विचार करने के लिए नियुक्त की जानेवाली है। मै इस निमत्रण के लिए आभारी हू, और इस विचार-विमर्श में भाग लेने में मुझे प्रसन्नता होती; पर कुछ ऐसी परिस्थितियां है, जिनके कारण मेरा भाग लेना कठिन हो गया है। उन कठिनाइयों को कुछ विस्तार के साथ दे रहा हू। आशा है, आप इसे ठीक ही समझेगे।

मैंने जो गत मार्च मास मे अपने प्रभाव से काम लेकर भारतीय वाणिज्य-उद्योग-सघ को एक निर्दिष्ट पथ अपनाने को राजी किया था सो एक निश्चित उद्देश्य से प्रेरित होकर ही किया था। बहुत सम्भव है, वह उद्देश्य कुछ स्वार्थपूर्ण रहा हो; पर वह मौजूद अवश्य था, और मैंने सोचा था कि आपको अपने लोगों का सहयोग प्रदान करके—वह सहयोग चाहे कितना ही मर्यादित क्यों न हो—मै आपको विश्वास दिला दूगा कि हम लोग सच्चे मित्र हैं और दोनो देशों मे स्थायी मैत्री स्थापित करने को हृदय से उत्सुक हैं। मैंने समझा था कि जहां एक बार आपका हमारे ऊपर विश्वास जमा कि हमारे लिए आपकी यह दिलजमई करना कठिन नही होगा कि हमारी सलाह कितनी विवेक-पूर्ण है। इस उद्देश्य मे मै पूर्णतया असफल रहा।

मेरे १४ और १८ मार्च, १९३२ के पत्रों के उत्तर मे आपने अपने ८ अप्रैल, १९३२ के पत्र मे लिखा था कि आप मुझे फिर लिखेंगे, पर मुझे उसके बाद कोई पत्र नही मिला। आपने ओटावा-परिषद और भारतीय व्यापारियो के सहयोग के प्रश्न पर मुझसे सलाह लेने की अनुकम्पा दिखाई, और मैंने सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास को ओटावा जाने को राजी किया, पर जिस ढग से पत्र-व्यवहार अचानक बन्द कर दिया गया और भारत सरकार ने जो रवैया अख्तियार किया, उससे मेरी स्पष्ट धारणा हो गई कि हमारा मैत्री का आश्वासन स्वीकार नही किया गया है। ओटावा के सम्बन्ध में भारतीय वाणिज्य-उद्योग-सघ की बिल्कुल उपेक्षा की गई, और जब आपने विधान-विषयक कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध मे वक्तव्य दिया और कहा कि आर्थिक अभिरक्षणों की चर्चा विशेषज्ञों की समिति करेगी, तब भी मुझे पता तक नही था कि आप क्या कार्य-प्रणाली अपनाने जा रहे हैं। मुझे तो अब भी विशेष उपसमिति के गठन और अधिकारियों के सम्बन्ध में कुछ पता नही है। और, किसी बात का पता न होते हुए भी मुझसे वक्त-के-वक्त कहा जा रहा है कि लन्दन को रवाना हो जाऊ, जबकि भारतीय व्यापारी-वर्ग की पूर्ण उपेक्षा की गई है और सब चिढ़े हुए हैं। मैंने वह प्रस्ताव अपने मण्डल मे स्वयं संयोजित किया था, इसलिए जबतक मुझे यह विश्वास न हो जाय कि स्वतंत्र रूप से आचरण करने से मै प्रस्ताव की आत्मा के विरुद्ध नही जा रहा हूं, तबतक मेरे लिए वैसा करना ईमानदारी का काम नही होगा। यदि मै प्रस्ताव की आत्मा के प्रति बलात्कार करूगा तो स्वय अपनी दृष्टि मे गिर जाऊंगा। मुझे आशा है कि आप इस बात को और सबसे पहले समझ लेंगे।

मै आपको विश्वास दिलाता हू कि मै किसी प्रकार की शिकायत नही कर रहा हू। मै तो इस बात का क्षण भर के लिए भी दावा नही कर सकता कि भारत-सचिव मुझे भेद की बातें बता दे। सम्भव है, आपको यह बताया

गया हो कि भारत-सचिव को मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के साथ पत्र-व्यवहार नहीं करना चाहिए, और इसी कारण पत्र-व्यवहार का अन्त हो गया हो। खुद मुझे भी आपको सीधे लिखने का साहस नही होता; पर आपने लंदन मे मुझे निश्चिन्त करने की और यह सुझाने की कृपा की थी कि मुझे जब-कभी कोई उपयोगी बात कहनी हो, मैं आपको पत्र लिख सकता हूं। अतएव मै किसी तरह की शिकायत नही कर रहा हूं; मै तो केवल यहीं बताना चाहता हूं कि दूसरी ओर से उत्तर न मिलने पर किसी आदमी के लिए किसी प्रकार का उपयोगी कार्य करना कितना कठिन हो जाता है। इसलिए जबतक हम लोगों को मित्र के रूप मे ग्रहण नही किया जायगा और वास्तविक शांति-प्रस्थापन की दिशा में उपयोगी कार्य करने के लिए हमे कुछ ढील न दी जायगी तबतक मेरे या सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के लंदन जाने से कोई प्रयोजन सिद्ध नही होगा।

यहाँ मे यह बता दू कि 'ढील' से मेरा क्या अभिप्राय है। मै आपका ध्यान संघ के तीसरे प्रस्ताव के 'अ' पैरे की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिसका आरम्भ 'कोई वास्तविक इच्छा नही है' से होता है। मैंने इन शब्दों का हमेशा अपना ही अर्थ लगाया है। मेरी धारणा है कि हम व्यापारियों का प्रभाव सीमित है; पर यदि उसका ठीक-ठीक उपयोग किया जाय तो उससे काफी सहायता मिल सकती है। अतएव मैंने वास्तविक इच्छा का यही अर्थ लगाया है कि जब कभी सरकार हमारे प्रभाव का ठीक-ठीक उपयोग करना चाहेगी उसका मतलब यही लिया जायगा कि भारत के प्रगतिशील लोकमत के साथ समझौता करने की उसकी वास्तविक इच्छा है, और मेरा निवेदन हैकि आर्थिक चर्चा में भाग लेने देना मात्र हमारे प्रभाव का ठीक-ठीक उपयोग करना नहीं है। यदि हमे समर्थन प्राप्त नही होगा तो मै या सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास इंगलैड मे क्या करेंगे ? भारतीय व्यापारी समाज हमारा समर्थन नही करेगा। मेरे मित्र सर पुरुषोत्तमदास की आलोचना आरम्भ हो ही गई है; और चूंकि हम लोग राजनीतिज्ञ नही हैं, इसलिए हम राष्ट्रवादी वर्ग के समर्थन का दावा नही कर सकते। अतएव यदि हम लंदन मे कुछ अभिरक्षणों को स्वीकार करने का निश्चय कर ले तो भी जहां, तक भारतीय लोकमत का सम्बन्ध है, वह निश्चय किसी पर लागू नही होता। अत: यदि हम किसी प्रकार के समर्थन के बगैर काम करेंगे तो अवस्था और भी बिगाड देगे। हम लोग उचित समर्थन-सहित बड़े उपयोगी सिद्ध होंगे, और उसके बगैर, बिल्कुल बेकार। हम केवल इसी तरह उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं कि इस अभिरक्षण-सम्बन्धी चर्चा मे भाग लेने से पहले हमें इस मामले में ढील दी जाय कि हम गांधीजी को नये विधान मे साथ देने को राजी

करने मे अपने प्रभाव से काम लें, बशर्ते कि हम उससे संतुष्ट हों, और मेरा निवेदन है कि वैसी परिस्थिति उत्पन्न करने मे हमारी सेवाएं बड़ी उपयोगी सिद्ध होंगी । मैं मानता हूं कि मंत्रिमंडल के लिए गांधीजी की मांग पूरी तौर से स्वीकार करना शायद संभव नहीं होगा, पर मेरा कहना यह है, और मैंने अपने अन्तिम पत्र मे भी यही बात कही थी कि वर्तमान अनुदार पार्लामेंट तक के लिए ऐसा विधान देना तो सम्भव है ही कि वह कांग्रेस को ग्राह्य न होने पर भी गांधीजी द्वारा रद न किया जाय। मुझे आशा है, आप ऐसी स्थिति की कल्पना स्वयं कर लेंगे जिसमें उन्हीं लोगों की सदाकांक्षा अथवा सहयोग के बगैर विधान अमल में लाया जाय जो श्री चर्चिल के हाल में व्यक्त किये शब्दों में "राजनीतिक भावनाओं को शांत अथवा उद्दीप्त करने मे समर्थ हैं ।" मै यह बात आत्मविश्वास के साथ लिख रहा हूं, क्योंकि मै गांधीजी को हमेशा समझौते मे विश्वास रखनेवाला जानता आ रहा हूं । आप उनके घनिष्ट मित्र हैं ही, इसलिए आप यह बात समझ ही लेंगे ।

उनके उपवास आरम्भ करने से पहले मैंने उनसे मिलकर स्थिति के सम्बन्ध मे बातचीत करने की अनुमति प्राप्त करने की चेष्टा की थी, और सर जॉन एंडरसन ने मेरी सहायता भी की थी । पर मैं सरकार की अनुमति प्राप्त नही कर सका । इसके बाद उनके उपवास के आरम्भ करने के थोड़े ही पहले मुझे उनसे बात करने का अवसर मिला; पर उस समय तक अन्य बातें अपेक्षाकृत कही अधिक महत्व धारण कर चुकी थी, इसलिए मैंने रुकना मुनासिब समझा । उपवास के दौरान मे वह अत्यन्त दुर्बल हो गये थे, इसलिए मैने उनकी शक्ति पर भार डालना ठीक नहीं समझा । उपवास के बाद सारी मुलाकाते बन्द कर दी गई, पर मुझे अस्पृश्यता-निवारण-कार्य के सिलसिले मे उनसे मिलने की इजाजत मिल गई । मैंने उनसे चार घंटे तक बातचीत की, पर किसी प्रकार की सविस्तर राजनीतिक चर्चा में उन्होंने दिलचस्पी नही ली । उन्होंने कहा, और ठीक ही कहा कि मुझे इन बातों की चर्चा नही करनी चाहिए । परंतु उन्होंने यह बात स्पष्ट रूप से इंगित कर दी कि वह शांति-प्रस्थापन के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं, और उन्होंने वचन दिया कि यदि मैं इन विषयों की चर्चा करने की अनुमति प्राप्त कर लूंगा तो वह मुझे कुछ लिखकर देंगे । मैंने एक बार फिर हिज़ एक्सीलेंसी सर जान एण्डरसन से सहायता की याचना की, और उन्होंने एक बार फिर शिमला को लिखने का वचन दिया । उन्होंने ऐसा किया भी होगा, पर उसका कोई फल नही निकला । इस समय स्थिति यह है कि अस्पृश्यता-निवारण-विषयक कार्य से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र-व्यवहार तक पर बन्दिश लगा दी गई है । आशा है, यह प्रतिबन्ध उठा लिया जायगा । मैंने एक पखवाड़े पहले एक पत्र

लिखा था, जिसमे अस्पृश्यता-सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण प्रश्नों की चर्चा की गई थी, पर वह यरवदा में अभी वैसे ही पड़ा है। आप शायद जानते ही होंगे, मै अस्पृश्यता-निवारक संघ का प्रधान नियुक्त हुआ हू और हमे देश के कोने-कोने में आश्चर्यजनक सफलता मिल रही हैं। परंतु इस विशुद्ध रचमात्मक और सामाजिक कार्य तक मे सरकार हमारे साथ 'अस्पृश्यों' जैसा व्यवहार कर रही है। जब ऐसा वातावरण फैला हुआ है तो आप एक व्यावहारिक आदमी के नाते यह आशा कैसे कर सकते हैं कि सुधारों से कुछ भलाई होगी? विधान अमल मे लाने से पहले विश्वास के वातावरण की दरकार है।

मैंने कुछ विस्तार के साथ लिखा है, और ऐसा करने का मुझे साहस इसलिए हुआ कि मेरा विश्वास है कि अड़चन ह्वाइट हॉल ने नहीं, शिमला ने पैदा की है। मै आपकी कठिनाइयों को अच्छी तरह समझता हू, पर मेरा कहना यही है कि पारस्परिक सहयोग के द्वारा उनपर काबू पाया जा सकता है। यह स्पष्ट ही है कि आप सचमुच ठोस काम चाहते हैं, अन्यथा आप आर्थिक अभिरक्षणों की चर्चा के लिए समिति नियुक्त नही करते। पर मैं एक ऐसे आदमी के नाते, जो आपका बडा आदर करता है,यही सलाह दूगा कि आप सुधार जारी करने से पहले गांधीजी का वचन प्राप्त करे, और इस क्षेत्र मे मै दिलोजान से आपके साथ काम करने को तैयार हू। बाद को मैं आर्थिक अभिरक्षणों के मामले मे भी सहायता करूगा। यदि मुझे अनुमति मिल गई तो मै गांधीजी से इन विषयो की इस प्रकार चर्चा करूगा कि किसी को कानोकान खबर न हो, और न अटकलबाजी का बाजार ही गर्म हो। उनका सहयोग किस प्रकार प्राप्त किया जाय, इस निमित्त चर्चा करने के लिए मै लदन तक आने को तैयार हू। पर मै उस आदमी-जैसा ढोंग नही रखना चाहता, जो कुछ सामर्थ्य न रहते हुए भी वैसा भाव जतावे।

आशा है, मैंने स्थिति अच्छी तरह स्पष्ट कर दी है। आशा है यह पत्र जिन मनोभावों से प्रेरित होकर लिखा गया है उन्हीके साथ इसे ग्रहण किया जायेगा।

मैंने आपका निमत्रण और यह पत्र दोनो गुप्त रखे है।

सघ के प्रस्ताव की एक प्रति भी साथ भेज रहा हू, जिससे आपको हवाले के लिए कष्ट न उठाना पड़े।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

: ७ :

हरिजनोत्थान-कार्य

गांधीजी यरवदा जेल में ही हरिजनों के काम में लग गये थे। इस समय हम लोग 'अखिल भारत हरिजन-सेवक संघ' की स्थापना कर रहे थे। मैं उसका अध्यक्ष बना और इस हैसियत से मैंने डाक्टर विधानचंद्र राय को संघ की बंगाल-शाखा का अध्यक्ष बनने को कहा। डाक्टर विधानचंद्र राय, जो कि इस समय पश्चिमी बंगाल के मुख्य मंत्री हैं, इस पद के लिए मुझे बहुत ही उपयुक्त मालूम हुए, क्योंकि वह हरिजनों के उद्धार के प्रबल समर्थक तो थे ही, साथ ही गांधीजी के पक्के अनुयायी और उनके सलाहकार-चिकित्सक भी थे। कुछ लोगों की राय थी कि डाक्टर राय राजनीति में भाग लेते हैं, इसलिए उन्हें संघ का अध्यक्ष चुनने से इस विशुद्ध सामाजिक और मानवीय आन्दोलन में अवांछनीय राजनीतिक पुट आ जायगा। गांधीजी ने पहले तो डाक्टर राय के अध्यक्ष चुने जाने का समर्थन किया; पर बाद में आलोचकों की टीका-टिप्पणी सुनकर अपना विचार बदल दिया और डाक्टर राय को एक पत्र लिखकर उनसे अध्यक्ष पद से हट जाने को कहा। डाक्टर राय ने जो उत्तर दिया, उसमें क्रोध की मात्रा कम, क्षोभ की अधिक थी, और उनके विरोध का ढंग भी इतना मर्यादा-पूर्ण था कि उससे गांधीजी के विचारों में फौरन परिवर्तन आ गया। उन्होंने जो कुछ लिखा था, उसे उन्होंने बिना किसी शर्त के वापस ले लिया और डाक्टर राय से अपने पद पर बने रहने का अनुरोध किया। आज शायद इस सारी घटना का कोई बड़ा महत्व नहीं है, फिर

भी इसका उल्लेख इसलिए आवश्यक है कि इससे न केवल गांधीजी की भावुकता का ही, अपितु उनके उदार स्वभाव का भी एक दृष्टांत मिलता है, और यह भी पता चलता है कि हम सब किस प्रकार उनके प्रेम की डोर में बंधे हुए थे। मित्रों की बातें सुनते समय जहां वह सहृदयतापूर्ण भावुकता व्यक्त किया करते थे, वहां बड़ी समस्याओं और सिद्धान्तों की बात आने पर अपनी इस्पात-जैसी न झुकनेवाली आत्मशक्ति का भी परिचय देते थे।

नवम्बर महीने के अन्त में जेल से लिखे गए गांधीजी के पत्र से प्रकट होगा कि हमारी संस्था का नाम उन्होंने ही चुना था।

यरवडा मन्दिर
२८-११-३२

भाई घनश्यामदास

शिंदेजी की बड़ी शिकायत है कि हमने उनकी संस्था का नाम चुरा लिया। यह शिकायत ठीक मालूम होती है। हमको काम के साथ काम है, नाम के साथ नही, इसलिये मेरी सूचना है कि हम अखिल भारत हरिजन-सेवा संघ नाम रखें और अंग्रेजी और देशी भाषा में यही नाम रखें। तुम आ तो रहे हो लेकिन शायद यह तुम्हे वक्त पर मिल जायगा।

बापू के आशीर्वाद

यह पत्र मुझे और डाक्टर राय को आगे बढ़ने के लिए हरी झंडी स्वरूप था। पर टीका-टिप्पणी करने वाले कब चुप बैठने वाले थे? जल्दी ही गांधीजी ने डाक्टर राय को यह पत्र लिखा :

यरवडा केन्द्रीय जेल
पूना
७ दिसम्बर १९३२

प्रिय डाक्टर विधान

मैंने बंगाल के अस्पृश्यता-निवारक बोर्ड के सम्बन्ध में श्री घनश्यामदास बिड़ला और सतीशबाबू से देर तक बात की। मेरे पास बंगाल से कई पत्र

भी आये हैं, जिनमें बोर्ड के गठन के सम्बन्ध मे शिकायत की गई है। बोर्ड के गठन से पहले घनश्यामदास ने मुझे बताया था कि वह इसके लिए आपसे कहेंगे ; मैंने भी बात पर पूरी तौर से विचार किये बगैर उनके सुझाव का अनुमोदन कर दिया था। पर अब देखता हूं कि बंगाल में यह विचार नहीं रुचा, खासतौर से सतीश बाबू और डाक्टर सुरेश को। उनकी धारणा है कि बोर्ड दलबन्दी से मुक्त नही रह सकता है। नही जानता कि उनकी यह आशंका कहां तक ठीक है, पर मैं इतना तो अवश्य जानता हूं कि अस्पृश्यता-निवारण-कार्य में किसी भी प्रकार की दलबन्दी को प्रश्रय नही मिलना चाहिये। हम तो यही चाहते है कि जो कोई भी संस्था बने, सुधार की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों को उसके साथ हृदय से और स्वतंत्रता-पूर्वक सहयोग करना चाहिये। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि आप विभिन्न दलों और वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले कार्य-कर्ताओं की एक बैठक बुलावें, अपनी सेवाएं उनके अर्पण करें, और वे जिसे भी सभापति चुने या जैसा भी बोर्ड बनावे उन्हें हृदय से सहायता प्रदान करें। मै जानता हूं कि इसके लिए आत्मत्याग की आवश्यकता है। यदि मैं आपको अच्छी तरह जान सका हूं तो मै यह भी जानता हूं कि ऐसा करना आपके लिए संभव है। पर यदि आप समझे कि इन शिकायतों मे कोई तथ्य नही है और आप सारी कठिनाइयों को दूर करने मे और सभी दलों को साथ लेने मे समर्थ होंगे तो मुझे कुछ नहीं कहना है। मैंने जो सुझाव पेश किया है वह यह समझकर ही किया है कि इस समय बोर्ड जैसा कुछ गठित हुआ है उसके साथ सारे दलों के लिए सहयोग करना संभव नही है। मैंने सारी बात आपके सामने रख दी है, अब आप देशहित के लिए जैसा ठीक समझें, करें।

श्री खेतान ने बसन्ती देवी के संबन्ध में मुझे आपका सन्देश दिया। मैंने उनसे कह दिया है कि यह तो वह स्वयं तय करेंगी कि क्या करना उत्तम होगा, पर मैं तो यही चाहूंगा कि वह अस्पृश्यता-निवारण-कार्य में लगन के साथ जुट जावें। वह कोई सार्वजनिक पद ग्रहण करें, मै यह आवश्यक नही समझता हूं। जब मै देशबन्धु-स्मारक-कोष के लिए रुपया इकट्ठा करने के सिलसिले में वहां उनके पास था, तो उन्होंने मुझे बताया था कि वह किसी संस्था का संचालन करना नही चाहती है; वह तो इच्छा होने पर कार्य करना भर चाहती है। कृपया डा० आलम के संबन्ध में समाचार दीजिये।

आपका
मो. क. गांधी

डाक्टर राय का उत्तर इस प्रकार था :

२६, वेलिंगटन स्ट्रीट
कलकत्ता
१२-१२-१९३२

प्रिय महात्माजी

आपका पत्र मुझे कल मिला। बंगाल अस्पृश्यता-निवारक-बोर्ड के सम्बन्ध में आपने श्री खेतान से जो बातचीत की थी, मुझे उनसे उसका समाचार मिल गया था। आपने उनसे कहा था कि आप मुझे पत्र लिखेंगे। श्री खेतान से बात करने के बाद मैं आपसे ऐसा पत्र पाने के लिए जैसा आपने मुझे भेजा है, तैयार था। सबसे पहले मैं यह कहने की अनुमति चाहता हूं कि बंगाल बोर्ड के सभापतित्व के पद की मैंने आकांक्षा नहीं की थी, और अब मुझे पता चला है कि श्री बिड़ला ने आपसे मशवरा करके आपकी रजामंदी से मुझे सभापति चुना था। जब मुझसे पद ग्रहण करने को कहा गया तो अपनी अयोग्यता और अन्य कार्यों के बावजूद भी मैंने आह्वान स्वीकार कर लिया। मैं यह बात नहीं भूला हूं कि इसका श्रीगणेश आपके और उन मित्रों के द्वारा किया गया जो पूना में एकत्र हुए थे। अतएव जब इन सबने मुझसे यह पद ग्रहण करने का अनुरोध किया तो मैंने उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया। आप चाहते थे कि मैं सभापतित्व ग्रहण करूं, क्योंकि आपका विश्वास था कि मैं काम कर सकता हूं। अब आपकी धारणा दूसरी है और आप चाहते हैं कि मैं हट जाऊं तो मैं प्रसन्नता-पूर्वक हट रहा हूं। मैं आज ही श्री बिड़ला को पत्र लिखकर इस्तीफा दे रहा हूं। यह कोई आत्मत्याग की बात भी नहीं है, क्योंकि मैंने अपने जीवन में ऐसा कोई पद या स्थान ग्रहण नहीं किया, जिसके सम्बन्ध में मुझे मालूम होने लगा हो कि जिनके हाथ में वह पद या स्थान देने की सामर्थ्य है वे मेरा बने रहना नहीं चाहते हैं।

आपने अपने पत्र में सुझाया है कि विभिन्न वर्गों और दलों के सारे कार्यकर्त्ताओं को बुलाऊं, जिससे वे जिसे चाहें सभापति चुन सकें। मैं यह बताना चाहता हूं कि लीग के व्यवस्था-विधान के अन्तर्गत केन्द्रीय बोर्ड का सभापति ही प्रान्तीय बोर्डों के सभापति नामजद करता है, और ये प्रान्तीय सभापति प्रान्तीय बोर्डों के सदस्य नामजद करते हैं। बंगाल में बने हुए बोर्ड को तोड़ना मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात है। अतएव यदि मैं चाहूं तो भी आपकी आज्ञा-पालन करना मेरी सामर्थ्य में नहीं है। पर मैं सारा मामला श्री बिड़ला के पास भेज रहा हूं। वह अखिल भारत बोर्ड के सभापति हैं, और वह जो कार्रवाई उचित समझेंगे, करेंगे।

आप अपने पत्र में कहते है, "परन्तु मै देखता हूं कि बंगाल मे यह विचार नहीं रुचा।" आपको यह सूचना देना मेरा कर्त्तव्य है कि बगाल में श्री सतीश दास गुप्त और डाक्टर सुरेश बनर्जी के नेतृत्व में रहनेवाले दल के अलावा और अनेक दल और वर्ग हैं। श्री सतीश दास गुप्त और डा० सुरेश बनर्जी, दोनों ही अस्पृश्यता-निवारण-कार्य में दिलचस्पी रखते हैं और इस समय बहुमूल्य काम कर रहे है। हमने बंगाल बोर्ड का गठन बड़ी समझदारी के साथ किया था, और जैसा कि आपको श्री देवी-प्रसाद खेतान ने बताया ही होगा, बोर्ड में विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि मौजूद थे। अनेक जिला संस्थाओं ने हमें लिखकर बोर्ड के साथ सहयोग करने की तत्परता प्रकट की थी। वास्तव में, जैसा कि श्री खेतान ने आपको बताया ही होगा, श्री दास गुप्त और डा० बनर्जी को छोड़ और किसी ने सहयोग प्रदान करने से इन्कार नही किया, और सो भी अलग कारणों से। परंतु आपकी यह धारणा प्रतीत होती है कि बंगाल मे उस समय तक कोई बोर्ड काम नहीं कर सकता जबतक उसे श्री दास गुप्त और डा० बनर्जी का सहयोग प्राप्त न हो, और उन्होंने यह सहयोग प्रदान करने से इन्कार कर ही दिया है, इसलिए बोर्ड को भंग करने के अलावा और कोई चारा नहीं है।

बंगाल में लीग का काम आरम्भ हो गया है। इसलिए यदि आप मुझे इस पत्र को और अपने पत्र के पहले पैरे को प्रेस मे देने की अनुमति नही देंगे तो मेरे और बोर्ड के सदस्यों के लिए स्थिति समझाना कठिन हो जायगा। आशा है, आपको कोई आपत्ति नही होगी।

आपका
विधान चंद्र राय

गांधीजी को क्षोभ हुआ। उन्होंने तुरंत यह पत्र भेजा:

यरवडा केन्द्रीय जेल
१५ दिसम्बर, १६३२

प्रिय डा० विधान,

आपके पत्र से मैं तो अवसन्न रह गया। उसे पढ़ने के तुरंत बाद ही मैंने आपको तार भेजा। मैं तो समझता था कि हम दोनों एक दूसरे के इतने निकट है कि मेरे मैत्रीपूर्ण पत्र के आप कभी गलत मानी नहीं लगायंगे। पर अब देखता हूं कि मैंने भारी भूल कर डाली। मुझे आपको वह पत्र नही लिखना चाहिये था। अतः मैंने उसे पूर्णतया और बगैर किसी शर्त

के वापस ले लिया है। अब जबकि वह पत्र वापस ले लिया गया है, आपको उनमें से कोई भी काम नही करना है जिनका आपने उल्लेख किया है। कृपया बोर्ड वाला काम बदस्तूर जारी रखिये, मानो मैंने आपको कोई पत्र लिखा ही न हो। आपके दिल को जो चोट पहुची है उसे आप उदारहृदयता के साथ भूल जायंगे। पर आपको मैंने वह पत्र लिखा, इसके लिए मै अपने आपको आसानी से क्षमा नही कर सकूगा। किसी ने, याद नही किसने, कहा था कि मेरे पत्र के आप गलत मानी लगायेंगे, पर मैंने मूर्खतावश कहा कि मै कुछ भी लिखूं, आप उसके गलत मानी कभी नही लगायेंगे। विनाश का पूर्वाभास गर्व से और पतन का पूर्वाभास मिथ्या-गर्व से होता है। इतना सब कहने के बाद, अब तो मै नही समझता कि आप हमारे पत्र-व्यवहार को प्रकाशित करना जरूरी समझेंगे। परन्तु यदि आप सार्वजनिक हित के लिए उसका प्रकाशन आवश्यक समझते हों तो जहां तक प्रकाशित करना आवश्यक हो आप अवश्य प्रकाशित कर सकते हैं।

कृपया लिखिये, कमला[१] और आलम[२] का स्वास्थ्य कैसा है, और कमला से कहिये, मुझे पत्र लिखे।

आपका
मो० क० गांधी

उसी दिन उन्होंने मुझे भी लिखा :

यरवडा केन्द्रीय जेल
पूना
१५।१२।३२

भाई घनश्यामदास,

आज मैंने तुम्हारे पास एक तार लीग के नाम के सम्बन्ध मे भेजा है। एक दूसरा तार कलको बंगाल प्रान्तीय संस्था के सम्बन्ध मे जायेगा।

सबसे पहले नाम की बात को लो। राजाजी का पत्र भेजता हूं। मै समझता हूं कि उनके तर्क के बाद कोई बात बाकी नही रह जाती है,

---

१. पं० जवाहरलाल नेहरू की धर्मपत्नी कमला नेहरू, और २. पंजाब के महान् राष्ट्रीय कार्यकर्ता, गांधीजी के मित्र और कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य डा० आलम। ये दोनों ही कलकत्ते में डा० विधानचन्द्र राय की चिकित्सा में थे।

इसलिए उनका सुझाव अपनाना तनिक भी सम्भव हो तो तुम नाम में तदनुसार परिवर्तन कर लेना। मै सेवा के भाव मे इतना तन्मय हो गया था कि जिस अर्थ की ओर राजाजी ने मेरा ध्यान दिलाया है उसकी मैंने बात तक नही सोची थी।

अब बंगाल प्रान्तीय सस्था की बात लो। मैंने भूल की। मैंने डा० विधान के ऊपर अपने प्रभाव का गलत अन्दाजा लगाया। मैंने उन्हे पीड़ा पहुचाई, इसका मुझे दुःख है। मैंने तुम्हे ऐसी भौंड़ी स्थिति मे डाल दिया, इसका भी मुझे दुःख है। वह अपनी पीड़ा से निस्तार पा जायंगे, तुम भी अपनी भौंड़ी स्थिति पर काबू पा जाओगे, पर मै अपनी मूर्खता की बात आसानी से नही भूल सकूगा।

मैंने डा० राय के पास निम्नलिखित तार भेजा है:

"आपका हस्ताक्षर शून्य पत्र आज मिला। पत्र-व्यवहार प्रकाशन के लिए नही है। आपको मैंने स्पष्टतया बता दिया है कि यदि आपको अपने ऊपर भरोसा हो तो आरम्भ किये हुए कार्य को जारी रखिये। मै अब समझता हू कि मैंने हस्तक्षेप की अनधिकार चेष्टा की। क्षमा करिये। वैसे मैंने यह सुझाव मित्रता के नाते दिया था। अपना पत्र वापस लेता हूं। ——गांधी।"

उनके पास मैंने जो पत्र भेजा उसकी भी एक प्रति भेजता हू। कुछ अधिक कहना अनावश्यक समझता हूं और आशा करता हूं कि अब इस मामले का अन्त हुआ समझा जायेगा और तुम्हे और अधिक परेशानी नही होगी। डा० विधान के उत्तर की नकल भी भेजता हूं।

तुम्हारा १२ दिसम्बर का पत्र भी मिला। ठक्कर बापा ने तुम्हारे पास जो परिभाषा भेजी थी मैंने उसमे और भी परिवर्तन कर दिया है। इस संशोधित परिभाषा की नकल भेजता हूं। ठक्कर बापा ने तुम्हारे पास जो परिभाषा भेजी थी उसे मेरे पास पंडित कुजरू ने भेजा था। मैंने उसमें परिवर्तन करके संशोधित प्रति उनके पास भेज दी है। देखता हूं कि जब ठक्कर बापा ने आपको लिखा था उस समय तक उन्हें वह संशोधित प्रति नही मिली थी।

आज डा० अम्बेदकर के लगभग सात मित्र और अनुकरण करने वाले आये। वे शिकायत कर रहे थे या बता रहे थे (उन्होंने कहा कि वह शिकायत करने नही आये हैं, सिर्फ बताना चाहते है) कि डा० अम्बेदकर ने स्टीमर पर ठक्कर बापा के नाम एक चिट्ठी लिखी थी जिसमें उन्होंने कई सुझाव पेश किये थे। पर सघ की पूना वाली बैठक में उसका जिक्र तक नही किया गया। मैंने उनसे कहा कि उसका जिक्र किया गया हो या न किया गया हो, संघ ने उसपर विचार अवश्य किया होगा, उसकी उपेक्षा न की होगी। तुम

उन्हें या मुझे लिख देना कि उस पत्र के सम्बन्ध में क्या कार्रवाई की गई है।

इन मित्रों ने यह भी बताया कि हमारी संस्थाएं हरिजनों में पड़ी हुई फूट को कायम रखती हैं और जहां कहीं सम्भव होता है राव बहादुर राजा के दल का पक्ष लेती है। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि संघ का यह इरादा कभी नहीं हो सकता है, बोर्ड दलबन्दियों से दूर रहेगा और बोर्ड और उनकी समस्त शाखाओं की यही चेष्टा रहेगी कि दोनों दलों का मन-मुटाव दूर हो जाय, क्योंकि राजनीतिक प्रश्न हल हो जाने के बाद अब दो दलों की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है।

मेरे पास श्री छगनलाल जोशी आ गये हैं और एक अच्छा-सा स्टेनोग्राफर भी मिल गया है। पर इतनी सहायता प्राप्त होने पर भी मुझे चैन नहीं मिल रहा है। वास्तव में इस आवश्यक सहायता की बदौलत ही मैं बढते हुए काम को निबटाने में समर्थ हो रहा हूं। मुलाकातों में काफी समय निकल जाता है, पर वे जरूरी हैं, इसलिए मुझे कोई शिकायत नहीं है।

आशा है, तुम स्वस्थ होगे। तुम्हें नींद लाने के लिए कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिए। औषधियां ठीक नहीं हैं, प्राकृतिक उपाय बरतने चाहिये और भोजन सम्बन्धी परिवर्तन करना चाहिये। मैंने जिस ढंग से बताया उस ढंग से तुम प्राणायाम कर रहे हो? कुछ आसानी से किये जाने वाले आसनों से और गहरा सांस लेने से पाचन शक्ति को सहायता मिलती है और नींद भी आती है।

तुम्हारा
बापू

पुनश्च :

उपरिलिखित पत्र लिखाने के बाद मुझे अब डा० विधान का यह तार मिला है: 'तार के लिये धन्यवाद। सादर निवेदन है कि मैं नहीं समझा कि अपने पर भरोसे से आपका क्या अभिप्राय है। पत्र में लिख ही चुका हूं कि बंगाल में जैसा उत्साह है उसके फलस्वरूप कोई भी प्रधान और बोर्ड अस्पृश्यता-निवारण कार्य कर सकता है। यदि आपका अभिप्राय ऐसे लोगों का सहयोग प्राप्त करने के मामले में भरोसा रखने से हो जो सहयोग प्रदान करने के लिए तैयार न हों तो उसे कोई प्राप्त नहीं कर सकता है। कितनी सफलता होती है, यह धन-संग्रह और उसके उचित उपयोग पर निर्भर है। कृपया तार दीजिये कि यदि हम लोग काम करना जारी रखें तो मुझे और बोर्ड को आपका समर्थन मिलेगा।—विधान राय।

उसका मैंने निम्नलिखित उत्तर दिया है :

१६।१२।३२

तार के लिये धन्यवाद। भरोसे से मेरा मतलब आत्मविश्वास से है। मेरी सामर्थ्य में जितनी सहायता देना है आप उसपर निर्भर कर सकते हैं।—गांधी

लगभग इन्हीं दिनों राजाजी ने संस्था के नाम के बारे मे अपनी विशेषताओं से भरा कालीकट से एक पत्र भेजा, जिसका सारांश नीचे दिया जाता है :

लीग के नाम मे परिवर्तन करने के मामले मे मै आपसे सहमत नही हूं। अस्पृश्य सेवक-संघ नाम अच्छा खासा है, पर इसका अर्थ यही है कि हम अस्पृश्यों के अस्पृश्य बने रहने की बात स्वीकार करते है। भारत सेवक, भील सेवक, या ईश्वर सेवक सब ठीक है, क्योंकि भारत रहेगा ही, भील एक नस्ल का नाम है और हीनता-द्योतक नाम नही है, और ईश्वर तो हमेशा मौजूद रहेगा ही। पर यदि हम अस्पृश्यता या दासता का मूलोच्छेदन करना चाहते है तो अस्पृश्य सेवक या दास सेवक नाम ठीक नही रहेगा। हो सकता है कि दासता अथवा अस्पृश्यता का निवारण होते ही संघ बन्द कर दिया जाय, पर यह तर्क ठीक नही ठहरता है, क्योंकि जो बात तत्काल आवश्यक है वह है मनुष्य की मनोवृत्ति मे परिवर्तन। आपको तथाकथित अस्पृश्य सेवक कहना होगा, पर नाम भौडा हो जायगा, और उसके विरुद्ध आपत्ति वैसी ही बनी रहेगी। मै अस्पृश्यता-निवारक लीग या संघ नाम पसन्द करता। अस्पृश्यता-विरोधी वाक्य मुझे अच्छा नही लगता, मुझे उसमे बर्बरता की गध आती है। अस्पृश्यता-निवारक सघ हिन्दी, गुजराती तथा अन्य भारतीय भाषाओं मे प्रचलित नामों का शब्दशः अनुवाद होगा, और इसमे कोई आपत्तिजनक बात भी नही होगी। वास्तव मे दासत्व के दर्जे का मूलोच्छेदन अभीष्ट और निवारण शब्द से वाक्य को बल भी प्राप्त होगा, ठीक जिस प्रकार मद्यपान और मादक द्रव्य-सेवन के सम्बन्ध मे निषेध शब्द लोकप्रसिद्ध हो गया है। यदि हम अच्छी तरह सोचे तो मनुष्य के एक वर्ग की सेवा अभीष्ट है। ऐसे विचारों के लोग भी है जो यह चाहेगे कि किसी विशिष्ट वर्ग को अलग रखा जाय, पर उन्हे अच्छी तरह खाने को दिया जाय। पर हमें केवल इतना ही तो नही करना है।

कालीकट
१२ अक्तूबर १९३२

मैने पत्र-व्यवहार जारी रखा और लिखा :

२१ दिसम्बर, १९३२

परमपूज्य बापू

आपका टाइप किया हुआ पत्र और उसके साथ भेजे कागज मिले। डा० राय ने जो आपको चिट्ठी लिखी है उसकी नकल उन्होने पहले ही मेरे पास भेज दी थी। उसका आपने जो उत्तर दिया है उसकी नकल भी मुझे मिल गई है। इस प्रकार अब मेरे पास पूरा पत्र-व्यवहार मौजूद है। मै इस मामले को लेकर आपका और अधिक समय नष्ट करना नही चाहता, पर साथ ही आपको यह लिखने का लोभ भी सवरण नही कर सकता कि आपने अपनी भूल को जिस ढग से समझा, वास्तव मे वह उससे बिल्कुल दूसरे ही ढंग की है। मुझे भौड़ी स्थिति मे पटकने का प्रश्न ही नही उठता है। आप मुझे इससे कही अधिक भौडी स्थिति मे पटकना चाहे तो खुशी से पटक सकते है। परंतु मै इस बात मे अब भी आपसे सहमत नही हू कि आपकी भूल डा० राय के ऊपर अपने प्रभाव का गलत अन्दाजा लगाने तक ही सीमित थी। यदि डा० राय के साथ न्याय किया जाय तो कहना होगा कि उनका बुरा मानना स्वाभाविक था। मेरी समझ में भूल इसी बात मे हुई कि आपने सुरेश बाबू और सतीश बाबू का, जो आपके इतने निकट है, सहयोग प्राप्त करने मे डा० राय की सहायता करने के बजाय डा० राय से केवल इस कारण इस्तीफा देने को कहा कि सुरेशबाबू और सतीशबाबू ने उन्हे सहयोग प्रदान नही किया। मै मानता हू कि सुरेश बाबू और सतीश-बाबू ने जो उन्हे सहयोग प्रदान नही किया उसका कारण था, पर तो भी आपको बलिदान के लिए डा० राय को नही छांटना चाहिए था। मेरी राय में आपने यही भूल की। जब मैने डा० राय के नाम आपका पहला पत्र देखा तो मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि इस प्रकार की भूले करना आपके लिए असम्भव-सा है। हम आपके देवोपम व्यक्तित्व से इतने चकाचौध है कि हमने अपने भीतर विश्वास खो-सा दिया है। इसके परिणाम-स्वरूप मुझे जब कभी किसी बात मे शका होती है तो मै यह कहकर अपने आपको समझा लेता हू कि दोष मेरी बुद्धि का है जो मै आपके निश्चय के मर्म को नही समझ सका। इस मामले में भी यही हुआ। मेरी अब भी यही धारणा है कि आपको अपने अन्तिम पत्र मे डा० विधान को आपके पत्र के गलत अर्थ निकालने के लिए डांटना नही चाहिए था। आशा है, मै आपका समय नष्ट नहीं कर रहा हू। यह सब मै आत्म-संतोष के लिए लिख रहा हू। यदि आप लिखने की आवश्यकता समझे तो जरूर लिखें।

परिभाषा के सम्बन्ध में मेरा कहना यही है कि आप जानते ही हैं मैं ऐसी बातों को लेकर बहुत ही कम माथापच्ची करता हूं। पर आपकी ताजी परिभाषा उन सारी परिभाषाओं से अच्छी रही, जिनपर चर्चा हो चुकी है।

डा० अम्बेदकर के मित्रों की इस शिकायत के सम्बन्ध में कि हमने डा० के पत्र पर अच्छी तरह विचार नही किया, मेरा कहना यही है कि उन्हे कुछ गलतफहमी हो गई है। डा० अम्बेदकर के सुझावों के अलावा और भी अनेक सुझाव थे जिनपर विचार करना था और जिन्हें नीली पुस्तिका मे देना था। पर हमने इतनी बड़ी बैठक मे इस पुस्तिका की चर्चा न उठाना ही ठीक समझा। अतएव हमने एक छोटी-सी समिति का गठन किया जिसके जिम्मे डा० अम्बेदकर के सुझावों के अलावा प्रान्तीय बोर्डों से आये सुझाओं को भी ध्यान मे रखकर नीली पुस्तिका की पुनरावृति करने का काम किया गया है। परंतु मुझे कहना पड़ता है कि हमारे कर्मचारी उतने दक्ष नहीं है। बेचारे बुड्ढे ठक्कर बापा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहते हैं, और उनकी अनुपस्थिति मे आफिस मे किसी योग्य सेक्रेटरी का रहना आवश्यक है। इस संघ का श्रीगणेश होने से पहले देवदास ने मुझे सहायता देने का वचन दिया था, परंतु वह और कामों मे लगे हुए हैं। कल जब वह मिले तो मैंने उनसे इसकी शिकायत भी की थी। उन्होंने एक अच्छा-सा आदमी देने का वादा किया है। मैंने उनसे कह दिया है कि वरना काम का हर्जा होगा। मुझे अच्छा आदमी मिल सकता है, पर मेरे अच्छा आदमी पाने का अर्थ होगा अधिक पैसा देना। मुझे तो अच्छा आदमी बाजार-भाव पर ही मिलेगा। इस ढंग की सस्थाओं मे तो ऐसा आदमी चाहिए जो स्वार्थ त्याग करना चाहे। पता नही, आप इस मामले मे मेरी सहायता कर सकेंगे या नही। यदि देवदास इस काम को अपने हाथ में ले लें तो बड़ा काम कर डाले, पर दुर्भाग्य से वह आने को तैयार नहीं है।

हम पत्र जनवरी के आरम्भ मे निकाल रहे हैं। आपके लेख की बाट जोह रहा हूं। मुझे लेख अभी मिला है। वियोगी हरि को हिन्दी के पत्र का सम्पादन करने के लि कोई योग्य आदमी अभी तक नही मिला है, इसलिए मै आफिस के आदमियों से ही काम ले रहा हू। पर, जैसा कि आप स्वयं जानने हैं, इसके लिए एक अच्छे आफिस सेक्रेटरी की दरकार है।

संघ का नाम तीसरी बार बदलना उपहासास्पद होगा। राजाजी के पत्र का आपके ऊपर इतना गहरा प्रभाव पड़ा, पर मेरे ऊपर तो नहीं पड़ा। इसका कारण यह भी हो सकता है कि ऐसी बातों की ओर से मै उदासीन-सा रहता हूं।

आशा है, आप बिल्कुल स्वस्थ हैं। कृपया मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता मत करिये। मैं अच्छा खासा हूं। अभी मैंने बेरों का व्यवहार नहीं किया है, पर करूंगा।

विनीत
घनश्यामदास

जैसा कि ऊपर के पत्र से पता लगेगा, उस समय हम साप्ताहिक 'हरिजन' का श्रीगणेश कर रहे थे। उसका सम्पादन गांधीजी ने स्वयं किया और उसे लोकप्रिय बना दिया। पर उसका प्रारम्भ करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिससे उसके प्रकाशन में देर लग गई :

२७ दिसम्बर, १९३२

परम पूज्य बापू

आपके दोनों लेख मिले। दुर्भाग्यवश पहला अंक निकालने में अभी थोड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि अभी हमें सरकार से अनुमति प्राप्त नहीं हुई है। कायदे-कानून की पाबन्दी के सिलसिले में भी अभी कई बातें करना बाकी हैं और अधिकारी पूछताछ कर रहे हैं। पर, आशा है, एक सप्ताह से अधिक देर नहीं लगेगी।

आपके उपवास के सम्बन्ध में मेरा कहना यही है कि जबतक सरकार से निश्चित रूप से मालूम न हो जाय तबतक वह विचार स्थगित रखा जाय। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि सरकार स्वीकृति दे देगी। पर सरकार अपने निश्चय की घोषणा २ जनवरी को करेगी या उसके बाद, यह बताना कठिन है। परंतु आप सरकार से सीधे पूछ सकते हैं और वह आपको बता देगी। एक बार सरकार ने बिल के पेश किये जाने की अनुमति दी कि बाकी सारे काम आसान हो जायंगे। मैंने अभी बिल को देखा नहीं है। यदि बिल में अनुमति मात्र देने की व्यवस्था होगी तो वह काफी नहीं होगा, क्योंकि बात फिर जमोरिन की इच्छा के ऊपर निर्भर करेगी। इसलिए कुछ करना आवश्यक होगा।

मैंने राजाजी से मित्रों सहित आपसे मिलने का आग्रह किया है, और सम्भवतः वह आपसे शीघ्र ही मिलेंगे।

विनीत
घनश्यामदास

यरवडा केन्द्रीय जेल
२६ दिसम्बर, १६३२

भाई घनश्यामदास

तुम्हारी चिट्ठी मिली। अपने व्यक्तित्व की चकाचौंध तुम्हारे जैसे मित्रों की अपेक्षा खुद मुझे अधिक परेशान करनेवाली है, क्योंकि मैं चाहता हूं कि सब समान भाव से मिलजुल कर काम करें और विचार विनिमय करें। मुझे यह बिल्कुल अच्छा नही लगता है कि मैं कोई बात कहूं तो उसके लिए मुझे वैसी ही बात कहने वाले किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाय। इस भूमिका के बाद मेरा कहना यह है कि व्याधि का जो निदान तुमने किया है मैं उससे बिल्कुल सहमत नही हूं। यदि मैं वैसा ही पत्र फर्ज करो तुम्हें लिखता तो तुम शायद बुरा न मानते। दूसरे शब्दों में मैं तुम्हारे ऊपर अपने प्रभाव का गलत अन्दाजा नही लगाता। जब मैं जानता था कि सतीश बाबू और सुरेश बाबू के लिए डा० राय को सहयोग प्रदान करना असम्भव है तो मैं उनके लिए वह सहयोग उनसे कैसे प्राप्त कर सकता था? हां, यदि उन्हे सहयोग करने को बाध्य करता तो बात दूसरी थी, और मैं वैसे सहयोग की बात सुरेश बाबू और सतीश बाबू तक के बीच में नही सोच सकता हू। आश्रम में मेरा प्रभाव सबपर एक समान समझा जाता है, पर वहां भी भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के व्यक्ति रहते हैं, और उनके बीच सहयोग स्थापित करने की बात तक सोचना मेरे लिए असम्भव-सा है। मैंने सोचा था कि सुरेश बाबू और सतीश बाबू मैदान में काम करने वाले आदमी हैं इसलिए यह काम उनके हाथों अधिक अच्छी तरह होगा और मेरी धारणा थी कि डा० राय को भी मेरा सुझाव रुचेगा। यदि किसी के कंधों से भार उठाकर भार वहन करने मे अधिक समर्थ समझे जाने वाले व्यक्ति के कंधों पर रखा जाय तो इसमें बुरा मानने की क्या बात है? और, जैसा कि अब प्रकट है, मैंने यह गलत धारणा की कि डा० विधान मेरे पत्र के गलत मानी नहीं लगायंगे, उसमें कही हुई बात का खण्डन करना चाहेंगे तो करेंगे, पर बुरा कभी न मानेंगे। और तुम यह कैसे कहते हो कि मैंने डा० राय को दूसरे पत्र मे डांटा है? मैंने तो सिर्फ वस्तुस्थिति को सामने रखा है। यदि तुम पत्र को ठीक तरह से नही समझे तो उसे फिर पढ़ो। मैं चाहता हूं कि दूसरे पत्र की नीयत को समझो। मैं तुम्हारे लिए किसी ऐसे सेक्रेटरी की तलाश करूंगा जो काम की खातिर काम करे।

जबतक अंग्रेजी पत्र अच्छी तरह न निकल सके, उसमें पढ़ने लायक अंग्रेजी न हो, और उसमे दिया जाने वाला अनुवाद ठीक न हो, तबतक केवल हिन्दी संस्करण से ही संतोष कर लेना ठीक होगा।

मैं जानता हूं कि पक्षपात का कोई प्रश्न नहीं है, पर यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि हम जो कुछ करते हैं उसके सम्बन्ध में डा० अम्बेदकर के दलवालों की क्या धारणा है।

तुम्हारा
बापू

इसके बाद ही मन्दिर-प्रवेश बिल उपस्थित हुआ।

यरवडा केन्द्रीय जेल
१ जनवरी, १९३३

भाई घनश्यामदास

तुम्हारा २७ तारीख का पत्र मिला। मैंने बिल देखा था। बिल मन्दिर-प्रवेश की अनुमति देने वाला इन अर्थों मे कहा जा सकता है कि वह सारे मन्दिरो को अस्पृश्यों के लिए खोलने की घोषणा नही करता है। पर मन्दिर उपासकों के बहुमत से खोले जा सकते हैं, ट्रस्टियों की मर्जी पर नहीं।

बिल पेश करने की अनुमति सरकार से मिलने के बारे मे तुम्हे जो भरोसा है, आशा है वह ठीक निकलेगा। राजाजी यहां तीन दिन तक रहे, और हमने बिल और गुरुवयूर मंदिर की अवस्था के सम्बन्ध में आमतौर से बातचीत की।

आशा है, साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन के सम्बन्ध मे आवश्यक कानूनी कार्रवाई पूरी हो गई होगी।

तुम्हारा
बापू

२ जनवरी, १९३३

परमपूज्य बापू

आपके २७ और २८ के पत्र एक ही लिफाफे मे मिले। आपका तर्क मेरी समझ मे नही आया, पर आप जो कहते हैं उसमें कुछ तथ्य अवश्य है। मैं आपका समय नष्ट करना नही चाहता हूं। जब मिलूंगा तो बातें होंगी। वास्तव में जब मैं पिछली बार पूना गया था तो आपसे कई बातों की आत्म-संतोष के लिए चर्चा करना चाहता था, पर मैंने आपको बेतरह कार्य-व्यस्त देखा तो इरादा छोड़ दिया। आपने अपने पत्र मे डा० विधान को लिखे पत्र की नकल भेजने की बात लिखी है, पर मुझे वह नही मिली।

अंग्रेजी संस्करण के सम्बन्ध मे आपने जो कहा सो जाना। मैं आदमी को चुनने में इस बात का ध्यान रखूंगा।

आपके उपवास के स्थगित होने की बात से मेरी चिन्ता दूर-सी हो गई पर इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपनी चेष्टाएं शिथिल कर देंगे। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि १५ तारीख से पहले-पहले वायसराय की स्वीकृति मिल जायगी। मुझे आशा है कि बिल जिस रूप में पेश किया जा रहा है उससे आप संतुष्ट हैं। पूना में जैसी बात हुई थी, क्या काशी के विश्वनाथ के मंदिर का प्रश्न उठाया जाय? मंदिर निकट भविष्य में खोल दिया जायगा, ऐसी सम्भावना तो नहीं है, पर उस क्षेत्र में प्रचार तो आरम्भ कर ही दिया जाय। आशा है, आप सहमत होंगे।

विनीत
घनश्यामदास

४ जनवरी, १९३३

परमपूज्य बापू

हिन्दी पत्र तो जल्दी ही निकल आयगा, पर अंग्रेजी संस्करण निकलने में देर लगेगी।

मैं यही सोच रहा हूं कि अंग्रेजी पत्र का क्या नाम रखा जाय, पर कोई अच्छा-सा नाम ध्यान में नहीं आ रहा है। 'प्रायश्चित्त' नाम के सम्बन्ध में आपका क्या विचार है? इस नाम से हमारे उद्देश्य का भी पता लगता है, इसलिए मैंने सोचा कि आपको यह नाम शायद पसन्द आवे।

कृपया तार के जरिये सूचित करिये कि आपको यह नाम पसन्द है या नहीं। यदि नहीं तो कोई दूसरा नाम सुझाइयेगा।

विनीत
घनश्यामदास

६ जनवरी, १९३३

परमपूज्य बापू

इस पत्र के साथ एक पत्र भेजता हूं जिसका विषय स्पष्ट ही है। क्या आप इस पत्र के लेखक को थोड़ा-बहुत जानते हैं? इसे किस काम में लिया जाय, सो मैं नहीं जानता। पर सम्भवतः आप यह पत्र-लेखक को स्वयं बता देंगे।

कस्तूरभाई ने ५,०००) रुपये भेजे हैं। मैंने चीनूभाई को भी इतनी ही रकम देने को लिखा है। अभी तक कोई आर्थिक कठिनाई सामने नहीं आई है। हम प्रांतो को तभी देंगे जब वे अपने हिस्से का व्यय स्वयं एकत्र कर लेंगे। प्रातों ने इस मामले में ढील दिखाई है, इसलिए हमने भी

अपने पास से भेजी जाने वाली रकम में कमी कर दी है। पर इसका मतलब यह नहीं है कि काम में किसी प्रकार की शिथिलता आ गई है। आपका जादू देश के कोने-कोने मे काम कर रहा है और काम को आगे बढ़ाने मे हमें कोई खास चेष्टा नहीं करनी पड़ रही है। मुझे तो इसी बात का संतोष है कि मेरा इस कार्य के साथ सम्बन्ध है।

विनीत
घनश्यामदास

७ जनवरी, १९३३

परमपूज्य बापू

आपका ३ तारीख का पत्र मिला। पत्र के साथ भेजे दो अन्य पत्र भी एक रामानन्द संन्यासी का, और दूसरा गणेशीलाल मिस्तरी का-- मिले। गणेशीलाल मिस्तरी के सम्बन्ध मे अच्छी तरह पूछताछ करके आपको फिर लिखूगा। पर संक्षेप मे इतना तो कह दू कि दिल्ली मे दल-बन्दी का बड़ा जोर है, इसीलिए ये सारी परेशानियां है।

रामानन्द सन्यासी वाली बात को ही लीजिये। यह बात सच्ची है कि रग्घूमल चैरिटी ट्रस्ट ने उनकी सस्था को मासिक सहायता देना बन्द कर दिया है। वैसे भी उसे यह सहायता देते हुए, यदि मुझे ठीक याद है तो, १८ महीने हो गये थे, इसलिए वह बन्द तो होती ही। पर यदि सहायता बन्द न की जाती तो भी उनकी संस्था के कार्यकलाप के सम्बन्ध मे कुछ अधिक छानबीन की जरूरत है।

दिल्ली मे आर्यसमाजियों के दो दल है और दोनों निहायत ही शर्मनाक ढंग से आपस मे लड रहे है। हाल ही मे रामानन्द संन्यासी की संस्था के ऊपर एक दल ने अधिकार कर लिया है। यह छीछालेदर इसीलिए हो रही है। अतएव इस अवस्था मे इन संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने मे मुझे तो हिचकिचाहट-सी होती है। जब रामानन्द संन्यासी जेल से छूटेंगे तो मैं उनसे बात करूगा।

जब मैंने यहा बोर्ड की स्थापना की थी तो लाला श्रीराम, देशबन्धु और पंडित इन्द्र से बातचीत की थी। अछूतों ने बोर्ड में इतनी बड़ी संख्या मे घुसने की चेप्टा की कि यद्यपि हमने अछूतों के दोनों दलों मे से कई कई आदमी लिये, तथापि एक दल असंतुष्ट ही रहा, और एक बार तो हमें इस्तीफा देने की धमकी दी गई। बाद मे शायद इस्तीफे वापस ले लिये गये। सवर्ण हिन्दुओं ने भी बोर्ड में घुसने मे ऐसी ही उतावली दिखाई। फलतः इस समय बोर्ड मे पचास सदस्य है। आर्य समाज की तरह दलितों मे

भी दलबन्दी है। दिल्ली में राजा-पार्टी या अम्बेदकर-पार्टी जैसी कोई चीज नहीं है। यहां तो पहले आपसी ईष्या-द्वेष के फलस्वरूप दल का जन्म होता है, उसके बाद नेता चुना जाता है। इसलिए संतोषजनक प्रबन्ध करना असम्भव-सा है। पं० इन्द्र स्थानिक अवस्था से अधिक अच्छी तरह परिचित है, इसलिए मैंने उनसे अनुरोध किया है कि वह आपको यह सारा व्यापार पूरी तरह समझा दे।

हाल ही में यहाँ जूता बनाने के धंधे को प्रोत्साहन देने के लिए कोआपरेटिव सोसायटी बनाई गई है। सरकारी अफसर भी इसमें दिलचस्पी ले रहे हैं। मुझे इस धंधे में सहायता देने की सचमुच की चेष्टा दिखाई दी, इसलिए मैंने नाममात्र के ब्याज पर ५,०००) रुपये कर्ज देने का वचन दे दिया। पर अब मुझे पता चला है कि यह कोआपरेटिव बैंक भी एक ही दल का है, और चूंकि दूसरा दल इससे संतुष्ट नहीं है, इसलिए इस दूसरे दल के लाभ के लिए एक और कोआपरेटिव बैंक खोलने की बात हो रही है। बस, काम इसी गन्दे वातावरण में हो रहा है।

परंतु, जैसा कि मैं कह चुका हूं, इस मामले में पं० इन्द्र आपको अधिक विस्तृत रूप से लिखेंगे।

विनीत
घनश्यामदास

यरवडा केन्द्रीय जेल
८-१-३३

भाई घनश्यामदास

तुम्हारे ४ तारीख के पत्र के उत्तर मे मैंने कल एक तार भेजा था। मैंने अपने इस पुराने सुझाव को अब फिर दुहराया है कि कमसे कम अंग्रेजी "हरिजन" पूना से निकले, और हिन्दी और अंग्रेजी संस्करणों का एक ही दिन निकलना जरूरी नहीं है। यदि हिन्दी का शुक्रवार को निकले तो अंग्रेजी का सोमवार को निकाला जाय। अंग्रेजी हरिजन मेरी देखरेख मे निकलेगा और जितना आवश्यक होगा हिन्दी से लेगा। खबरें, आंकड़े, रिपोर्ट आदि हिन्दी से ली जायंगी और उसमे मौलिक सामग्री भी रहेगी। ऐसी अवस्था मे यदि वहाँ से कोई आदमी भेजने के लिए नहीं हो तो किसी को मत भेजना। मैं यहाँ किसी न किसी आदमी का इन्तजाम कर लूंगा।

मैंने कल इस बारे मे श्री ठक्कर बापा से बात की और उन्हे विचार पसन्द आया। मैंने उनसे कहा कि वह तुमसे भी बात कर लें, पर उन्होंने उत्तर दिया कि इससे व्यर्थ की देर होगी, इसलिए अपने विचार तुम्हारे पास डाक

के जरिये ही भेज दिये जायं। यदि तुम इस विचार का हृदय से समर्थन करते हो तो काम को आगे बढ़ाओ और जरूरी समझो तो आकर मुझसे बातचीत कर जाओ। पर इसकी खातिर हिन्दी संस्करण निकालने मे देर नही करनी चाहिये। अंग्रेजी संस्करण दो-एक हफ्ते बाद निकल जायगा।

इस पत्र के साथ लाला श्यामलाल का तार और पत्र भेजता हू। अपने उत्तर की नकल भी भेजता हू।

तुम्हारा
बापू

ग्वालियर
१० जनवरी, १९३३

परमपूज्य बापू

जैसा कि आपको इस पत्र से मालूम हो गया होगा, मै ग्वालियर काम के सिलसिले मे आया हूं और यहा कोई एक पखवाड़े ठहरूगा। दिल्ली से रवाना होने से पहले मैने पण्डित इन्द्र के पास कहला भेजा था कि वह आपको गणेशीलाल के सम्बन्ध मे विस्तृत रूप मे लिखे। आपको अब इसी तरह की शिकायते मिला करेंगी। इसका कारण यही है कि शिक्षित हरिजनों मे इस प्रकार की आशाए विशेष रूप से उत्पन्न हो गई है कि हमारा यह संघ एक नवीन युग ला उपस्थित करेगा। बेकार हममे नौकरी पाने की आशा करता है, कष्ट में फंसा व्यापारी यह उम्मीद करता है कि उसकी परेशानियों को हम दूर करेंगे। जब मैं पूना मे था तो हरिजन विद्यार्थियों का एक दल मुझसे मिलने आया। मैंने उन्हें बता दिया कि उन्हे हम लोगो से यह उम्मीद नही करनी चाहिए कि हम आसमान के तारे तोडकर ला देगे। मैंने उन्हे बताया कि यदि हम छह लाख रुपये साल संग्रह करने मे सफल हों और उनके ऊपर वह सारी रकम खर्च कर दें तो भी फी हरिजन एक रुपया वार्षिक का औसत आयेगा। हमारे साधन सीमित है और उन्हे इस बात को समझ लेना चाहिए। पर दुर्भाग्य से वे इसे नहीं समझेंगे और इसका एकमात्र परिणाम यही होगा कि क्षोभ उत्पन्न होगा और ढेर-की-ढेर शिकायतें आने लगेगी।

परंतु जहां तक हृदयों के परिवर्तन का सवाल है, हमें इस दिशा में बडी सफलता प्राप्त हुई है। वातावरण में जो इतना परिवर्तन दिखाई देता है, इसका श्रेय एकमात्र आपको है।

यदि पत्र का अंग्रेजी संस्करण भी दिल्ली से ही निकले तो नाम में कुछ परिवर्तन होना आवश्यक है, नही तो प्रबन्ध-सम्बन्धी असुविधाएं उत्पन्न होंगी। पर यदि अंग्रेजी संस्करण पूना से निकले तो यह कठिनाई उपस्थित

नही होगी । मुझे अभी तक अग्रेजी सस्करण का सम्पादन करने के लिए अच्छा-सा आदमी नही मिला है । यदि आप इसका प्रबन्ध पूना में ही कर ले तो मै इस उत्तरदायित्व से छुटकारा पा जाऊगा । साथ ही मै यह भी नही चाहता हू किआप अपने ऊपर एक नया बोझ लाद लें । परतु यदि आप समझें कि पूना से निकालना ज्यादा अच्छा रहेगा तो मुझे कोई आपत्ति नही होगी । इसका फैसला एकमात्र आपके ही हाथ में हैं ।परतु यदि मै पूना मे आपके किसी काम आ सकू तो आप मेरी सेवाओं का पूरी तरह उपयोग करें ।

विनीत
घनश्यामदास

यरवडा केन्द्रीय जेल
११-१-३३

प्रिय घनश्यामदास

तुम्हारा ७ जनवरी का दुःख की कहानी भरा पत्र मिला । पर हताश या भग्नोत्साह होने की कोई वात नही है । तुमने जो कुछ लिखा है सो अधिकांश संस्थाओ पर ऐसी ही वीतती है । जब ऐसी सस्थाओ का पूरा उत्तरदायित्व सिर पर आता है तभी सबसे अच्छे और सबसे बुरे आदमी की परीक्षा होती है । कोई सबसे अच्छा आदमी तभी साबित होता है जब वह निर्लेप होकर काम करे ।

तुम्हारा
बापू

: ८ :

'हरिजन' का जन्म

१४ जनवरी, १९३३

परमपूज्य बापू

अंग्रेजी 'हरिजन' के सम्बन्ध में लिख ही चुका हूं। मुझे इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहना है। आशा है, आप पत्र को पूना से निकालने का प्रबन्ध कर रहे हैं। यदि आप चाहें तो श्यामलाल को वहाँ भेज दिया जाय, नहीं तो उनसे दिल्ली में ही काम लिया जायगा।

आपके और ला० श्यामलाल के बीच में जो पत्र-व्यवहार हुआ है उसके सम्बन्ध में मेरा कहना यह है कि आपको लिखने से पहले ही ठाकुरदास भार्गव मेरे पास संघ से दान मागने के लिए आ चुके थे। मैंने उन्हें बताया कि उनका कार्य मुख्यतः हरिजनों के लिए नहीं है इसलिए मैं संघ से रुपया देने में असमर्थ हूं। पर मैंने उन्हें अपनी जेब से १,१००) रुपये अवश्य दे दिये। मैंने उनसे यह भी कह दिया कि यदि हरिजनों के लिए खासतौर से कुछ करने की बात होगी तो उन्हें प्रान्तीय बोर्ड के पास पहुंचना होगा और हम प्रान्तीय बोर्ड को उस कार्य के लिए रुपये दे देंगे। मेरी धारणा है कि यह कार्य मुख्यतः हरिजनों के लाभ के लिए नहीं है; हरिजन नाम का व्यर्थ ही उपयोग किया जा रहा है। हां, उसका उपयोग अच्छे काम में अवश्य किया जा रहा है। किन्तु अच्छे काम में भी मनुष्य को सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। अतएव आपका उत्तर बिल्कुल ठीक रहा।

विनीत
घनश्यामदास

१७ जनवरी, १९३३

परमपूज्य बापू

इधर कुछ दिनों से बंगाल में अपना मतलब सिद्ध करने के लिए कुछ आदमियों ने पूना पैक्ट के खिलाफ़ आन्दोलन खड़ा किया है। मैं यह बात पूरे निश्चय के साथ कह सकता हूं कि ये लोग बंगाली सवर्ण हिन्दुओं की भावना

को व्यक्त नहीं कर रहे हैं। अधिकांश कांग्रेसी इस आन्दोलन से अलग हैं। आपको याद होगा कि आपके अनशन आरम्भ करने से कुछ ही पहले डा० मुजे ने कहा था कि यदि ऐसी ही बात है तो हिन्दू दलित जातियों की खातिर अपने हिस्से मे आई सारी सीटें अर्पण कर देंगे। डा० मुजे ने यह बात मेरे कहने से कही थी, और श्री रामानन्द चटर्जी के साथ परामर्श करने के बाद ही ऐसा कहा गया था। इसलिए यह कहना ठीक नहीं है कि इस मामले मे किसी प्रमुख बंगाली की सलाह नहीं ली गई। अब रामानन्दबाबू को पूना पैक्ट के खिलाफ़ शिकायत है। उस अवसर पर पंडित मालवीयजी ने बंगाल के सभी प्रमुख व्यक्तियों को बुलाया था। पर किसीको आने तक की फुर्सत नही थी!

मेरा इस वाद-विवाद मे पड़ना शायद ठीक नही रहेगा। यह मामला नाजुक है, इसलिए एक गैर-बंगाली का अलग रहना ही ठीक है। परन्तु क्या आप डा० राय और श्री जे० सी० गुप्त को कुछ लिखना ठीक नहीं समझते हैं? और क्या आप मुझे सार्वजनिक रूप से कुछ कहने की सलाह देते हैं? मैं डा० राय को लिख ही चुका हूं।

मुझे आपका ११ जनवरी का पत्र, जिसमे आपने नीली पुस्तिका के सम्बन्ध में जमनालालजी के विचारों की चर्चा की है, अभी मिला है। जी हां, प्रस्ताव पूरा नही है। इस ओर मेरा ध्यान सबसे पहले देवदास ने आकर्षित किया। वस्तुतः पुस्तिका का यह अंश स्वयं मेरे द्वारा लिखा गया था और मैंने श्री ठक्कर बापा से सम्बद्ध प्रस्ताव जोड़ने को कहा था। यद्यपि यह भूल उनकी थी, तथापि इस गलती के लिए मैं भी उतना ही उत्तरदायी हूं। मुझे बाध्य होकर कार्यालय के निकम्मेपन की फिर शिकायत करनी पड़ रही है। किसी हद तक यह भूल स्वाभाविक भी थी, क्योंकि अधिकांश पत्रों ने प्रस्ताव के इस अंश को नही दिया था। मैंने और देवदास ने इस सम्बन्ध में पूना मे बात की थी और हम दोनों को ताज्जुब हुआ था कि बम्बई के पत्रों ने यही अंश क्यों नही दिया। मेरे लिए तो यह बराबर रहस्य ही बना रहा। पर हमने यह निश्चय कर लिया था कि पुस्तिका की पुनरावृत्ति के समय यह त्रुटि दूर कर दी जायगी।

जमनालालजी ने जो दूसरी बातें उठाई हैं, उन्हे हम पुस्तिका की पुनरावृत्ति के समय ध्यान में रखेंगे। मैं उनसे इस बात में सहमत हूं कि लीग को अपना नाम बदल डालने का अधिकार देनेवाले प्रस्ताव में कोई सृजनात्मक बात नही है, पर मैं नहीं समझता कि इन साधारण-सी कायदे-कानून वाली बातों को इतना महत्व देने की क्या जरूरत है। प्रस्ताव व्यापक नही था, और हमने बहुतसे ऐसे अधिकारों को स्वयं जन्म दिया है, जिनके लिए पहले

से कोई स्वीकृति नहीं ली गई थी, पर जो वर्तमान परिस्थिति में आवश्यक हैं। हम संस्था की रजिस्ट्री तो करा ही रहे हैं।

मैंने अपनी मिल के मैनेजर को संघ का खजांची नियुक्त किया है। संघ का कार्यालय मिल मे होने के कारण मेरी अनुपस्थिति मे अब बैंक से चेक भुनाने मे अधिक सुविधा रहेगी।

श्री पुणताम्बेकर के सम्बन्ध मे जमनालालजी ने जो सुझाव दिया है, उसके सम्बन्ध मे मेरा कहना यही है कि हिन्दू विश्वविद्यालय मे उन्हें अच्छा वेतन मिल रहा है। इसलिए वह सघ मे काम करने शायद ही जावे। मुझे स्वयं एक अच्छे दफ्तर का अभाव खल रहा है, और मै इस सम्बन्ध मे आपको लिख भी चुका हूं। यदि आपकी निगाह मे कोई अच्छा आदमी न हो तो मै ही अपनी पसन्द के किसी आदमी को नियुक्त कर लूगा। आप जानते ही होंगे कि मै इस काम की ओर पूरा ध्यान नही दे रहा हूं जो कि वर्तमान अवस्था मे स्वाभाविक ही है। मै अभी व्यापार मे ही हू और इस ओर अपना काफी समय देता हूं। आजकल कुछ अधिक समय दे रहा हूं, क्योंकि मिल मे माल का पहाड़ लगा पड़ा है। जब मिल कमा रही थी तो मैं इतना समय नही देता था। पर अब उसे घाटा हो रहा है, इसलिए मुझे स्वभावतया ही अपने समय का अधिकांश उसे देना पड़ता है। मैंने यह सब तो आपको वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए लिखा है। पर वैसे भी एक अच्छे सेक्रेटरी की नितान्त आवश्यकता है। मै खुद संघ के काम मे अधिक समय लगाना चाहता, पर परिस्थिति ऐसी है कि मैं पूरे मनोयोग के साथ संघ का काम नही देख सकता। हां, अपने काम के बाद मै संघ के काम मे संतोषजनक मात्रा मे भाग ले रहा हूं। मंदिर और कुंए खोले जाने के पूरे समाचार प्रान्तीय बोर्ड से नही मिलते है, पर हरएक प्रान्त से पाक्षिक आंकड़े अवश्य मिलते हैं। वे जितनी सूचना दे सकते है, देते ही है।

विनीत
घनश्यामदास

यरवडा केन्द्रीय जेल
पूना
१७ जनवरी, १९३३

भाई घनश्यामदास

तुम्हारा १० तारीख का ग्वालियर से लिखा पत्र मिला। मैं अंग्रेजी संस्करण के सम्बन्ध में कल बुधवार को श्री देवधर और श्री वज़े से बात कर रहा हूं। वैसे तुम्हारा पत्र मिलने के बाद मै वजे से प्रारम्भिक बातचीत

कर भी चुका हूं। ऐसा मालूम पड़ता है कि यहां से पत्र निकालने में कोई अड़चन नही होगी, पर मै कोई काम उतावली में नही करूंगा। काम को सचमुच हाथ लगाने से पहले मै तुम्हे पूरी सूचना दे दूगा।

बंगाल मे यह यरवडा पैक्ट का कैसा विरोध हो रहा है? मै डा० विधान को भी लिखकर पूछ रहा हूं।

बेरों के अमर के सम्बन्ध में जो लिखा सो जाना। क्या कभी तुमने व्यवहार किया है?

तुम्हारा
बापू

यरवडा केन्द्रीय जेल
१६ जनवरी, १६३३

भाई घनश्यामदास

तुम्हारा १४ तारीख का पत्र मिला। कल मैने अंग्रेजी संस्करण के बारे मे श्री देवधर और श्री वजे से देर तक बात की और इस बातचीत के फलस्वरूप मैने अमृतलाल ठक्कर को तार दे दिया है कि यदि शास्त्री को छोड़ सके तो तुरंत भेज दे। वजे का कहना है कि सम्पादकीय कार्य के लिए शास्त्री सबसे ठीक रहेगा। वजे ने सहायता देने का वचन दिया है, पर वह पूर्णतया पत्र के साथ नहीं हो सकेगे। पर दोनो ने यह कहा कि यद्यपि शास्त्री ने भारत सेवक सघ मे लिये जाने का प्रार्थना पत्र दिया है, तथापि यदि वह सम्पादकीय भार ग्रहण करेगा तो उसे (अर्थात् भारत सेवक संघ को) उसे कोई आपत्ति नही होगी। जहां तक महादेव को और मुझे समय मिलेगा, पत्र के स्तम्भ हम भरेगे और शास्त्री हिदायत के मुताबिक काम करेगा। धीरे-धीरे वह स्वयं मौलिक लेख लिखने लगेगा।

हिन्दी संस्करण कौन जाने कब निकलेगा?

तुम्हारा
बापू

यरवडा केन्द्रीय जेल
पूना
२१ जनवरी, १६३३

भाई घनश्यामदास

तुम्हारा पत्र मिला। बंगाल के प्रश्न पर तुम कोई सार्वजनिक वक्तव्य दो, यह मै नही चाहता। तुम देख ही रहे हो कि मैने खुद कोई वक्तव्य नही

दिया है। मै भी यह खयाल करके कि तुम भी उनको लिखोगे, तुम्हारा अनुकरण कर रहा हूं और तुमसे पहले ही डा० विधान और रामानन्द-बाबू को लिख रहा हूं। मैने श्री जे० सी० गुप्त को पत्र नही लिखा है, और न लिखना जरूरी ही समझता हूं। मै उनसे मिल भी लेता, पर मै नहीं कह सकता कि उनके साथ मेरा पहला परिचय है भी या नही।

जो प्रतियां रह गई है उनकी समाप्ति तक पुस्तिका की पुनरावृत्ति स्थगित करना ठीक नही है। तुम दो मे से एक काम कर सकते हो। या तो पुरानी पुस्तिका को रद करते हुए एक नई पुस्तिका जारी करो, जो प्रतियां रह गई है उनमे अपूर्ण प्रस्ताव के ऊपर पूरा प्रस्ताव चिपका दो, और सरकूलर भेज दो कि भूल से पुस्तिका मे अपूर्ण प्रस्ताव छप गया। उस सरकूलर मे भी वह पूरा प्रस्ताव दे दो।

मै अच्छी तरह समझता हूं कि तुम्हे अपना कामकाज भी देखना है, खास तौर से इन दिनों।

'हरिजन सेवक' निकालने मे क्या कठिनाई है?

तुम्हारे स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार चिन्ता उत्पन्न करते है। यदि कोई विश्वसनीय डाक्टर आपरेशन की सलाह देता है तो क्यों नही करा डालते? मुझे अनुभव ने सिखाया है कि नपी-तुली खुराक और उपवास की उपयोगिता भी सीमित ही है। उनसे सदैव ही इच्छित फल प्राप्त नही होता है। और जितने आराम की जरूरत हो, लो। ऐसे मामलों में टालमटोल करना पाप है।

तुम्हारा
बापू

२४ जनवरी, १९३३

परमपूज्य बापू

सरकार के निश्चय पर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है, पर इधर में कई संवाद एजेंसियों की बुद्धिमत्तापूर्ण भविष्यवाणियों को ध्यान से पढ़ता आ रहा था, इसलिए जो कुछ हुआ है उसके लिए पहले से ही तैयार-सा हो गया था। मुझे सरकारी निश्चय मे न तर्क दिखाई देता है, न न्याय-बुद्धि। अब मै इस प्रतीक्षा में हूं कि इस परिस्थिति के सम्बन्ध में आपका क्या दृष्टि-कोण है।

इस समय व्यवस्थापिका सभा का जैसा कुछ ढंग-ढांचा है, उसे देखते हुए यही कहा जा सकता है कि वह अनेक अच्छी चीजें रद करने और बुरी चीजें पास करने में समर्थ है। पहली बात तो यह है कि सरकार की विलम्ब

करने की नीति के फलस्वरूप, सम्भव है, यह बिल व्यवस्थापिका सभा में पेश ही न हो सके, और यदि पेश हो भी जाय तो बहुत सम्भव है, वह पास न हो। इसलिए श्री रंगा अय्यर के बिल के ऊपर अधिक निर्भर करना ठीक नहीं होगा। हमें तो आपसी चेष्टाओं का ही सहारा लेना चाहिए। परंतु गुरुवयूर मन्दिर के मामले में तो आपसी चेष्टाओं का अधिक मूल्य नहीं है। इसलिए मैं यह जानना चाहूंगा कि आप हमें क्या करने को कहते हैं।

यदि आपको भी रंगा अय्यर का बिल पसन्द हो तो उसकी भाषा में फेरफार करना आवश्यक होगा, क्योंकि इस समय वह जैसा कुछ है, आज की अवस्था के लिए अपर्याप्त सिद्ध होगा। भाषा बड़ी अस्पष्ट है, और कानूनी पहलू से उसका शब्द-गठन ठीक नहीं हुआ है। यदि आप इसके पेश किये जाने के पक्ष में हों तो आपकी सलाह से इसकी भाषा का परिमार्जन करना आवश्यक होगा। इसीलिए मैंने आपके पास एक तार भेजा है। आपके पाससे कल तक उत्तर मिलने की आशा है। यदि आप चाहें कि मैं पूना आऊं तो मैं वहां के लिए तुरंत चल पड़ूंगा। वैसे तो मैं परसों दिल्ली जा रहा हूं।

विनीत
घनश्यामदास

यरवडा केन्द्रीय जेल
पूना
२५-१-१९३३

भाई घनश्यामदास

हरिजन सेवक के अंग्रेजी संस्करण की आय-व्यय का अनुमान यह रहा। तुम देखोगे कि रकम मामूली-सी है। क्लर्कों को भी कुछ दिया जायगा और शास्त्री का शुल्क भी जोड़ना होगा। शास्त्री पत्र का सम्पादन करने को राजी हो गया है।

मेरा १०,००० प्रतियां निकलने का इरादा है। यदि इतनी प्रतियों की मांग नहीं हुई तो कम कर दी जायंगी। तुम जानते ही हो कि मैं या तो पत्र को हाथ नहीं लगाऊंगा और यदि लगाऊंगा तो उसे स्वावलंबी बनाने के लिए। यदि पत्र अपना खर्च स्वयं न निकाल सका तो मैं समझूंगा कि प्रबन्ध या सम्पादन का दोष है, या जनता में ऐसे पत्र की मांग नहीं है। इनमें से किसी भी दशा में यदि दोष दूर न किया जा सकेगा तो पत्र को बन्द कर दिया जायगा। मैं पत्र को तीन महीने तक चलाकर देखूंगा। इसी बीच में उसे आत्म-निर्भर बनाना है।

अतएव मैं चाहूंगा कि तुम ठक्कर बापा और जिन किन्हीं से परामर्श करना चाहो उनसे परामर्श करके मुझे तार द्वारा सूचना दो कि अधिक-से-अधिक कितनी रकम तक के खर्चे की मंजूरी दे सकते हो। जो अनुमान की हुई रकम है उसमे डाक खर्च और तार खर्च के अलावा २००) रुपये और जोड़ लेना ठीक रहेगा। मैं अधिक पक्के आकडे शास्त्री के मिलने के बाद दूंगा। यदि तुम बजट पास कर सको तो क्या मैं पत्र निकालने का काम, इस बात का खयाल किये बगैर कि हिन्दी पत्र निकलेगा या नही, शुरू कर सकता हूं ? मैं समझता हूं, पत्र निकालने मे यहां कोई असुविधा नही होगी।

अस्पृश्यता-निवारक बिलों के सम्बन्ध मे सरकार के निर्णय वाला तुम्हारा तार ग्वालियर से मिल गया। आशा है, तुम्हें मेरा उत्तर मिल गया होगा और तुमने मेरा सविस्तर वक्तव्य भी पढ लिया होगा। मुझे उस वक्तव्य से अधिक और कुछ नही कहना है।

संघ को सरकारी सहायता की याचना करना या उसे ग्रहण करना चाहिये या नही इस सम्बन्ध मे भी मुझे और अधिक कुछ नही कहना है। पत्र स्वयं ही स्पष्ट है।

आशा है, तुम अब पहले से अच्छे होगे। अपने स्वास्थ्य के साथ भी तुम्हे ऐसा ही बर्ताव करना चाहिये जैसा अपने अन्य धंधो के साथ करते हो। उसकी उपेक्षा करने से काम नही चलेगा।

तुम्हारा
बापू

९ फरवरी, १९३३

परमपूज्य बापू

स्थिति का अध्ययन करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि यदि सरकार सहायता करे तो बिल इसी अधिवेशन मे पेश हो सकता है और शिमला के अधिवेशन मे पास हो सकता है। निर्वाचन समिति की नियुक्ति भी इसी अधिवेशन के दौरान मे हो सकती है। यदि सरकार सहायता नही करेगी तो शायद बिल इस अधिवेशन मे पेश न हो सके। पर लक्षणों से ऐसा लगता है कि सरकार बिल के पेश किये जाने मे सहायता तो करेगी, पर इससे आगे बढ़ने को तैयार नही होगी। सरकार हठ पकड़ेगी कि सदस्यों की राय लेने के लिए बिल की प्रतियां बांटी जायं। वैसे तो सदस्यो मे घुमाये जाने के बाद भी बिल का शिमला अधिवेशन में पास किया जाना सम्भव है, पर उसके लिए यह आवश्यक है कि सरकार हर तरह की सुविधाएं दे। यदि सरकार की सहायता नही मिली तो बिल खटाई में पड़ा रहेगा।

मैं जब से यहां आया हूं हम लोगों ने कई बैठकें बुलाई, जिनमें से कल रात की बैठक सबसे अधिक महत्वपूर्ण रही। उसमें यह तय हुआ कि व्यवस्थापिका सभा के प्रमुख सदस्य सरकार से बिल पर चर्चा करने के लिए विशेष सुविधाएं देने का अनुरोध करें। एक पत्र तैयार किया गया जिसपर कई प्रमुख सदस्यों ने हस्ताक्षर किये। आज और भी अधिक हस्ताक्षर हुए होंगे, और मैं समझता हू अबतक पत्र लीडर आफ दी हाउस के हाथ मे पहुंच गया होगा। परंतु मुझे विशेष आशा नही है कि सरकार विशेष सुविधाएं देगी। स्वयं सदस्य यह नही चाहते है कि बिल की कार्रवाई वर्तमान अधिवेशन के दौरान मे झटपट पूरी कर दी जाय। इनमें से अधिकांश इस मामले मे एकमत है कि बिल को सदस्यों मे घुमाना जरूरी है, पर साथ ही वे यह भी नही चाहते है कि उसे पास करने के मामले मे उतावली से काम लिया जाय। मैं आपको व्यवस्थापिका सभा की प्रणाली को विस्तार के साथ बताना जरूरी नही समझता हूं, क्योंकि मेरा विश्वास है कि आप स्वयं अच्छी तरह जानते होंगे। पर मैं इतना तो कह ही दू कि यदि सरकार बिल को गजट में प्रकाशित कर दे तो उसे औपचारिक रूप से पेश करने की झंझट मिट जाय। इस प्रकार यदि सरकार चाहे तो हमारे मार्ग से एक रुकावट दूर हो जाय; पर शायद सरकार हमारी मदद करने को यहाँ तक आगे नहीं बढ़ेगी।

आज फिर एक बैठक है जिसमे प्रमुख सदस्य भाग लेंगे। उनमे से कुछ को हम उनके नाम मे खड़े हुए बिल वापस लेने के लिए राजी करने की चेष्टा करेंगे जिससे श्री रंगा अय्यर के बिल के लिए रास्ता साफ हो जाय। मुझे भरोसा है कि अधिकाश सदस्य हमारी सहायता करेंगे। ऐसी भी आशका है कि दो-एक का रुख सहायतापूर्ण न हो, पर इससे बिल का २७ फरवरी को बाकायदा पेश होना नही रुकेगा। हां, यदि सरकार इससे पहले ही बिल को गजट में प्रकाशित कर दे और विशेष सुविधाएं दे तो उसे बाकायदा पेश करना गैरजरूरी हो जायगा।

बस, एक बात और रह गई। व्यवस्थापिका सभा मे एक रिवाज चला आता है कि जिस दिन बिल पेश किया गया हो उसी दिन उसपर चर्चा नहीं की जाती है। इसका अर्थ यह है कि यदि बिल २७ फरवरी को पेश हो गया तो भी उसपर उसी दिन विचार नही किया जायगा। यह रिवाज सदस्यों, सभापति और सरकार की सहमति से शिथिल भी किया जा सकता है। पर शायद तीनों पक्ष इसके लिए राजी न हों। स्वयं हाउस इन रिवाजों के पालन किये जाने के पक्ष में रहता है। मैं स्वयं चार वर्ष तक सदस्य रह चुका हूं, इसलिए मेरी सहानुभूति इन रिवाजों के साथ है।

जब मुझे ऐसा लगने लगेगा कि यहां और कुछ करना संभव नहीं है तो मेरा विचार कलकत्ते के लिए रवाना होने का है। यहां तो मेरी नाक का आपरेशन करनेवाला कोई विशेषज्ञ है नहीं, इसलिए अबकी बार मैं कलकत्ते में यह काम भी पूरा करा डालूंगा।

विनीत
घनश्यामदास

(चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के नाम महात्मा गांधी के तारीख १३-२-३३ के पत्र की नक़ल)

आपने और घनश्यामदास ने जनता के नाम जो अपील निकाली है वह मैंने पढ़ी है। आप लोगों ने उपवास और उसकी सम्भावना की चर्चा मात्र भी क्यों की? यदि उपवास करना ही पड़ा और यदि उसे आध्यात्मिक रूप देना पड़ा तो आप इस प्रकार उसकी आध्यात्मकिता नष्ट कर रहे हैं। यदि मन्दिर-प्रवेश सबन्धी बिल व्यवस्थापिका सभा के वर्तमान अधिवेशन में, अथवा बिल्कुल ही, पास न हुए तो भी मैं स्वय नही कह सकता हू कि उपवास निश्चित हैं। मैं नही जानता वह कब आयेगा। आप लोगों को उसे अपने दिमाग से बिल्कुल निकाल देना चाहिए और जनता को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की छूट दे देनी चाहिये। जब उपवास आयेगा और उसका स्वरूप आध्यात्मिक होगा तो उसका प्रभाव स्वतः ही पड़ेगा। यदि वह उपवास रुग्ण अथवा अहम्मन्य मस्तिष्क की उपज होगा तो उसकी खबर सुनने वाले को या तो तरस आयेगा, या घृणा होगी—जिसकी जैसी मनोवृत्ति होगी। इसलिए एक विशेषज्ञ की सलाह मानकर उसीके अनरूप पूरी तरह आचरण करिये।

इसके साथ ही आपको मालवीयजी के रुख पर भी गम्भीरता-पूर्वक ध्यान देना है। वह बिलों के बिल्कुल खिलाफ है, विशेषकर यदि जनमत निर्धारित करने के लिए उन्हे घुमाया न गया तो। यह ठीक है कि मैं उनके मत से सहमत नहीं हूं। मैं उनको लिख रहा हूँ। पर यदि आपको तनिक भी अवकाश हो तो उनसे अवश्य मिलिये, या सिर्फ देवदास को ही भेज दीजिये। लेकिन मैं इस बारे में दृढ़ता के साथ कोई सम्मति नही दे सकता हू। जो कुछ आपको बिल्कुल ठीक जंचे वही करिये। बाहर के वातावरण से तो आप लोग ही अच्छी तरह परिचित है। मैं तो जो कुछ जानता हू, सुनी सुनाई, इसलिए उसका मूल्य नही के बराबर है।

डा० अ.[1] के साथ मुलाकात हुई। मुलाकात को अत्यन्त असतोषजनक कहना ठीक होगा। उनके साथ मेल होना सम्भव नहीं है। एक प्रकार से मुलाकात सफल भी रही। मैं उन्हें अब पहले की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानने लगा हूं।

कृपया यह पत्र घनश्यामदास और ठक्कर बापा को भी दिखा लीजिये।

बापू

इस समय हम जिन दो कामों में जुटे हुए थे वे ये थे: हिन्दू-मन्दिरों में अछूतों का प्रवेश कराने के लिए मन्दिर-प्रवेश-बिल को पास कराना, और उनके हितों का समर्थन करने के लिए साप्ताहिक 'हरिजन' निकालना।

१४ फरवरी १९३३

परमपूज्य बापू

भरसक चेष्टा करने पर भी हम आगे नहीं बढ़ सके हैं। बिल के लिए २७ तारीख निश्चित हुई है और यदि सबकुछ ठीक-ठाक रहा तो श्री गया-प्रसाद सिंह या श्री एस. सी. मित्र उसे उसी दिन पेश कर देंगे। परंतु मुझे उनके उस दिन पेश होने में काफी सन्देह है। सबसे पहली बात तो यह है कि बहुत से बिल आगे से पड़े हुए हैं। यदि उन सबका वापस लिया जाना सम्भव हो तो भी कम-से-कम एक बिल—हाजी वजीदुद्दीन का शारदा एक्ट को रद्द करने वाला बिल—तो रहेगा ही, और सारा दिन उसीमें लग जायगा। इस प्रकार बिल शायद २७ तारीख को पेश ही न हो सके, और आप जानते ही हैं कि केवल बिल पेश होने से ही कुछ काम न बनेगा। यदि सरकार बिल को पेश करने की विशेष सुविधाएं दे दे तो अन्य बिलों के बावजूद वह २७ को पेश किया जा सकता है।

मैं आपको लिख ही चुका हूं कि यदि बिल गजट में प्रकाशित हो जाय तो उसे बाकायदा पेश हुआ करार दिया जायगा। श्री रंगा अय्यर ने सरकार को लिखा भी है, परंतु अभी तक उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला है। मेरे सुनने में तो अभी तक यही आया है कि हमें कोई विशेष सुविधाएं नहीं मिलेंगी। विशेष सुविधाएं मांगने के लिए व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के हस्ताक्षरों-सहित जो पत्र भेजा जाने वाला था वह भेज दिया गया है। केवल १२ हस्ताक्षर कराये जा सके हैं।

---

१. डा० अम्बेदकर से अभिप्राय है।

नेशनलिस्ट पार्टी में दलबन्दी हो रही है। इसके अलावा नेशनलिस्ट पार्टी और इन्डिपेन्डेन्ट पार्टी में भी प्रतिद्वन्द्विता चल रही है। चेष्टा की जा रही है कि इन्डिपेन्डेन्ट पार्टी भी ऐसा ही एक पत्र भेज दे।

बिल-सम्बन्धी धीमी प्रगति के कारण जो निराशा हो रही है उसकी ओर ध्यान न दिया जाय तो स्थिति काफी संतोषजनक है और देश बडी तेजी के साथ आगे बढ़ रहा है। लोग अस्पृश्यता-निवारण मे अधिकाधिक रुचि दिखा रहे है और परिणाम संतोषजनक है।

पंडितजी एक बड़ा बुरा वक्तव्य देने वाले थे, जिसमे वह बिल के पेश किये जाने का जोरदार विरोध करते; पर उन्हे फिलहाल वैसा वक्तव्य न देने को राजी कर लिया गया है।

हिन्दी 'हरिजन' की बात अभी तक अनिश्चित है। हमने श्री गुप्ते का नाम मुद्रक और प्रकाशक के स्थान पर दिया था। सी. आई. डी. उनके सम्बन्ध मे जाच कर रही है। अब नागपुर पुलिस ने उनके सम्बध मे पूरी रिपोर्ट भेजने को लिखा है। बहुत चेष्टा करने पर भी काम जल्दी से आगे नही बढ रहा है। श्री ठक्कर बापा डिप्टी कमिश्नर से दो बार मिले, पर तो भी कोई प्रगति नही हुई।

विनीत
घनश्यामदास

१८ फरवरी, १९३३

परमपूज्य बापू

फिलहाल कोई महत्वपूर्ण बात लिखने योग्य नही है। दोनों ओर से प्रचार-कार्य जारी है। हम भी लगे हुए है, सनातनी लोग भी। जब हमने कुछ सदस्यों से विशेष सुविधाओं के लिए सरकार से अनुरोध कराया तो विपक्षी दल ने भी कई सदस्यों से इसका विरोध कराया। फलतः हमने निश्चय किया है कि यदि हमे सदस्यों से अपेक्षाकृत अधिक सहायता प्राप्त करनी है तो बिल को व्यवस्थापिका सभा द्वारा पास कराने के मामले मे जल्दबाजी से काम न लेकर उसके वितरण से ही संतोष करना पड़ेगा। मै जानता हू कि आप इस मामले में सहमत नही है। पर मेरी अपनी धारणा तो यह है कि बिल के वितरण में और निर्वाचक समिति की नियुक्ति में वास्तव में कोई भेद नहीं है। यदि निर्वाचक समिति नियुक्त हो जाय तो भी शिमला अधिवेशन से पहले कुछ होना सभव नहीं है और यदि बिल को एक निश्चित अवधि का निर्देश करके सदस्यों मे बाट दिया जाय तो भी निर्वाचक समिति की नियुक्ति सम्भव है, और बिल पर उसके बाद ही

विचार किया जायगा। अतएव बिल के वितरण पर सहमत होकर हम उससे अधिक समय नष्ट नही करेंगे जितना हमे वैसे भी करना पड़ता। इसलिए हमने कुछ सदस्यों से सरकार से अनुरोध कराया है कि बिल पेश हो सके, इसके लिए वह सुविधाए प्रदान करें जिससे जनमत निर्धारित करने के लिए उसे इस शर्त के साथ बाटा जा सके कि वह शिमला अधिवेशन तक व्यवस्थापिका सभा मे लौट आयेगा। आशा है, आपको इस कार्य-प्रणाली पर विशेप आपत्ति नही होगी।

मैंने सुना है कि सनातनी वर्ग ने काफी रुपया इकट्ठा किया है। रुपया दक्षिण से भी आ रहा है और रकम का काफी अच्छा भाग कलकत्ता और बम्बई के मारवाडियो से आया है। कठवा के महाराज ने भी काफी रुपया दिया है। पता नही, इस खबर मे कहां तक सचाई है, पर कुछ सचाई है अवश्य।

खेद है कि आपको राजाजी को और मुझे सार्वजनिक रूप से डांटना पडा। हम दोनों आपस मे झगड़ रहे है कि उस विशिष्ट अंश के लिए किसको दोप देना चाहिए। पर मुझे अच्छी तरह याद पड़ता है कि मैंने राजाजी से कहा था कि उपवास के सम्बन्ध मे कुछ मत कहिये। हां, मेरे कारण भिन्न थे। प्रेस मुलाकात का मसविदा स्वयं राजाजी ने तैयार किया था, और मूल मसविदे मे आपके उपवास की चर्चा तक नही थी। मूल मे जो वाक्य था उसका आशय यही था कि हमने पहले से दुगनी शक्ति के साथ काम करने का और बिल को वर्तमान अधिवेशन मे पास कराने का आपको वचन दिया है। मैंने कहा है कि मै इसपर हस्ताक्षर करने को तैयार नही हू, क्योंकि न तो मैंने कोई ऐसा वादा किया ही था, और न मैं अपने आपको इतना बडा ही समझता हूं कि ऐसा वादा कर सकू। इसके अलावा यह कहना भी गलत होगा कि मै पहले से दुगनी शक्ति के साथ काम करूगा। इसपर यह सुझाया गया कि जनता को इस वात का कुछ तो इशारा जरूर ही देना चाहिए कि इस बिल की ओर आपका ध्यान कितना लगा हुआ है। बस, उपवास-सम्बन्धी अंश का जन्म उसी उत्सुकता से हुआ। पर मैं आपकी बात समझ गया, और मै आपसे इस मामले में सहमत हूं कि उसकी चर्चा नही करनी चाहिए थी।

आशा है, आपका स्वास्थ्य ठीक है।

विनीत
घनश्यामदास

२३ फरवरी, १९३३

परमपूज्य बापू

कल हमने वेस्टर्न होटल में चायपार्टी का आयोजन किया, जिसमें व्यवस्थापिका सभा के प्रायः ३५ सदस्यों ने भाग लिया। जितनी की आशा थी हमे उससे भी अधिक सफलता मिली। कुछ सदस्यों ने बिल के विरोधी होते हुए भी उसके पेश किये जाने और लोकमत का पता लगाने के लिए उसके घुमाए जाने का पक्ष लिया। अब हमारी मांग मामूली-सी है, इसलिए हमें पहले से अधिक समर्थन प्राप्त हो रहा है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि बिल २७ फरवरी को पेश हो जायगा और २४ मार्च को बांट दिया जायगा। कई सदस्यों ने वादा किया कि जो अन्य बिल रास्ता रोके पडे हैं उसके कारण व्यर्थ ही समय नष्ट न हो, इसका वे ध्यान रखेंगे। मंदिर-प्रवेश-सम्बन्धी दूसरा बिल २७ फरवरी को आनेवाला नही है, इसलिए वह सम्भवतः उस दिन पेश नही होगा। मैंने सर ब्रजेन्द्र सिंह से देर तक बाते कीं, और उन्हे याद दिलाया कि शारदा बिल के अवसर पर विशेष सुविधाएं दी गई थीं। पर उन्होंने कहा कि जबतक सरकार को विश्वास नही होगा कि बिल के लिए जगह किये बगैर वह भवन के सामने नही आ सकेगा तबतक वह विशेष सुविधाएं देने की बात तक न सोचेगी।

सरकारी क्षेत्र में अभी तक यह भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि अस्पृश्यता-निवारण एक राजनीतिक पैंतरा मात्र है। यह बड़े परिताप का विषय है, पर अभी उन्हे वास्तविकता पर विश्वास करने मे दिन लगेंगे। परंतु मालवीयजी के रुख ने कम-से-कम एक बात साबित कर दी है, और वह यह है कि अस्पृश्यता-निवारण कार्य को हाथ मे ले कर आप अपने कई सबसे गहरे राजनीतिक मित्रों की मित्रता से वंचित हो गये हैं।

कल की चाय-पार्टी में राजाजी की वक्तृता बड़ी ही प्रभावोत्पादिनी रही; कई सदस्यों ने तो भूरि-भूरि प्रशंसा की। मैं भी अनेक पुराने मित्रों से इतने दिनों के बाद मिला था, इसलिए बड़ा प्रफुल्लित था। इस प्रकार पार्टी बहुत ही सफल रही।

विनीत

घनश्यामदास

बनारस

५ मार्च, १९३३

परमपूज्य बापू

मैं दिल्ली से यहां आया हूं और ५-६ दिन ठहरूंगा। इसके बाद कलकत्ता जाऊंगा। पहले मेरा इरादा था कि इस बार कलकत्ते में आपरेशन करा

लूगा, पर मुझे २० तारीख तक दिल्ली वापस लौटना है, क्योंकि बिल २४ को लिया जायगा। वैसे इस दफा बिल के सम्बन्ध में और कुछ नही करना है। कलकत्ते में मुझे मुश्किल से एक सप्ताह मिलेगा। इस प्रकार आपरेशन इस दफा भी मुल्तवी रहा।

मैंने पंडितजी[1] के साथ देर तक बातचीत की। मुझे मालूम हुआ कि उनसे मथुरादास मिल चुके है। पंडितजी का दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न है। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहते है और किसी को अप्रसन्न नहीं करना चाहते। इसलिए वह जो ढग अपना रहे हैं वह आपको नहीं भायगा।

बातचीत के दौरान मे पंडितजी ने स्वीकार किया कि कानूनी बाधाएं है, पर उन्होंने यह नहीं माना कि उन बाधाओं को विधान सभा की सहायता के बगैर दूर नही किया जा सकता है। उन्होंने तो यहां तक कहा कि यदि उन्हें विश्वास हो जाय कि कुछ सचमुच की कानूनी बाधाएं है तो वह व्यवस्थापिका सभा की सहायता से या अदालत में परीक्षा के बतौर मामला ले जाकर इस त्रुटि को दूर करने की चेष्टा करेंगे। जब मैंने उन्हे सुझाया कि हम काशी विश्वनाथ मंदिर के मामले को परीक्षा के बतौर अदालत में ले जा सकते है तो उन्होंने कहा कि वैसा करना वाछनीय नहीं होगा। पडितजी को विश्वास है कि आपने जो ढंग अपनाया है उससे अस्पृश्यों को मंदिर में ले जाने मे और भी देर लगेगी। वास्तव में वह सनातनी वर्ग के साथ संघर्ष से बचना चाहते है।

उन्होंने जो कहा उससे प्रयागवाले प्रस्ताव के सम्बन्ध में मेरी धारणा की और भी पुष्टि हो गई। उस प्रस्ताव के अनुसार अस्पृश्य लोग विश्वनाथ मदिर मे प्रवेश नही कर सकते हैं।

दिल्ली से रवाना होने से पहले मैंने सरकारी क्षेत्रों से पता लगाया कि बिल के २४ तारीख को पेश होने की क्या सम्भावना है। उन्होंने आश्वासन दिया कि उन्हें कोई बाधा दिखाई नहीं देती है। इसलिए सम्भवतः हम २४ को पहली पाली जीत लेंगे। पर उसकी भावी प्रगति के बारे मे मुझे उतनी आशा नहीं है। मैं यह तो स्वीकार करने को तैयार नहीं हूं कि बिल के वितरण में कोई खास समय नष्ट होगा, पर और भी बहुत-सी ऐसी कठिनाइयां है जिन्हें आप खुद ही समझते होंगे।

विनीत
घनश्यामदास

---

१. मालवीयजी

बिड़ला हाउस
बनारस
८ मार्च, १९३३

परमपूज्य बापू

आपका २ मार्च का पत्र देखा। श्री डेविड की योजना[1] के सम्बन्ध में बात यह है कि अभी तक हमे रघूमल चैरिटी ट्रस्ट से सिर्फ छात्रवृत्तियो के लिए १०००) रुपये मासिक का वचन मिला है। यह रकम केवल बारह महीने तक मिलेगी, पर मुझे आशा है कि साल भर बाद इसे फिर जारी करा लिया जायगा। यह रकम श्री डेविड की योजना वाले काम मे आसानी से लाई जा सकती है।

इस कार्य के लिए अधिक रुपया संग्रह करने के बारे मे मेरा कहना यह है कि अब और अधिक वचन मिलना कठिन-सा हो रहा है, क्योंकि जिन्हे देना था वे हमारे सघ के विभिन्न बोर्डो मे मे एक-न-एक बोर्ड को पहले से ही दे चुके है। अभी हमने रुपया अधिक खर्च नही किया है, और यदि आप सहमत हों तो मेरा सुझाव तो यही है कि फिलहाल केन्द्रीय बोर्ड इस निमित्त कुछ रुपया निकाल दे। वास्तव मे हम शिक्षण-कार्य मे कुछ रुपया खर्च करने की बात पहले से ही सोच रहे है और हमने प्रान्तीय बोर्डो मे भी कह दिया है कि यदि वे अपने हिस्से का भार वहन करने को तैयार होंगे तो केन्द्रीय बोर्ड भी अपने भाग मे आया हुआ भार वहन करेगा। परन्तु मुझे प्रान्तीय बोर्डो से कोई सतोपजनक उत्तर मिलने की आशा नही है, इसलिए फिलहाल केन्द्रीय बोर्ड से ही खर्च करना सबसे अच्छा रहेगा। फर्ज करिये, हम केन्द्रीय बोर्ड से २०,०००) रुपये खर्च करे, और १९३३ भर के लिए १२,०००) रुपये का वचन रघूमल चैरिटी ट्रस्ट से मिल ही गया है, तो कुल मिलाकर ३२०००) रुपये हुए। आप यदि अम्बालाल जैसे मित्रों को २,५००) रुपया देने को लिखे तो वे अवश्य ही देगे। मै भी इतनी ही रकम दे दूगा। इस प्रकार अच्छा खासा श्रीगणेश हो जायगा। कृपया मुझे कलकत्ते के पते पर लिखिये कि मेरे प्रस्ताव के सम्बन्ध मे आपकी क्या राय है।

हमने हरिजन-कार्य के लिए अबतक प्रान्तों के सग्रह को मिला कर दो लाख से कुछ ऊपर इकट्ठा कर लिया है। दाता लोगों को इससे सरोकार नहीं है कि हम उनके पास श्री डेविड की योजना के सिलसिले में जाते है या केन्द्रीय या प्रान्तीय बोर्डों के संग्रह के सिलसिले में। उनसे रुपया हरिजन-कार्य

---

१. हरिजनों को उच्च शिक्षा देने के निमित्त सवर्ण हिन्दुओं से चन्दा लेने की योजना।

के लिए मांगा गया था और उन्होंने दे दिया। इसलिए मै तो यह उचित नहीं समझता हू कि उनके पास श्री डेविड की योजना के सिलसिले में खासतौर से पहुचा जाय। हां, यदि आप चाहेंगे तो मै दिल्ली पहुंचने पर लाला श्रीराम से जरूर मागूगा। आप भी उन्हे अपनी ओर से लिख दीजिये।

हिन्दी 'हरिजन' के मामले मे मै स्वयं दिलचस्पी ले रहा हूं। आपने देखा होगा कि मै उसमे अपने लेख दे रहा हू। आपने जो दोष इंगित किये हैं उनकी ओर मैने हरिजी का ध्यान पहले से ही दिला दिया है। आपकी आलोचना सम्भवतः पत्र के केवल प्रथम अंक के सम्बन्ध में है। मेरी राय मे दूसरा अक पहले की अपेक्षा निश्चय ही अच्छा हुआ है। पर इसमे सन्देह नही कि पत्र को अभी और भी आकर्षक बनाना है। हमें आशा है कि हम भविष्य मे आपको अधिक सन्तुष्ट कर सकेंगे। परंतु यदि कोई आलोचना योग्य बात दिखाई पड़े तो कृपया मुझे लिखते रहियेगा।

मेरा स्वास्थ्य अच्छा ही चल रहा है, और नाक भी कोई विशेष कष्ट नही दे रही है। फिर भी उसकी ओर ध्यान देना तो है ही। अभी इसमे देर लगेगी, क्योंकि उसके लिए एक पखवाड़े के विश्राम की जरूरत पड़ेगी और यह मार्च २४ से आगे सम्भव नही है।

अपने पत्र के अन्त मे आपने "पुनश्च" करके जो नोट दिया है उसमे निर्वाचक बोर्ड की चर्चा है। सम्भवतः श्री डेविड की योजना से अभिप्राय है, पर मुझे आपका सुझाव अच्छी तरह याद नही रहा। कम-से-कम दिल्ली पहुंचने से पहले इस मामले को उठाने मे असमर्थ रहूंगा। मै १९ की सुबह को दिल्ली पहुंचूगा और ठक्करजी से फिर बातचीत करूंगा। इस बीच आपके उत्तर की प्रतीक्षा कलकत्ते मे करूंगा।

विनीत
घनश्यामदास

'हरिजन' को तत्काल सफलता मिली, जैसा कि निम्नलिखित पत्र से स्पष्ट है :

यरवडा केन्द्रीय जेल
९ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास

अंग्रेजी 'हरिजन' अपना खर्च खुद निकाल लेता है। बाजार में बेचकर और चन्दे के द्वारा जो रकम इकट्ठी हुई उसमें से भी बच रहा है, और केन्द्रीय बोर्ड द्वारा दी गई १०४४) रुपये की रकम वैसी ही मौजूद है।

इसलिए इसे वापस किया जा सकता है। बताओ, यह रुपया तुम्हारे पास कैसे भेजा जाय? तुम्हें महाराष्ट्र बोर्ड को भी तो कुछ देना है। रुपया वापस करने के ढंग के बारे में इसलिए पूछ रहा हूं कि मनीआर्डर, हुंडी या चेक के द्वारा रुपया भेजने से कमीशन लगेगा, और मैं वह बचाना चाहता हूं।

गुजराती 'हरिजन' निकालने का भी प्रबन्ध हो गया है। पूना से निकल रहा है। यदि घाटा हुआ तो पहले तीन मास के घाटे का भार बम्बई बोर्ड ने वहन करने की गारंटी दे दी है। पर मुझे तो ऐसी आशंका नहीं है।

तुम्हारा
बापू

पुनश्च :

काशी से लिखा हुआ खत मिल गया है। आपरेशन मुल्तवी रहता जाता है, यह मुझे अच्छा नहीं लगता।

कलकत्ता
१६ मार्च, १९३३

परमपूज्य बापू

मैं कल यहां से दिल्ली जा रहा हूं। देखता हूं कि नाक का आपरेशन स्थगित करने से आप मुझपर नाराज हो गये हैं। पर क्या करूं, लाचार हूं। दिल्ली में कोई अच्छा डाक्टर नहीं है, और कलकत्ते में मैं ठहर नहीं सकता हूं। परंतु यहां मैंने डाक्टर राय और एक नासिका-विशेषज्ञ से अपनी परीक्षा करा ली है। नासिका-विशेषज्ञ आपरेशन कराने की सलाह देता है। उसकी राय है कि नासिका की भीतरी नाली की दिशा फेरने के बजाय नाली को स्थायी रूप से ऐसा बनाना होगा कि फिर बहाव में कोई बाधा उत्पन्न न हो। वास्तव में कई विशेषज्ञों ने मुझे इन दोनों प्रकार के आपरेशनों की सलाह दी है। डा० राय एक-आध महीने बाह्य उपचार कराने की सलाह देते हैं। हर हालत में आपरेशन दिल्ली से वापसी के बाद ही होगा।

जहां तक रचनात्मक कार्य-क्रम का सम्बन्ध है, खास कलकत्ता नगर में काम संतोषजनक ढंग से हो रहा है। प्रायः बीस पाठशालाएं चल रही हैं। हां, सबका संचालन कुछ मारवाड़ी कार्यकर्त्ता ही कर रहे हैं। पर सतीश-बाबू कड़ा परिश्रम कर रहे हैं। मुझे कहना पड़ता है कि प्रान्तीय बोर्ड का काम प्रायः नहीं के बराबर है। रुपया इकट्ठा किया जा रहा है, पर यह

भी खेतान और कई अन्य मित्रो के द्वारा ही । मैने डा० राय मे कलकत्ते की बस्तियों के बाबत बात की थी। आज तीसरे पहर मे उन्हे कुछेक स्थान दिखाने ले जा रहा हू। आशा है, भविष्य मे यह अधिक हाथ बँटायेगे। यह सुझाये जाने पर कि सतीशबाबू को प्रान्तीय बोर्ड मे ले लिया जायगा तो कार्यअधिक सफलता-पूर्वक किया जा सकेगा, मैने डा० राय को इशारा किया और अब सारा मामला उन्हींके ऊपर छोड दिया है।

मैने कुछ मित्रो से श्री डेविड की योजना के लिए ४००) रुपये वार्षिक देने को कहा है। बाजार की हालत इतनी खराब है कि रुपया मागने मे सकोच होता है। पर आशा है कि कुछ लोग देगे। हर हालत मे, जैसा कि मै कह चुका हूं, जो रुपया हमारे पास मौजूद है उससे काम मजे मे शुरू किया जा सकता है। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अंग्रेजी 'हरिजन' स्वावलबी हो गया है। आप जबतक अग्रेजी 'हरिजन' मे अपने कुछ लेखो के द्वारा विशेष आशीर्वाद नही देगे तबतक हिन्दी 'हरिजन' आपकी बराबरी न कर सकेगा। पत्र की मांग बढ रही है। इस सम्बन्ध मे अधिक दिल्ली पहुंचने पर लिखूगा।

जी हा, हमे महाराष्ट्र बोर्ड को रुपया देना होगा, बशर्ते कि अपने बजट का एक तिहाई वे लोग खुद इकट्ठा करे। सम्भवत: वे अभी तक कुछ इकट्ठा नही कर सके है। केन्द्रीय बोर्ड को रुपया भेजने का सुगम उपाय यह है कि रुपया बम्बई मे मेरी फर्म को भेज दिया जाय। वहा से दिल्ली आ जायगा। इससे कमीशन भी बच जायगा।

आपने अखबारो में पढा ही होगा कि बंगाल कौसिल ने पूना पैक्ट को धिक्कारा है। हार भारी नही हुई, पर मुझे कौसिल का रवैया बिलकुल पसद नही आया। मैने इस मामले पर समाचार-पत्रों मे प्रकाशन के लिए तो कुछ नही कहा, जैसा कि उचित भी था, पर साथ ही मेरा विश्वास है कि पूना पैक्ट के विरुद्ध जो प्रचार-कार्य हो रहा है उसका निराकरण करने के लिए कुछ-न-कुछ करना आवश्यक है। मै इस चिट्ठी के साथ 'एडवांस' और 'लिबर्टी' पत्रों के कटिंग भेजता हू जिनसे आपको सम्पादकीय रवैये का अन्दाजा होगा। पर सतीशबाबू[१] का कहना है कि आम जनता पैक्ट के खिलाफ बिलकुल नही है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि बंगाल मे जनमत विभाजित है। स्वय विधानबाबू[२] पैक्ट के पक्ष मे नहीं है, इसलिए अबतक एक भी प्रमुख नेता ने पैक्ट के पक्ष मे जबान नही खोली है।

---

१. श्री सतीश दास गुप्त
२ डा० विधानचंद्र राय.

आज सुबह मैने सतीशबाबू से बात की और उन्हे सर प्रफुल्लचन्द्र राय और डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पास जाने की सलाह दी। यदि वे सहमत हो गये तो प्रस्ताव पास किया जा सकता है। आज तीसरे पहर मै डा० राय से भी बात करूंगा। यह सब सूचनार्थ है।

विनीत
घनश्यामदास

अछूतों के हित के लिए हम जो काम कर रहे थे उसके निमित्त चंदा इकट्ठा करने में कठिनाई हो रही थी।

२१ मार्च, १९३३

परमपूज्य बापू

मै यहा परसो आया। कुछ दिन यही रहूगा। संघ[1] का वार्षिक अधिवेशन अप्रैल के मध्य मे होगा। तबतक मै यही हू।

जब मै कलकत्ते मे था तो डा० विधान को कई बस्तियो मे ले गया था। इनमे हरिजन लोग रहते है। कुल मिलाकर ६०० बस्तिया है जिनमे से लगभग २००बस्तिया पिछले कुछ वर्षो मे सुधर गई है। ये बस्तिया 'सुधरी हुई बस्तिया' कहलाती है। उनमे रोशनी, जल और नाली आदि की व्यवस्था है, इसलिए इनमे सार्वजनिक पाखाने खोलना सम्भव है। बाकी ४०० बस्तियो की दशा अकथनीय है। इनमे कुछ बस्तिया तो शहर के उस पार है, और इनमे नाली आदि की कोई व्यवस्था नही है। ये बस्तिया सडक की सतह के नीचे है, इसलिए पानी की एक-एक बूद इकट्ठी हो जाती है। पानी इकट्ठा न हो, इसलिए हौज बनाने को प्रोत्साहन नही दिया जाता है। पाखानो की व्यवस्था भयकर है, क्योकि नालिया नही है। आदमी गलियों मे निवृत्त होते है और झोपडियों मे रहने वालों को सडक पर इन्हीमे से होकर जाना पडता है। गर्मियों मे अवस्था बड़ी भयकर हो जाती है और बरसात मे घुटनो तक पानी हो जाता है, क्योंकि उसके बह निकलने का कोई मार्ग नही है। इस अवस्था का अत दो प्रकार से ही किया जा सकता है। या तो इन बस्तियो को ढहा दिया जाय, या नालियों की व्यवस्था की जाय। मुझे बताया गया है कि सारे इलाके में नालियों की व्यवस्था करने मे ५० लाख रुपये लगेगे, जिसका प्रश्न ही उठाना बेकार है। एक और उपाय यह भी है कि इन इलाकों मे कुछ पप लगा दिये जाय, जो इकट्ठे हुए पानी को पम्प कर दे। समस्या का हल आसान नही है, और समस्या को हल करना

---

[1] भारतीय वाणिज्य उद्योग-संघ

नितान्त आवश्यक भी है। डा० राय का कहना है कि वह अपने कारपोरेशन के अमले के सामने भी लाचार हैं और कौंसिलरों के सामने भी। अधिकांश कौंसिलरों का इन बस्तियों में प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष हित है। परंतु जब इन बस्तियों को सुधारने का प्रश्न उठाया जाता है तो ये लोग विरोध करते हैं। मैंने देखा कि डा० विधान हृदय से कुछ करना चाहते हैं। वास्तव में जिन बस्तियों में सुधार की गुंजाइश थी उन्हें पहले से ही सुधार दिया गया है। उन्होंने अन्य बस्तियों को भी हाथ में लेने का वचन दे दिया है। यह आपकी सूचनार्थ है।

मैंने 'हरिजन' में आपका लेख देखा है, जिसमें टट्टी ले जाने के आधुनिक ढंग की चर्चा की गई है। मैंने इस प्रश्न पर भी डा० विधान से बात की। उन्होंने मुझे बताया कि जब उन्होंने अपनी इस नई प्रणाली को कारपोरेशन में जारी करना चाहा तो मेहतरों ने घोर विरोध किया। बात यह है कि यदि टट्टी गाडियों में ढोई जायगी तो उसके लिए इतने भंगियों की दरकार नहीं होगी, इसलिए जब उन्होंने इस सुधार की बात सुनी तो तुरत विरोध करना शुरू कर दिया। साथ ही कुछ कौंसिलर भी ऐसे हैं जो मेहतरों के हितैषी होने का दम भरते हैं। उन्होंने भी इन मेहतरों को भड़काया। आप कह सकते हैं कि मेहतरों की संख्या घटाये बगैर भी टट्टी गाडियों में ढोई जा सकती है, पर आदमियों की दरकार न होने पर भी उन्हें रखे रहने की आशा करना कारपोरेशन के साथ न्याय नहीं होगा।

हिन्दी 'हरिजन' में मैं बडी दिलचस्पी ले रहा हूं। इस सम्बन्ध में मैं आपको दो-एक दिन बाद फिर लिखूंगा। मैंने खुद भी उसमें कई लेख लिखे थे। पर अब नहीं लिख रहा हूं, क्योंकि पता नहीं वे आपको अच्छे भी लगे या नहीं। मुझे कलकत्ते में मालूम हुआ कि उन्हें मारवाडियों ने ध्यान-पूर्वक पढा और सभी हिन्दी पत्रों ने उन्हें उद्धृत किया। आपके कुछ लेखों का अनुवाद मुझे पसन्द नहीं आया। रा० द्वारा किया गया अनुवाद तो सबमें बुरा था। इसलिए यदि अनुवाद स्वयं आपकी पसन्द का हो तब तो बात दूसरी है, अन्यथा अपने लेख उनके पास सीधे न भेजिये। पत्र के सम्बन्ध में अब आपकी क्या राय है, सो लिखने की कृपा करियेगा।

श्री डेविड की योजना के सम्बन्ध में यह जानकर मुझे सचमुच दुःख हुआ कि इस प्रगति से आप सन्तुष्ट नहीं हैं। मैं जानता हूं कि मैंने यह काम सरगर्मी के साथ हाथ में लिया था, परंतु धन-संग्रह के सम्बन्ध में जैसा मैंने अनुमान कर रखा था उसके विपरीत परिणाम से मुझे घोर निराशा हुई। मैंने समझा था कि जिनके पास पैसा है, कम-से-कम वे तो खुशी-खुशी देंगे, पर कलकत्ते में मैं ५०,०००) रुपये से अधिक एकत्र नहीं कर सका। दिल्ली

में मै दरवाजे-दरवाजे फिरा और फिर भी १,५००) रुपये बड़ी मुश्किल से एकत्र कर सका। एक बड़े ठेकेदार ने, जो कांग्रेसवादी है, और काफी पैसे वाला है, देने का वादा तो किया, पर दिया कुछ नही। मैने कानपुर मे अपने कई मित्रों को लिखा है। वे पत्र तो सुन्दर लिखते है, पर देते-दिलाते कुछ नही है। अहमदाबाद से भी निराशा ही हुई। बम्बई मे चार मारवाड़ी फर्मों ने देने का वचन दिया था, पर अभी तक कुछ नही दिया है। इसका कारण यह नही है कि लोग इस कार्य को पसन्द नही करते है। असली बात यह है कि हर कोई जेब से पैसा निकालने से बचना चाहता है। मुझे यह जानकर बडा दु ख होगा यदि आपकी यह धारणा हो कि पहले तो मैने काम सरगर्मी के साथ हाथ मे लिया, और फिर रुपया इकट्ठा नही कर सका। आप मुझसे जितना देने को कहे, देने को तैयार हू, पर दूसरो से पैसा निकालना मेरे बूते के बाहर की बात है। आपको पत्र लिखने के बाद से मै तीन और जगहो से २,५००) रुपये एकत्र करने मे सफल हुआ हू। इस रुपये का उपयोग भी श्री डेविड की योजना मे हो सकता है। मैने कलकत्ते मे कई मित्रो को सुझाया कि किश्तो मे दे दो, पर सतोपजनक उत्तर नही मिला। ताजा सग्रह के सम्बन्ध मे यही स्थिति है। पर मै आपसे इस बात मे सहमत नही हू कि केन्द्रीय कोष मे रुपया न लिया जाय। जब रुपया मौजूद है तो उसे काम मे क्यो न लिया जाय? यदि उसे काम मे नही लिया जायगा तो वह धीरे-धीरे कार्यालयो के खर्च और आवश्यक बातों में खप जायगा। कई प्रान्तीय बोर्ड तो रचनात्मक कार्य पर एक पैसा तक खर्च नही कर रहे है। दिल्ली प्रान्तीय बोर्ड को ठक्कर बापा ने और मैने इसके लिए आडे हाथो लिया है। अब मैने सारे प्रान्तीय बोर्डो से कैफियत तलब की है कि उन्होने दफ्तर के खर्च मे कितना लगाया और रचनात्मक कार्य मे क्या खर्च किया। इसलिए मै तो फिर यही कहूगा कि आप डेविड-योजना पर २०,०००) रुपये केन्द्रीय बोर्ड मे से और ६,०००) रुपये रायमल चैरिटी ट्रस्ट के खर्च कर सकते है। रायमल चैरिटी ट्रस्ट ने १२,०००) रुपये का वचन दिया है, पर इसका आधा बगाल मे खर्च किया जायगा। डा० विधान राय छोटी-छोटी छात्रवृत्तियों मे खर्च करना चाहते है, इसलिए बगाल के हिस्से मे आया हुआ रुपया डेविड-योजना के काम मे नही आ सकेगा। इस प्रकार आपके पास २०,०००) रुपये केन्द्रीय बोर्ड के, ६,०००) रुपये रायमल चैरिटी ट्रस्ट के, २५००) रुपये मेरे, २५००) रुपये जानकी देवी के और वे २,५००) रुपये हो जायंगे जो मैने हाल मे इकट्ठा किये है। कुल मिलाकर ३३,५००) रुपये हुए। कुछ और भी सग्रह हो जायगा। पर यदि हम ४०,०००) रुपये से काम आरम्भ करे तो रकम अच्छी खासी है। जब आप निश्चय कर लेंगे तो मै श्री

ठक्कर बापा से निर्वाचन-समिति के बारे में बात करूंगा। कृपया मेरे सुझाव पर अच्छी तरह विचार करने के बाद मुझे लिखियेगा।

मैं कलकत्ते के कुछ सनातनी मित्रों से भी मिला। वे भी मीठी-मीठी बातें तो करते हैं, पर देते-दिलाते कुछ नहीं।

आशा है, आप सानन्द है। सरदार, महादेवभाई और जमनालालजी को मेरा नमस्कार।

विनीत
घनश्यामदास

बापू ने अपने दूसरे पत्र में सबसे पहले इस बात पर जोर दिया कि मैं आपरेशन को स्थगित न करूं:

यरवडा केन्द्रीय जेल
२३ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास

तुम्हारा पत्र और कटिंग मिले। तुम जबतक आपरेशन के लिए समय नहीं निकालोगे तब तक तुम्हें समय नहीं मिलेगा। कार्यव्यस्त आदमियों का ऐसा ही होता है। इसलिए स्वास्थ्य की बात को भी व्यापार की बात जैसा समझना आवश्यक है। मैं यह एक दार्शनिक तथ्य नहीं, बल्कि एक ऐसा व्यावहारिक सत्य बता रहा हूं जिसका प्रयोग मैंने स्वयं अपने जीवन में भी किया है और दूसरों के जीवन में भी। इसलिए मुझे आशा है कि तुम इलाज के लिए एक महीना अलग निकाल लोगे और डाक्टर के साथ पहले ही तय कर लोगे, और यह भी संकल्प कर लोगे कि डाक्टर को दिया हुआ वक्त टल न जाय।

कलकत्ते के कार्य के सम्बन्ध में जो लिखा सो जाना।

श्री डेविड की योजना के सम्बन्ध में मैं और अधिक सुनने की आशा करता हूं।

जब मैं हिन्दी 'हरिजन' को इस योग्य देखूंगा कि उसके सम्बन्ध में अंग्रेजी 'हरिजन' के स्तम्भों में कुछ लिखूं, तो तुरंत लिखूंगा। इस सम्बन्ध में मैं ठक्कर बापा और वियोगी हरि को खुलासा करके लिख ही चुका हूं, इसलिए और अधिक लिखना अनावश्यक है। तुम उसके लिए जितना समय दे सकते हो दोगे, और उसमें इतनी खबर और हिदायतें दोगे कि किसी कार्यकर्ता का काम उसके बगैर नहीं चले। तुम कहते हो कि केन्द्रीय बोर्ड को दिया जाने वाला रुपया मैं बम्बई में तुम्हारी फर्म के पास भेज दूं।

इस तरह कमीशन कैसे बचेगा ? यदि नोट किसी बम्बई आते जाते के हाथ भेज दिये जाये तो बात दूसरी है, पर उसमे रुपया खो जाने का भी तो भय है। मुझमे इतना साहस नही है।

यरवडा पैक्ट को बंगाल कौंसिल ने धिक्कारा है, पर उससे मैं विशेष उद्विग्न नही हुआ हू, न मेरा यही खयाल है कि यह समय मुकाबले का प्रचार कार्य आरम्भ करने का है। जब तक सारे दल राजी न होंगे, पैक्ट में हेर-फेर असम्भव है। जब दलो के साथ बाकायदा मशवरा कर लिया जायगा तो बगाल के विरोध की ओर ध्यान देने के लिए काफी समय मिलेगा। मेरी सलाह ली गई थी, और मैने अपनी राय भेज दी है। साथ मे उसकी नकल भेजता हू। परन्तु बगाल मे क्या करना उचित होगा, यह तो मेरी अपेक्षा तुम और सतीश बाबू ही ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हो।

तुम्हारा
बापू

तीन दिन बाद उन्होने फिर लिखा;

२६ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास

दो तीन बात अभी लिखता हू, बाकी पीछे।

हिन्दी हरिजन मे पढने के लायक हम एक ही चीज पाते है, वह तुम्हारे लेख। तुम्हारी भाषा मीठी और तेजस्विनी है। लेकिन इतने ही मे मुझे सतोष नही हो सकता है। जबतक वहा अच्छा प्रबन्ध नही हुआ है तबतक ज्यादातर यही से लेख भेजे जायगे। महादेव और मै अनुवाद करेंगे, वियोगीजी हम लोगों की हिन्दी को दुरुस्त कर लेवें। इसके उपरात सघ की तरफ से नोटिस, सूचना, प्रान्तीय खबरे इत्यादि आनी चाहिए। तब तो हिन्दी हरिजन की हजारो कापिया बिकनी चाहिए। सेवा सघ का यह मुख्य गजट बन जाना चाहिए। रामदासजी को और किसी को अनुवाद के लिए यहा से लेख भेजने का मैने इन्कार किया है। ऐसे हरिजन चल ही नही सकता है। हिन्दी मे अनुवाद न मिले, या वियोगीजी खुद न कर सके और कोई दूसरा प्रबन्ध न हो सके तो हि० स बन्द करना आवश्यक समझता हू।

कलकत्ते की बस्ती के बारे मे कुछ ज्यादा कार्य होने की आवश्यकता देखता हूं।

डेविड योजना के बारे में मै समझता हू कि इसका चिन्तन किया जाय। मै अधिक लिखूगा। परीक्षक बोर्ड बनाओ।

बापू के आशीर्वाद

२८ मार्च, ३३

परमपूज्य बापू

मै दो एक बातों के बारे मे आपकी सलाह चाहता हू।

जब मैं बनारस में था तो मुझे मालूम हुआ कि कुछ डोम जिन्होंने कुछ दिन पहले अपना धर्म छोड़ दिया था, अब इस आन्दोलन के फलस्वरूप हिन्दू धर्म मे वापस आना चाहते है। वहा के आर्य समाजियों ने संघ से आर्थिक सहायता मांगी जिससे उन्हे शुद्ध किया जा सके। मुझे इसमें कोई बुराई दिखाई नही दी, इसलिए मैंने अपनी जेब से सहायता देने का वचन दे दिया। अब प्रश्न यह है कि सघ को ऐसे मामलो मे दिलचस्पी लेनी चाहिए या नही, और यदि नही तो क्यों? जब हम ऐसे मामलों मे दिलचस्पी लेने से इन्कार कर देते है तो लोगों को यह वैध शिकायत करने का अवसर मिल जाता है कि हम दूसरो को खुश करने के लिए हिन्दू हितों का बलिदान करने को तैयार रहते है। इस आलोचना मे काफी सच्चाई है। मै शुद्धि की खातिर 'शुद्ध' करने के और ईसाइयों और मुसलमानो को अपना धर्म छोडने को राजी करने के पक्ष मे नही हू। परंतु यदि किसी हिन्दू ने अपना धर्म छोड़ दिया है और वह हिन्दू धर्म में पुनः वापस आना चाहता है तो मै तो उसे प्रोत्साहित न करने का कोई कारण नहीं देखता हू।

मैंने बेथल[1] को लिखा था कि हिन्दी 'हरिजन' के लिए कागज मुफ्त दें। आपको पता ही होगा कि वह टीटागढ पेपर मिल्स के मैनेजिंग एजेंट है। बेथल ने कहा कि पत्र में विज्ञापन देने की बात पर तो विचार किया जा सकता है, पर कागज उपहार-स्वरूप देना सम्भव नही है। मैंने कहा कि पत्र मे लिख देंगे कि टीटागढ पेपर मिल्स ने हमे कागज मुफ्त दिया है, तो यही विज्ञापन का काम करेगा। उन्होंने कहा कि इतने से काम नही चलेगा। मैंने कहा कि हम पत्र में विज्ञापन बिल्कुल नही छापते है, इसलिए टीटागढ़ पेपर मिल्स का विज्ञापन छापने मे असमर्थ है। अब मामला डायरेक्टरों के बोर्ड के सामने पेश है। टीटागढ पेपर मिल्स का विज्ञापन लेने के सम्बन्ध मे आपकी क्या सम्मति है?

पता नही, हिंदी 'हरिजन' के सम्बन्ध मे आपकी क्या राय है। मेरा

---

१. **सर एडवर्ड बेथल।**

तो खयाल है कि कुल मिलाकर पत्र अच्छा-खासा है। अभी इसे आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने में देर लगेगी। पर मैं समझता हूं कि पत्र बराबर उन्नति करता जा रहा है और तीन-चार महीने में पूर्णतया अपने आप पर निर्भर करने लगेगा।

विनीत
घनश्यामदास

बापू के दूसरे पत्र से पता चलता है कि कलकत्ते की गन्दी गलियों की सफाई के बारे में उनका दिमाग किस प्रकार व्यावहारिक ढंग से काम कर रहा था

यरवडा सेन्ट्रल जेल
२८ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास

मैंने २६ तारीख को हिन्दी में जो पत्र लिखा था, आशा है, वह तुम्हें मिल गया होगा। कलकत्ते की बस्तियों की समस्या को सामूहिक रूप से हल करना होगा, एक-एक, दो-दो बस्तियां करके नहीं। इसलिए अब जब कलकत्ता जाओ तो वहां कारपोरेशन के प्रमुख कौंसिलरों की एक आपसी बैठक बुलवाकर उनसे मिलो। यदि इस समस्या का हल करने में कुछ व्यक्तियों के स्वार्थों को आघात पहुंचता है तो इससे क्या, काम तो करना ही है। तुमने मुझे जो कुछ लिखा है उससे मैं तो यही समझता हूं कि सबसे सस्ता उपाय बस्तियों को तोड़ देना है। पाखाना हटाने के उन्नत और मानवतापूर्ण साधन काम में लाना जरूरी भी है और आगे चलकर मितव्ययितापूर्ण भी सिद्ध होगा। सभी आधुनिक साधनों को काम में लाने में आरम्भ में तो अधिक खर्च होता है, पर अन्त में वे मितव्ययितापूर्ण सिद्ध होते हैं। उनका विरोध व्यर्थ की बात है। इस समस्या को हल करने में जो कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं उनके पीछे उन लोगों की उदासीनता छिपी हुई है, जो मुंह से तो सुधार की आवश्यकता बताते हैं, पर उसके लिए किसी प्रकार का त्याग करने को तैयार नहीं होते हैं। तुम्हें इस उदासीनता को सक्रिय सहानुभूति में परिणत करना है। मार्ग अपने आप निकल आयगा।

हिन्दी 'हरिजन' के सम्बन्ध में मैं तुम्हें परसों लिख चुका हूं कि पहले लेख को छोड़कर बाकी लेखों में यदि कोई लेख पढ़ने योग्य थे तो वे तुम्हारे लेख थे। तुम्हारी शैली मनोहर, सीधी-सादी और मुहावरेदार है। तुम विषय पर सीधे और बोधगम्य ढंग से पहुंचते हो। मेरे लेखों का अनुवाद

दोषपूर्ण अवश्य था, पर अब तो अनुवाद यहीं से भेजे जायंगे, उनकी हिन्दी वहां परिष्कृत कर ली जाया करेगी। इससे खर्च भी कम होगा और पत्र का स्टेण्डर्ड भी ऊंचा होगा।

डेविड-योजना की चिन्ता मत करो। मै तो तुम्हे बताना चाहता था कि उस पर मैने कैसे लिखा। पर तुम्हारी कठिनाई को मै समझता हूं। यदि जरूरत हुई तो केन्द्रीय कोष का तो सहारा लेना पड़ेगा ही। परन्तु पहले देख ले कि पूरी रकम देनेवाले आधे दर्जन दाता भी मिलते हैं या नही। मै निराश नही हुआ हू, पर सुन्दर पत्र तैयार करने का समय ही नही मिलता है। पर इधर मे समय निकालूंगा। जहां एक दो नाम मिले कि उनके साथ तुम्हारे नाम की भी घोषणा कर दूंगा।

तुम्हारा
बापू

इन दिनों हमारा पत्र-व्यवहार अधिकतर 'हरिजन' के प्रकाशन और उसकी रूपरेखा तथा विषय-सूची तय करने के बारे मे होता था।

३१ मार्च, १९३३

परमपूज्य बापू

आपका २३ तारीख का पत्र मिला और २६ तारीख का हाथ का लिखा पत्र भी मिला। १५ अप्रैल को संघ[1] की वार्षिक बैठक होगी। इसमें दो-तीन दिन लगेगे। इसके बाद अर्थात् अप्रैल के अन्त में, मै कलकत्ता जा कर आपरेशन करा डालूगा। मैने आपरेशन का लगभग निश्चय कर लिया है।

केन्द्रीय बोर्ड के पास रुपया भेजने का एक और अमली सुझाव पेश करता हूं। पूना मे श्री शिवलाल मोतीलाल की एक काटन मिल है। यदि रुपया उन्हे दे दिया जायगा तो वे दिल्ली मे केन्द्रीय बोर्ड को रुपया दे देगे।

यरवडा पैक्ट के विरुद्ध बंगाल की तू-तू, मैं-मैं मे अब कोई दिलचस्पी नही ले रहा हू। जब मै कलकत्ते मे था तो सतीशबाबू से भी मिला था। उनका कहना है कि जब कवीन्द्र और आचार्य दौरे पर से लौटेगे तो उस समय कुछ करना आवश्यक समझा गया तो कार्रवाई करेंगे।

श्री ठक्कर बापा आपसे मिलने जा ही रहे हैं। निर्वाचन बोर्ड के

---

१. भारतीय वाणिज्य उद्योग-संघ

सम्बन्ध मे आपसे खुलासा बात कर लेंगे। इसके बाद आपकी इच्छा के अनुरूप बोर्ड नियुक्त कर दिया जायगा।

विनीत
घनश्यामदास

३१ मार्च १९३३

परमपूज्य बापू

हिन्दी 'हरिजन' के सम्बन्ध मे आपका सुझाव पढ़ ही चुका हूं। मेरी अपनी सम्मति तो यह है कि पत्र उन्नति करता जा रहा है। आर्थिक दृष्टि से भी पत्र समय आने पर अपना खर्च स्वय निकालने लगेगा। पत्र की वर्तमान आर्थिक अवस्था इस प्रकार है :

हम कोई १,००० प्रतिया बेच रहे है। यदि २,५०० प्रतिया बिकने लगेगी तो पत्र स्वावलंबी हो जायगा। १२ पृष्ठों की २,५०० प्रतियों पर प्रति सप्ताह इस प्रकार खर्च बैठेगा.

छपाई	४५) रुपये
कागज	३३) रुपये
मुड़ाई	५) रुपये
डाक और रेल-खर्च	२८) रुपये

लगभग ४८०) रुपये प्रतिमास आयगा। कर्मचारियो का खर्च १६०) रुपये प्रतिमास लगाने के बाद २,५०० प्रतियों पर ६४०) रुपये प्रतिमास खर्च बैठेगा।

यदि हम ये सारी २,५०० प्रतिया बेच सके, आधी ग्राहको को और बाकी एजेंटों के जरिये, तो हमे औसत तीन रुपये प्रति पड जायगा, जो साल भर मे ७,५००) रुपये हुए। २,५०० प्रतिया खपाना मुश्किल नही है। पत्र का विज्ञापन अच्छी तरह नही हुआ है। मैंने अपने कई निजी मित्रों को पत्र की बिक्री बढ़ाने को लिखा है। पता नही वे कहा तक सफल होंगे। हम एक एजेंट को घूमफिर कर ग्राहक जुटाने के लिए बाहर भेज रहे है। आशा है कि इस तरह भी काफी ग्राहक मिल जायगे। यदि आप पत्र की मौजूदा क्वालिटी मे संतुष्ट हों और एक विशेष सार्वजनिक अपील निकाले तो अच्छा रहे। इसकी तुलना गुजराती के पत्र से की जाय तो यह कुछ बहुत घटिया साबित नही होगा। कृपया पत्र का छठा अर्थात् ३१ मार्च का संस्करण देखियेगा। इसमे श्री ठक्कर बापा के दो लेखों को, श्री कालेलकर के एक लेख को, और सम्पादकीय

टिप्पणियों को छोड़कर बाकी सब आपके ही लेख हैं। श्री ठक्कर बापाके लेख मेरी राय में अच्छे है, कम-से-कम उनका वह लेख जो १०वे पृष्ठ पर छपा है। श्री कालेलकर का लेख भी बुरा नही है, पर उसे न दिया जाता तो कोई हानि नहीं थी। बाकी सब लेख आपके हैं। साप्ताहिक समाचार अधिक महत्व के नही हैं, पर जो भी मिलें उन्हें छापना चाहिए। इस समय मेरी शिकायत तो अनुवाद के सम्बन्ध में है। हरिजी ने अंग्रेजी से शब्दशः अनुवाद किया है सो मुझे पसन्द नही आया। मैंने उनसे कह दिया है कि अंग्रेजी के मुहाविरों का ज्यों-का-त्यों अनुवाद करने के बजाय शुद्ध हिन्दी के मुहाविरे व्यवहार मे लावे। आशा है कि आपको भी यह बात पसन्द आयेगी। महादेवभाई द्वारा किये गए अनुवाद भी उतने ही बुरे हैं, इसके अलावा मै यह भी नही चाहता हू कि आप अपने ऊपर व्यर्थ का भार लादे। कृपया अनुवाद का काम वियोगीजी के जिम्मे छोड़ दीजिये; देखें हम कहा तक सफल होते हैं। यदि आप किसी लेख का स्वयं अनुवाद करना चाहे तो मेरी प्रार्थना यही है कि शब्दशः अनुवाद करने के बजाय उसी विषय पर स्वतत्र लेख लिखें। वह पढ़ने मे भी अधिक रोचक होगा। उदाहरण के लिए आपके लेख का जो अनुवाद ३१ मार्च के संस्करण में ८वे पृष्ठ पर छपा है वह पढ़ने मे महादेवभाई के कई अनुवादों की अपेक्षा कही भला लगता है। इसी प्रकार आपका तीसरे पृष्ठ पर छपा गुजराती का अनुवाद भी बडा सुन्दर हुआ है। बाकी अच्छे नही रहे। इसलिए मै यही निवेदन करूंगा कि या तो आप मूल लेख भेज दिया करें या स्वतंत्र अनुवाद भेजा करे। यदि आप चाहे तो अंग्रेजी या गुजराती के मूल लेखों के अविकल अनुवाद का काम हमारे जिम्मे कर दे। अनुवाद-सम्बन्धी दोष को बाद देने पर मेरी अपनी राय तो यह है कि ३१ मार्च का अक तो स्टैण्डर्ड के अनुरूप ही हुआ है। कृपया बताइये, आप इस मामले में मुझसे सहमत है या नही। यदि आपकी राय दूसरी हो तो अपनी निश्चित आलोचना भेजने की कृपा करियेगा।

भविष्य के लिए मेरा सुझाव है, और मैंने यही बात वियोगीजी से कही है, कि पत्र १२ पृष्ठ का रहे और छोटे टाइप में छपे। सामग्री के सम्बन्ध मे बात यह है कि जहा तक आपके लेखों का ताल्लुक है, मूल और अनुवाद सब जाने चाहिए। दो-एक टिप्पणियां सम्पादक की ओर से हों, पर दो कालम से अधिक नही। यदि आपके मूल लेख मिल सके तो अग्र-लेख का स्थान उन्हे दिया जाया करे। इसके अलावा साप्ताहिक रिपोर्ट भी छपनी चाहिए। पौराणिक कहानियां या भक्तमाल जैसी पुस्तकों में से ली गई कहानियां भी दी जानी चाहिए। इस प्रकार की सामग्री के लिए

भी एक पृष्ठ लिखना चाहिए। आशा है, आपको मेरा सुझाव पसन्द आयगा,। यदि नही तो कृपया अपने सुझाव से सूचित करियेगा। आशा है, १२ पृष्ठों का पत्र निकालने की बात आपको पसन्द आयेगी। घटाकर ८ पृष्ठों का भी किया जा सकता है। पर मेरी राय में १२ पृष्ठों लायक काफी सामग्री है, इसलिए पत्र के साइज को घटाना जरूरी नही है। अबतक जो रिपोर्टें निकली है वे महत्वपूर्ण नही है। मै प्रान्तीय बोर्डों का ध्यान इस ओर दिला रहा हू।

इस पत्र के साथ 'पतित बन्धु' मे एक कटिंग भेज रहा हू। इससे आपको पता चल जायगा कि हम किस प्रकार की कहानिया छापना चाहते है।

पता नही, अंग्रेजी 'हरिजन' की एक प्रति बंगाल के गवर्नर के सेक्रेटरी के पास भेजना आपको पसन्द आयेगा या नही। गवर्नर के सम्बन्ध मे मेरी राय का आपको पता है ही। आदमी अच्छा है और आपको हृदय से समझना चाहता है। खर्च मै दूगा। यदि आप मुझसे सहमत हो तो एक प्रति हर शुक्रवार को प्राइवेट सेक्रेटरी के पास भेजी जा सकती है। एक पत्र प्राइवेट सेक्रेटरी के नाम इस विषय का भेजा जा सकता है कि यह प्रति गवर्नर के लिए है।

कल मै ग्वालियर जा रहा हू। कोई दस-बारह दिन बाद लौटूगा।

विनीत

घनश्यामदास

१० अप्रैल १९३३

परमपूज्य बापू

आपका २८ मार्च का पत्र मिला। कलकत्ते से हरिजन-कार्य के सम्बन्ध में मैं तो खुद ही कहता हूं कि कुछ-न-कुछ करना पड़ेगा। मै कलकत्ता पहुंच कर इस मामले को उठाऊगा। कठिनाइया मौजूद है ही, इसलिए सफलता प्राप्त करना उतना आसान नही है। पर हमें तो भरसक चेष्टा करनी है इसलिए मै इस मामले को पूरी लगन के साथ हाथ में लूगा।

आपने यह नही लिखा कि आप टीटागढ पेपर मिल का विज्ञापन स्वीकार कर सकते है या नही। बैथल हमे विज्ञापन देने को तैयार है, पर कागज मुफ्त देने को तैयार नही हैं।

मुझे कानपुर के लाला कमलापत से ३,०००) रुपये मिले है। यह रुपया वह छात्रवृत्तियों में खर्च करना चाहते है। मैंने पंडित कुंजरू को लिखकर पूछा है कि यह रकम वह किस रूप में खर्च करना चाहते है। यदि वह इसे श्री डेविड की योजना पर खर्च करने को तैयार होंगे तो हमें ३,०००) रुपये और मिल जायंगे। हर हालत में रुपया युक्तप्रान्त में ही खर्च किया जायगा।

वैसे तो अन्य संस्थाए भी खामोशी के साथ काम कर रही है, पर उस दिन मैंने एक हरिजन बालिका विद्यालय के पारितोषिक वितरणोत्सव का सभापतित्व किया तो वहा के कार्यकर्त्ताओं की कार्यशीलता का मेरे ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ा। मैंने उनसे अपनी कार्यशीलता की सूची तैयार करने को कहा है। यदि हम संतुष्ट हुए तो मेरी राय मे बोर्ड को इस सस्थाओं की सहायता के लिए कुछ रकम निकालनी चाहिए।

विनीत
घनश्यामदास

११ अप्रैल, १९३३

परमपूज्य बापू

आपका ३-४ अप्रैल का पत्र मिला। 'हरिजन' की एक प्रति बंगाल के गवर्नर के प्राइवेट सेक्रेटरी के पास भेजने के सम्बन्ध मे आप जो कहते है सो जाना। यदि मैं आपके तर्क को ठीक समझता हूं तो प्रधान की हैसियत से मेरा अपने किसी भी मित्र को हरिजन भेजना औचित्यपूर्ण होगा। अतएव मैं चाहूंगा कि 'हरिजन' की एक-एक प्रति मेरे खर्च से निम्नलिखित सज्जनो के पास भेज दी जाया करे.

१. बगाल के गवर्नर के निजी मत्री
२. सर एडवर्ड बैन्थल, कलकत्ता
३. सर वाल्टर लिटन मार्फत 'इकानामिस्ट', लन्दन
४. सर हैनरी स्ट्रेकोश, इंडिया आफिस, लन्दन
५. लार्ड रीडिंग, लन्दन
६. लार्ड लोदियन, लन्दन

मैं ३-४ दिन के लिए दिल्ली जाऊंगा और यहां फिर वापस आकर पिताजी के नासिक से लौटने तक उनकी प्रतीक्षा करूंगा। पिताजी यहां हरद्वार को जाते हुए मई के पहले सप्ताह मे आयेंगे। उन्हे विदा करके मैं सीधा कलकत्ते के लिए रवाना हो जाऊंगा और वहां कम-से-कम दो महीने रहूंगा।

मेरा लड़का और पुत्रवधू जल्दी ही पूना जायंगे। दोनों का स्वास्थ्य अच्छा नही है। बहू तो काफी बीमार है। मैंने उनसे प्राकृतिक चिकित्सा-विशेषज्ञ डा० मेहता का इलाज कराने को कह दिया है। बहू तो चल तक नहीं सकती है, पर लड़का केवल दुर्बल है, कोई खास शिकायत नही है। वह बीच-बीच में आपके दर्शन करने आयगा। आशा है, आप उसे अनुमति देगे।

विनीत
घनश्यामदास

: ६ :

हरिजनों के सम्बन्ध में कुछ और

सन् १९३३ में बापू के जेल से बाहर आने से हमारे हरिजन-उद्धार-कार्य में नई जान आ गई।

ग्वालियर
२९ अप्रैल १९३३

परमपूज्य बापू

जैसा कि आप इस पत्र से देख लेंगे, मै ग्वालियर मे पिताजी की प्रतीक्षा कर रहा हूं। वह अगले महीने की तीसरी तारीख को यहा पहुंचने वाले है। इसके बाद मैं हरद्वार जाऊंगा और उन्हे विदा करने के बाद कलकत्ते के लिए रवाना हो जाऊगा। कलकत्ता ७या ८ मई तक पहुच जाऊंगा।

'हरिजन' मे स्वय लेख लिखने के सम्बन्ध मे सबसे बड़ी रुकावट यह है कि मै तभी लिख पाता हू जब लिखने की इच्छा होती है। पर मै अनुवाद-कार्य मे हाथ बंटा रहा हूं। 'हरिजन' के गताक मे एंड्रयूज के पत्र के सम्बन्ध में आपके लेख का अनुवाद प्राय. मेरे ही द्वारा, या मेरी सहायता से, तैयार किया गया था। मै कलकत्ते से लेख लिखकर भेजने की फिर चेष्टा करूगा। हो सकता है, मै पत्र का उपयोग कलकत्ते की बस्तियों के सुधार के प्रचार-कार्य के लिए करू।

पिताजी आपसे मिले, इससे मुझे आनन्द हुआ। मामूली-सी शिक्षा है, पता नही उनकी बातचीत का आप पर कैसा प्रभाव पड़ा। पर उनका हृदय बड़ा निर्मल है, और वह आपकी बड़ी भक्ति करते है। स्वयं कट्टर सनातनी होते हुए भी वह आपके विचारों की सराहना करते है और अपने निजी ढंग से आपके पक्ष मे प्रचार करते रहते है।

जी हां, कलकत्ता पहुचते ही आपरेशन करा डालूगा। आपको याद ही होगा कि पूना और बम्बई में डाक्टरों की राय थी कि मुझे अपनी नासिका के दोनों छिद्रों को अलग करने वाली दीवार को, जो अपने स्थान से हट गई है, निकलवा देना चाहिए। कलकत्ते के विशेषज्ञ का कहना है कि उस दीवार

को हटाना उतना जरूरी नही है जितना छिद्र में स्थायी नाली बनाना। अमरीका में डाक्टरों ने दोनों काम कराने की सलाह दी। अतएव मैं पहले तो नासिका की नाली ठीक कराऊंगा, और यदि इससे लाभ न हुआ तो बाद में दूसरा आपरेशन करा डालूंगा।

मेरी पुत्रवधू ने डा० मेहता का इलाज शुरू किया तो, पर उसे बीस दिन से अधिक जारी रखने का धैर्य नही हुआ। अब लड़का और पुत्रवधू दोनों महाबलेश्वर गये है।

महादेवभाई पूछते है कि लार्ड रीडिग और लार्ड लोदियन को जो 'हरिजन' भेजा जा रहा है उसके पैसे क्या मैं दूगा। मामूली-सी बात है। यदि पत्र को सहायता देने के लिए मेरा पैसा देना जरूरी समझा जाय तो शास्त्री को ताकीद कर दीजियेगा।

विनीत
घनश्यामदास

१२ अगस्त, १६३३

परमपूज्य बापू

आपकी अभीतक कोई खबर नही मिली। परतु आशा है कि यह पत्र आप तक पहुचने मे कोई कठिनाई नही होगी।

हम अंग्रेजी 'हरिजन' के लिए सामग्री यहासे भेजते है। आपके लेखों का अभाव बडा खल रहा है। पर किसी-न-किसी तरह काम चला लेते है। मुझे एक ऐसा विशेषज्ञ मिल गया है जो कपड़ा रगने और तैयार करने की विद्या पर लेख लिखेगा। आशा है, ऐसे लेख पाठकों के लिए रुचिकर होंगे। हम इसी तरह काम चलाते रहेंगे, पर आपके लेख मिले बगैर पत्र को अच्छी तरह रोचक नही बनाया जा सकता।

ठक्कर बापा दौरे पर है। १८ तारीख तक लौट आवेंगे।

मैं जब से यहा आया हू, एक चमड़ा तैयार करने का स्कूल और एक छात्रावास खोलने की चेष्टा कर रहा हूं। यह छात्रावास खासतौर से हरिजनों के लिए होगा। मै अच्छी-सी जमीन की तलाश में हूं। कुछ हफ्तों मे श्री-गणेश हो जायगा, ऐसी आशा है। यदि आप कोई बात सुझाना चाहें तो लिख भेजे। मेरा अनुमान है कि कोई ५०००) रुपये जमीन मोल लेने में लगेंगे, और ५०००) रुपये इमारत बनवाने मे। यह रुपया मैं संघ के धन में से खर्च करने की बात सोच रहा हूं। सदस्यों की स्वीकृति अवश्य लेनी होगी, पर मै समझता हूं कि इस काम को आगे बढ़ाने के मामले में आप सहमत है। रही चमड़े के स्कूल की बात, सो इसका चालू खर्च एक वर्ष के लिए मै खुद वहन करने की बात सोच रहा हूं।

लक्ष्मी सानन्द है और पूरे आराम में है। मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं और आशा करता हूं कि आप और महादेवभाई अच्छी तरह से हैं।

विनीत
घनश्यामदास

सत्याग्रहाश्रम
वर्धा
३० सितम्बर, १९३३

प्रिय घनश्यामदास

आपको मालूम ही है कि आश्रम-वासियों ने गत १० अगस्त को साबरमती के सत्याग्रह आश्रम और उसकी भूमि को त्याग दिया था। मुझे आशा थी कि सरकार मेरे पत्र के अनुसार इस त्यक्त सम्पति पर अधिकार कर लेगी। ऐसी अवस्था में अपना कर्तव्य निर्धारित करना मेरा फर्ज हो जाता है। मुझे प्रतीत हुआ कि कीमती इमारतों और उतनी ही कीमती खेती और पेड़ों को यों ही नष्ट होने देना एक गलती होगा। मैंने मित्रों और सहकर्मियों के साथ परामर्श किया और मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि आश्रम का सबसे अच्छा उपयोग यही हो सकता है कि उसे हमेशा के लिए हरिजन सेवा के निमित्त अर्पित कर दिया जाय। मैंने अपना सुझाव आश्रम के ट्रस्टियों के, जो बाहर हैं, और सहसदस्यों के सन्मुख रखा, और मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि वे इससे हृदय से सहमत हैं। जब इस सम्पत्ति का त्याग किया गया था तो यह आशा अवश्य की जा रही है कि किसी दिन सम्मानपूर्ण समझौते के द्वारा, अथवा भारत की लक्ष्य सिद्धि होने पर, ट्रस्टी सम्पत्ति पर पुनः अधिकार कर सकेंगे। इस नवीन सुझाव के अनुरूप ट्रस्टी लोग सम्पत्ति से पूरी तरह हाथ धो रहे हैं। वसीयतनामे के अनुसार ऐसा करने का उन्हें अधिकार है क्योंकि ट्रस्ट का एक उद्देश्य हरिजन सेवा भी है। अतएव यह नया सुझाव आश्रम और ट्रस्ट के व्यवस्था-विधान के पूर्णतया अनुरूप है।

ट्रस्टियों के और मेरे लिए विचारणीय प्रश्न यही था कि जिस विशेष उपयोग का मैंने उल्लेख किया है उसके लिए सम्पत्ति किसके सिपुर्द की जाय, और हम सब सर्वसम्मति से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उसे भारत-व्यापी उपयोग के लिए अखिल भारतीय हरिजन संघ के सिपुर्द करना चाहिए। ट्रस्ट के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

१. भविष्य में बनाये जाने वाले नियमोपनियमों के अनुरूप आश्रम की भूमि पर वाछनीय हरिजन परिवार बसाये जायं, २, हरिजन बालकों

और बालिकाओं के लिए छात्रावास खोला जाय जिसमें गैर-हरिजनों को भर्ती करने की स्वतन्त्रता रहें, ३. खाल उतारने, रंगने, चमड़ा तैयार करने और इस प्रकार तैयार किये गये चमड़े के जूते, चप्पल और दैनिक आवश्यकताओं की ऐसी ही अन्य चीजें तैयार करने की कला मे दीक्षित करने के लिए एक शिक्षा विभाग खोला जाय, और ४, इमारतों को गुजरात प्रान्तीय या केन्द्रीय बोर्ड के कार्यालय के रूप मे, और उन सारे उपयोगों के लिए काम में लाया जाय जिन्हें निम्नलिखित पैरे में निर्दिष्ट समिति उचित समझे।

मैं ट्रस्टियों की ओर से यह सुझाव पेश करता हू कि हरिजन सेवक सघ एक विशेष समिति नियुक्त करे जिसमें आप और मंत्री पदेन (एक्स आफोशियो) सदस्य रहे और अन्य सदस्य अहमदाबाद के तीन नागरिक रहे। इस समिति को अपनी संख्या में वृद्धि करने का अधिकार रहे, और यही इस ट्रस्ट को हाथ में लेकर उसके उद्देश्यों की पूर्ति करे।

दो मित्र, श्री बुधाभाई और श्री जूथाभाई इस आश्रम के साथ हमेशा से रहे है। उन्होंने आश्रम मे अवैतनिक प्रबन्धकों की हैसियत से रहने की तत्परता प्रकट की है। इनके जीवन-निर्वाह के अपने स्वतंत्र साधन है और ये हरिजन सेवा कार्य मे बहुत काल से लगे हुए है। एक ऐसा आश्रमवासी भी है जिसने हरिजन सेवा के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया है। यह भी आश्रम में खुशी खुशी रहने को तैयार हो जायेगा। हरिजन बालकों और बालिकाओं के शिक्षण कार्य में तो इसने कमाल हासिल किया है। अतएव मैंने जैसी समिति बताई है उसे ट्रस्ट का प्रबन्ध करने में कोई कठिनाई नही होनी चाहिये, न यह जरूरी है कि मैंने जितने काम बताये है वे एक साथ और तुरत ही हाथ में ले लिये जांय। आपको पता है ही कि कुछ हरिजन परिवार वहां इस समय भी रहते है। आश्रम के सदस्यों का यह स्वप्न रहा है कि हरिजन परिवारों की एक नगरी बसाई जाय, पर कुछेक को बसाने को छोड़कर हम इस दिशा में अधिक आगे नहीं बढ़ सके। वहां चमड़ा रंगने का प्रयोग भी जारी रखा गया था और आश्रम-वासियों को इतस्ततः बखेरने के समय तक वहां चप्पल भी बनते थे। इमारत में बड़ा-सा छात्रावास है जिसमे १००जन आसानी से रह सकते है। इसमे बुनाई करने का काफी बड़ा पटा हुआ स्थान है, और मैंने जो-जो काम गिनाये है उनके लिए पूरी व्यवस्था है। १०० एकड़ भूमि है। इस प्रकार मैं कह सकता हूं कि उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्थान काफी बड़ा तो नही है, पर फिर भी फिलहाल उनकी जितनी पूर्ति की आवश्यकता है, उसे देखते हुए अच्छा खासा है। आशा है, मेरा प्रस्ताव स्वीकार करने में और इस

स्वीकृतिजन्य उत्तरदायित्व की पूर्ति में, संघ को कोई आपत्ति नही होगी।

आपका
मो० क० गांधी

४ अक्तूबर, १६३३

प्रिय गांधीजी

आपने अपने ३० सितम्बर १६३४ के पत्र के द्वारा साबरमती आश्रम की भूमि और इमारत को हरिजन सेवा कार्य के निमित्त अर्पित करने और इस उद्देश्य से उन्हे हरिजन सेवक संघ के सिपुर्द करने का प्रस्ताव किया है। यह आपकी और आश्रम के ट्रस्टियों की महती उदारता है। मै इस प्रस्ताव को अविलम्ब स्वीकार करता हू और आशा करता हू कि सघ अपने आपको आपके विश्वास के योग्य प्रमाणित करेगा। मै केन्द्रीय बोर्ड के सदस्यो की सम्मति की प्रतीक्षा किये बगैर ही इस प्रस्ताव को स्वीकार करता हूं, क्योंकि मुझे पूरा भरोसा है कि वे मेरे कार्य का अनुमोदन करेंगे।

जिन चार उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस सम्पत्ति के उपयोग की बात आपने पत्र के दूसरे पैरे में कही है, सघ उन्हे सदैव अपने ध्यान मे रखेगा और सबकी पूर्ति अविलम्ब की जायगी। सर्वश्री बुधाभाई और जूथाभाई और तीसरे सज्जन की, जिनका नाम शायद भगवानजी गाधी है, सेवाओं से लाभ उठाया जायगा। आशा है, ये सज्जन मूल्यवान सहायक सिद्ध होंगे। आपने अपने पत्र के तीसरे पैरे मे कहा है कि सघ को एक विशेष समिति नियुक्त करनी चाहिए जिसमे पाच आदमी रहे और इस सख्या मे वृद्धि करने का उसे अधिकार रहे, यह समिति ट्रस्ट को अपने जिम्मे ले और इसके उद्देश्यों की पूर्ति करे। आपका सुझाव है कि मेरे और प्रधान मंत्री के अतिरिक्त अहमदाबाद के तीन नागरिक उस समिति मे रहे। इन तीनों सज्जनों को आपके मशवरे से लिया जायगा। क्या मै यह सुझाव पेश कर सकता हूं कि प्रबन्ध कारिणी समिति के गठन का कार्य बिलकुल सघ के ऊपर ही छोड़ दिया जाय और संघ को ही ट्रस्ट के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उत्तरदायी समझा जाय? यदि अहमदाबाद के तीन नागरिक इस संघ के केन्द्रीय बोर्ड के सदस्य निर्वाचित हुए और साथ ही ट्रस्ट की प्रवन्धकारिणी समिति के सदस्य नियुक्त हुए तो समिति मे सब सघ के सदस्य ही भर जायंगे, यह नही होगा कि कुछ लोग इस संघ के सदस्यों में से रहे, और

कुछ बाहर से लिये जायं। परंतु यह एक साधारण-सी बात है जिसके ऊपर, आवश्यकता पड़ने पर, व्यक्तिगत रूप से बातचीत करके निर्णय कर लिया जायगा।

संघ को सम्पत्ति और उसकी खेती और पेड़ों का चार्ज लेने मे कुछ देर लगेगी। इसीलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि जो लोग इस समय देखभाल कर रहे है उनसे आप इसी प्रकार देखभाल करते रहने को कह दें।

आपकी उदारहृदयता के प्रति कृतज्ञता प्रगट करता हुआ,

मै हू
आपका
घनश्यामदास
प्रधान, हरिजन सेवक संघ

५ अक्तूबर, १९३३

परमपूज्य बापू

आश्रम को मडल के सिपुर्द करने के आपके प्रस्ताव की मैने तार द्वारा स्वीकृति भेज दी थी। आरम्भ में तो मुझे सदेह था कि हम आश्रम का प्रबन्ध दूर बैठकर कर भी सकेंगे या नही, पर अब मालूम हुआ है कि आपके कुछ विश्वासी आदमी आश्रम में रहेंगे और अपना सारा समय देंगे। अब मुझे कोई चिन्ता नही है। आपने हमारे जिम्मे यह भरोसे का काम दिया है, हम भी अपनेको आपके विश्वास के योग्य साबित करने में कुछ उठा न रखेंगे। मैंने आपके प्रस्ताव को केन्द्रीय बोर्ड के अन्य सदस्यों की सम्मति का इन्तजार किये बगैर स्वीकार कर लिया है, क्योंकि मुझे पूरी आशा है कि वे मेरे इस कार्य का अनुमोदन करेगे। सघ इस सम्पत्ति का उपयोग करने के मामले मे उन चारों उद्देश्यों को सामने रखेगा जो आपके पत्र के दूसरे पैरे में दिये गए है।

आपके दान और हमारी स्वीकृति के फलस्वरूप दो-एक बातों की ओर आपका ध्यान दिलाना आवश्यक है। अबतक हमारे पास बैंक में जमा रुपये को छोड़कर कोई सम्पत्ति नही थी। हम लोग हरिजन छात्रावास बनाने के लिए जमीन खरीदने का विचार कर रहे थे, पर अब हमारे पास आपकी दी हुई बहुमूल्य स्थावर सम्पत्ति हो जायगी। अब यह प्रश्न तुरंत ही उठ खड़ा होगा कि इस सम्पत्ति का स्वामी कौन होगा। हरिजन मंडल? यदि हरिजन मंडल ही इसका स्वामी हुआ तो उसीकी बाध्यता के अनुरूप

इसका अस्तित्व रहेगा, और हमारे संघ में बाध्यता नाम की चीज अभी तक नही है। इसलिए हमें यही तय करना है कि हम भविष्य के लिए किस प्रकार का व्यवस्था-सम्बन्धी ढांचा रखेंगे। मुझे विशेष प्रजातन्त्रीय ढांचा पसन्द नही है, क्योंकि व्यवस्था के मामले में प्रजातन्त्र के द्वारा असुविधाएं उत्पन्न हो जाती है और दलबन्दी होने लगती है। पर साथ ही, जहा किसी संस्था के पास लाखों रुपये की सम्पत्ति हो वहा नितान्त निरकुश ढग की शासन-व्यवस्था भी वाछनीय नहीं है। इन दोनों दूषणों में से अपेक्षाकृत कम हानिकर दूषण नियंत्रित निरकुशता, या यों कहिये कि किन्ही शर्तों के साथ दिया गया प्रजातन्त्र, ठीक रहेगा। इस सुझाव के बारे में आपकी क्या राय है कि संघ के कार्यक्रम में दिलोजान से लगे रहने वाले एक दर्जन आदमी संस्थापक सदस्य बनें और राय देने का अधिकार केवल उन्हीको रहे? इस समय प्रधान को जो विशेषाधिकार दिये गए है वे उन सदस्यों को सौंप दिये जायं। यदि आप इसे ठीक न समझें तो सम्पत्ति रखने के लिए ट्रस्टियों का एक अलग बोर्ड बना दिया जाय। इस बोर्ड को विशेषाधिकार दिये जायं और यदि वह यह समझे कि हरिजन बोर्ड सम्पत्ति का अच्छा उपयोग नही कर रहा है तो वह उससे वह सम्पत्ति वापस ले सके। यह दूसरा सुझाव तभी अपनाना चाहिए यदि हम संघ के लिए प्रजातन्त्रीय ढग की व्यवस्था रखे। आपने पांच व्यक्तियों की एक ऐसी समिति बनाने की बात कही है जिसके सदस्यों में से तीन अहमदाबाद के निवासी हों, और सघ के प्रधान और मंत्री पदेन (एक्स आफीशियो) सदस्य रहें। मुझे पता नही कि आप यह चाहते हैं कि यह समिति आश्रम की सम्पत्ति रखने और चलाने के मामले मे ट्रस्टियों जैसा काम करे या यह कि वह परामर्शदायिनी समिति मात्र रहे। यदि यह समिति ट्रस्टियों की भांति आचरण करेगी तो सघ की क्या स्थिति रहेगी और अहमदाबाद के नागरिकों को किस ढंग से निर्वाचित किया जायगा? और यदि हरिजन मंडल प्रजातन्त्रीय ढाचे का बना तो यह पता नही कि ट्रस्ट बोर्ड में उसका प्रतिनिधित्व करने वाले प्रधान और मन्त्री किस तरह के होंगे? वर्तमान व्यवस्था मे अथवा अत्यधिक प्रजातन्त्रीय व्यवस्था मे किस प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न होना सम्भव है, मैने यह स्पष्ट करने की भरसक चेष्टा की है। कृपया इस मामले पर अच्छी तरह विचार करके मुझे अपने सुझाव दीजियेगा। यदि हमलोगों के जिम्मे कोई सम्पत्ति नहीं दी जायगी तब तो वर्तमान व्यवस्था ही ठीक है।

विनीत
घनश्यामदास

सत्याग्रह अ श्रम
वर्धा
८ अक्तूबर, १९३३

भाई घनश्यामदास

तुम्हारा पत्र मिला।

तुमने जिस कठिनाई की बात कही है वह तो मौजूद है ही। उसीकी बात सोचकर तो मैने ट्रस्ट बोर्ड के गठन की बात कही थी। मेरी राय है कि यह सम्पत्ति ट्रस्टियों के पास स्थायी रूप से रहे और उन्हें उसे बेचने तक का अधिकार रहे। हरिजन सेवक संघ का भविष्य चाहे जो हो, तुम और ठक्कर बापा उसके स्थायी सदस्य रहें। इस प्रस्ताव से उस प्रश्न का भी निपटारा हो गया जिससे अपेक्षाकृत अधिक बडे प्रश्न का जन्म हुआ है और जिसकी मै यहां समयाभाव के कारण चर्चा नही करना चाहता हूं। इस बीच मै तुम्हें अखिल भारतीय चर्खा संघ का व्यवस्था-विधान पढ़ जाने को कहूंगा। मुलाकात होने तक इसकी चर्चा मुल्तवी रही। मैं यहां ७ नवम्बर तक तो हूं ही, इसलिए यदि सम्भव हो तो उस प्रश्न की खातिर ही सही, एक दिन के लिए आ सकते हो।

तुमने दिल्ली में छात्रावास खोलने की बात कही है। अव आश्रम की जमीन और इमारते अपने पास होने के बाद भी क्या दिल्ली वाले छात्रावास की कोई खास जरूरत रह गई है ? एक और नई योजना आरम्भ करने से पहले क्या साबरमती की योजना की प्रगति देखना अच्छा नही रहेगा ? मै तो समझता हूं कि हमें सावरमती वाली योजना को सफलीभूत बनाने की ओर ही सारा ध्यान देना चाहिए, और उसे सफल बनाने के काम में हममें से अनेक की पूरी शक्ति के उपयोग की आवश्यकता पड़ेगी।

आशा है, तुम स्वस्थ होगे। नाक का क्या रहा ? इन दिनों तो दिल्ली का मौसम बड़ा अच्छा होगा।

तुम्हारा
बापू

सत्याग्रह आश्रम
वर्धा
२६ अक्तूबर, १९३३

भाई घनश्यामदास

तुम्हारे हिन्दी के पत्र का उत्तर अंग्रेजी में बोलकर लिखा रहा हूं। हरिजन सेवक संघ के व्यवस्था-विधान के सम्बन्ध में मुझे अधिक लिखना

नहीं था। विचारणीय प्रश्न यही है कि हमे अर्द्ध-प्रजातंत्रीय संस्था को तुरंत ही जन्म देना चाहिये या नही। पता नियुक्ति के अन्तर्गत यह अधिकार भी दिया गया है या नहीं, पर मैंने जो बात सुझाई है उस पर तो तुरंत ही अमल किया जा सकता है। मेरा सुझाव यही है कि आश्रम को उन ट्रस्टियों के नाम में जिनके नाम मै बता चुका हूं, रजिस्ट्री करा दिया जाय। तुम्हे अपने विचार के सम्बन्ध में ठक्कर बापा और हरिजी के साथ बात करनी चाहिये।

रही चर्खा संघ की बात, सो इस सम्बन्ध मे मुझे पूरी स्वतन्त्रता थी, इसलिए मैंने जो योजना बनाई उसके फलस्वरूप एक मजबूत और आसानी से चलने वाली संस्था बन गई--ऐसी संस्था जिसे मनमाना प्रजातन्त्रीय रूप दिया जा सके। आश्रम को हरिजन सेवक संघ के निमित्त देने का निश्चय होने के तुरंत बाद ही मैं तुम्हे लिखना चाहता था कि दिल्लीवाली महत्वाकांक्षापूर्ण योजना को त्याग दिया जाय। इसमें संदेह नही कि ऐसे अनेक छात्रावासों की जरूरत पड़ेगी और यदि उनकी व्यवस्था ठीक-ठीक हो सकी तो उनके द्वारा बहुत कुछ ठोस काम होने की सम्भावना है। जब मै दिल्ली मे होऊं तो मुझसे जो काम चाहो, ले सकते हो।

बिहारीलाल यदि छात्रावास आदि की योजनाओं के सिलसिले मे काम करने को तैयार हो तो उससे काम लिया जा सकता है। पर मैं वेतनभोगी उपदेशक रखने के बिलकुल खिलाफ हू, चाहे वह हरिजन हो, चाहे कोई और। इस मामले मे जितनी दृढता बरती जाय, थोड़ी है।

तुम्हारा
बापू

२४ जनवरी, १९३४

भाई घनश्यामदास

लोगों के विचार का खूब परिवर्तन हुआ है। देखे क्या होता है। मुझे तो ईश्वर का हाथ इस कार्य मे देखा जाता है (दिखाई देता है) यह एक रूढ़ वचन नहीं है। यह कार्य कोई एक मनुष्य की शक्ति से हो ही नही सकता, न हजारों मे। लेकिन इस बारे में अधिक लिखा या कहा नही जा सकता है। इसका तात्पर्य इतना ही है कि ईश्वर पर मेरा विश्वास बढ़ता ही जाता है। अपनी शक्ति की अल्पता का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है।

तुम्हारा शरीर अच्छा रहता होगा।

बापू के आशीर्वाद

बिहार भूकम्प के बारे में मैंने इस समय बापू को जो पत्र लिखा उसकी नकल मेरे पास नही है, किन्तु बापू का उत्तर इस प्रकार था :

३१ जनवरी, १६३४

भाई घनश्यामदास

तुम्हारा खत मिला है। भूकम्प और हरिजन प्रश्न का मुकाबिला मुझे बहुत प्रिय लगा है, क्योंकि वह सत्य है। बिलकुल गरीबों को कम भुगतना पड़ा है यह तो स्वयंसिद्ध है। लेकिन जिसके पास दो कौड़ी थी, वह आज भिखारी बन गये है यह भी इतना ही सत्य है न? मैं यहा बैठा हुआ जितना सम्भावित है, कर रहा हूं।

बगाल के दौरे ने मुझे कर्तव्यमूढ बना दिया है। अच्छा है, तुम वही हो। आज डाक्टर विधान को लम्बा खत लिखा है। उसे देखो और वहीं निश्चय करो। मुझे लगता है कि मेरे से तो एक ही निश्चय हो सकता है।

अगर आप लोग न रुकें तो जाना।

बापू के आशीर्वाद

लार्ड हैलीफेक्स ने भी, जिसके पिता की तभी मृत्यु हुई थी, भूकम्प के बारे में लिखा

बोर्ड आफ एजूकेशन
ह्वाइट हाल, लन्दन
१३ फरवरी, १६३४

प्रिय श्री बिड़ला

कृपापत्र के लिए अनेक धन्यवाद। यह आपकी सद्भावना है कि आपने एक ऐसे समय में हमारा ध्यान रखा जब पिताजी की मृत्यु से उनके सभी मित्र इतने लम्बे और सुखमय सौहार्द का अन्त हो जाने पर शोक में निमग्न हैं। किन्तु पिता जी के लिए मेरे पास कृतज्ञता को छोड़कर और है ही क्या?

बिहार में भूकम्प से धन-जन की हानि के समाचारों से मुझे बड़ा दुःख हुआ। वहा के सम्वाद-साधनों के भग हो जाने के कारण हम शुरू-शुरू में इस भारी क्षति का अन्दाजा नही लगा पाये थे। जिन लोगों को नुकसान पहुंचा है उनके साथ मेरी गहरी सहानुभूति है और मुझे आपसे यह जानकर खुशी हुई है कि कष्ट-पीड़ितों के दुःख-निवारण-कार्य में सभी कोई हाथ बंटा रहे हैं।

आपका
हेलीफैक्स

: १० :

राजनीतिक विश्रांति

इस समय बापू सर जान एंडरसन से मिलने को उत्सुक थे।

१२ फरवरी, १९३४

भाई घनश्यामदास

मिस लेस्टर से मैं ने मिदनापुर[1] की बात की और कहा गवर्नर से मिले। उसने गवर्नर को खत लिखा और गवर्नर ने तार भेजा। अब वह जा रही है। मैंने जो खत उसको दिया है उसे पढ़ो। मैंने उनसे कहा है कि तुमसे मिले और सब जान लेवे। सब हाल बतलाइये। आवश्यकता समझ जाय तो डाक्टर विधान से और सतीश बाबू से भी मिला दें। शुक्र को वहां से मेरे पास चली आयेगी। उसको खर्च के लिए यहां से पैसे दिये हैं। टिकट यहीं से कटवा दी है। उसका खर्च तुम्हारे से लू? जमनालाल से तो है ही। क्या उचित है वह नहीं जानता हूं।

पत्र बहुत जल्दी से लिखा है। तुम्हारे पत्र मिले है उसका उत्तर दूंगा। समय ही नहीं मिलता है।

बापू के आशीर्वाद

१२ फरवरी, १९३४

भाई घनश्यामदास

तुम्हारा खत मिला। मैं देखता हूं गवर्नर को कुछ लिखूं या नहीं। मिदनापुर की सलामी तो बन्द हुई। लेकिन अपने दोष को स्वीकार नहीं किया। मिस लेस्टर ने अब वायसराय से मिलने का समय मांगा है। इन सब चीजों से आज कुछ परिणाम नहीं निकल सकता है। लेकिन समझौते का एक भी मौका हम छोड़ना नहीं चाहते हैं।

---

१. जहां उन्हीं दिनों मजिस्ट्रेट की हत्या हुई थी।

विधान राय को मिलने का प्रयत्न पूरा करना चाहिये। भले कांग्रेस-वादी कुछ भी कहें।

मेरा वहां आने का कम से कम बिहार तक तो मौकूफ कर दिया है। पीछे देखेंगे।

जवाहरलाल से मिलने की कोशिश करोगे ना?

मिस हैरिसन २ मार्च को विलायत से छूटेगी। उसका आना अच्छा ही है। मैंने इस बारे मे पहले भी लिखा ही था न?

बापू के आशीर्वाद॰

पटना

१३.३.५४

भाई घनश्यामदास

सर सैम्युअल को मैंने खत लिखा है, उसकी एक प्रतिलिपि इसके साथ रखता हूं। और एक धारवाड के मेजिस्ट्रेट को पत्र लिखा था। धारवाड का केवल तुम्हारे जानने के लिए है। सर सेम्युअल के बारे मे कुछ काम लेना चाहता हूं। स्कार्पा[1] अगर वहां है तो उनसे पूछो कभी उस मिटिंग में (क्या) हुआ था, क्योंकि वह वहां मौजूद था। अगर वह न था तो उसीके जरिये मिटिंग हुई थी। जो लोग हाजिर थे उनके नाम-ठाम देवे तो भी अच्छा होगा। जो कुछ भी हकीकत मिल सकती है वह इकट्टा करना चाहता हू। आज तक इस चीज की बातें अंग्रेजी में हो रही हैं। और है सब की सब जाल। 'अजमेर' का 'आजमरा' बनाया गया है।

मुझे मिलने के लिये आना चाहते हैं। हरिजन कार्य के लिये थोड़ी देर बाद बुलाऊंगा। ठक्कर बापा को दिल्ली जाने दिये हैं। उनका यहां काम नहीं था। यों तो सब कार्य में उनके जैसा सेवक मदद दे सकता है, विशेषतया आवश्यकता न थी। लेकिन बिहार के बारे में अथवा सर सैम्यूअल से जो पत्र व्यवहार इधर किया है उस बारे में आना है तो दिल चाहे तब आ सकते हो। बुध से शुक्र तक मोतीहारी की तरफ रहूंगा। शुक्र की शाम को वापस आऊंगा।

अगाथा हैरीसन १६ को मुंबई पहुंचेगी। लेस्टर वायसराय से मिली है। कल यहां आती है।

बापू के आशीर्वाद

---

१. डा० स्कार्पा, जो १९३१ में कलकत्ते में इटली के कौंसल जनरल थे। जब बापू रोम में थे तो यह वहां थे।

सर सेम्युअल होर को भेजा गया पत्र बापू के साथ की गई एक झूठी मुलाकात के बारे में था जिसका विवरण इटली के एक पत्र में प्रकाशित हुआ था। यह विवरण 'टाइम्स' के रोम-स्थित सम्वाददाता ने अपने पत्र में दिया था :

वर्धा
जनवरी, १९३४

प्रिय सर सेम्युअल

आपको याद होगा कि जब मैं १९३१ के दिसम्बर में वापस लौट रहा था तो आपने रोम में मेरे द्वारा एक पत्रकार को दी गई तथाकथित मुलाकात के सम्बन्ध में मेरे पास एक तार भिजवाया था और मैंने उत्तर देकर समाचार का खण्डन किया था। इस खण्डन का भी खण्डन निकला, पर मैंने उसे हाल ही में देखा है, क्योंकि बम्बई में कदम रखने के एक सप्ताह के भीतर ही मुझे पकड़ कर जेल भेज दिया गया था।

गत अगस्त में आखिरी दफा जेल से छूटने के बाद मुझे मीराबाई (स्लेड) ने बताया कि एक अंग्रेज मित्र, बम्बई के विल्सन कालेज के प्रोफेसर मैकलीन की धारणा है कि यद्यपि बात पुरानी पड़ गई है तथापि उसकी सफाई हो जाना अच्छा है, क्योंकि जिस समय रोम के सम्वाददाता ने मेरे कथन का खण्डन प्रकाशित कराया था तो उसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था और सम्भवतः उसीके फलस्वरूप वायसराय द्वारा मेरे विरुद्ध १९३२ की कार्रवाई की गई थी। मैं प्रोफेसर मैकलीन से सहमत हुआ और मैंने मीराबाई से मिस अगाथा हैरिसन को तत्सम्बन्धी कटिंग संग्रह करने को लिखने को कहा। इनमें जो सबसे जरूरी कटिंग थी वह मुझे गत मास के मध्य में मिली। मैं उस समय अस्पृश्यता-निवारण-कार्य में तेजी के साथ इधर-उधर दौरा कर रहा था। आपके अविलम्ब हवाले के लिये मैं वे कटिंग 'क' 'ख' और 'ग' का चिन्ह लगाकर भेजता हूं।

यह बात स्मरण रखनी होगी कि मैंने कटिंग मिस अगाथा हैरिसन से प्राप्त होने पर पहली बार देखी। मैंने इन कटिंगों को कई बार पढ़ा है, और मैं यह बगैर किसी संकोच के कह सकता हूं कि, 'क' 'ग' और कटिंग, जो कुछ वास्तव में हुआ था उसका उपहासजनक खाका मात्र है। 'क' को इटालियन पत्रकार को दिये गए तथाकथित लम्बे वक्तव्य का संक्षिप्त संस्करण बताया गया है। 'ग' मे टाइम्स का सम्वाददाता, तथाकथित मुलाकात के समाचार का मेरे द्वारा खण्डन देखकर अनिच्छापूर्वक स्वीकार करता है कि, सम्भव है मेरी बात ही ठीक हो, क्योंकि सीनोर ग्याडा

ने बाकायदा मुलाकात की अनुमति नही चाही थी, पर इतने पर भी वह प्रतिपादन करता है कि मेरे द्वारा दिया गया बताया वक्तव्य साररूप में ठीक है। परन्तु यदि मै अपनी जानकारी की बात न बताकर केवल 'क' और 'ग' का विश्लेषण मात्र कर दू तो सत्य की रक्षा अच्छी तरह हो जायगी।

१. 'क' में जो कहा गया है कि मैने ग्याडा को एक लम्बा वक्तव्य दिया सो मैने न कभी लम्बा वक्तव्य दिया, न छोटा।

२. मुझे सीनोर ग्याडा से किसी भी स्थान पर मिलने को नही कहा गया। हा, मुझे एक निजी मकान के ड्राइंग रूम मे कुछ इटालियन नागरिको से मिलने का निमंत्रण अवश्य दिया गया। उस अवसर पर मेरी मुलाकात जिन लोगों से कराई गई उनके नाम अब मुझे याद नही है, न मै उनके नाम उस भेंट के दूसरे दिन ही याद रख सकता था। मुलाकात बिलकुल साधारण ढंग से कराई गई थी।

३. इस अवसर पर वार्तालाप आम ढग से हो रहा था और किसी को सम्बोधन करके नही किया जा रहा था। कई मित्रों ने प्रश्न किये और असम्बद्ध रूप से बातचीत चलती रही जैसा कि ऐसे अवसरों पर हुआ करता है।

४. अतएव सीनोर ग्याडा या 'टाइम्स' के सम्वाददाता ने मेरी बातों को एक सम्बद्ध वक्तव्य का रूप देकर, मानो वह किसी व्यक्ति को सम्बोधन करके दिया गया हो, गलती की।

५. सीनोर ग्याडा ने मेरी तसदीक के लिए कुछ नही दिखाया कि क्या लिखा है।

६. वार्तालाप अनेक विषयो पर हुआ, जैसे गोलमेज परिषद, मेरी तत्सम्बन्धी धारणा, और मेरा भावी कार्यक्रम। 'क' मे मेरे द्वारा जो अनेक बातें कहलाई गई है वे मैने कभी नही कही। अपनी आशाओं, आशकाओ और भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध मे मुझे जो कुछ कहना था मैने गोलमेज परिषद की समाप्ति पर अपने भाषण के दौरान में नपीतुली भाषा में कह दिया था। आपसी वार्तालाप के दौरान मे मैने जो कुछ कहा वह उस भाषण का रूपान्तर मात्र था। मेरा यह स्वभाव नही है कि सार्वजनिक रूप से कुछ कहू और आपसी बातचीत मे कुछ, या एक मित्र से कुछ कहूं, और दूसरे से कुछ। मै यह कैसे कह सकता था कि भारतीय राष्ट्र और ब्रिटिश सरकार मे निश्चित रूप से झगड़ा खडा हो गया है, क्योंकि मैने उसी अवसर पर यह कहा था कि गाधी-इर्विन पैक्ट के द्वारा जो मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुआ है उसे अक्षुण्ण रखने की मै पूरी शक्ति

के साथ चेष्टा करूंगा और भेद नहीं पड़ने दूंगा। मै तो आशावादी हूं, इसलिए मनुष्यों में अमिट झगड़ा खड़ा होने की सम्भावना में मेरा विश्वास नहीं है।

७. मैंने यह कभी नही कहा था कि मै इंगलैंड के विरुद्ध संघर्ष नये सिरे से छेड़ने के लिए भारत लौट रहा हूं। उस वार्तालाप के अवसर पर मुझ से कई प्रकार की सम्भावनाओं के बारे में प्रश्न किये गए थे, और 'क' में उस बातचीत को इस रूप मे रखा गया मानो मै भारत उन सम्भावनाओं को प्रकृत रूप देने के लिए लौट रहा होऊं।

८. मै यह भी कहूंगा कि जनता ने न सीनोर ग्याडा द्वारा तैयार किये मूल नोट देखे हैं, न उनके द्वारा तैयार और प्रकाशित की गई कहानी। 'क' और 'ग' में तो 'टाइम्स' के सम्वाददाता की अपनी धारणाएं है जो उसने सीनोर ग्याडा के लेख या कथन से ग्रहण की।

पता नही, 'ग' का सबके ऊपर क्या प्रभाव पड़ा। यदि मेरे खण्डन की सत्यता के सम्बन्ध में आपको शंका होने लगी थी तो जिस प्रकार आपने पहली रिपोर्ट की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया था, उसी प्रकार मेरे खण्डन के खण्डन की ओर भी करना चाहिए था। पता नही आप इस पत्र को किस रूप मे लेंगे, परंतु यदि आपको मेरी सत्यता में कुछ संदेह हो गया है तो मै यथाशक्ति उसका निवारण करना चाहूंगा। 'ग' मे जिस अनुचरी का जिक्र किया गया है वह मिस स्लेड हैं। मैं इस पत्र के साथ उनके उक्त वार्तालाप सम्बन्धी संस्मरण भेजता हूं।

मैं इस पत्र को प्रकाशित नहीं करा रहा हूं, पर इसकी प्रतिलिपियां अपने कुछ मित्रों को उनके निजी उपयोग के लिए भेज रहा हूं। पर मैं चाहूंगा कि आप स्वयं इसे प्रकाशित करवाएं, या प्रोफेसर एन्ड्रयूज से, जिनका पता वुडब्रुक सैली ओक बर्मिंघम है, इसका जिस प्रकार चाहें उपयोग करने को कह दें।

आपका
मो० क० गांधी

'क'

एक नया व्यापारिक बहिष्कार
निजी सम्वाददाता द्वारा

रोम
१४ दिसम्बर

श्री गाधी ने, जो अबतक अनेक इटालियन और विदेशी पत्रकारों को वक्तव्य देन से इन्कार करते आ रहे थे, 'जरनेल द इटालिया' के सीनोर ग्याडा को एक लम्बा वक्तव्य दिया है।

श्री गांधी ने कहा कि गोलमेज परिषद भारतीयों के लिए दीर्घ-कालीन और धीरे-धीरे दी जानेवाली व्यथा का साधन थी, अब उसके अन्त के साथ ही ब्रिटिश सरकार और भारतीय राष्ट्र मे निश्चित रूप से सम्बन्ध विच्छेद हो गया है। पर इसके द्वारा ब्रिटिश सरकार को भारतीय राष्ट्र और उसके नेताओं की वास्तविक भावनाओं का पता लग गया है और यह भी मालूम पड़ गया है कि इंगलैड का क्या इरादा है। श्री गांधी ने कहा कि वह भारत को इंगलैड के विरुद्ध तुरंत सघर्ष आरम्भ करने के लिए लौट रहे है; यह संघर्ष निष्क्रिय प्रतिरोध और ब्रिटिश माल के बहिष्कार का रूप धारण करेगा। उनकी धारणा है कि मुद्रा सम्बन्धी सकट और बेकारी के कारण इंगलैड को जिस विपत्ति का सामना करना पड़ रहा है, बहिष्कार के द्वारा उसमें और भी वृद्धि हो जायगी। भारतीय बाजार मे ब्रिटिश माल की खपत न होने के फलस्वरूप ब्रिटिश औद्योगिक कार्यशीलता में बहुत कमी हो जायगी, जिससे बकारी और बढ़ेगी और पौड की दर और भी कम हो जायगी।

श्री गांधी ने अन्त में कहा कि यूरोप के बहुत ही कम देश भारतीय समस्या में दिलचस्पी दिखाते है, यह बड़े खेद का विषय है, क्योंकि स्वतन्त्र और समृद्ध भारत का अर्थ है अन्य राष्ट्रों के माल की अधिक खपत। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय स्वतन्त्रता के फलस्वरूप अन्य सारे देशों के साथ व्यापारिक और बौद्धिक विनिमय होगा।

'ग'

(लन्दन टाइम्स से उद्धृत)

२१ दिसम्बर १९३१

श्री गांधी ने उस मुलाकात का जो उन्होंने रोम में स्वल्पकालीन आवास के समय 'जरनेल द इटालिया' को दिया बताते हैं और जिसका संक्षिप्त विवरण

१५ दिसम्बर के 'टाइम्स' में छप चुका है, अक्षरशः खण्डन किया है। उनके द्वारा कही गई बात भारत में सविनय आंदोलन के पुनः आरम्भ होने की संभावना के सम्बन्ध में उनकी अबतक की सारी युक्तियों से इतनी बढ़-चढ़कर थी कि उनसे यह पूछना जरूरी समझा गया कि वास्तव में उन्होंने क्या कहा था। फलतः अधिकारपूर्ण क्षेत्र से उनके पास भूमध्यसागर मे इटालियन स्टीमर पिल्सना पर एक तार भेजा गया जिसमे कहा गया :

"प्रेस रिपोर्टो का कहना है कि जहाज़ पर सवार होने से पहले आपने 'जरनेल द इटालिया' को एक वक्तव्य दिया जिसमे निम्नलिखित उद्‌गार थे :

"१. 'गोलमेज परिषद के द्वारा भारतीय राष्ट्र और ब्रिटिश सरकार मे निश्चित रूप से सम्बन्ध विच्छेद हो गया है।'

"२. आप भारत इगलैंड के विरुद्ध तुरत सघर्ष आरम्भ करने के लिए लौट रहे है।

"३. 'बहिष्कार ब्रिटेन के संकट मे वृद्धि करने का शक्तिशाली साधन सिद्ध होगा।'

"४. 'हम कर नही देंगे, हम इगलैड के लिए किसी रूप मे काम नही करेगे, हम अंग्रेज अधिकारियो, उनकी राजनीति और उनकी सस्थाओं मे बिल्कुल नाता तोड लेंगे, और हम ब्रिटिश माल का पूरी तौर से बहिष्कार कर देंगे।'

"यहा आपके कुछ मित्रो का कहना है कि आपने जो कुछ कहा होगा, यह उसीकी गलत रिपोर्ट है। यदि ऐसी बात है तो खण्डन वाछनीय है।"

कल श्री गाधी के पास से तार द्वारा निम्नलिखित उत्तर मिला :

"जरनेल द इटालिया का कथन बिल्कुल असत्य है। मैने रोम मे पत्र-प्रतिनिधियो को कोई वक्तव्य नही दिया। मेरी अन्तिम मुलाकात स्विट्जर-लैंड के विलेन्यूव नामक स्थान पर रायटर के साथ हुई जिसके दौरान मे मैने भारतीय जनता से झटपट किसी नतीजे पर न पहुचकर मेरे वक्तव्य की प्रतीक्षा करने को कहा था। यदि सीधी कार्रवाई अभाग्यवश अनिवार्य हुई तो भी मैं कोई कदम जल्दबाजी मे नहीं उठाऊंगा और पहले अधिकारियो की चिरौरी करूगा। कृपया इस वक्तव्य को पूरा प्रकाशन दीजिए।"

'जरनेल द इटालिया' मे श्री गाधी का जो तथाकथित वक्तव्य छपा था, श्री गांधी ने उसका खण्डन किया है, पर सीनोर ग्याडा उनके इस खण्डन को स्वीकार करने को बिल्कुल तैयार नही है। सीनोर ग्याडा ने एक संक्षिप्त से नोट में कहा है कि जो शब्द महात्मा द्वारा कहे बताये गये है उन्हें उन्होंने स्वयं उनके सामने और अन्य साक्षियों के सामने लिखा है। जहां तक मे

समझता हूं, श्री गाधी का खण्डन सत्यतापूर्ण भी हो सकता है, क्योंकि सीनोर ग्याडा ने बाकायदा मुलाकात का अनुरोध नही किया और न वैसी मुलाकात हुई ही।

मुझे यह खबर मिली है कि महात्मा के साथ सीनोर ग्याडा की मुलाकात एक निजी मकान में कराई गई और श्री गांधी को यह स्पष्टरूप से बता दिया गया कि सीनोर ग्याडा कौन है। जब श्री गाधी ने वह उल्लेखनीय वक्तव्य देना आरम्भ किया, जो उनके द्वारा दिया गया बताते है, तो सीनोर ग्याडा ने उसके महत्व को समझकर, और किसी प्रकार की भूल न करने की इच्छा मे प्रेरित होकर, कागज और पेंसिल मांगी जो उन्हे दी गई। सीनोर ग्याडा ने उनका वक्तव्य वहीं उसी समय श्री गांधी और उनकी एक अनुचरी के सामने नोट कर लिया। इन दोनों में से किसी ने इस विषय मे एक शब्द तक नही कहा कि जो कुछ कहा गया है वह प्रकाशन के लिए नही है।

इससे यह प्रकट है कि जहा तक श्री गांधी के उद्‌गारों के तथ्य का सम्बन्ध है, सीनोर ग्याडा ने, जिनके अंग्रेजी भाषा विषयक ज्ञान की बात मै स्वय जानता हू, वे सारी बाते विशेष सावधानी के साथ नोट की।

मीराबहन का वक्तव्य

अब से दो वर्ष तीन मास पहले की घटना के सम्बन्ध में मेरे सस्मरण निम्नलिखित हैं :

गाधीजी और उनके साथियों को रोम मे एक इटालियन काउण्टेस के घर, आपसी मुलाकात के लिए आमंत्रित किया गया। यह काउण्टेस इटली के बम्बई स्थित कौसल की, जो उस समय रोम मे ही थे, मित्र थी। बैठक काफी देर तक रही। पहले वार्तालाप हुआ, फिर जलपान, उसके बाद फिर वार्तालाप। आरम्भ मे गाधीजी के साथ अकेली मै ही थी, बाद को अन्य साथी एक-एक करके आने लगे। इस मुलाकात के दौरान मे मै बराबर गांधीजी के साथ ही रही। हा, उनके लिए कुछ फल आदि तैयार करने और स्वयं जलपान करने के लिये १५-२० मिनट के लिए भोजनालय मे अवश्य गई थी।

जहा तक मुझे याद है, आरम्भ मे बातचीत खानगी विषयो पर होती रही। काउण्टेस मुलाकातियों का परिचय गाधीजी से कराने और बातचीत का सिलसिला जारी रखने मे लगी हुई थी। जब बातचीत ने जोर पकड़ा तो मैने देखा कि दो या तीन सज्जन राजनीतिक और आर्थिक विषयों पर भांति-भांति के प्रश्न कर रहे है। उनमे से एक ने कागज और पेंसिल मांगी,

और नोट करना शुरू किया। कुछ समय बाद हमारे अन्य साथी भी आने लगे और हम सब भोजनालय के पास वाले बड़े कमरे में चले गये। यहां फिर आम ढंग की बातचीत होने लगी। हां, किसी एक सज्जन के साथ थोड़ीसी गम्भीर बातचीत अवश्य हुई थी, पर मुझे उस बातचीत का विवरण याद नही है।

थोड़े मिनटो को छोड़कर, जबकि मैं वहा नहीं थी, मैंने गांधीजी द्वारा कही गई सारी बातें सुनीं। वह राजनीतिक और आर्थिक ढंग के उत्तर मे यथासम्भव जो कुछ कह रहे थे, विशेष जोर और स्पष्टता के साथ कह रहे थे, क्योंकि इटालियन सज्जन को अग्रेजी समझने मे कठिनाई हो रही थी, और साथ ही प्रश्नकर्ता बराबर प्रश्न कर रहे थे। 'टाइम्स' के सम्वाददाता ने जो बातें गांधीजी द्वारा कही बताई हैं यदि वह वैसी कोई बात कहते तो मैं अवाक् रह जाती। इसका अर्थ यही होता कि उन्होंने अपने आदर्शों और सिद्धान्तों को एक ओर फेक दिया है। वैसी अवस्था में मै उन्हे अपना पथ-प्रदर्शक और पिता कभी न मानती रहती।

मीरा (मिस स्लेड)

स्वराज्य पार्लमेंटरी पार्टी ने कुछ साल पहले केन्द्रीय धारा सभा का परित्याग कर दिया था। सन् १९३४ में वह फिर बनी। मै कांग्रेस के साथ उस पार्टी के सम्बन्ध को लेकर बड़ा उद्विग्न था। बापू उस समय आसाम में थे। मैंने उन्हे वहो यह पत्र लिखा :

१४ अप्रैल, १९३४

परमपूज्य बापू

आप पहले कार्यकारिणी की आपसी बैठक और वाद को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बाकायदा बैठक बुला रहे है, इसलिए मैंने सोचा कि स्वराज्य पार्टी के गठन के सम्बन्ध मे मैं भी अपने विचार रख दूं। जहा तक आपकी दोनों प्रेस मुलाकातों का सवाल है, मुझे उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है। किसी-न-किसी प्रकार मै आपसे सहमत हो जाता हूं। पर इससे आप यह न समझें कि मुझमें बुद्धि-बिवेक का अभाव है। जब आपकी बातें हमेशा ठीक ही हों तो मैं क्या कर सकता हूं? अब स्वराज्य पार्टी के सम्बन्ध में जबसे डा० अन्सारी, भूलाभाई और डा० राय ने नई पार्टी के जन्म की घोषणा की है, तब से पंडित मालवीयजी बड़े उद्विग्न हो गए हे। उन्हें पूरी तौर से निश्चय नही है कि निर्वाचन के अवसर पर

वह कौनसा रुख अख्तियार करेंगे। आप जानते ही हैं कि साम्प्रदायिक निर्णय के मामले मे उनके विचार बड़े कठोर हैं और जो हिन्दू-सभाई व्यवस्थापिका सभा मे जाने की इच्छा रखते हैं उन्होंने उनका दुरुपयोग करना अभी से आरम्भ कर दिया है। यदि परिस्थिति के अनुसार ठीक-ठीक आचरण नहीं किया गया तो, सम्भव है, पण्डितजी के नेतृत्व में एक और दल का जन्म हो जाय। साम्प्रदायिक प्रश्न पर पण्डितजी कांग्रेस और हिन्दू महासभा, दोनों के बीच में हैं। वह दोनों में से किसीसे सहमत नही हैं। वह मैत्रीपूर्ण समझौता तो चाहते हैं, पर औचित्य की परिधि में रहकर मुसलमानों को सन्तुष्ट करने को तत्पर नहीं हैं। इस समय वह इस बात की हठ पकड़े हुए हैं कि साम्प्रदायिक निर्णय का अन्त कर दिया जाय, जो कि असम्भव बात हैं। वह कहते हैं कि मुसलमानों को केन्द्र में ३३ प्रतिशत और बंगाल मे ५१ प्रतिशत सीटे दी जा सकती है, पर अवशिष्ट सीटों को वह हिन्दुओं और यूरोपियनों मे बांटना नहीं चाहते। वह चाहते हैं कि बाकी सारी सीटे हिन्दुओ को मिले। वह जो कहते है उसमें बुद्धि-विवेक की मात्रा पर्याप्त हैं, पर उनकी कार्यप्रणाली आपके लिए रुचिकर नही होगी। वह मुसलमानों की सहायता पाने के लिए सचेष्ट है, पर वह उन्हे कभी प्राप्त नही होगी, और वह वायसराय और ब्रिटेन के मंत्रिमंडल के पास डेपुटेशन ले जाना चाहते है,जो निष्फल सिद्ध होगा। पता नही, साम्प्रदायिक मामलों मे स्वराज्य पार्टी की क्या नीति रहेगी, पर यदि वह अपने सदस्यों को साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध अपने-अपने ढंग से करने को स्वतंत्र छोड़ दें तो पण्डितजी और स्वराज्य पार्टी के दृष्टिकोणों मे सामंजस्य स्थापित करना सम्भव हैं। यदि ऐसा नही हुआ तो राष्ट्रीय विचार वाले हिन्दुओं में फूट पड़ने की सम्भावना हैं और यह कदापि वांछनीय नही हैं। पण्डितजी तो केवल यही चाहते हैं कि नई स्वराज्य पार्टी साम्प्रदायिक निर्णय के प्रति कोई लगाव न दिखावे।

दूसरा प्रश्न स्वराज्य पार्टी के नियंत्रण का हैं। मैं पण्डितजी की इस बात से सहमत हूं कि या तो कांग्रेस को स्वराज्य पार्टी को पूरी तौर से अपने काबू में रखना चाहिये, या फिर उससे कोई सरोकार नही रखना चाहिए; क्योंकि यदि आसफअली जैसे आदमियों को पूरा अधिकार दे दिया जायगा और कांग्रेस केवल आशीर्वाद देगी और किसी प्रकार का अनुशासन नहीं रखेगी तो वह अपने कर्त्तव्य का पालन नही करेगी। इससे पार्टी कमजोर पड़ जायगी, साधारण श्रेणी के सदस्यों में भ्रष्टाचार की वृद्धि होगी और अन्त में कांग्रेस की ही बदनामी होगी। पुरानी स्वराज्य पार्टी का मेरा जो अपना अनुभव हैं, उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि बहुत बड़ा खतरा पैदा हो जायगा, विशेषकर इसलिए कि अब मोतीलाल-जैसे व्यक्ति मौजूद नहीं हैं।

पार्टी के अनुशासन द्वारा ही सही, पर किसी-न-किसी रूप में कांग्रेस द्वारा नियंत्रण अत्यावश्यक है। पर यदि कांग्रेस किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रखना चाहती है तो उसका आशीर्वाद भी अनावश्यक है। आपको इस मामले में पूर्ण निश्चय कर लेना चाहिए। मै तो काग्रेस के नियंत्रण के पक्ष मे हूं।

विनीत

घनश्यामदास

इसके बारे में गांधीजी ने अपनी राय दी और अपने अप्रैल के एक पत्र में, जिस पर तारीख नहीं लिखी है, साम्प्रदायिक निर्णय की भी चर्चा की :

डिब्रूगढ़
अप्रैल, १९३४

भाई घनश्यामदास

एवार्ड की बात बहुत मुश्किल है। यदि मैंने जो रास्ता बताया है उसका स्वीकार मुसलमान करें तो कुछ हो सकता है, न भी करें तो वह रास्ता बिल्कुल सीधा है। मुझे डर है कि वह स्वराज्यवादियों को अच्छा नही जचेगा। हिन्दू-मुसलिम-सिख ऐक्य आज सिद्ध होने के लिये मै कोई वायुमंडल नही पाता हू।

धारासभा प्रवेश को मैंने स्वतंत्रतया देखा है। मुझे लगता है कि कांग्रेस मे हमेशा धारासभा प्रवेश का दल रहेगा ही। उसी दल के हाथ में काग्रेस की बागडोर होनी चाहिये। और वही दल को कांग्रेस के नाम की आवश्यकता रहती है। मैंने यह बात हमेशा के लिय मान ली है। वही लोग कोई बार बहिष्कार भी करना होगा तो करें।

धारासभा प्रवेश में मुसीबत काफी है। इसका फैसला तो होता रहेगा, गलतियां होती रहेंगी, दुरुस्ती होगी, नही होगी ऐसे चलता रहेगा।

कलकत्ता से रांची मुझको तो ज्यादा अच्छा लगता है। रांची मे लोगों के लिये सुभीता न रहे यह दूसरी बात है। रांची में शान्ति मिलेगी। कलकत्ते में असम्भावित है। मैंने राजेन्द्रबाबू पर छोड़ दिया है।

तुम्हारा फेडरेशन का व्याख्यान पढूंगा और पढ़ने के वाद अभिप्राय भेजूंगा।

रांची में मिटिंग होवे तो और आना शक्य है तो आ जाना अच्छा हो सकता है। निश्चयपूर्वक नही कह सकता हूं।

वापू के आशीर्वाद

अब मैंने लार्ड हेलीफैक्स को पत्र लिखने का निश्चय किया :

२३ अप्रैल, १६३४

प्रिय लार्ड हेलीफैक्स

मै यह पत्र बड़े हताश भाव से लिख रहा हूं, पर प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि मै रोक नही सका ।

तीन वर्ष से अधिक हुए, इतिहास में पहली बार दो महान् पुरुषों की भेंट हुई । दोनों अपने-अपने देश की ओर से मिले और दोनों ने भारत और इंग्लैड को एक-दूसरे के इतना निकट ला दिया जितना वे पहले कभी नही आये थे । आपने पहला कदम उठाकर दोनों देशों के आगे एक उदाहरण रख दिया कि एकमात्र पारस्परिक अवबोध और बातचीत के द्वारा ही शांति और सद्भावना का लक्ष्य सिद्ध हो सकता है । उसके बाद का इतिहास बड़ा दु.खद है । पर मुझे मालूम हुआ है कि हाल ही मे एक प्रान्तीय गवर्नर ने मेरे एक मित्र से कहा था कि गांधी ने पैक्ट के अंतर्गत अपनी जिम्मेदारियां सोलह आने पूरी की ।

जो हो, वर्तमान अवस्था तो अत्यन्त दु:खदायी और असह्य है । अंग्रेजों की प्रतिज्ञाओं के प्रति इस समय जितना अविश्वास दिखाई देता है और वातावरण मे जितनी कड़ुआहट दृष्टिगोचर होती है, उतनी पहले कभी नही थी । यह सब तो है ही, इससे भी बुरी बात यह है कि पारस्परिक अवबोध और मानवीय सम्पर्क के चिर-परिचित मार्ग को हमेशा के लिए त्याग दिया गया है । इस वयोवृद्ध पुरुष को कभी अव्यावहारिक और अरचनात्मक कल्पनावादी बताया जाता है, कभी बेईमान, चालाक और कपटी राजनीतिज्ञ । उनके लिए एक साथ दोनों ही होना सम्भव नही है, और आप स्वयं जानते है कि वह वास्तव में क्या है । उन्हें समझने की कोई इच्छा नहीं है । मानवीय सम्पर्क मात्र को हौआ समझा जाता है । हाल ही में गांधीजी ने लार्ड विलिगडन को एक पत्र लिखा था जिसे मैंने भी देखा था । उसमें उन्होंने कहा था, "विश्वास करिये, मै आपका और इंग्लैड का सच्चा मित्र हूं ।" वास्तव में उन्होंने यथार्थ बात कही थी । बिहार की पुनर्रचना के कार्य में उन्होंने मर्यादा पर अड़ने के बजाय बगैर किसी शर्त के सहयोग प्रदान किया और इस प्रकार यह प्रमाणित कर दिया कि यद्यपि वह अपने आपको पक्का असहयोगी बताते है, तथापि वह सबमे अच्छे सहयोगी है । अब उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी उठा लिया है और ऐसा करके कांग्रेस के वामपंथियों को रुष्ट कर दिया है । मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नहीं है कि उन्होंने जो कदम उठाया है कांग्रेस उसपर अपनी सही कर

देगी। कांग्रेस और देश में उनका जितना प्रभाव था, जब उससे भी अधिक हो गया है।

पर उसके बाद क्या ? मेरी राय में तो इस समय सबसे अधिक आवश्यक वस्तु अपेक्षाकृत अच्छे विधान की नहीं, अपेक्षाकृत अधिक पारस्परिक अवबोध की है। अविश्वास के वातावरण में तैयार किया गया विधान कभी सफल नहीं हो सकता है। इसके विपरीत, पारस्परिक अवबोध स्वयं वैधानिक गुत्थियां सुलझाने में सहायक होगा। मैं तो यहां तक कहूंगा कि यही एकमात्र ऐसा उपाय है जिसके द्वारा चर्चिलों की दिलजमई कराई जा सकती है कि भारत पर विश्वास करके वे इंग्लैंड के हितों को खतरे में नहीं डालेंगे। अतएव इंग्लैंड और भारत के प्रत्येक हितैषी का इस समय एकमात्र यही मिशन हो सकता है कि दोनों देशों के नेता एक-दूसरे को समझें। महोदय, इस महान सत्य का पता सबसे पहले आपने लगाया और इस सत्य को हृदयंगम करने की आवश्यकता जितनी इस समय है उतनी पहले कभी नहीं थी। मेरा कहना यही है कि समुद्र के इस ओर जिन लोगों का अब भी इस सत्य में विश्वास है वे आपकी सक्रिय सहायता की अपेक्षा करते हैं। इन दुर्दिनों में आपके प्रशंसकों की जबान पर एकमात्र प्रश्न यह है : "लार्ड इर्विन क्या कर रहे हैं ?" आप हमारे मामलों में इस समय भी जितनी रुचि लेते हैं, मैं जानता हूं। पर यदि मुझे अनुमति दी जाय तो मैं कहूंगा कि आपने पहले भारत को जिस प्रकार उदारतापूर्वक सहायता दी थी वह अब आपसे उससे भी अधिक सहायता की आशा करता है। आपने १९३१ में एक उदाहरण रखा था, पर उससे पूरी तौर से लाभ नहीं उठाया गया। मेरी अब भी यही धारणा है कि दोनों देशों के लिए यही एकमात्र मार्ग है और मेरी आपसे यही अपील है कि आपने १९३१ में जिस चीज का श्रीगणेश किया था उसे आगे बढ़ाइये। इस समय जैसा कुछ वातावरण है उसके कारण सफलता दूर भले ही दिखाई देती हो, पर केवल इसी कारण स्तुत्य प्रयास का त्याग क्यों किया जाय:

इस लम्बे पत्र के लिए क्षमा करिये। अपनी सफाई में मैं केवल गांधीजी के प्रति अपनी भक्ति, आपके प्रति अपनी प्रशंसा और अपने देश के प्रति अपने प्रेम का हवाला दे सकता हूं।

भवदीय

जी० डी० बिड़ला

उन्होंने बड़े ही आश्वासन-पूर्ण शब्दों में उत्तर दिया :

प्रिय श्री बिड़ला

कुछ दिन हुए आपका पत्र मिला था। अनेक धन्यवाद। विश्वास रखिये, आजकल की कठिन परिस्थिति में भी भारत को संतोष और शांति देने वाले हर मामले में सद्भावना पैदा कराने के काम में जितनी भी सहायता मैं दे सकता हूं, अवश्य दूंगा। मुझे आज भी पक्का विश्वास है कि जो लोग इस लक्ष्य को प्राप्त करने की सच्ची आकांक्षा रखते हैं उनकी चेष्टाओं से यह महान् कार्य अवश्य पूरा होगा। इसलिए निश्चय मानिये कि मैं जो कुछ भी कर सकता हूं, सहर्ष करूंगा। मेरी सदा से ही यह धारणा रही है कि आजकल की स्थिति में सभी पक्षों को बड़े धैर्य से काम लेना चाहिए और वर्तमान कण्टकाकीर्ण मार्ग को भविष्य की आशा के प्रकाश से आलोकित रखना चाहिए।

आपका
हेलीफैक्स

इस अध्याय को मैं बापू के एक पत्र के साथ समाप्त करता हूं। इस पत्र से इस बात का एक और प्रमाण मिलता है कि किस प्रकार वह अपने कामों में आर्थिक सहायता के लिए मुझपर निर्भर रहते थे। इस बार वह निम्नवर्ग के लोगों की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए घरेलू उद्योगों की स्थापना करना चाहते थे।

वर्धा
२६-११-३४

भाई घनश्यामदास

तुम्हारा पत्र मिला।

मैं कैसे कहूं मुझे क्या चाहिये। जब सौ दो सौ, हजार दो हजार की बात रहती है तब तो मांग लेता हूं। यह ग्राम उद्योग का बहुत बड़ा काम लेकर मैंने निजी हाजत बढ़ा दी है। इसलिये मै तो यह कह सकता हूं कि दूसरा जो आवश्यक दान हो उसे बाद कर बाकी जो रहे सो मुझे दे दिया जाय।

ग्राम उद्योग का बोर्ड बनाने में कुछ मुसीबत पैदा हो रही है। मैं बोर्ड बहुत छोटा, कम से कम तीन का, ज्यादा से ज्यादा दस का, उसी आदमी को चाहता हूं जो उद्देश्य में पूर्ण विश्वास रखते हैं जो करीब-करीब अपना पूर्ण समय देवें। यह काम थोड़ी तकलीफ दे रही है, इसमें कुछ ख्याल रखते होगे।

उतमनझाई खान साहब की देहात है। वहां जाकर बैठने का इरादा कब से रहा है। गुरुवार के रोज दिल्ली खत भेज दिया है। जाने का कारण बताया है और पूछा है क्या कुछ हर्ज है मेरे सरहदी सूबे में जाने में? देखें, क्या उत्तर आता है।

आपरेशन का समय क्या निश्चय हुआ?

बापू के आशीर्वाद

: ११ :

भारतीय शासन बिल

जिस समय ब्रिटिश लोकसभा में भारतीय शासन बिल पर विचार हो रहा था, उस समय स्वभावतः सारे भारतवर्ष की दृष्टि उधर ही लगी हुई थी। इस बिल में भारतवर्ष के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की व्यवस्था नही थी, पर गांधीजी हरिजन-आंदोलन को स्वतन्त्रता की ओर बढ़ने का एक आवश्यक उपकरण निश्चय मानकर अपना सारा ध्यान उसीपर केन्द्रित कर रहे थे। वह जानते थे कि यदि ठीक भावना से काम किया जाय तो बिल से ही लाभ होगा। इसके विपरीत कुछ कांग्रेस-वादियों को इस बिल में कोई तथ्य नही दिखाई देता था और उनका मत था कि इसे मांटेग्यू ऐक्ट से भी बुरा समझकर उसका तिरस्कार करना चाहिए। अब जबकि भारत पूर्णरूप से स्वतंत्र हो गया है, हम भारतवासी इस स्थिति मे है कि अतीत पर अपेक्षाकृत अधिक निष्पक्ष भाव से विचार करें और इस बात को स्वीकार करें कि भारतीय शासन बिल में निश्चय ही वे बीज मौजूद थे जो आगे चलकर अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित होकर अन्त में हमें हमारी मनोवांछित स्वतंत्रता देने वाले थे। आज हमने अपने राष्ट्र का जो संविधान बनाया है उसमे भारतीय शासन-विधान के अनेक अंगों को ले लिया गया है जिससे पता चलता है कि उसे हमारी भावी योजनाओं के सांचे मे ढाला गया था।

कलकत्ता
१४ दिसम्बर १९३४

प्रिय महादेवभाई

कल यहीं अपने यहां मूर के साथ कोई ढाई घटे तक बातें होती रही। श्री मुगरिज जो नये आये हैं, भी, उनके साथ थे। वार्तालाप का विषय अरम्भ से अन्त तक बापू थे। उन्होंने योंही रिपोर्ट के विषय में मेरी सम्मति मांगी। मैंने कहा कि रिपोर्ट उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितना महत्वपूर्ण वर्तमान वातावरण है। मैंने पारस्परिक सम्पर्क के अभाव की कड़ी आलोचना की। वह भी सहमत हुए, पर उन्होंने कहा कि सरकारी हल्कों में सबको यही आशंका है कि गांधीजी के साथ जहां किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित किया गया कि तरह-तरह की अटकलबाजियों को जन्म मिल जायगा। मेरे साथ उनकी जो बातचीत हुई है, वह वायसराय को बतायंगे। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि अंग्रेज लोग गांधीजी में अब पहले से अधिक दिलचस्पी दिखाने लगे हैं। उन्होंने कहा कि वायसराय से कल ही उन्होंने बातचीत की थी, और वायसराय ने पूछा कि सरहद सम्बन्धी पत्रव्यवहार को बापू ने किस उद्देश्य से प्रकाशित कराया। मूर ने कहा कि बापू का उद्देश्य बिल्कुल ईमानदारी से भरा हुआ था। वह कबीले के लोगों को सविनय अवज्ञा की सलाह देना नहीं चाहते हैं। उन्होंने कहा कि वायसराय तो उनके दृष्टिकोण से सहमत हो भी जाते, पर एक वर्ग ऐसा भी है जिसका विश्वास है कि गांधीजी को समझना कठिन है, उनकी हर एक बात मे चाल रहती है। बहुतों की धारणा है कि वह सरकार के खिलाफ नये सिरे से आन्दोलन आरम्भ करने के मौके की तलाश में हैं। उन्होंने यह भी कहा कि वायसराय को जो दूसरा पत्र लिखा गया था उसमें सविनय अवज्ञा की धमकी देना ठीक नहीं हुआ। मुझे जो कुछ मालूम हो सका है उससे तो मैं इसी नतीजे पर पहुंचा हूं कि काफी गलतफहमी मौजूद है। यह गलतफहमी दूर हो जायगी, पर समय लगेगा। खबर है कि सीमाप्रान्त के गवर्नर कनिंघम को, जो बापू को जानता है, आशंका है कि बापू के आगमनसे सरहद में उत्तेजना फैल जायगी और इससे वहां की सरकार को परेशानी होगी। मुझे मूर ने बताया कि बंगाल के गवर्नर बापू से मिलने को बड़े उत्सुक थे, पर किसी-न-किसी कारण से मुलाकात न हो सकी। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या बापू कलकत्ता आ रहे हैं, जिसका अभिप्राय यह था कि यदि वह आवें तो मुलाकात करा दी जाय। मैंने उत्तर दिया कि बापू को बंगाल में कुछ करना नहीं है, इसलिए वह बंगाल नहीं जायंगे, पर यदि अधिकारी उनसे मिलना चाहे तो बात दूसरी है।

मेरी धारणा है कि उनके ऊपर जो प्रतिबंध लगाया गया है उसका एक कारण अविश्वास है, साथ ही यह भी आशंका है कि उनकी सरहद यात्रा से सरकार को परेशानी होगी। मैं समझता हूं कि इस अविश्वास का निवारण बहुत जरूरी है, और निवारण होगा भी। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि विलिंगडन बापू के प्रति विरोध की भावना से उतने प्रेरित नहीं हैं, जितने अविश्वास की भावना से। इन लोगों के लिए सत्याग्रह का मर्म समझना बड़ा कठिन है। मूर ने कहा कि बापू के उपवास को तो सत्याग्रह कहा जा सकता है, पर और जो कुछ हुआ उसे तो सत्याग्रह न कहकर हिंसा कहना ही ठीक होगा। वह तो अतिशयोक्ति से काम ले रहे थे, पर इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि जनता ने जो कुछ किया उसे सत्याग्रह किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता है।

मैंने यह भी देखा है कि एंड्रयूज आदि व्यक्तियों के प्रति इन लोगों की भावना मे कोमलता की प्रचुरता नहीं है। उनके बुद्धि-विवेक के सम्बन्ध में तो उनकी धारणा बड़ी हीन है ही, साथ ही इन लोगों में उनके प्रति एक ऐसी कुत्सा-सी है, जिसका पता मुझे अभी लगा है।

आपका
घनश्यामदास

१ फरवरी १९३५

परमपूज्य बापू

आपके बिदा होने के तुरन्त बाद ही होम मेम्बर और वायसराय के साथ मेरी मुलाकात हुई। इस पत्र के साथ उस मुलाकात का ब्यौरा भेज रहा हूँ। मैं शब्दचित्र खीचने में पटु नहीं हू, विशेषकर अंग्रेजी के शब्दचित्र, इसलिए मैं यह नहीं कह सकता कि इससे आपको सही अंदाजा हो सकेगा या नही। पर मैं इस ब्यौरे के पूरकस्वरूप यह तो कह ही दू कि होम मेम्बर के साथ जो मुलाकात हुई उसके दौरान में अधिकतर मैं ही बोलता रहा, जबकि वायसराय वाली मुलाकात में अधिकतर वही बोलते रहे। होम मेम्बर बड़ी सहृदयता से पेश आया। कोई तीक्ष्ण बुद्धि तो नहीं है, पर वैसे वह बड़ा स्पष्टवादी है। उसे शासनपटु कहा जा सकता है। यदि आप उसके अनुदार होने का अंदाजा लगाना चाहें तो लगा सकते हैं, पर यदि वह अनुदार है तो ईमानदार ढंग का अनुदार है। इसके विपरीत वायसराय ने उस ढंग का आचरण नही किया जिस ढंग का पहली मुलाकातों में किया था। कांग्रेसियोंने अपने नाम नहीं लिखे, इससे उसके दिलको सचमुच ही चोट पहुंची है। पता नहीं, भूलाभाई इस मामले में अन्य कांग्रेसी सदस्यों

की बात छोड़कर स्वयं अपनी स्थिति पर पुनः विचार करने को तैयार होंगे या नहीं। आप स्वयं भी तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सम्बन्ध में पत्र लिखने का विचार कर रहे थे। उसी प्रकार भूलाभाई भी प्राइवेट सेक्रेटरी को लिखकर आश्वासन दे सकते है कि उनका किसी प्रकार का व्यक्तिगत अपमान करने का उद्देश्य नही था। इसके बाद आवश्यकता होने पर वह अपना नाम लिख सकते हैं, क्योंकि पहले नाम न लिखना अपमान-जनक समझा गया था। मै कम-से-कम बंगाल के गवर्नर के साथ तो एक बार फिर बात करूंगा ही। इसके बाद मैं घटनाओं को स्वय अपनी रूपरेखा निश्चित करने के लिए छोड़ दूंगा। इसमें थोड़ा समय तो अवश्य लगेगा, पर मेरी धारणा है कि यदि धैर्य से काम लिया गया तो बहुत-सी बातें स्वतः ही समय पर हो जायंगी। जब उचित समझे, मुझे लिख सकते हैं। होम मेम्बर कम-से कम वल्लभभाई से तो भेट करेंगे ही, सो अच्छा ही है।

विनीत

घनश्यामदास

१५ फरवरी १९३५

परमपूज्य बापू

इस पत्र के साथ सर सेम्युअल होर के अभी आये हुए पत्र की नकल, मेरे उत्तर की नकल तथा बगाल के गवर्नर के साथ मेरी मुलाकात का ब्यौरा भेज रहा हूँ। अब गवर्नर निश्चित रूप से कह रहे है कि बिल पास हो जाने के बाद ऐसी बातों को लेकर मित्रता का हाथ बढ़ाया जायगा, जिनपर दोनों पक्ष सहमत है। आपने भी यही कहा था कि यदि वे लोग कुछ करेंगे तो बिल पास होने के बाद ही करेंगे। यह अटकल लगाना तो बेकार है कि लोग क्या करेंगे, पर फिलहाल यह संतोष की बात है कि उन लोगो ने कोई योजना बना रखी है। सर सेम्युअल होर का पत्र भी उतना ही स्पष्टवादिता और सहृदयतापूर्ण है, पर यह स्पष्ट है कि जितना परिस्थितियों के अनुरूप उनके लिए कहना सम्भव है वह उससे अधिक नही कहना चाहते है। मुझे गवर्नर ने जो बात बताई है सर सेम्युअल होर उसे ध्यान में रख सकते हैं। बिल पास होने के बाद कांग्रेसवादियों के लिए समझौता करना कठिन होगा, पर हमें आशा करनी चाहिए कि ठीक समय पर आपकी सूझ हमारी सहायता करेगी। इस पत्र को पढ़ने के बाद लिखिये कि स्थिति के सम्बन्ध में आपका क्या विचार है और यह भी बताइये कि मुझे क्या करना है।

शायद वल्लभभाई और सर हेनरी क्रेक के बीच में एक और मुलाकात हो। मुलाकात मेरे यहां भी हो सकती है और भूलाभाई और होम मेम्बर

द्वारा निश्चित किये गये किसी आम स्थान पर भी। होम मेम्बर ने इच्छा प्रकट की है कि उसे वल्लभभाई के आगमन की सूचना दे दी जाय। इसलिए कल सुबह भूलाभाई उनसे बात करेंगे और यदि वल्लभभाई ने बातचीत करने की इच्छा प्रकट की तो बातचीत का समय निश्चित कर लेंगे।

आप होम मेम्बर को लिखें या न लिखें, इस असमंजस के सम्बन्ध में मेरा कहना यही है कि जबतक मामला एक-न-एक प्रकार से तय नहीं हो जाता तबतक लिखने से कोई लाभ नहीं है। फिलहाल तो भूलाभाई के मुलाकाती रजिस्टर में अपना नाम लिखने का प्रश्न ही नहीं उठता है, पर यदि दूसरा पक्ष निश्चित रूपसे कहे कि एकमात्र यही अड़चन है तो, जैसा कि मुझे बताया गया है, इस सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं होगी। परंतु जब वातावरण में परिवर्तन होगा तो ऐसी छोटी-छोटी बातों का महत्व बिलकुल जाता रहेगा।

मैं अपने इस विचार पर कायम हूं और मित्रों के साथ बातचीत करने के बाद मेरा यह विचार और भी दृढ़ होगया है कि प्रस्तावित शासन-विधान मान्टेग्यू सुधारों से गया-बीता नहीं है। उसे उससे भी बुरा और अत्याचार-पूर्ण रूप दिया जा सकता है, पर साथ ही उसे अच्छा रूप भी देना सम्भव है। इसलिए मेरा आपसे यही अनुरोध है कि आप संधि का द्वार बन्द न करें। यदि आपके साथ समझौता न हुआ तब तो योजना रद्द हुई रखी है। पर उस समय तक के लिए दरवाजा खुला रखना क्या ठीक न रहेगा?

अच्छा, तो अब मेरे जाने के सम्बन्ध में क्या रहा? गवर्नर के साथ बात करने के बाद से तो मेरी जाने की इच्छा हो रही है, पर अन्तिम निश्चय तो आप ही करेंगे।

साम्प्रदायिक समझौते के बारे में राजेन्द्रबाबू ने एक फार्मूला तैयार किया है जिसे जिन्ना ने मान लिया है। इस फार्मूले का आधार संयुक्त निर्वाचन है। सीटें उतनी ही रहेंगी और वोट देने के अधिकार की व्यवस्था इस प्रकार रखी गई है जिससे विभिन्न इलाकों की दोनों जातियों के संख्या-सम्बन्धी परिमाण का ठीक-ठीक अन्दाजा लगाया जा सके। वह मेरे साथ निकट सम्पर्क बनाये हुए हैं और मैंने उन्हें सलाह दी है कि बंगाल के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए कलकत्ता जाने के बजाय रामानन्द चटर्जी और जे० एन० बसु को यहीं बुला लिया जाय। बंगाल का वातावरण ठीक नहीं है, इसलिए दिल्ली को ही बातचीत का केन्द्र रखना ठीक है। पर असली अड़चन सिखों को लेकर होगी। पंजाब तक के हिन्दुओं को राजी करना सम्भव है। पर काम कठिन अवश्य है। मुझे आशंका है कि हमेशा की तरह इस बार भी मालवीयजी से सहायता नहीं मिलेगी।

यदि मैंने किसी मामले में गलती कर दी हो तो कृपया भूल सुधार कर दीजिये। मैं इस क्षेत्र में नौसिखुआ हूं, पर वैसे मैं आपके विचारों और तर्कबुद्धि से भली-भांति परिचित हूं।

विनीत
घनश्यामदास

मालवीयजी का इस बिल में दिलचस्पी लेना स्वाभाविक ही था। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को दृष्टि में रखते हुए मताधिकार के बारे में उनके अपने निश्चित विचार थे। अपने कट्टर हिन्दूपन और जात-पांत के प्रति अनुराग के कारण उन्होंने गांधीजी के हरिजन आन्दोलन को पसन्द नहीं किया। उनके इन विचारों के कारण और भी दूसरी कठिनाइयां सामने आईं, जिनकी चर्चा मैंने महादेव देसाई के नाम गांधीजी के लिए भेजे गये अपने २७ फरवरी के पत्र में की :

पंडितजी आज विदा हो गये हैं। हस्बमामूल वह न तो घोर सम्प्रदायवादियों से सहमत हैं, न जिन्ना-राजेन्द्रप्रसाद-फार्मूला से। उन्होंने मुझे कई सुझाव बताये हैं, पर उनकी चर्चा करने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि मैं जानता हूं कि अंत में हमें कांग्रेस-लीग समझौते का आश्रय लेना ही पड़ेगा। अब तो यह बात निश्चित-सी होती जा रही है कि पंडितजी इंग्लैंड जायंगे। वास्तव मे बम्बई के लिए रवाना होने से पहले उन्होंने मुझे निश्चयात्मक रूप से बताया कि वह १५ मार्च को रवाना हो रहे हैं।

मेरे ये दिन परेशानी मे कटे। पंडितजी बराबर 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की नीति वाली बात पर जोर देते रहे और कहते रहे कि मुझे पत्र को सोलह आने उन्हींके हाथ में छोड़ देना चाहिए। उन्होंने तो यहां तक कहा कि यदि मुझे उनकी नीति पसन्द नहीं है तो मैं त्यागपत्र दे सकता हूं। मैं उनका सुझाव स्वीकार करने मे असमर्थ था, क्योंकि सवाल सिर्फ मेरे ही इस्तीफा देने का नही था; बल्कि पारसनाथ और देवदास दोनों ही मेरा अनुकरण करते, जिसके फलस्वरूप संकट आया ही रखा था। परिणामस्वरूप पत्र नष्ट हो जाता। अतएव मैंने निश्चयात्मक रूप से कहा 'नहीं', और बताया कि सारा मामला डाइरेक्टरों और शेयर होल्डरों के सामने पेश किया जाय। इससे पंडितजी कुछ समय तक क्षुब्ध रहे, पर अंत में पत्र द्वारा तटस्थ नीति बरते जाने पर राजी हो गये। इस प्रकार अब 'हिन्दुस्तान टाइम्स' न पंडितजी के खिलाफ ही टीका-टिप्पणी करेगा, न पक्ष में ही। मेरी समझ में वर्तमान परिस्थिति में यही सबसे अच्छा उपाय रहा। मैंने बोर्ड से हटाकर उन्हें दुःखी नहीं करना चाहा।

: १२ :

संकट-काल

उधर ब्रिटिश पार्लमेंट मे भारतीय शासन विधान मंथर गति से पास हो रहा था, इधर उसे लेकर भारत और इंगलैंड में विचार-विमर्श का सिलसिला जारी था। यह सिलसिला बिल के पास हो जाने के बाद भी बना रहा। इस विचार-विमर्श के शुरू के दौर में आर्थर मूर ने मुझे बताया कि सी० एफ० एंड्रयूज के सम्बन्ध में उनके देशवासियों की धारणा कुछ विशेष अच्छी नहीं है। मेरी धारणा वैसी नहीं थी और मैं उनकी साधु प्रकृति और नेकनीयती पर तनिक भी संदेह करने को तैयार नही था। पर उनमें ये गुण शायद उनकी बुद्धि की अपेक्षा अधिक परिमाण मे थे, जिसके कारण वह अंग्रेजों की निगाह मे व्यर्थ ही टांग अड़ानेवाले जंचने लगे थे। फलत: उन्हें मध्यस्थता के काम मे सफलता प्राप्त नही हुई। एक बात और थी। उनका अपना चरित्र बहुत ही अच्छा था और उसके आधार पर उनका आत्मविश्वास क्षन्तव्य भी माना जाता, पर विचित्र बात यह थी कि वह दूसरे की छाया को छोड़कर अपना निजी अस्तित्व कायम रखने में असमर्थ थे। यही कारण था कि कभी उनमें गांधीजी के प्रति भक्ति की भावना जोर पकड़ती, कभी कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति उतनी ही प्रबल आसक्ति। रवीन्द्रबाबू को तो वह हमेशा 'गुरुदेव' के नाम से पुकारा करते थे।

वर्धा
१६-१२-३४

प्रिय घनश्यामदासजी

मूर के साथ आपकी बातचीत के अत्यंत रोचक वर्णन का पत्र प्राप्त हुआ। तदर्थ धन्यवाद। आप जो कहते हैं सो तो ठीक है, परतु इस सन्देह का निवारण कैसे हो? सी०एफ० ए० जैसे मध्यस्थों के द्वारा तो यह सम्भव नही है, क्योंकि उनके सम्बन्ध मे उच्च पदस्थ व्यक्तियों की तुच्छ धारणा है। यह तो केवल उन्ही लोगों के द्वारा सम्भव है जो बापू को अच्छी तरह जानते हों और दूसरे पक्ष से भी भलीभाति परिचित हों और उनके विश्वास-भाजन हों। परंतु यह दुर्भाग्य की वात है कि जो लोग इस गणना मे आते है उनमे से अधिकांश भीरु है और उन्हे धमकाया या नीचा दिखाया जा सकता है।

सी०एफ०ए० दिल्ली होम सेक्रेटरी और होम मेम्बर से मिलने गये थे। वह दोनों से मिलने में सफल हुए या एक से, पता नही। वह अपने स्वभावसिद्ध भ्रामक ढंग के तार भेजते है : "लम्बी मुलाकात हुई। आया, अच्छा ही हुआ। विवरण लिख रहा हू। अपने कार्यक्रम का तार भेजिये।" इसके बाद दूसरा तार आया जिसमे उन्होने कहा, "कल पहुच रहा हूं।" ऐसा मालूम होता है कि हमेशा की तरह इस वार भी वह कुछ नही कर सके है, परतु देखे। मै आपको सूचना दे दूगा।

सप्रेम,

आपका ही
महादेव

जिस दिन महादेवभाई ने यह पत्र लिखा उस दिन मैं स्वयं भी अपने नीचे लिखे पत्र में भारतमंत्री के सामने भारतीय दृष्टिकोण पेश करने की चेष्टा कर रहा था।

कलकत्ता
१६ दिसम्बर, १९३४

प्रिय सर सेम्युअल होर

मैं यह पत्र संयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट को ध्यानपूर्वक पढ़ने और कामन्स सभा मे दी गई आपकी सुन्दर स्पीच का अवलोकन करने के बाद ही लिख रहा हूं।

मैं पत्र कुछ हिचकिचाहट के साथ लिख रहा हूं, क्योंकि मै जानता हूं कि प्राय: मेरा और आपका दृष्टिकोण एक नही होता है। पर मैं आपका आदर करता हूं और जिन क्षेत्रों में आपके प्रयासों के गलत मानी लगाये जाते

है उनमे उन्हे मैत्रीपूर्ण प्रकाश मे पेश करता हूं। इसलिए मै अपने हृदय के भावों को आपके सामने रखने का अधिकार-सा समझने लगा हूं और इस प्रेरणा को दबाना ठीक नहीं समझता हूं।

मुझे रिपोर्ट के सम्बन्ध में कुछ नही कहना है। आपने पार्लमेंट में ठीक ही कहा है कि भारत में उसके द्वारा इनेगिने आदमी संतुष्ट हुए हों तो हुए हों। इधर मेरे कानों मे आपके वे शब्द गूज रहे है जो आपने मेरी अंतिम मुलाकात के मौके पर कहे थे: "भारतसचिव चाहे कितने ही उन्मूलक विचारों वाला हो, वर्तमान पार्लमेंट मे वह एक खास हद तक ही आगे बढ़ सकता है।" मै मानता हूं कि वर्तमान पार्लमेंट मे संयुक्त प्रवर समिति द्वारा की गई सिफारिशों से बहुत आगे बढ़ना शायद सम्भव नही होगा, पर मै तो स्थिति को बिल्कुल दूसरे ही दृष्टिकोण से देख रहा हू।

जिस योजना की सिफारिश की गई है मै उसकी तुलना व्यापारिक फर्मों मे दिये जाने वाले मुख्तारनामों से करता हूं। हम लोग आवश्यकतानुसार अपने मैनेजरों और मातहतों को मुख्तारआम और मुख्तारखास के अधिकार देते है। हम वे अधिकार छीन भी सकते है और यदि उनपर से हमारा विश्वास उठ गया हो तो उन्हे बर्खास्त तक कर सकते है। पर मेरी फर्म मे तथा और बहुत-सी फर्मों में, इस प्रकार अधिकार छीनने और बर्खास्त करने के मौके शायद ही कभी आते हों। यह व्यवस्था बड़ी सफल सिद्ध हुई है, क्योंकि मालिक मैनेजर पर विश्वास करता है और मैनेजर मालिक पर, और दोनों एक ही लक्ष्य की सिद्धि के लिए काम करते है। इसका अर्थ यह है कि पारस्परिक विश्वास और एकसमान लक्ष्य मुख्तारनामे के विषय से अधिक महत्वपूर्ण है। जहां तक हमारा सम्बन्ध है, मै समझता हू कि हम सभी का लक्ष्य सोलह आने उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार है। इस लक्ष्य की दिशा मे उठाया गया पहला कदम मामूली सुधार भी हो सकता है और भारी सुधार भी। पर अभीष्ट की सिद्धि के लिए जो चीज सबसे अधिक आवश्यक है, वह है पारस्परिक विश्वास, सद्भावना, सहानुभूति और पारस्परिक अवबोध। क्या हम कह सकते है कि ये इस समय भारत में मौजूद है? मै किसी दल को दोष नहीं दे रहा हूं, पर मेरे मन के भाव यही है कि चूकि सरकार शासक दल है, इसलिए उसीको वैसी अवस्था को जन्म देना है।

मै आपसे अनुरोध करूंगा कि आप इस घटनाक्रम के मनोविज्ञान का विश्लेषण करें, क्योंकि योजना में संशोधन करने के बजाय उसके रद किये जाने की जो बात सुनाई पड़ रही है उसका कारण उसकी त्रुटियां नहीं, बल्कि यह घटनाक्रम ही है।

गांधी-ईर्विन पैक्ट ने स्वीकार किया था कि

१. केन्द्र उत्तरदायित्वपूर्ण हो।

२. संघ सरकार बने।

३. जो आरक्षण और अभिरक्षण हो वे स्पष्टतया ही भारत के हितमे हो।

यह स्पष्ट है कि पैक्ट पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों के द्वारा यह बात मान ली गई थी कि अन्तिम लक्ष्य चाहे जो हो, अतरिम समय के लिए उनका रहना जरूरी है। जो लोग स्वतन्त्रता की बात करते थे—और इस शब्द के भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न अर्थ लगाते थे—वे भी आरक्षणों को अंतरिम समय के लिए पूर्ण और सोलहों आने उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार वाले अतिम लक्ष्य का विरोधी नही समझते थे। क्या इसका कारण यह नही था कि इस समय जिस वैयक्तिक नाते का अभाव है, वह उस गांधी-ईर्विन पैक्ट मे मौजूद था? आपने साझेदारी की भावना पर जोर दिया सो ठीक ही किया, पर जबतक वह पारस्परिक सम्पर्क स्थापित नही होता जिसके द्वारा दोनों देशों मे पारस्परिक अवबोध और विश्वास हो सकता है तबतक उस साझेदारी को प्रकृत रूप कैसे दिया जा सकता है? क्या मै यह निवेदन कर सकता हूं कि प्रगति की मात्रा नही, उसका ढग ही असली चीज है? मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों को एक दुर्भाग्यपूर्ण वातावरण मे अमल मे लाया गया था और मुझे आशा है कि उसकी पुनरावृत्ति नही की जायगी।

यह न जानते हुए भी कि आपकी निगाह में मेरी क्या साख है मैंने यह सब इसलिए लिखने का साहस किया कि मै दोनों देशों के बीच मैत्री और शान्ति का सम्बन्ध स्थापित होते देखना चाहता हूं, और इस दिशा में विनम्र ढंग से बराबर काम भी करता जा रहा हू।

सदाकांक्षाओं के साथ,

मै हूं
आपका
जी० डी० बिड़ला

साथ ही मैंने बंगाल के गवर्नर से भी भेंट की जिसका विवरण मैंने बापू की जानकारी के लिए महादेव देसाई के नाम अपने इस पत्र में दिया:

कलकत्ता,
१८ दिसम्बर, १९३४

मूर से मिलने के बाद मै गवर्नर से मिला और उसी विषय पर चर्चा की। वह मुझसे सहमत तो हुए, पर साथ ही उन्होंने अपनी असमर्थता

प्रकट करते हुए कहा, "आप वायसराय से क्यों नही मिलते ?" मैंने कहा "वायसराय के लिये तो मै अछूत जैसा हूं ।" इस पर वह बोले" "आप उनसे गत वर्ष तो मिले थे ?" मैंने कहा, "नही।" मैंने उनसे कहा कि मै वायसराय से तभी मिल सकता हूं जब इस विषय पर बात करने का उनकी ओर से बढ़ावा मिले, पर यदि वह समझे कि मै ख्वामख्वाह् टांग अड़ाता फिरता हूं और अपना कोई स्वार्थ सिद्ध करना चाहता हूं, तो मेरा जाना ठीक नही है। उन्होंने कहा कि यदि वायसराय समझेगे कि आप गांधी के दूत बनकर आये है तो उन्हे बातचीत करने में हिचकिचाहट होगी। मैंने उत्तर दिया, "मै किसी का दूत नही हूं, और जहा तक मुझे मालूम है, गांधीजी ने किसी को अपना दूत नियुक्त नहीं किया है।" उन्होंने मेरी नेकनीयती मे पूरा विश्वास प्रकट करते हुए कहा, "वायसराय से बात करके देखूगा और यदि उनसे भेंट करने मे कोई लाभ दिखाई देगा तो आपको लिखूगा।" उन्होंने मुझसे पूछा "अभी कलकत्ते मे ही रहेगे ?" मैंने उत्तर दिया, "हा।" मेरी धारणा है कि सी० एफ० ए० का उनसे मिलना निरर्थक होगा। कहना तो यह चाहिए कि वह बना-बनाया खेल बिगाड़ देगे।

मै इन लोगों के साथ घनिष्टता बढ़ाना चाहता हूं, जिससे बापू का प्रतिनिधित्व अच्छी तरह किया जा सके। ऐसा किया भी जा सकता था, पर इसके लिए अनुकूल अवसर दिखाई नही देता है। यदि मै व्यवस्थापिका सभा में होता तो बात दूसरी होती। पर इस समय तो मैं अपने निजी ढंग से काम कर रहा हूं और स्थिति को अपने ही ढंग से चलने देना चाहता हूं।

एक सप्ताह भर सोच में पड़े रहने के बाद मैंने कल यह निश्चय किया कि मै इसी ढंग से सेम्युअल होर को भी लिखूं। मै समझता हूं कि मौजूदा हालत में सरकार के लिए यह सम्भव नही कि वह बापू के साथ विधान-सम्बन्धी मामलों पर बातचीत शुरू करे और इसलिए मै इस बात पर जोर नही दे रहा हूं। मै तो केवल इस बात पर जोर दे रहा हूं कि वे लोग बापू को समझे और उनके व्यक्तिगत सम्पर्क में आवें। मेरे विचार मे ऐसा करने से बाकी सब गुत्थियां अपने आप सुलझ जायंगी। बापू और सरकार के बीच केवल बापू ही मध्यस्थ बन सकते है।

संयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट में कुछ नही रखा है। उसकी सिफारिशों का मतलब केवल इतना ही है कि स्वामी अपने नौकर को ऐसे अधिकार सौंपे जो इच्छानुसार छीने जा सकें। पर यदि सरकार और बापू के बीच उचित समझौता हो जाय तो यह बात भी हमें स्वराज्य के निकट ले जा सकती

है और कुछ समय के बाद बेहतर विधान प्राप्त करने मे हमारी सहायक हो सकती है। इसलिए बापू जिसे हृदय-परिवर्तन कहते हैं, उसे मैं वैधानिक मामले की अपेक्षा अधिक महत्व देता हू।

मैंने बड़े विश्वस्त सूत्र से सुना है कि वायसराय भवन मे यह बड़ी जबर्दस्त धारणा है कि बापू गावों में यह सारा संगठन कार्य इसीलिए चालू कर रहे है कि बाद में सविनय अवज्ञा के आन्दोलन में गांवों के लोगोंको भी सम्मिलित कर सकें।

मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि बापू केवल मेरी खातिर नही आ रहें हैं। यदि ऐसा होता तो मुझे बड़ा संकोच होता। अब कुछ दिन उनके संसर्ग का आनन्द लेने की आशा है, पर क्या लोग उन्हे शांति मे रहने देगे ?

राजाजी को भ्रम हो गया कि मैं बीमार हूं। उन्होंने मुझे मेरे स्वास्थ्य के बारे में एक पत्र लिखा और मैंने निम्नलिखित उत्तर दिया

कलकत्ता
२० सितम्बर, १९३४

प्रिय राजाजी

आपके पत्र के लिए धन्यवाद।

मै थोड़े या बहुत समय के लिए खाट पर बिल्कुल नही पड़ा। हां, तीन-चार दिन तक आराम जरूर किया, पर मुझे अपने घर मे घूमने-फिरने की पूरी आजादी थी। मुझे आफिस या कलकत्ते के बाहर नहीं जाने दिया गया, क्योकि डाक्टरों को भय था कि कोई रोग न घेर ले।

आपके दिल्ली जाने की खबर सुनी और सयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट पर आपकी प्रेस मुलाकात भी पढ़ी। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आपने उसे वर्तमान शासन-व्यवस्था से भी गया-बीता बताया। मै तो समझे बैठा था कि हम दोनों इस मामले मे सहमत है कि उसकी सारी बुराइयों को ध्यान मे रखते हुए भी वह वर्तमान शासन-व्यवस्था से बुरी नही है। हो सकता है, आपकी स्पीच की गलत रिपोर्ट ली गई हो। मेरी अपनी राय तो यह है कि इस समय जिस चीज की सबसे अधिक आवश्यकता है, और जो सम्भव भी है, वह वैधानिक परिवर्तन नही, बल्कि वर्तमान वातावरण में परिवर्तन है। यदि दोनों ओर का वातावरण

मैत्रीपूर्ण हो और ब्रिटेन की ओर से सद्भावना प्रकट की जाय तो असंतोष-जनक होते हुए भी वर्तमान शासन-व्यवस्था अच्छी तरह अमल में लाई जा सकती है। पर यदि वातावरण मे सुधार नही हुआ तो इससे भी अच्छी शासन-व्यवस्था को अमल में नहीं लाया जा सकता। अतएव मै तो इस बात की अपेक्षा कि कितनी प्रगति हुई, वातावरण को अधिक महत्व देता हूं।

अगाथा का कहना है कि आपको लदन जाना चाहिए। स्वयं मेरी राय भी यही है कि अच्छे-से-अच्छे इरादे लेकर इधर-उधर फिरने और कुछ हासिल न कर सकने वाले श्री एण्ड्रयूज की अपेक्षा आपका और वल्लभभाई का लंदन जाना कहीं अच्छा रहेगा। इस समय श्री एण्ड्रयूज मेरे पास ही है, और कल वायसराय से मिल रहे है। वायस-राय से मिलने के लिए भूलाभाई सबसे उपयुक्त है, और अब तो उन्हे वैधानिक मर्यादा भी प्राप्त है, इसलिए उनके जाने से कुछ लाभ भी निकलेगा।

आशा है, लक्ष्मी और बच्ची दोनों सकुशल है। देवदास भी एक दूसरे तुषार कान्ति होते जा रहे है, जो दिन भर 'पत्रिका' के लिए परिश्रम करते है और रात को उसके स्वप्न देखते है।

आपका
घनश्यामदास

सर सेम्युअल का उत्तर नए वर्ष के बिल्कुल शुरू में आया। उसपर ४ जनवरी, १९३५ की तारीख पड़ी हुई है:

(निजी)
प्रिय श्री बिड़ला

मुझे फिर से आपका पत्र पाकर खुशी हुई। मेरे भाषण के बारे में आपने जो कुछ लिखा है उसके लिए अनेक धन्यवाद। विधान के सवाल पर आपकी और मेरी राय एक नहीं है। फिर भी यह अच्छी बात है कि हम एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझ ले। यह तो स्पष्ट ही है कि आपके विचार मे संरक्षणों की बात प्रमुख है। यहां हम लोगों को बड़ी बात यह मालूम देती है कि स्वराज्य का क्षेत्र कितना विस्तीर्ण हो रहा है। कठिनाई की—बहुत बड़ी कठिनाई की—बात यह है कि लोगों को यह कैसे समझाया जाय कि संरक्षण काफी ठोस हैं। और वे सचमुच के संरक्षण हैं, केवल कागजी नहीं। यहां कुछ आदमी ऐसे है जो यह मानने को कभी

तैयार न होंगे, पर मै समझता हूं कि ऐसे समझदार लोगों की संख्या अब बहुत अधिक हो गई है जो इस बात पर विश्वास करने लगे हैं। ये वे लोग हैं जो सारी समस्या पर गम्भीरता के साथ विचार करते है और इस बात के लिए उत्सुक है कि भारत के साथ उचित व्यवहार किया जाय। हमारी चेष्टाओं के फलस्वरूप आजकल यहां जो लोकमत तैयार हुआ है उसे अभी पिछले दिनों हमारे एक चोटी के राजनीतिक लेखक ने इन शब्दों मे व्यक्त किया : "जहां एक ओर हमने स्वतंत्र संस्थाएं प्रदान की हैं, वहा सरक्षणों के रूप में भारत मे ब्रिटिश राज्य-सम्बन्धी एक नई भावना की रूपरेखा तैयार हो रही है। हम आजादी देने के साथ-ही-साथ उसके खतरों का बीमा भी कर रहे है।" मुझे उम्मीद है कि आप व्यापारिक भाषा में व्यक्त किये गए इन अंतिम शब्दो को पसन्द करेंगे। मे चाहता हूं कि आप और आपके मित्र इस मामले को इसी दृष्टिकोण से देखे। यहां को आम भावना सोच-समझकर काम करने की है। आप शायद इसे सतर्कता कहेंगे, किन्तु निश्चय ही इसमें अनुदारता की भावना का समावेश नही है। यह बात भारत के कुछ लोग नही समझ रहे है, लेकिन मुझे अब भी उम्मीद है कि यह सबकुछ आपको जैसा प्रतीत हो रहा है, अन्त में वह उससे अच्छा सिद्ध होगा।

आपका
सेम्युअल होर

इस पत्र को पाते ही मैंने फिर लिखा :

१९ जनवरी, १९३५

प्रिय सर सेम्युअल होर

आपके ४ जनवरी के पत्र के लिए धन्यवाद। मुझे ऐसा लगता है कि अपने पिछले पत्र में मैं अपने को पूरी तरह स्पष्ट नही कर पाया, नही तो आप यह न कहते कि मेरे चित्त मे संरक्षण की बात ही सबसे मुख्य है। मैं संरक्षणों से बिल्कुल भयभीत नहीं हूं। भारत के हित में भी कुछ-न-कुछ संरक्षण की तो आवश्यकता होगी ही, पर मैं यह नही कह सकता कि रिपोर्ट में जिन संरक्षणों की व्यवस्था की गई है वे भारत के लिए हितकर हैं। इसके अतिरिक्त रिपोर्ट में इसका कोई भी उल्लेख नहीं है कि अंतिम लक्ष्य की ओर अगला कदम क्या होगा। यह कोई साधारण त्रुटि नहीं है। फिर भी मैं जानता हूं—और मैने अपने पिछले पत्र में भी माना था—कि आपकी अपनी कठिनाइयां हैं। मैं यह भी मानता हूं कि अब जबकि

पांसा फेंका जा चुका है, मेरा आपसे यह कहना कि आप अपनी योजनाओं में भारतवासियों के मत के अनुकूल परिवर्तन कर दे शायद तथ्य की ओर से आंखें वन्द करने के समान होगा। इसलिए अपने पिछले पत्र मे मैंने आपसे जो बात कहनी चाही थी वह यह थी कि संरक्षणों का रूप चाहे कुछ भी हो, उनके पीछे यदि सच्ची सहानुभूति और सद्भावना होगी तो उनसे प्रगति मे बाधा नही पड़ेगी। मै आपका यह कथन स्वीकार करने को तैयार हूं कि योजना में अनुदारता की नहीं, बल्कि सोच-समझकर काम करने की भावना है। पर क्या आप यह नही चाहेगे कि भारतवर्ष के सभी अच्छे व्यक्ति आपसे सहमत हों और कह उठे, "विधान वैसा तो नही है जैसा हम चाहते है, फिर भी निर्माण के उद्देश्य को सामने रखकर हम इसे पूरी ईमानदारी के साथ चलाने की चेप्टा करेगे, क्योंकि लिखित रूप में जिस वस्तु का अभाव रह गया है उसकी पूर्त्ति भावना के द्वारा हो जायगी।" मैं चाहता हूं कि आपके शासन-कार्य में जो नये साझी बनने वाले है (अर्थात् भारतवासी) उन्हें उनके ब्रिटिश साझी स्वयं यह विश्वास दिलावे कि वे भारत के साथ न्याय करना चाहते है और इस मामले मे उदारता की कमी नही है। मैं ये बातें अनिश्चित विचारों वाले लोगों की तरह नही लिख रहा हू, बल्कि एक ऐसे व्यवहारी, कामकाजी व्यक्ति की हैसियत से लिख रहा हूं, जिसे इस बात का विश्वास है कि सद्भावना मौजूद रहेगी तो यह काम पूरा हो सकता है और अवश्य पूरा होना चाहिए। कभी-कभी तो मै यह महसूस करता हूं कि मैं लंदन जाकर और आपसे मिलकर आपसे भी अपना यह दृष्टिकोण मनवाऊं कि पारस्परिक सद्भावना से बुरे संरक्षण भी खतरों के लिए बीये का काम कर सकते है, जबकि मानवीय भावनाओं के अभाव मे अच्छे संरक्षण भी शांति और सहज कार्य-संचालन के मार्ग में बाधक सिद्ध होंगे।

मैंने यह सबकुछ आपके पिछले पत्र की स्पष्टवादिता से प्रोत्साहित होकर ही लिखा है और मै आपको विश्वास दिलाता हूं कि मित्रता की भावना उत्पन्न करने के लिए आप जो भी कदम उठायेंगे उसमें आपको मेरा पूरा सहयोग मिलेगा। इस भावना का भारतवर्ष के आजकल के वातावरण में अभाव-सा है। भाग्य ने दोनों देशों को एक साथ बांध दिया है, इसलिए यह भावना नितान्त आवश्यक है।

आपका
जी० डी० बिड़ला

पिछले अध्याय में मैंने होम मेम्बर सर हैनरी क्रेक के साथ ३० जून, सन् १९३५ को की गई अपनी मुलाकात की चर्चा की थी। इस बात का दृष्टांत देने के लिए कि व्यक्तिगत सम्पर्क के महत्व मे मेरा कितना दृढ़ विश्वास रहा है और किस प्रकार मै हर सम्भव अवसर पर इसकी आवश्यकता पर जोर देता रहता हूं, मै उक्त मुलाकात का विवरण कुछ विस्तार के साथ देना पसन्द करूंगा :

आदमी ६० वर्ष के लगभग है। शक्ल-सूरत से निश्छल और ईमानदार दिखाई दिये। आरम्भ ही में भेंट करने को आने के लिए धन्यवाद दिया। बोले कि उन्हे वायसराय से पता चला है कि मेरा उन लोगों से मतभेद है, जिनके विचार मे प्रस्तावित सुधार मांटेग्यू सुधारों से भी गये-बीते हैं। मैंने कहा, "सो तो हैं, पर मेरी सम्मति अमर्यादित नही है। मैंने तो वायसराय से कहा भी था कि मै अबतक जिन लोगों से मिला हूं उनमे से एक भी तो ऐसा नही है जिसका यह विचार न हो कि प्रस्तावित सुधार माटेग्यू-सुधारों से भी गये-बीते है, और यदि मेरा इन लोगों से मतभेद है तो केवल मेरी इस धारणा के कारण कि यदि दोनों पक्षों ने सद्भावना और सहानुभूति का परिचय दिया तो इन प्रस्तावित सुधारों के द्वारा हम अपने लक्ष्य-स्थान तक पहुंच सकते हैं।" मैंने कहा, "मै तो रिपोर्ट को जांचने की कसौटी उसकी सामग्री को नहीं, बल्कि उसे जिसे नीयत के साथ कार्यान्वित किया जायगा, उसे मानूंगा। यदि ब्रिटेन ने नेकनीयती से काम नहीं लिया तो संरक्षण मार्ग के रोड़े मात्र सिद्ध होगे, और यदि नेकनीयती और सहानुभूति के दर्शन हुए तो यही संरक्षण खतरे का बीमा सिद्ध होंगे।" उन्होंने कहा, "मै आपको विश्वास दिलाता हूं कि हार्दिक सहानुभूति और नेकनीयती मौजूद है। मै चर्चिल और उसके अनुयायियों की तो बात नही कहता, पर अनुदार दल में युवक समाज काफी संख्या मे है और उन लोगों की सहानुभूति वास्तविक हैं। वे अनुभव कर रहे है कि वे भारी अधिकारों का त्याग कर रहे है। संरक्षण केवल जोखिम के अवसर के लिए हैं, और मै तो नही समझता कि उन्हे कभी काम में लाया जायगा। यदि भारत ने इन्कार किया तो इससे बड़ी गलती दूसरी नही होगी। इसमें संदेह नहीं कि योजना का असंतोषजनक पहलू भी है। हमें तो वह तक नही मिला जो हम—अर्थात् सरकार—चाहती थी। अंग्रेज लोग कांग्रेसियों के उद्गारों से सशंकित हो उठे थे, इसीलिए इन संरक्षणों का जन्म हुआ।

पर आप श्री गांधी को आश्वासन दीजिये कि हम हृदय से भारत की भलाई करना और श्री गांधी का सहयोग प्राप्त करना चाहते है।" मैंने उत्तर दिया, "मैं आपका आश्वासन स्वीकार करने को तैयार हूं और यह भी मानने को तैयार हूं कि आप सब लोग सहानुभूति रखते हैं और भलाई करना चाहते हे। पर जब मैं गांधीजी के चरणों मे जाकर बैठता हूं तो देखता हूं कि वह भी देश के कल्याण के लिए सहयोग करने को अत्यत उत्सुक है। जब मैं देखता हूँ कि यहां भी मेल-मिलाप की इच्छा है, और वहां भी वैसी ही इच्छा है, पर तो भी खाई बदस्तूर है तो मेरा आश्चर्य-चकित होना स्वाभाविक ही है। यदि आप गांधीजी की ओर मैत्री का हाथ नहीं बढ़ा सकते है तो आपकी मेल-मिलाप सम्बन्धी अभिलाषा में कोई-न-कोई त्रुटि अवश्य है।" उन्होंने उत्तर दिया, "आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई। क्या आप यह चाहते है कि वायसराय श्री गांधी से मिलें? हिज़ ऐक्सीलेन्सी उनसे मिलना तो चाहते है, पर व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों ने बहिष्कार करके नई जटिलताएं उत्पन्न कर दी है। यदि आप इस सम्बन्ध मे कुछ कर सकें तो बड़ी बात हो, क्योंकि उससे सहायता मिलेगी।" मने कहा, "इसके लिए आपको भूलाभाई से बात करनी चाहिए, परतु व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के सम्बन्ध में कोई निष्कर्ष निकालने से पहले आप इस बात की ओर ध्यान न देकर कि उन्होंने क्या किया है, इस बात की ओर ध्यान दें कि उन्होंने क्या कुछ नहीं किया है।" और मैंने बताया कि किस प्रकार व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों ने वायसराय की स्पीच के समय मौजूद न रहने का निश्चय किया था। वह काफी प्रभावित हुए।

मैंने कहा, "गांधीजी की न्यायप्रियता का एक और उदाहरण लीजिए। उन्होंने जानबूझकर ६¼ प्रतिशत की छांट मंजूर कर ली, जिससे पता चलता है कि समझौते और रचनात्मक कार्य मे उनका कितना विश्वास है। सर हैनरी क्रेक, आप जैसे आदमी के सम्बन्ध मे, जिसने हजारों आदमियों की खोपड़ियां तोड़ दी है और जिसने आर्डिनेन्स जारी किये है, पिस्तौल और तलवार हाथ मे लेकर चलने की कल्पना आसानी से की जा सकती है। पर जब मैं आपसे मिलता और बात करता हूं तो आपको स्पष्टवादी और ईमानदार आदमी पाता हूं। आप गांधीजी और उनका अनुसरण करने वालों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की बाते सुनते रहते है और उनके सम्बन्ध में आपके मन पर संदेह के बादल छाये रहते होंगे। आप यह भूल जाते है कि मनुष्य मनुष्य ही है, उसके पास हृदय है, और उसमें भाव उठते है। क्या आपने कभी गांधीजी के हृदय को स्पर्श करने की चेष्ट

की है ?" उन्होंने कहा "हां, मैं मानता हूं कि यह सबकुछ बड़े परिताप का विषय है, पर आप मुझे यह बताइये कि सुधारों के सम्बन्ध में श्री गांधी के क्या विचार हैं ?" मैंने उत्तर दिया, "आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उन्होंने अभी रिपोर्ट पढ़ी तक नहीं है और यह उनके अनुरूप ही है। वह बड़ी-बड़ी चीजों को साधारण-सी घटनाओं से जांचते हैं। यदि उन्हें छोटी-छोटी चीजों में उदारता के दर्शन नहीं हुए तो वह स्वगत कहेंगे, "रिपोर्ट में भी उदारता के दर्शन होने की क्या आशा है?" पर मैं उनकी विचार-धारा के सम्बन्ध में एक बात कह दूं। उनके पास लोग-बाग आते हैं और कहते हैं कि प्रस्तावित सुधार मांटेग्यू-सुधारों से भी गये-बीते हैं और वह उनकी बात का अनुमोदन करते हैं। और जब मैं उनसे कहता हूं कि यदि दोनों ओर सहानुभूति और सदाकांक्षा प्रचुर मात्रा में मौजूद रहे तो आयोजित योजना को व्यवहार में लाया जा सकता है, तो वह मेरी बात का भी अनुमोदन करते हैं, और उनके इस रवैये में किसी प्रकार का विरोधाभास भी नहीं है। वह अपना दृष्टिकोण इस प्रकार समझाते हैं: 'जब माटेग्यू ने अपने सुधारों का श्रीगणेश किया था तो कम-से-कम कुछ लोगों को अपना विश्वास-भाजन अवश्य बना लिया था, और उसे उनका समर्थन भी प्राप्त हुआ था। इससे पता चलता था कि उसने भारतीय जनमत को अपने साथ लेने की दिल से कोशिश की। पर इस प्रस्तावित योजना के लिए सरकार के साथ जनता का कोई भी वर्ग नहीं है। इससे पता चलता है कि सरकार को इसकी कोई चिन्ता नहीं है कि उसे जनता का विश्वास प्राप्त होगा या नहीं। इस प्रकार प्रस्तावित सुधार मांटेग्यू सुधारों से भी गये-बीते सिद्ध हो रहे हैं।' आप साझेदारी की बात तो करते हैं, पर जो लोग आपके साथ साझे में आने वाले हैं उनके साथ आप किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित करना नहीं चाहते। इससे सदाकांक्षा या सहानुभूति कैसे प्रमाणित होगी ? यदि आप यह प्रमाणित कर सकें कि सदाकांक्षा और सहानुभूति तो मौजूद है, पर परिस्थिति ही ऐसी है कि आप आगे कदम नहीं बढ़ा सकते तो गांधीजी समस्या का हल ढूंढ़ निकालेंगे और आपकी ओर सहायता का हाथ बढ़ायंगे। तब वह इन सुधारों को वर्तमान शासन-विधान के मुकाबिले में अच्छा समझकर ग्रहण कर लेंगे। एक बार गांधीजी से स्वराज्य की परिभाषा करने को कहा गया तो उन्होंने उसकी कोई कानूनी परिभाषा करने के बजाय दस या चौदह मुद्दे रखे और उन्हें स्वराज्य का प्रतीक बताया। आपको गांधीजी की विचार-शैली का इसीसे पता चल जायगा।' उन्होंने कहा, "इससे पता चलता है कि गांधीजी व्यावहारिक आदमी नहीं हैं।" मैंने उत्तर दिया, "न, इससे पता चलता है कि गांधीजी सब से

अधिक व्यावहारिक आदमी है और जो लोग व्यावहारिक आदमी नहीं होते वे लकीर के फकीर बनकर चलते है। गांधीजी बिल्कुल भिन्न हैं। और मै एक व्यवसायी की हैसियत से कह सकता हूं कि यदि सदाकांक्षा और सहानुभूति उपस्थित रहीं तो इन प्रस्तावित सुधारों तक की सहायता से लक्ष्य-स्थान तक पहुंचा जा सकता है।"

उनकी समझ में तुरत ही आ गया कि उन्होंने गांधीजी को अव्यावहारिक बताकर गलती की। मैंने कहना जारी रखा, "गांधीजी के आगमन से पहले लोगों की राजनीतिक दीक्षा विध्वंसात्मक प्रणाली मे हुई थी। हमें यह सोचना बताया गया था कि राजनीति का अर्थ है सरकार की विध्वंसात्मक आलोचना करना। गांधीजी ने एक नई भावना प्रदान की। उन्होंने कहा, "कातो और बुनो। अस्पृश्यता का निवारण करो, अल्पसंख्यक जातियों के साथ मेल करो", इत्यादि-इत्यादि। जनता के सामने पहली बार रचनात्मक पहलू रखा गया। पर हमने अभी तक सरकार की प्रशंसा करना नही सीखा है, क्योंकि आप लोगों ने हमें अभी तक इसका मौका ही नही दिया। जो हो, इस प्रकार की शिक्षा बड़ी खतरनाक है। एक खास वर्ग धीरे-धीरे बढ रहा है, जिसका विश्वास है कि वैधानिक उपायों से अच्छी-से-अच्छी चीज भी प्राप्त नही करना चाहिए। उस वर्ग की धारणा है कि वैधानिक उपायों से प्राप्त किया गया स्वराज्य भी स्वराज्य नही है। उनके निकट स्वराज्य से भी अधिक क्रान्ति का महत्व है। यह वर्ग विभिन्न श्रेणियों और सरकार के खिलाफ घृणा का प्रचार जारी रखेगा, सरकार चाहे विदेशी हो चाहे देशी[1] गांधीजी इस मनोवृत्ति के खिलाफ लड़ रहे है। वह हरएक कदम पर कटुता से बचना चाहते है। हिंसा के द्वारा प्राप्त किये गए स्वराज्य का उनके निकट कोई उपयोग नहीं है। वह तो अहिंसा को स्वराज्य से भी अधिक महत्व देते है। उनके निकटतम सहकारी उनकी नीति में आस्था रखते है। पर गांधीजी कितने दिन जीवित रहेगे? यह अतीव आवश्यक है कि उनके जीवन-काल में ही ऐसा समझौता हो जाय जिसके द्वारा जनता और सरकार एक-दूसरे के निकटतर आ जायं। इस प्रकार एक दूसरे प्रकार की शिक्षा का प्रारम्भ हो जाय जिसके द्वारा लोग यह जानना सीखेंगे कि सरकार उन्हीकी संस्था है, इसलिए उसका विध्वंस नही, सुधार करना चाहिए। यदि शिक्षा-प्रणाली में तुरंत ही परिवर्त्तन नही किया गया तो बड़ा भारी अहित होगा।

---

१. बाद की घटनाओं ने इस कथन की सचाई को अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया।

रक्तपातपूर्ण क्रांति अनिवार्य हो जायगी, और यह न केवल भारत के लिए ही, बल्कि इंग्लैंड के लिए भी घोर दुर्भाग्य की बात होगी। अनुदार दलवाले कह सकते हैं कि यह भारत का जनाजा होगा, मैं तो कहूंगा कि यह दोनों का जनाजा होगा। अकेले गांधीजी ही ऐसे व्यक्ति हैं जो न्यायपूर्ण बात के लिए अड सकते है, चाहे इससे उनकी बदनामी ही क्यों न होती हो।"

उन्होंने कहा, "इसमे संदेह नहीं कि श्री गांधी साहस मे अपना सानी नही रखते है। उनकी नेकनीयती मे मुझे बिल्कुल संदेह नहीं है और मै यह भी स्वीकार करता हू कि उन्होंने साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रवाह को रोक दिया है। परतु मान लिया कि हम लोग श्री गांधी को अपनी नेकनीयती का विश्वास दिला सके और उनके साथ किसी प्रकार का समझौता भी हो जाय, पर क्या देश उनकी बात मान लेगा ?" मैने कहा, "हां। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नही है। और उनमे अन्याय का प्रतिरोध करने की क्षमता है, चाहे वह अन्याय स्वयं उन्हीके आदमियों ने किया हो।" उन्होंने कहा, 'मेरे पास तो कांग्रेसियों का मापदड समाचार-पत्र है, जो कि आजकल बहुत ही खराब है।" मैने कहा, "हम लोग एक दुष्ट चक्र मे घूम रहे है। अविश्वास से अविश्वास उत्पन्न होता है। आपने अविश्वास का वातावरण उत्पन्न करके यह साबित कर दिया है कि आप इस समय जिस साझेदारी की बात करते नहीं अघाते है वह तबतक मक्कारी समझी जाती रहेगी जबतक आप अपने साझियों से मिलने को तैयार नही होंगे।" वह बोले, "आप श्री गांधी को आश्वासन दीजिये कि वह हम सबको बहुत भाते है और हम उन्हे सहयोग देने को तैयार है।" मैने उत्तर दिया, "मेरे संदेशा पहुंचाने से क्या लाभ जब आपको उनके सम्पर्क मे आने मे संकोच है !" उन्होंने पूछा, "आप यह सम्पर्क अभी, चाहते है या बिल पास होने के बाद ?" मैने कहा, "देर करने से क्या लाभ ? हम दूसरे ढंग से जनता के शिक्षण का कार्य जितनी जल्दी आरम्भ करें हम सबके लिए उतना ही अच्छा है।" उन्होंने कहा, "सच बात तो यह है कि मुझे उनसे मिलते डर लगता है। मेरा छोटा-सा दिमाग है और मैं सीधा-सादा आदमी हूं। संभव है, वह मेरे बूते से अधिक सिद्ध हों।" मैंने कहा, "मुझे यह जानकर दु:ख हुआ। जब आप खुद ही स्वीकार करते है कि वह निष्कपट और ईमानदार आदमी है तो आपको तो उनकी शक्ति अपनी ओर करके प्रसन्न होना चाहिए।" मैंने उन्हें यकीन दिलाया कि गांधीजी को उनके जैसा स्पष्टवादी और ईमानदार आदमी बहुत ही अच्छा लगेगा। उन्होंने पूछा, "क्या आपका सचमुच विश्वास है कि मेरे जैसा

आदमी उन्हें भायेगा ?" मैंने कहा, "हां, क्योंकि मैंने आपको दिल का साफ आदमी पाया है।" उन्होंने कहा, "मेरी बात पर विश्वास करिए, मैंने भारत में ३२ वर्ष बिताये हैं, और मैं अपने आपको एक भारतवासी कहता हूं। मैंने भारतीय भावनाओं और आकांक्षाओं का पक्ष लिया है और लेता रहूंगा। मैं नहीं कह सकता कि मैं ईमानदार हूं या नहीं, पर इतना तो मैं कह ही सकता हूं कि मैंने हमेशा स्पष्टवादी और ईमानदार होने की चेष्टा की है। आप जो कुछ कहते हैं मैं उसपर बड़ी गम्भीरता के साथ विचार करूंगा, और आप श्री गांधी को यह बता दीजिये कि हम लोग प्रस्तावित शासन-विधान से कहीं अच्छा शासन-विधान चाहते थे। हम लोगों ने संघर्ष किया, होर ने संघर्ष किया। पर चर्चिल के दलवालों की ओर से जो कठिनाइयां पेश की जा रही हैं वे वास्तविक हैं और उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। अनुदार दल का युवा समाज भारत की भलाई करने को सचमुच उत्सुक है। हम सबकी सहानुभूति मौजूद है, नेकनीयती भी मौजूद है। आप यह न समझिये कि मजदूर दलवाले आपको कुछ दे देंगे।"

इसके बाद हमने वल्लभभाई की चर्चा की। उन्होंने उनसे मिलने की उत्सुकता प्रकट की। मैंने अपने यहां ६ तारीख को संध्या के ५ बजे मुलाकात का आयोजन किया है।

मैं अपनी धारणा के आधार पर कह सकता हूं कि ये लोग वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित करने को बड़े उत्सुक हैं, पर साथ ही हिचकिचा भी रहे हैं। उन्होंने देख लिया है कि देश उनके साथ नहीं है। उन्होंने यह भी अनुभव किया है कि गांधीजी मे साहस है, ईमानदारी है और यदि विधान पर कोई आदमी समझौता कर सकता है तो अकेले वही कर सकते हैं। इससे उनमें एक नई आशा जागृत हो गई है। मैं समझता हूं इन लोगों का दिमाग ठीक दिशा में काम कर रहा है।

: १३ :

हिन्दू और मुसलमान

३० जनवरी, १९३५ को सर सेम्युअल होर ने फिर लिखा :

इंडिया आफिस
व्यक्तिगत
ह्वाइट हाल
३० जनवरी, १९३५

प्रिय श्री बिड़ला

आपके १९ जनवरी के एक और पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। उसमें जो उद्गार व्यक्त किये गए हैं उन्हें पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई। भारत को हमारी वास्तविक सदाकांक्षा का विश्वास दिलाना कठिन कार्य अवश्य दिखाई देता है। मुझे विश्वास है कि उसका प्रचुर भंडार है। जो लोग हमारी वर्तमान नीति का विरोध कर रहे हैं उनमें से अधिकांश लोग भी सदाकांक्षा की भावना से ही प्रेरित है। हां, उनका अपना दृष्टिकोण अवश्य है। दूसरे शब्दों में उन्हें भारत के जनसाधारण के मंगल की हृदय से चिन्ता है, और वे हमारे सुझावों का विरोध इसलिए करते हैं कि उनका सचमुच यह विश्वास है कि उनसे उस अभीष्ट की सिद्धि नहीं होगी। यदि आम आश्वासन निष्फल सिद्ध हुआ तो हमें आशा करनी चाहिए कि आप और आपके मित्र जिस सहानुभूति और सदाकांक्षा की खोज कर रहे हैं उसका प्रत्यक्ष प्रमाण उस समय मिलेगा जब शासन विधान को प्रकृत रूप दिया जायगा। कहावत है, "खीर का स्वाद उसे खाने से ही जाना जा सकता है।" मैंने हाल ही में आक्सफोर्ड में एक स्पीच के दौरान में नवीन शासन-विधान की रूपरेखा देने की चेष्टा की थी, उसकी एक प्रतिलिपि भेजता हूं, शायद आप उसे पढ़ना चाहें। आप देखेंगे ही कि मैंने अपने पिछले पत्र में जो विचार व्यक्त किये थे इस स्पीच में उन्हें विकसित रूप दिया गया है। जिसे आप मानवी सम्पर्क कहते हैं, उसे मुझे एक से अधिक विचार-शैलियों के लोगों के साथ बनाए रखना पड़ता है।

पर अगले सप्ताह बिल का द्वितीय वाचन होगा ही, उस अवसर पर मैं यथासम्भव सहानुभूति के साथ अपने दिल की बात कहने की चेष्टा करूंगा।

आपका
सैम्युएल होर

हवाई डाक द्वारा

१५ फरवरी, १९३५

प्रिय सर सेम्युअल

आपके पत्र और आपकी स्पीच की प्रति के लिए धन्यवाद। मैंने स्पीच स्थानीय दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में प्रकाशनार्थ भेज दी है।

आपकी दलील अच्छी तरह समझता हू। वह इस प्रकार है : "हम लोग भारत को पर्याप्त प्रगति प्रदान कर रहे है, पर अभी इस बात को पूरी तौर पर नही समझा जा रहा है। खीर का स्वाद खाने से ही जाना जा सकता है और जब भारतवासी सुध रों को काम में लायंगे तो उन्हे हमारी नेकनीयती और सदाकांक्षा का पता चलेगा, और साथ ही वे यह भी जानेंगे कि कितनी कुछ प्रगति सम्भव है। जब आपकी ओर ऐसी भावनाएं है तब तो व्यक्तिगत सम्पर्क की सहायता से पारस्परिक समझौता और भी आसान हो जायगा। पर यह स्पष्ट ही है कि फिलहाल आपको परिस्थितियां इससे अधिक और कुछ कहने की इजाजत नही देती है। मुझे तो सिर्फ इतना ही कहना है कि साझेदारी का दस्तावेज एक ऐसा कागज है जिसपर दोनो साझियों के हस्ताक्षर किये जाते हैं। वर्तमान बिल पर केवल एक ही दस्तखत है। यदि आप भले फल की कामना करते हैं तो मेरा निवेदन है कि, आज नही तो कल, आपको अपने साझियों के दस्तखत लेने ही पड़ेगे। लंकाशायर-पैक्ट के सम्बन्ध में सबसे बड़ी शिकायत यही है कि वह सम्मत पैक्ट नहीं था, लादा हुआ पैक्ट था। आशा है, आप असल सुधारों के सम्बन्ध मे इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न नही होने देंगे। मै आपको अपने विचारों से और अधिक तंग नही करना चाहता हू, इसलिए मंगल की आशा करता हुआ इस विषय को यही छोड़ता हूं।

यह कहना अनावश्यक है कि मैंने आपके पत्र की नेकनीयती को अच्छी तरह हृदयंगम किया है। इसीसे मुझे आशाजनक दृष्टिकोण अपनाने का साहस होता है।

सदाकांक्षाओं के साथ,

आपका
जी० डी० बिड़ला

भारतीय शासन विधान के बनने से पहले गोलमेज परिषद् की जितनी भी बैठकें हुई उन सभी में हिन्दू-मुस्लिम-समस्या एक जटिल प्रश्न बनी रही। सभी सम्प्रदायों के लिए एक ही निर्वाचन-सूची और एक ही निर्वाचन-क्षेत्र हो या अलग-अलग हों, या फिर चुनाव तो मिले-जुले हों, लेकिन कुछ स्थान विशेष रूप से सुरक्षित कर लिये जाय—इन सभी प्रश्नों पर बड़ी सरगर्मी के साथ विचार किया गया। दुर्भाग्यवश कोई पक्का फैसला नही हो सका और इसका दुःखान्त परिणाम विभाजन के रूप में सामने आया। राजनीतिक क्षेत्र के प्रमुख हिन्दू नेता बापू की सलाह मानने को तैयार नही थे, यद्यपि वे उनका आदर करने का बराबर दम भरते थे। गांधीजी सोलहों आने आपसी समझौते के पक्ष में थे और हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए अपने प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार थे; पर अपेक्षाकृत अधिक सांसारिक राजनीतिज्ञ सारी समस्या को अपनी-अपनी जाति के लोगों के लिए रोटी-दाल के सवाल के रूप में देखते थे। उधर मुसलमानों की ओर से श्री जिन्ना भी अपनी बात पर पूरी तरह से अड़े हुए थे। उन्होंने मुसलमानों के प्रति बापू की मंगल कामना को दुरदुराया और उसे एक ऐसा स्वतंत्र पाकिस्तान बनाने की, जिसके वह स्वयं प्रधान हों, महत्वाकांक्षा पूर्ण योजना को विफल बनाने के हिन्दू-षड्यन्त्र का एक अंग मात्र माना। कहना तो यह चाहिए कि एक बार उनके दिमाग में इस भड़कीली योजना को प्रश्रय मिलने के बाद, विभाजन को छोड़ और किसी आधार पर समझौते की बातचीत की, और उससे सम्बन्ध रखने वाले सुझावों की, असफलता उस समय तक एक स्वयंसिद्ध बात थी, जबतक अपनी जाति के नेतृत्व की बागडोर उनके हाथ में थी। इतने पर भी बापू के कुछ इने-गिने कट्टर अनुयायियों ने समझौते की आशा नहीं छोड़ी और डा० राजेन्द्र प्रसाद ने एक मसविदा तैयार किया। इसके सम्बन्ध में मैंने २१ फरवरी, १९३५ को महादेव देसाई को एक पत्र लिखा :

प्रिय महादेवभाई

मैंने राजेन्द्रबाबू को सलाह दी है कि यदि मुसलमान नेता इस फार्मूले को मान लें (जैसी कि आशा नहीं है) तो हिन्दू महासभा के विरोध के बावजूद हमें उसे हिन्दू जनता द्वारा स्वीकार करा लेना चाहिए। एक बार कांग्रेस निश्चित रुख अख्तियार कर ले, फिर तो परिणाम अच्छा ही होगा। यदि कांग्रेसी नेता फार्मूले को मूर्त रूप दे देंगे तो हिन्दू महासभा भी अपने अधिवेशन में उस पर सही कर देगी। सम्प्रदायवादियों के द्वारा काफी क्षति हुई है। जबतक मुसलमान समझौते का रुख न दिखावें तबतक तो इन सम्प्रदायवादियों के प्रति सहनशीलता दिखाई भी जा सकती है, पर यदि मुसलमान समझौता करने की इच्छा दिखावें तो कांग्रेसी नेताओं को हिन्दुओंको स्पष्टरूप स बता देना चाहिए कि उनके लिए यही ठीक रहेगा। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि हिन्दू जनता उनके पीछे हो लेगी।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

कुछ दिन बाद मैंने इसी विषय पर बापू को भी लिखा:

ता० २६-२-१९३५

परमपूज्य बापू

बेचारे राजेन्द्रबाबू बुरी तरह परेशान है। राजा नरेन्द्रनाथ और पंडित नानकचद, इन दोनों ने तो राजेन्द्रबाबू के मसविदे को स्वीकार कर लिया है। पर बगाली हिन्दुओं और सिखों में काफी मतभेद है। पडितजी कुछ इनको समझाते है, कुछ उनको। किन्तु यह साफ जाहिर है कि जितना जिन्ना-राजेन्द्रबाबू मसविदे मे है उसके बाहर जाना उनके लिए सम्भव नही है। मेरा खयाल है कि प्रायः लोग कायरता के शिकार बने हुए है। उदाहरण के लिए बंगाल के हिन्दू एम. एल. ए. वर्ग को यह चीज अच्छी लगती है, पर हिम्मत नही कि उसपर दस्तखत कर दे। 'अमृत बाजार पत्रिका' के सम्पादक को अच्छी लगी तो 'आनन्द बाजार पत्रिका' के सम्पादक को रुचिकर नहीं है। इधर कुछ उग्र लड़के, जो क्रान्तिकारी बताये जाते है, उनके सामने सब भीगी बिल्ली बन जाते है। नलिनी आ रहे है, पर पूर्वी बंगाल के होने के कारण सम्मिलित चुनाव के नाम से घबराते है। मंगलसिंह और तारासिंह कुछ-कुछ पसन्द तो करते हैं, पर डरते है। ज्ञानी शेरसिंह तो उसे छूना भी नहीं चाहते। गोकुलचंद नारंग वगैरह पसन्द करते हैं, पर सिखों से डरते है। यदि व्यक्तियों के दस्तखतों से ही समझौता होनेवाला है तो यह समझ लेना

चाहिए कि आज के वातावरण मे वह प्रलयकाल तक स्वप्न बना रहेगा। हम लोग चेष्टा तो कर ही रहे है, पर इधर मैने राजेन्द्रबाबू को सुझाया है कि कांग्रेस और लीग समझौता कर ले और उसे देश के सामने रख दें। यह सही है कि सरकार उसपर फिलहाल अमल नही करेगी, पर और कोई रास्ता भी तो नही है। यदि राजेन्द्रबाबू ने ऐसा किया तो मेरा खयाल है कि समझौते का पक्ष समय पाकर अत्यन्त प्रबल हो जायगा। राजेन्द्रबाबू और वल्लभभाई दोनों ही इस प्रस्ताव को पसन्द करते है। देखे, क्या होता है।

हरिजन आश्रम के लिए नक्शे कमेटी के सिपुर्द है। पास होते ही काम शुरू हो जायगा।

मेरे भेड़-मेढ़े आस्ट्रेलिया से आ पहुंचे है। मै सातेक रोज के लिए पिलानी जा रहा हूं। आपके पत्र की प्रतीक्षा करूंगा।

विनीत
घनश्यामदास

२८ फरवरी, १९३५

प्रिय महादेवभाई

साम्प्रदायिक समझौते की बातचीत तो भंग होती दिखाई देती है। पजाब के हिन्दू तो सुझाव के उतने विरुद्ध नही थे, पर मुख्य कठिनाई सिखों और बंगाल के हिन्दुओं के द्वारा उत्पन्न की गई है। बंगाली हिन्दुओ मे भी जो लोग पश्चिमी बंगाल से आये है वे संयुक्त निर्वाचन के पक्ष में है। पर पूर्वी बगाल के हिन्दू तो उसकी संभावना-मात्र से भयातुर हो गये है। सबसे अधिक क्षोभ की बात तो यह है कि बंगालियों में एक भी तो ऐसा नही है जो जिम्मेदारी के साथ बात कर सके। जो लोग सुझाव के पक्ष में है उन तक मे इतना साहस नही है कि यह बात स्पष्ट रूपसे कह दे।

आज सुबह हमने एक छोटी-सी बैठक की, जिसमें राजेन्द्रबाबू, भूलाभाई और वल्लभभाई थे। मै था ही। हमने यही सोचा कि और आगे जाना ठीक नहीं रहेगा, क्योंकि हमें यह जंचा कि समझौते की बातचीत को और अधिक दिनों तक घसीटा जायेगा तो उससे मामला और भी पेचीदा हो जायगा। हम सब एक मत थे कि यदि कांग्रेस और लीग में समझौता सम्भव हो तो हमें कर लेना चाहिए। पर जिन्ना इसके लिए तैयार नही थे, और हमने यह भी देखा कि बगाल के बगैर (कांग्रेसी बगाल तक हमारा समर्थन करने को तैयार नहीं है) समझौता निरर्थक होगा। यह बड़ा दुःखद प्रसंग है, पर हमें इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। सबसे पहली बात तो यह है कि एक भी बंगाली दृढ़तापूर्वक हमारा समर्थन

करने को तैयार नहीं है। यह बात बंगाल के लिए बड़ी शर्म की अवश्य है, पर कांग्रेस का दोष भी कम नही है। हमने बंगाल में किसी का समर्थन नही किया, फलतः बंगाल मे हमारे दृष्टिकोण का समर्थन करनेवाला एक भी आदमी नही है। साम्प्रदायिक समस्या वैसी-की-वैसी ही है और अपनी विफलता के फलस्वरूप हम संसार की दृष्टि मे लांछित हैं।

तुमने देखा ही होगा कि सरकार ने ग्रामोत्थान के निमित्त एक करोड़ रुपये की रकम निकाली है। बापू की चेष्टाओं की बदौलत सरकार के कानों पर जूं रेंगी तो, पर मुझे आशंका है कि यह रुपया ठीक तरह से खर्च नही किया जायगा। सरकार तो वस्तुस्थिति तक से अनभिज्ञ है। इसलिए सम्भव है, वह जनता के लिए भोजन और कपड़े की अपेक्षा रेडियो की अधिक आवश्यकता समझे। यह रुपया प्रान्तों के मंत्रियों द्वारा खर्च किया जायगा। यदि ग्रामोद्योग संघ इस मामले में आगे बढ़कर सरकार की सहायता करने में तत्परता दिखावे तो कैसा रहे? यदि मै भूल नही रहा हूं तो जब वल्लभ-भाई ने गुजरात बाढ़ रिलीफ फंड का आयोजन किया था तो एक प्रकार से सरकारी चंदे पर कब्जा कर लिया था। मै समझता हूं, यदि बापू एक बार सकल्प कर ले और प्रान्तीय सरकारों और मंत्रियों के साथ ठीक ढंग से पेश आया जाय तो इस एक करोड़ की निधि को एक प्रकार से अपने अधिकार मे लिया जा सकता है। यह बात बापू के सूचनार्थ है।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

: १४ :

पिलानी

मेरी पिलानी वाली प्रिय योजना ने अब एक ऐसी संस्था का रूप ले लिया है कि उसके प्रारम्भिक दिनों की याद करना शायद कुछ रोचक सिद्ध हो। अब पिलानी की संस्था एक यूनीवर्सिटी कालेज के स्तर पर पहुंच गई है और राजपूताना मरुभूमि का वह खंड गुलाब के फूल की तरह खिल उठा है, पर ऐसी स्थिति सदा से ही नहीं थी।

महादेव देसाई के नाम बापू के लिए लिखा गया मेरा एक पत्र आरम्भ तो दूसरी बातों से होता है, किन्तु शीघ्र ही उसमें पिलानी की चर्चा छिड़ जाती है। उस पत्र के पहले भाग में बंगाल सरकार का जिक्र है, जिसने उन्हीं दिनों सार्वजनिक रूप से अपनी एक भूल स्वीकार करके उसका परिष्कार किया था। बंगाल सरकार के इस कार्य की तुलना मैंने अपने पत्र में कुछ ऐसे नेताओं के रवैये से की है जिन्होंने यह जानते हुए भी कि जनता के दोषारोपण ठीक नहीं है, उनका खण्डन करने की चेष्टा नहीं की। उस समय 'नेशनल काल', जो अब बन्द हो गया है, मेरे खिलाफ गंदा प्रचार कर रहा था। उससे मुझे बड़ा क्लेश होता था, खासतौर से इसलिए कि उस पत्र के डायरेक्टरों में मेरे कुछ ऐसे मित्र थे जो जानते थे कि इन ऊल-जलूल बातों की जड़ में हीन अर्थलोलुपता-मात्र है।

*

बिड़ला हाउस
नई दिल्ली
१७-१-१९३६

प्रिय महादेवभाई

तुम्हारे पत्र के लिए धन्यवाद। इससे मेरी चिन्ता दूर नहीं हुई है। इस बार बापू के स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे चिन्ता की बात यह है कि उन पर विश्राम या चिकित्सा का पूरा प्रभाव नही पड़ रहा है। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि वह बराबर आराम कर रहे है। सरदार मे और बापू से कह देना कि जबतक वे पूरी तरह चगे न हो जायं, दिल्ली बिलकुल न आवे। हां, इसमें संदेह नही कि दिल्ली का जलवायु बड़ा अच्छा है, इसलिए यदि वे आवें तो केवल विश्राम के लिए आवें, और किसी काम के लिए नही। पर यदि अहमदाबाद उनके स्वास्थ्य के लिए अधिक अच्छा स्थान प्रतीत हो तो स्थान-परिवर्तन की आवश्यकता नही है। सरदार ने मुझसे कहा है कि जब बापू अहमदाबाद मे हों तो मै भी कुछ समय के लिए आ जाऊं। मुझे ट्रस्टी की हैसियत से साबरमती आश्रम भी जाना है, पर मे अपना कार्यक्रम कुछ समय बाद निश्चित करूंगा। यदि बापू यहां नही आते है तो फरवरी का महीना कलकत्ते मे बिताऊंगा।

देखता हूं कि वे दोनो पत्र न तुम्हें रुचे, न बापू को। मैं अपने पत्र पर तुम्हारी आलोचना चाहूंगा। यदि उस पत्र की भाषा अच्छी न लगी हो तो इसका दोष मेरी मनोवृत्ति को देना चाहिए। यदि मै उसे कुछ दूसरे ढंग से लिखता तो मै अपने नही, किसी दूसरे के विचारों को व्यक्त करता। अतएव आलोचना पत्र की नही, बल्कि उसमें व्यक्त किये गए मेरे विचारों की है, इसलिए मैं जानना चाहूंगा कि तुम्हारी आपत्ति का विषय क्या है। इससे मेरा पथ-प्रदर्शन होगा।

रही गवर्नर के उत्तर की बात, सो मै इस मामले में तुमसे सहमत नहीं हूं। तुम अपने लोगों से इतने कम की और विरोधियों से इतने अधिक की आशा क्यों करते हो? यदि मैं तुलना के लिए एक उदाहरण दूं तो गलत मानी मत निकालना। 'नेशनल काल' की ही बात को लो। वह मुझे पिछले तीन साल से आये-दिन दुर्वचन कहता आ रहा है; न डा० अन्सारी ने और न किसी और डायरेक्टर ने उस संबंध में कुछ कहा है। तुम कहोगे, और मैं तुम्हारी बात मान लूंगा, कि बेचारे राजेन्द्रबाबू तो संत हैं, पर न्याय की बात उठाने पर संतपन की ओर ध्यान नही दिया जा सकता। गवर्नर ने एक मामले में आपत्ति-जनक अंशों को हटवा तो दिया पर इस मामले में तो डा० अन्सारी ने इस बात की ओर ध्यान तक देना

जरूरी नहीं समझा । मैं किसी के खिलाफ शिकायत नहीं कर रहा हूं । तुम स्वयं जानते हो कि मै राजेन्द्रबाबू का कितना आदर करता हूं । मेरा यह दृष्टांत देने का उद्देश्य यही था कि हमें मानव-स्वभाव जैसा है उसे उसी रूप में लेना चाहिए और ठीक जिस प्रकार हमें 'नेशनल काल' के डायरेक्टरों के प्रति सहिष्णुता का रुख अख्तियार करना चाहिए, उसी प्रकार बगाल के गवर्नर के प्रति भी । पर मुझे तो अपने पत्र के सम्बन्ध मे, या यों कहो कि अपनी मनोवृत्ति के सम्बन्ध में, तुम्हारी आलोचना की दरकार है ।

मैं पिलानी के सम्बन्ध मे 'हरिजन' में कुछ लिखना नही चाहता हूं । ऐसा करना बेकार की इश्तहारबाजी होगा, क्योंकि सारा काम अभी प्रयोग-मात्र है । हमने गतवर्ष तय किया था कि स्कूल और कालेज के सभी ८०० लड़कों को आध सेर दूध मिला करे और जो लड़के मूल्य न दे सके उन्हे दूध मुफ्त दिया जाय । बहुत कोशिश करने के बावजूद पडया २० से अधिक गायें एकत्र नही कर सका और वे सभी अच्छी नस्ल की नही थीं । गांववाले उसे खेती-मास्टर कहते है । जब वह हिसार और रोहतक से बुड्ढी गाये लाया तो उन्होंने काफी दिल्लगी की । दूध की समस्या ज्यों-की-त्यों बनी हुई है । इसके विपरीत गांव मे तुम्हे रुपये का २६ पौड दूध मिल सकता है । इसलिए पंडया से कहा गया कि जबतक पर्याप्त संख्या मे गायों का प्रबन्ध न हो जाय, दूध खरीदकर लड़कों को पिलाया जाय । इससे पांडया को बड़ी परेशानी हुई है । लगभग ६ हंडर दूध खरीदना, फिर उसे उबालना और इसके बाद उसे लड़कों में बांटना उसके लिए उतनी ही बड़ी समस्या हो गई होगी जितनी मेरे लिए अपनी किसी बड़ी मिल की समस्या हो । उसकी अस्तव्यस्तता विनोद की सामग्री है । पर लड़कों को दूध मिलना शुरू हो गया है । हम लोगों को आशा है कि आगामी १० दिनों मे हर कोई दूध पा सकेगा ।

हम लोग हर ६ महीने बाद डाक्टरी परीक्षा कराते है । इसलिए खुराक के वैज्ञानिक नियमन का परिणाम देखने की चीज होगा । रसोई घर में मिर्चों का निषेध है और हम लोग रसोई घर का प्रबंध लड़कों को स्वयं अपना करने देने के बजाय उस पर नियंत्रण करने की बात सोच रहे हैं । सम्भव है, हमें पाकशास्त्र में दीक्षा देने के लिए एक कक्षा खोलनी पड़े ।

हरिजन होस्टल उन्नति कर रहा है । एक ऊंची कक्षा का विद्यार्थी एक बड़े होस्टल में रख दिया गया है जिसमें सवर्ण हिन्दू रहते हैं । इस हरिजन लड़के के आगमन पर अन्य लड़कों ने किसी प्रकार की आपत्ति नही की ।

इस समय हमारे पास १५० भेड़ें हैं । उन चार आस्ट्रेलियन भेड़ों ने दो मेमने दिये और दो और देनेवाले हैं । इस प्रकार हमारे पास शीघ्र ही लगभग १० आस्ट्रेलियन भेड़े हो जायंगी । आस्ट्रेलियन दुम्बों को बीकानेरी

भेड़ों के साथ लगाया गया, जिसके फलस्वरुप एक कलमी नस्ल तैयार हो रही है। पर पडया ने प्रत्येक भेड़ की ऊन का ठीक-ठीक ब्यौरा नही रखा, जिसके फलस्वरूप हम लोग सही पता लगाने मे असमर्थ है कि बीकानेर और हिसार की भेड़ों के मुकाबिले मे आस्ट्रेलियन भेड़ें कितनी ऊन देती है।

आर्थिक दृष्टि से डेयरी असफल सिद्ध नही हुई है। अब हम छीजन को हिसाब से अलग रखे तो हमे किसी प्रकार का घाटा नहीं हुआ है। हम लोग दूध ।।।। पौंड के हिसाव से बेचते है और इस हिसाब से प्रति गाय पर आय और व्यय १० रुपया मासिक आता है। यदि हम छीजन को हिसाब में नहीं लेते है तो हमें नवीन उत्पादन को भी हिसाब मे नही लेना है।

मै जिस होल्स्टीन नस्ल के सांड़ को इंग्लैड से लाया था उसने गायों के साथ जोड़ी करना शुरू कर दिया है। बड़ा बढ़िया जानवर है और उसकी गांव मे बड़ी चर्चा है। मुझे लार्ड लिनलिथगो ने इंगलैड में बताया था कि दूध के दृष्टि से होल्स्टीन नस्ल बड़ी सफल सिद्ध होगी। मै यह प्रयोग इसीलिए कर रहा हूं। साहबजी महाराज की भी यही सम्मति है। परमेश्वरी प्रसाद इसके विरुद्ध है और पांड्या की इस नस्ल के सम्बन्ध में कोई खास सम्मति नही है।

रही कृषि-सम्बन्धी प्रयोग की बात, सो गत वर्ष हमे १,५००) रुपये का घाटा हुआ। हमे पता चला कि हम ४) रुपये प्रति बीघा कृषि मे खो रहे है, इसलिए हमने इस लाइन को छोड़ने का निश्चय कर लिया है। अच्छा बीज तैयार कराने के लिए सिर्फ ५० बीघा जमीन जोती-बोई जायगी।

इस समय हम लोग दस्तकारी के निम्नलिखित विभाग चला रहे है—बढ़ई का काम, टोपी बनाना, चमड़े का काम, कालीन बुनना, कम्बल बुनना, रंगना, छांटना और छापना। इस वर्ष हम निम्नलिखित विभागों की वृद्धि कर रहे है—दर्जी का काम, राज का काम, जिल्दसाजी, खिलौने बनाना और मधुमक्खी-पालन। कुछ समय बाद हम मुर्गियों का फार्म भी खोलने का विचार रखते है। हमने यह तय किया है कि अगले वर्ष से निम्नतम श्रेणी से लगाकर इंटरमीजियेट तक के लड़के को उपरोक्त विषयों में से कोई एक या दो विषय अवश्य लेने पड़ेंगे। प्रत्येक सप्ताह में लड़के को कम-से-कम ३ घंटे इनमे से लिखे हुए विषयों को सीखने में लगाने पड़ेगे, जिसके फलस्वरूप जब लड़का इंटर के बाद छोड़ेगा तो उसे एक-दो विषयों का ज्ञान अवश्य रहेगा। इससे उद्योग-धंधा विभाग स्वावलंबी भी हो जायगा, क्योंकि हम लोग विद्यार्थियों से निःशुल्क काम लेगे। इस समय हमारा खर्च ८०,०००) रुपये है। तुम कहोगे, यह बहुत है, पर यदि ८०० लड़कों को अच्छी शिक्षा देनी है तो १००) रुपये प्रति लड़का अधिक नहीं है। कुछ

समय बाद हमें लड़कों से शुल्क भी मिलने लगेगा, जिससे कुछ सहायता मिल सकती है। लड़कों की शारीरिक अवस्था बहुत अच्छी है। चार बातें अनिवार्य हैं : सामूहिक प्रार्थना, सामूहिक व्यायाम और खेलकूद, दुग्धपान, और चुनी हुई पुस्तकों का स्वाध्याय। पर यद्यपि लड़कों का स्वास्थ्य बड़ा अच्छा है, और उनका परीक्षाफल संतोषजनक होता है, तथापि मैं यह कहने में असमर्थ हूं कि वे चरित्र के मामले में अन्य कालेजों के लड़कों से बढ़कर हैं, अथवा नहीं। कुछ विद्यार्थियों का कहना है कि बड़े शहरों के अनेक कालेजों के लड़के मद्यपान की कुटेव डाल लेते हैं। हमारे गांव में तो एकमात्र पेय पदार्थ या तो जल है या दूध।

कालेज, स्कूल और बालिकाओं के स्कूल के अतिरिक्त हम लोग इस समय १५ ग्राम-पाठशालाएं भी चला रहे हैं। अगले वर्ष उनकी संख्या २० हो जायगी। इस वर्ष हमने यह भी निश्चय किया है कि ग्राम-पाठशालाओं के शिक्षक हरेक घर में फलों के वृक्ष लगावें। मैं इस बसन्त में दिल्ली से नारंगी के २,००० पौधे भेज रहा हूं। राजपूताना में नारंगी खूब फलती है। पन्द्रह वर्ष पहले हमने प्रयोग किया और स्वयं मेरे बाग में २,००० पौधे लगाये गये। इनमें से २०० पौधों ने तो इस वर्ष फल भी दिये। यदि हम ५० मीलकी परिधि में प्रत्येक घर में एक पौधा लगा सकें तो दर्शनीय दृश्य होगा।

सरदार को मेरा प्रणाम कहना। उनका पत्र अभी मिला। उन्हें अलग से उत्तर नहीं दे रहा हूं। शायद यही चिट्ठी काफी होगी।

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

: १५ :

लंदन में सम्पर्क-स्थापन कार्य

मैं अब भी यही चाहता था कि एक ओर ब्रिटिश नेताओं और दूसरी ओर गांधीजी तथा कांग्रेसी नेताओं के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित हों और इसी उद्देश्य से सन् १९३५ की गर्मियों में लंदन गया। इस यात्रा के निमित्त मुझे बापू और बंगाल के गवर्नर का आशीर्वाद प्राप्त था और दोनों ने ही मुझे महत्वपूर्ण व्यक्तियों के नाम परिचय-पत्र दिये थे। मेरी पहली मुलाकात इंडिया आफिस के सर फिण्डरलेटर स्टीवार्ट के साथ हुई। मैंने उनका रुख बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण पाया। यह स्पष्ट था कि उनके हृदय में गांधीजी के लिए कुछ प्रेम है। गांधीजी से उनकी मुलाकात भारत के अलावा लंदन में भी हुई थी, जहां वह गोलमेज परिषद में भाग लेने गये थे। १४ जून को मैंने गांधीजी को इस मुलाकात की पूरी रिपोर्ट लिख भेजी। यहां उसके अंतिम पैरे का उल्लेख करना ही काफी होगा :

उन्होंने आपके स्वास्थ्य के बारे मे पूछताछ की और कहा कि आज भी उनको उस रविवार के उन तीन सुखद घंटों की याद है जब आपसे उनकी बातचीत हुई थी। मैंने कहा, "यह तो मेरे पक्ष में एक बहुत ही अच्छा तर्क है। 'राजनीति की दृष्टि से आप दोनों एक-दूसरे से सहमत नहीं हैं, फिर भी आपको उनकी भेंट की सुखद याद है। यह व्यक्तिगत सम्पर्क का ही परिणाम है। इस समय इस व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव-सा है। हमें इसीके जरिये मित्रता स्थापित करनी चाहिए।" वह मुझे फिर लिखेंगे।

कुछ दिन बाद मैं श्री बटलर से मिला। यह इस समय ब्रिटेन के अर्थमंत्री हैं, तब इंडिया आफिस में भारत के उपसचिव थे।

उनसे जो बातचीत हुई उसकी भी लम्बी रिपोर्ट मैंने गांधीजी को भेजी। मुझे इसमें संदेह नही रह गया था कि लंदन में रहने वाले अंग्रेजों को सचमुच इस बात का पक्का विश्वास है कि भारतीय शासन बिल पास होना भारत में स्वायत्त शासन की दिशा में एक बहुत बड़ा कदम होगा। उधर भारत में ठीक इसके विपरीत यह भावना थी कि यह कानून पीछे ले जाने वाला कदम होगा। श्री बटलर इस तथ्य को समझ गये और हमने गति-अवरोध का अन्त करनेवाले कितने ही सुझावों पर विचार-विमर्श किया। मेरा एक सुझाव यह था कि भारत में जो नया वायसराय भेजा जाय उसे भारतवासियों के साथ तुरंत सम्पर्क स्थापित करने की पूरी ताकीद रहे। दूसरा सुझाव यह था कि या तो स्वयं भारत सचिव ही, नहीं तो उपसचिव भारत आकर व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करें। मैंने उनके सामने एक और विकल्प रखा। वह यह था कि गांधीजी को लंदन बुलाया जाय और यदि सम्भव हो तो उनके बुलाने का कारण कुछ और बताया जाय, यद्यपि असली उद्देश्य बातचीत करना हो। श्री बटलर ने इस मामले में काफी सहानुभूति दिखाई। उन्होंने कहा, "हमें यह देखकर बड़ी निराशा होती है कि जिस बिल के लिए हमने अपने स्वास्थ्य, अपने मित्रों और अपने समय की चिन्ता नहीं की, उसे एक पीछे ले जाने वाला कदम समझा जा रहा है। सर सेम्युअल होर का स्वास्थ्य बिगड़ ही गया। मैं काम के बोझ को इसलिए वहन कर पाया कि मैं जवान था, फिर भी मुझपर बड़ा श्रम पड़ा, और उसका पुरस्कार यह मिल रहा है।" उन्होंने कहा कि लार्ड हेलीफैक्स ने तो भारत-सम्बन्धी कार्य को अपने जीवन का मिशन बना लिया है। उन्होंने जोर दिया कि मै जल्दी-से-जल्दी प्रधान मंत्री श्री बाल्डविन और भारत मंत्री लार्ड ज़ेटलेंड से मिलूं।

सर जार्ज शुस्टर से भी मेरी बड़ी मनोरंजक बातचीत हुई। इस मुलाकात के सम्बन्ध में मैंने गांधीजी को अपनी रिपोर्ट

में लिखा था, "मैने उन्हें बताया कि मै अपने गांव में क्या-कुछ कर रहा हूं। उन्होंने बड़ी दिलचस्पी दिखाई और कहा कि उन्हें दूध के पाउडर से ताजा दूध ज्यादा अच्छा लगता है। उन्होंने मुझसे इसके बारे में लार्ड लिनलिथगो से बातचीत करने को कहा। उन्होंने यह भी कहा, "जब कभी सहायता की जरूरत हो, आ जाइये, मुझसे जो कुछ भी बन पड़ेगा, मै उठा नहीं रखूंगा।"

इसके बाद जल्दी-जल्दी कई मुलाकातें हुई। ये मुलाकातें ज्यादातर भोजन के समय ही होती थी। पहले सर बैसिल ब्लैकैट से, फिर अनुदार दल के सदस्य सर हैनरी पेजक्रोफ्ट से और फिर मैनचेस्टर के नेताओं के पूरे समूह के साथ बातचीत हुई, जिन्हें श्री किर्क पैट्रिक ने लोकसभा में दोपहर का भोजन करने को बुलाया था। इसके बाद (स्वर्गीय) लार्ड लोदियन के साथ लम्बी बातचीत हुई। वह भारत के सच्चे मित्र थे। आज हम इस बात को देख सकते है कि उन्होंने स्थिति का जो चित्र उस समय खीचा था वह बिलकुल सही उतरा। भारतीय शासन-विधान में अंग्रेजों की आगे बढ़ने की इच्छा के दर्शन इतने स्पष्ट रूप से हुए कि कांग्रेस ने पद ग्रहण करने का और प्रान्तों में मंत्रिमंडल बनाने का निश्चय किया। ये प्रान्त अब राज्य कहलाते है। यदि चार वर्ष बाद लड़ाई न भड़क उठती तो केन्द्र में भी एक संयुक्त संघीय शासन की स्थापना हो जाती और विभाजन की नौबत न आती। पर युद्ध ने सबकुछ उलट-पुलट दिया। कांग्रेसी सरकारों ने तो इस्तीफा दिया ही, समस्त पूर्वीय देशों में भी राष्ट्रीयता की भावना को जबर्दस्त प्रोत्साहन मिला और युद्ध के दौरान में ही वह भावना इतनी बलवती हो उठी कि गांधीजी अपना 'भारत छोड़ो'-आन्दोलन छेड़ने में सफल हुए। श्री एटली और ब्रिटिश सरकार ने भी युद्धकाल में दिये गए अपने वचनों का पालन किया।

मैंने लार्ड लोदियन के साथ अपनी बातचीत की जो रिपोर्ट भेजी उसमें उनके उद्गारों का इस प्रकार उल्लेख किया:

उन्होंने कहा, "आप लोगों ने कोई शासन-विधान नहीं चलाया है, इस लिए आपके लिए यह अंदाजा लगाना सम्भव नही है कि आप लोग कितने बड़े अधिकार का उपयोग करनेवाले है। यदि आप शासन-विधान को देखेंगे तो आपको ऐसा प्रतीत होगा मानों सारे अधिकार गवर्नर जनरल और गवर्नरों को सौंप दिये गए है। पर क्या यहां भी सारे अधिकार राजा को सौपे हुए नही है? सबकुछ राजा के नाम मे किया जाता है, और क्या राजा ने कभी हस्तक्षेप किया है? हम लोग शासन-विधान मे विश्वास रखनेवाले लोग है। जहां अधिकार व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के हाथ में गये कि गवर्नर या गवर्नर जनरल कभी हस्तक्षेप नही करेंगे। हां, यदि कानून और व्यवस्था अथवा देश की शांति पर खतरा आया तो आपका भी यह इरादा नही है कि शान्ति खतरे में पड़े। सिविल सर्विस हमेशा सहायता करेगी। किसी जमाने मे इंग्लैंड के मजदूर लोग सिविल सर्विस को गालियां दिया करते थे, पर ज्योंही मजदूरों की सरकार बनी कि वे लोग सिविल सर्विस के सबसे अच्छे मित्र सिद्ध हुए। आप भी यही देखेंगे। हम लोग अनुशासन-प्रिय लोग है। वे लोग आप लोगों को सलाह-मशवरा अवश्य देंगे, पर जहां एक बार कोई नीति निर्धारित हुई कि वे लोग वफादारी के साथ उसे कार्यरूप में परिणत करेंगे।" मैंने बाधा देते हुए बताया कि यहां की सिविल सर्विस और भारत की विदेशी सिविल सर्विस में अन्तर है। मैंने कहा, "आप लोगों को नौकरियों के भारतीयकरण की गति को तेज़ करना होगा।" वह सहमत हुए। बोले, "आपको अब जिस सबसे बड़े खतरे का मुकाबला करना है वह है सैन्य विभाग के नियंत्रण का विरोध। पर आपको बाकी सारी चीज़े मिल ही गई है।" परन्तु वह मुझसे इस मामले में सहमत थे कि भारत में लोगों की मानसिक अवस्था में सुधार करना आवश्यक है। इस समय वह बहुत खराब है। बोले, "हम इस दिशा मे कुछ नहीं कर सकते। हमे यहां अनुदार दलवालों के साथ मोर्चा लेना पड़ा। श्री बाल्डविन और सर सैम्युअल होर ने जिस साहस का परिचय दिया आप उसका अंदाजा नही लगा सकते थे। यह उदार ढग की राजनीति की भारी विजय थी। हम लोग भारत में भी इसी ढंग की मानसिक अवस्था उत्पन्न नहीं कर सके, क्योंकि हम अनुदार दल वालों को भी नही छोड़ना चाहते थे। इन लोगों ने इस विधान को आत्म-समर्पण के नाम से पुकारा, इसलिए हमें यहां एक दूसरे ही ढंग की भाषा में बात करनी पड़ी। इसके अलावा एक और कठिनाई लार्ड विलिंगडन-विषयक थी। उन्हे महात्मा गांधी में भारी अविश्वास है और वह कुछ अधिक बुद्धिमान भी नही है। पर जुलाई के मध्यतक बिल कानून बन जायगा और आगामी अप्रैल मास में नया

वायसराय चला जायगा। इसलिए हमें कुछ-न-कुछ तो करना ही है।" मैंने कहा, "मेरे धीरज का अन्त हो गया है। मैं आगामी अप्रैल तक तो ठहरने से रहा, तबतक तो पासा पड़ भी चुकेगा। भारतीय जनमत को आने वाले सुधारों को अविश्वास की दृष्टि से देखना सिखाया गया है और आगामी अप्रैल तक उनको विध्वंस करने के सिद्धान्त को लेकर नये निर्वाचन लड़ने की तैयारी कर ली जायगी।" वह इस मामले में सहमत हुए कि कुछ-न-कुछ तुरत ही करना आवश्यक है, और पूछने लगे, "क्या आपके पास कोई रचनात्मक सुझाव है?" मैंने कहा, "पहली बात पारस्परिक सम्पर्क और दूसरी बात समझौता।" उन्होंने पूछा कि भारत में सबसे अच्छा गवर्नर कौन-सा है। मैंने कहा, "या तो एंडरसन को बातचीत करनी चाहिए, या भारत सचिव को भारत जाना चाहिए, या फिर गांधीजी को यहां बुलाना चाहिए।" उन्होंने कहा कि उनकी भी यही राय है कि इस मानसिक अवस्था में परिवर्तन करने के हेतु कुछ-न-कुछ तुरंत करना आवश्यक है। आशा है, लार्ड जेटलैंड इस सम्बन्ध में कुछ कर सकेंगे। उन्होंने यह भी बताया कि वह लार्ड जेटलैंड, लार्ड हेलीफैक्स और श्री मैकडानल्ड से बात करेंगे। उन्होंने सलाह दी कि मुझे श्री मैकडानल्ड से मिलना चाहिए। वह मेरे सम्बन्ध में श्री मैकडानल्ड को लिखेंगे और इसके बाद में उनसे मुलाकात का समय निश्चित कर लूंगा।

लार्ड जेटलेंड उन दिनों भारत सचिव थे। अपने पिता के जीवन-काल में वह लार्ड रोनाल्डशे के नाम से पुकारे जाते थे और बंगाल के गवर्नर रह चुके थे। वहाँ हिन्दू-धर्म से उन्हें कुछ रुचि हो गई थी और उन्होंने 'दी हार्ट आफ आर्यावर्त' नाम की एक पुस्तक लिखी थी। लंदन में मैं उनसे मिलने गया। और उन्होंने मेरी बातें बड़े ध्यान से सुनीं। बातचीत के दौरान में उन्होंने बहुत ही कम बाधा डाली। बस, एक बार पूछा भर कि क्या गांधीजी एक व्यावहारिक आदमी है? मैंने कहा कि होर, हेलीफैक्स, फिन्डलेटर स्टीवार्ट और स्मट्स से पूछ देखिये, वे आपको गांधीजी की व्यावहारिकता का प्रमाण दे सकते हैं। तब लार्ड जेटलेंड ने पूछा, "लेकिन उनकी 'हिन्द-स्वराज्य' पुस्तक के बारे में आपका क्या खयाल है?" मैंने उत्तर दिया, "गांधीजी ने कुछ चरम लक्ष्य निर्धारित कर दिये हैं।

पर संभव है कि जबतक हम उन लक्ष्यों तक पहुंच न जायं तब-तक उनके अनुरूप आचरण न कर सकें। उदाहरणस्वरूप मैंने उन्हें बताया कि यद्यपि गांधीजी ने अपनी पुस्तक में अस्पतालों की आलोचना की है, फिर भी उन्होंने लाजपतराय और सी० आर० दास द्वारा बनाये गए अस्पतालों का उद्घाटन किया। लार्ड जेटलेंड बोल उठे, "और खुद श्री गांधी ने भी तो अपना आपरेशन कराया था।" मैंने कहा, "आपको उनके व्यावहारिक होने में कोई शंका नहीं करनी चाहिए। वह मात्रा नहीं, गुण देखते हैं। वह तो भावना के भूखे हैं।" लार्ड जेटलेंड ने कहा, "मुझे आपकी बात बहुत पसन्द आई। मुझे गलतफहमी से नफरत है। जब मैं कलकत्ते में था तो मेरी समझ में नहीं आता था कि गलतफहमी हो ही क्यों। अंग्रेजों को कांग्रेस के बारे में कुछ गलतफहमियां हो गई हैं। ऋण न चुकाने की और इसी प्रकार की अन्य बातों ने उन्हें भयभीत कर दिया है। आशंका की यह भावना सिर्फ सरकार के विरोधियों तक ही सीमित नहीं है, समर्थकों ने भी अपने निजी पत्रों में लिखा है कि वे लोग (अर्थात् भारतवासी) बड़ा खतरनाक काम कर रहे हैं।" लार्ड जेटलेंड चाहते थे कि भारत में रहने वाले उनके मित्र इस बात को समझने की चेष्टा करें कि उन्हें भारतीय शासन बिल को पास कराने में कैसी-कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। मैंने कहा कि मैं यह बात भारतवासियों को तभी समझा सकता हूं जब उसके अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो। "हमसे न मिलिये" की नीति से सारा वातावरण दूषित हो गया है।

मैंने क्वेटा वाले मामले का उदाहरण दिया। गांधीजी और लार्ड विलिंगडन के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था वह उस समय उनके सामने था। मैंने उसके सम्बन्धित अंशों को पढ़ा और उनसे कहा कि देखिये, दोनों रुखों में कितना अन्तर है। उन्होंने इसे महसूस किया और कहा, "अब क्या किया जाय?" मैंने

उत्तर दिया, "वैसे गांधीजी और लार्ड विलिंगडन की मुलाकात निरर्थक सिद्ध होगी, फिर भी यह मुलाकात होनी अवश्य चाहिए, क्योंकि जबतक वायसराय गांधीजी से नहीं मिल लेंगे तबतक गवर्नर लोग भी उनसे नहीं मिल सकते।" उन्होंने कहा, "मैं इस बात को महसूस करता हूं। आपको फिन्डलेटर स्टीवार्ट से सम्पर्क रखना चाहिए। मै जितनी भी सहायता कर सकता हूं, करूंगा और आपसे फिर बातचीत करूंगा।"

मैंने इसकी एक लम्बी रिपोर्ट गांधीजी को भेजी :

२६ जून १६३५

परमपूज्य बापू

लंदन मे लोगों से मिलने मे बड़ा समय लगता है, क्योंकि उनका समय हफ्तों पहले बंध जाता है। हेलीफैक्स से मै पाच तारीख को मिलूगा यानी यहां आने से एक महीने बाद। होर जर्मनी, इटली और चीन की बातों मे इतने व्यस्त है कि उन्होंने मुझसे कुछ दिन प्रतीक्षा करने और मुलाकात के लिए उन्हें बार-बार याद दिलाते रहने को कहा है। फिर भी मै जानता हूं कि दोनों मेरे कार्य कलाप से जानकारी बनाये रहते है। मैं जितने लोगों से मिला हू उन सभी ने मेरे यहां आने के उद्देश्य के प्रति सहानुभूति प्रकट की है और मे जानता हू कि यह सहानुभूति दिखावटी नही है। सबसे अधिक सहायता मुझे सर फिन्डलेटर स्टीवार्ट से मिल रही है और मेरा खयाल है कि लोगों पर उनका काफी प्रभाव है। उनके मन मे आपके प्रति बड़ा सौहार्द है; आपके गुण गाते-गाते वह कभी नही अघाते है, और जब मैंने उन्हे आपका पत्र दिया तब उसे उन्होंने बड़े स्नेह और भावातिरेक के साथ पढ़ा। उन्होंने हर तरह की सहायता देने का वचन दिया है और वह सहायताकर भी रहे है। मैफे[1] ने मुझे बताया कि उनका लोगों पर प्रभाव है और वह कुशाग्र बुद्धि तथा दृढ़प्रतिज्ञ है। मुझे यह भी बताया गया है कि जहां कहीं उनके अपने वर्ग का स्वार्थ नही टकराता वहां वह भारतीयों का समर्थन करते हैं। अब मै इस बात को समझ गया हूं कि यहां जो लोग रोजमर्रा के शासन-कार्य की देखभाल करते हैं और व्यापक नीतियों की रूपरेखा तैयार करने के लिए स्थायी रूप से मौजूद है, हमें मुख्यतः उन्हीं से बातचीत करना चाहिए। मंत्रियों का तो महत्व है ही, पर स्थायी

---

१. अब लार्ड रगबी

अफ़सरों का महत्व भी कम नहीं है। लार्ड जेटलेंड ने मेरे उद्देश्य के प्रति बड़ी सहानुभूति दिखाई और कहा कि मैं फिन्डलेटर स्टीवार्ट के सम्पर्क में रहूं, इसलिए मैं उन्हीसे चिपका हुआ हूं और मेरी सभी महत्वपूर्ण मुलाकातों की व्यवस्था उन्हीके द्वारा होती है। मुझसे दो बार मुलाकात करनेके बाद, जो ढाई घटे तक चली, उन्होने मुझसे कहा कि सिद्धान्त रूप में वह मुझसे सहमत हैं और अब कुछ-न-कुछ ठोस और लिखित रूप में अस्तित्व मे आ जाना चाहिए। आगे क्या कदम उठाया जाय, सो अब वही बतायंगे।

मैं अब अपने काम के बारे मे कुछ विस्तार के साथ बताता हूं।

मैं इन आदमियों से मिल चुका हू --

सर फिन्डलेटर स्टीवार्ट से दो बार मिला, बातचीत ढाई घटे तक चली। भारत के उपसचिव श्री बटलर से, जो देखने मे बहुत आकर्पक हैं और बिल्कुल युवक होते हुए भी बड़े कुशाग्रबुद्धि हैं, एक घटा बातचीत हुई। इस सप्ताह में उनके साथ दोपहर का भोजन करूंगा। जेटलेंड से ४५ मिनट तक बातचीत हुई। सामन्त सभा मे बिल के पास होने के बाद उनसे फिर मिलूंगा। इसी तरह लोदियन से भी ४५ मिनट तक बातचीत हुई और बिल के पास होने के बाद फिर मिलूगा। लार्ड डरबी से फिर मिलने वाला हू और उनसे तो जितनी बार चाहूं मिल लेता हूं। सर हैनरी पेज क्रोफ्ट से मै दो बार मिला। मैनचेस्टर वालों के साथ लोकसभा मे भोजन किया। सर हैनरी स्ट्राकोश के साथ भोजन कर चुका हूं और उन्होंने कहा है कि जब कभी भी मुझे उनकी सहायता की आवश्यकता हो मैं उनके साथ भोजन करने चला आऊं। सर टामस कैटो और बहुत से प्रमुख नागरिकों के साथ भी भोजन कर चुका हूं। इन लोगों ने मुझे फिर भोजन के लिए बुलाया है। सर जार्ज शुस्टर के साथ दो बार भोजन कर चुका हूं। सर बेसिल ब्लैकेट के साथ भोजन कर चुका हूं और फिर भोजन करने जाना है। भारत मंत्री के प्राइवेट सेक्रेटरी क्रोफ्ट के साथ भोजन किया। 'मेंनचेस्टर गार्जियन' के श्री बोन से मिला और उसी पत्रके श्री क्रोजियर मुझसे मैनचेस्टर में मिलेंगे। और अब मैं इस सप्ताह में लार्ड लिनलिथगो, लार्ड हेलीफैक्स और श्री मैक्डा-नल्ड से मिलूगा। सर सेम्युअल होर के सिवाय और सबसे मिलने का समय निश्चित हो चुका है। श्री बाल्डविन के साथ मेरी भेंट की व्यवस्था फिन्ड-लेटर स्टीवार्ट कर रहे हैं। शुस्टर ने सलाह दी है कि साइमन के चक्कर में समय नष्ट मत करो। लोदियन ने कहा है कि लायड जार्ज को फिलहाल छोड़ दो। डरबी ने कहा है कि मुझे सैलिसबरी और सर आस्टिन चैम्बरलेन से अवश्य मिलना चाहिए। उन्होंने कहा कि अनुदार दल के लोगों में लार्ड

सेलिसबरी और सर हैनरी पेजक्रोफ्ट ही सबसे अधिक ईमानदार है। उन्होंने मुझे मैनचेस्टर जाने की सलाह दी, जहां वह मुझे वहां के प्रभावशाली मित्रों के साथ दोपहर के भोजन पर बुलायेंगे। लार्ड रीडिंग बीमार है। नगर के कुछ और प्रमुख निवासियों से भी मिलनेवाला हू। मजदूर दल के अधिकांश वज़नी सदस्य इस सप्ताह मेरे साथ लोकसभा मे भोजन करेंगे। इसके बाद मै पादरियों तथा दूसरे पत्रकारों से मिलूगा। किन्तु अब मैंने यह समझ लिया है कि मेरे काम के लिए हेलीफैक्स, जेटलेड, होर, बटलर, बाल्डविन, लोदियन और सर फिन्डलेटर स्टीवार्ट औरो के मुकाबले में ज्यादा महत्व रखते है, इसलिए अब मै अपना अधिकतर समय इन्हीके साथ बिताऊगा। सर फिण्डलेटर स्टीवार्ट ने यह बताने का वचन दिया है कि आगे मुझे क्या करना चाहिए। इसलिए अब मै पूरी तरह से उन्हीके हाथों में हूं।

अब लोगों से जो बातचीत हुई, कुछ उसके सम्बन्ध में कह दूं। सबसे पहले मैंने उन्हे बताया कि भारतवासियों की यह कोई राजनीतिक चाल नहीं है, बल्कि सचमुच ही उनकी यह भावना है कि बिल आगे की ओर बढानेवाला नही, बल्कि पीछे की ओर हटाने वाला कदम है, जिससे अंग्रेजों की पकड़ और भी मजबूत हो जाय। मेरी इस बात पर यहां के लोग चकित रह जाते है और उनकी समझ में नही आता कि भारतवासी ऐसा क्योंकर सोच सकते है। दूसरे मैंने उन्हें बताया, "मै इस बात को स्वीकार करता हूं कि इस बिल को आप लोग सच्चे दिल से एक भारी प्रगति मानते है। यदि इन सुधारों के पीछे सद्भावना हो तो यह बिल सचमुच ही भारी प्रगति सिद्ध हो सकता है। पर भारतवर्ष के ब्रिटिश अधिकारियों के व्यवहार मे हमें इस भावना का अभाव दिखाई देता है। मेरा तो सदा से यह विश्वास रहा है कि असल चीज बिल की भाषा नही, बल्कि उसके पीछे छिपी भावना है। सद्भावना के बिना तो यह बिल एक बहुत ही प्रतिगामी कानून सिद्ध होगा।" मैंने कहा कि चूंकि हर बात का अन्तिम निर्णय गवर्नर जनरल और गवर्नर करेंगे, इसलिए यदि वे अपने अधिकारों से काम लेने लगेंगे तो उनका शासन एक परले सिरे का स्वेच्छाचारी शासन बन जायगा। इसके विपरीत यदि वे वैधानिक राज्यसत्ता के आदर्श को सामने रखकर काम करेंगे, और ये सब लोग इसी आदर्श की बात कहते हैं, तो इस बिल के द्वारा बहुत अच्छी शासन व्यवस्था अस्तित्व में आ सकती है। इसलिए सबकुछ इस बात पर निर्भर है कि बिल को किस भावना के साथ प्रकृत रूप दिया जायगा। मैंने यह बात स्वीकार की कि हमारे इंग्लैड वाले मित्रों के मन में सद्भावना और सहानुभूति है, पर ये भावनाएं समुद्र को पार नहीं कर पाई है, क्योंकि भारत में जिन लोगों के हाथ में शासन की बागडोर है उनका आचरण यहां व्यक्त की गई भावनाओं

के विपरीत है। मैंने एक बिलकुल ही हाल की क्वेटा वाली घटना का उदाहरण दिया। इसके बारे में आपके और लार्ड विलिंगडन के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था वह मैंने उन्हें दे दिया है और यह समझाने की चेष्टा की है कि आपके अनुरोध में और लार्ड विलिंगडन के उत्तर में कितना अन्तर है। मैंने कहा कि ऐसी परिस्थिति में यह कैसे विश्वास किया जा सकता है कि आज जब हमें अपने दुःखी भाइयों से ही मिलने की अनुमति नहीं दी जाती तब निकट भविष्य मे ही हमें अधिक अधिकार क्योंकर मिल सकेंगे ? भारत के इस दमनपूर्ण वातावरण के कारण ही हमे यह विश्वास करना पड़ता है कि नये सुधार हमे पीछे की ओर ले जायंगे। सुधारों के प्रति एक दूसरे ही प्रकार की मनोवृत्ति उत्पन्न करने के लिए, जिससे उन्हे अमल मे लाया जा सके और हमारे यहां के हितैषियो की अभिलाषा की पूर्ति हो सके और मौजूदा कशमकश का हमेशा के लिए अंत किया जा सके, यह जरूरी है कि तुरत ही भारत में अपेक्षाकृत अधिक अच्छी भावना को उद्दीप्त किया जाय। मैंने उन्हें यह भी बताया कि मैंने दिल्ली में यह भावना पैदा करने की चेष्टा की, पर असफल रहा। तीसरे, मैंने उनमे कहा कि मित्रता की इस भावना के अभाव में इस बिल के द्वारा, सम्भव है, दोनों देशों मे कटुता और भी बढ़ जाय। मैंने कहा कि वर्तमान वातावरण से तो चारों तरफ गैरजिम्मेदारी बढ़ती जा रही है। सिविल सर्विस के लोग गैर जिम्मेदार और अनुशासनविहीन होते जा रहे हैं। उदाहरणस्वरूप मैंने खां साहब के मामले की चर्चा की और बताया कि किस प्रकार नीचे के अफसरों के खां साहब के खिलाफ उठ खड़े होने के कारण उस मामले में गृहमंत्री कुछ भी नही कर सके। आजकल तो भारत के सिविल सर्विस वालों का खयाल है कि उनका एकमात्र कर्त्तव्य कानून और शांति की रक्षा करना है, इसलिए जनप्रिय लोगों की ओर से जो भी सुझाव आयें उनका विरोध होना ही चाहिए, चाहे वे अच्छे ही क्यों न हों। कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं में उत्तरदायित्व की भावना का अभाव होने के कारण वे सरकार के हरेक काम को संदेह की दृष्टि से देखते हे। इसका परिणाम यही होगा कि दक्षिण-पंथी तो कमजोर पड़ते जायंगे और वामपंथी मजबूत होते जायंगे। यदि स्थिति का सम्यक् ज्ञान न हुआ तो, संभव है, दक्षिण पंथी भी सुधारों को निकम्मा बनाने मे लग जायं। वर्तमान परिस्थिति से मुसलमानो में अनैतिकता फैल रही है, क्योंकि वे समझते हे कि वे चाहे बुरे-से-बुरा आचरण करें, उन्हें सरकार का समर्थन मिलता रहेगा। मैं यहां इन लोगों से कहता हूं कि इन कठिनाइयों के बावजूद गांधीजी ने इस बाढ़ मे बह चलने से इन्कार कर दिया है। "आप लोग उस आदमी की हत्या किये डाल रहे हैं जो इस संसार में आपका सबसे बड़ा हितैषी है।" मै इन लोगों को बताता हूं

कि वर्तमान वातावरण के कारण इतनी अनैतिकता फैल रही है कि भारतवर्ष में कोई रचनात्मक कार्य करना असम्भव-सा हो गया है। जन साधारण की क्रयशक्ति में वृद्धि करने की आवश्यकता पर अंग्रेज अर्थशास्त्री इतना जोर देते है, पर वैसा उस समय तक सम्भव नही होगा जबतक दोनों के बीच की खाईं न पट जाय।

उधर शासक वर्ग का सारा समय कानून और शांति की रक्षा में लगा रहे और इधर जनता का समय उससे मोर्चा लेनेमे बीते---यह बड़े ही परिताप की परिस्थिति है। इसलिए मै यहां वालों से कहता आ रहा हूं कि इस क्रम को बिल्कुल उलट देना चाहिए। जो पहला कदम उठाया जाय वह हो व्यक्तिगत सम्पर्क की स्थापना। दूसरा काम यह हो कि गवर्नर जनरल और गवर्नरों के पद सम्हालने के लिए अच्छे से-अच्छे आदमी भेजे जायं जिससे मत्रियों ओर गवर्नरों के बीच संघर्ष की सम्भावना ही नष्ट हो जाय। मैं इन लोगों से यह भी कहता आ रहा हूं कि यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सरकार का सचालन करने या शासन के यत्र को योग्यतापूर्वक चलाते रहने में कांग्रेस को कोई दिलचस्पी नही है। यदि काग्रेस पद ग्रहण करेगी तो कुछ रचनात्मक कार्य करने के लिए। छटनी, ग्रामोत्थान, स्वास्थ्य-सुधार, सफाई, शिक्षा का विस्तार, करों मे इस प्रकार का सन्तुलन कि गरीबों का बोझ कम और अमीरों का बोझ अधिक हो, अधिक भारत-वासियों को नौकरी, उद्योगधधों मे सहायता, महाजनी, जहाजरानी और बीमा-व्यवस्था को प्रोत्साहन, सैन्य विभाग के राष्ट्रीयकरण और पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति की दिशा मे अटट प्रगति---बस, केवल ऐसी कार्य-योजना काग्रेस को सुधार अमल मे लाने के लिए आकर्षित कर सकती है।

मेरी बातों के उत्तर मे ये लोग कहते है, "आप काग्रेसी कार्यकर्ताओ को जितना भी अधिकार देना चाहते है वे सब तो उन्हे बिल के द्वारा प्राप्त हो हो जायंगे। इस बिल को लेकर हमारे विरोधियों की तो कौन कहे, समर्थकों तक में कितनी हलचल मच गई है, इसका आप लोग अदाजा तक नही लगा सकते। विरोधियों ने तो विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया था और बिल को आत्मसमर्पण का कार्य बताया था। उधर समर्थकों ने बिल का समर्थन किया तो केवल पार्टी के प्रति वफादारी की खातिर, फिर भी भीतर-ही-भीतर वे हमे चेतावनी-पर-चेतावनी देते रहे कि बिल से ब्रिटेन के शासन पर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ेगा।" इन लोगो का कहना है, "बाल्डविन, होर और हेलीफैक्स को इस बिल के पास कराने मे बड़े साहस से काम लेना पड़ा है, इसलिए यदि हम लोग उनके और भारत के दूसरे हितैषियों के साहस की सराहना न करें, उनके दल के त्याग और मैत्री के बन्धन को भुला दें और इस बिल को लेकर

उनके स्वास्थ्य पर जो ज़ोर पड़ा उसकी ओर से आंखें मूंदे रहें तो यह घोर अन्याय की बात होगी। इससे अधिक निर्दयता की बात और क्या हो सकती है कि यह कहा जाय कि सबकुछ भारत पर ब्रिटेन की पकड़ को और भी मजबूत करने के लिए किया गया है। इसकी जरूरत ही क्या थी? क्या पकड़ ढीली थी? भारतवासियों के हाथों में कितना बड़ा अधिकार सौंपा गया है इसकी आप कल्पना तक नही कर सकते हैं। अंग्रेजी सत्ता का अन्त हो रहा है। अधिकार एक बार दे देने के बाद उसे फिर कोई वापस नहीं ले सकता, और अधिकार दिया जा चुका है। यह ठीक है कि बिल से ऐसा लगता है मानों सारे अधिकार गवर्नरों और गवर्नर जनरल के हाथों में सुरक्षित कर दिये गए हों, किन्तु क्या ऐसी ही स्थिति इंग्लैंड मे राजा और सामन्त सभा की नहीं हैं? जो संरक्षण रखे गये हैं वे आपके ही हित मे हैं। कौन इतना बेवकूफ होगा जो आपके मामले में दखल देगा? हम लोग विधान-भीरु जाति हैं और इग्लैंड के किसी भी दल को यह बात सहन नही होगी कि कोई गवर्नर या गवर्नर जनरल किसी मंत्री के मामले मे हस्तक्षेप करे। हां, कोई मंत्री अराजकता या अशान्ति फैलाना चाहता हो तो बात दूसरी है। अब केवल एक चीज़ रह जाती है, जिसके लिए आप लोगों को लड़ना पड़ेगा, वह है सैन्य विभाग पर अधिकार; पर यदि आपने शासन-यंत्र पर पूरी तरह से काबू पा लिया और समझदारी के साथ काम लिया तो आपको इस लड़ाई को लड़ने और जीतने मे कोई कठिनाई नही पड़ेगी। निर्देशविधि (इन्स्ट्रूमेंट आफ इंस्ट्रक्शन्स) मे दिया हुआ है कि सैनिक मामलों मे मंत्रियो के साथ मिलकर सलाह की जाय। कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं ने कभी शासन-यंत्र को चलाने का काम नहीं किया है, इसलिए वे इस बात को नही समझ रहे हैं कि संरक्षण तो भवन को सुरक्षित रखने के लिए सिर्फ ताले-कुंजी का काम करेंगे। जो कोई उसके भीतर जाकर उसमें रहना चाहेगा उसके मार्ग में कोई बाधा उपस्थित नही होगी। आप तो ग्रामोत्थान और शिक्षा आदि जैसी छोटी-छोटी बातों की चर्चा कर रहे हैं, पर अब तो समूची सरकार ही आपकी होगी। आपको तो अपनी नीति निर्धारित करके विधान सभा के सदस्यों को अपने साथ रखना है, फिर आप जो भी कार्य-योजना चाहें, अमल में ला सकते हैं। (इन लोगों को यह बताना बेकार है कि सरकारी आय का ८० प्रतिशत भाग तो पहले से ही सैनिक कार्यो और ऋणों के मद्दे लिख दिया गया है। इस समय इस सवाल को आगे बढ़ाना निरर्थक होगा।) आपकी योजनाओं में कोई भी दखल नही देगा।"

भारत के मौजूदा वातावरण के सम्बन्ध में उनका कहना है, "हम अवस्था को पूरी तरह से समझते हैं, पर उसके सम्बन्ध में पहले कुछ करना-

धरना सम्भव नहीं था। हम यहां से कोई भी ऐसी बात नही कह सकते थे जिससे कट्टर-पंथियों के आन्दोलन को उत्तेजना मिलती। श्री बाल्डविन, लार्ड हेलीफैक्स और सर सेम्युअल होर जैसे अनुदार दलवालों के लिए एक अनुदार दलीय पार्लमिंट में, जहां कट्टरपंथी लोग उन्मत्त सांड़ों की तरह लड़ रहे थे, इस बिल को पास कराना कोई आसान काम नही था। हम चाहते हैं कि ये सब बातें आप भारतवर्ष में अपने मित्रों को समझा दें। यह तो ठीक है कि कोई दूसरा वायसराय होता तो शायद वातावरण अपेक्षाकृत अधिक अच्छा होता। जो हो, वायसराय और गांधीजी की एक-दूसरे के साथ पटरी नही बैठी। पर अब जब बिल पास हो गया है, लोगों की मनोवृत्ति मे सुधार करने के लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा। हम यह स्वीकार करते है कि बिल की धाराओं से भी अधिक महत्व की बात है लोगों की मनोवृत्ति। यदि सम्भव हो तो हमें गांधीजी को अपनी ओर करना चाहिए। इस मामले में हम आपसे पूरी तरह से सहमत हैं, सवाल सिर्फ यही है कि यह कैसे किया जाय?"

इन लोगों की नेकनीयती से भरी बातों से मैं बड़ा प्रभावित हुआ हू। जब जेटलेड, बटलर, लोदियन और फिन्डलेटर स्टीवार्ट जैसे लोग इस ढग की बाते करते हैं और हमें आश्वासन देते है कि संरक्षण मंत्रियो के कार्य-कलाप में हस्तक्षेप करने के लिए नही रखे गये हैं, तब यह विश्वास क्योंकर न किया जाय कि वे ये बातें सच्चे हृदय से कह रहे है? मैं यह नहीं मान सकता कि ये सारी बाते कोरी भावुकता मात्र है। अपने व्यापारी कामकाज में मैं कभी मीठी-मीठी बातों के धोखे मे नहीं आया, इसलिए यदि मैं इन लोगों के सद्व्यवहार और वक्तृता के प्रवाह में बह जाऊं तो मेरे लिए बड़े आश्चर्य की बात होगी। फिर भी सारी बातों का निर्णय आप स्वयं ही करिये, क्योंकि यदि मुझे धोखा हुआ हो तो भी मैं इन लोगों से इसके सिवाय और कुछ नहीं कह रहा हूं कि इन्हे आपके साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करना चाहिए और सुधारों को अमल में लाने के लिए कोई समझौता कर लेना चाहिए। इन लोगों से मेरी जो बातचीत हुई, मैंने जिन-जिन बातों पर जोर दिया, और उन्होंने जो उत्तर दिया, उसका सार मैंने आपको बता दिया। आशा है, यह सब व्यर्थ नही जायगा।

नीचे कुछ सवाल और अपने उत्तर दे रहा हूं। इनका अपना महत्व है, क्योंकि ये उन लोगों की ओर से आये है जिनकी बात यहां चलती हैं:

१. प्रश्न—हम किसके साथ समझौता करें?

उत्तर—मुसलमानो का तो कोई सवाल ही नही उठता, क्योंकि वे सुधारों के विरोध में नहीं है। हम उन्हे उनके अधिकारों से वंचित नहीं

करना चाहते। उदार दल वालों के पीछे जनता का बल नही है, इसलिए उनके संबंध मे चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। कम्यूनिस्टों को बाद दे देना चाहिए, क्योंकि वे तो कांग्रेस का ही एक अंग हैं। किन्तु यदि उन्हे अलग माना जाय तो उनपर ध्यान देने की आवश्यकता नही है, क्योंकि अपने दृष्टिकोण के मामले में वे समझौता करने के इच्छुक नही हैं। इसलिए जो एकमात्र संस्था रह जाती है वह है कांग्रेस, और कांग्रेस से बातचीत करने का मतलब है गांधीजी से बातचीत करना, क्योंकि अकेले वही ऐसे व्यक्ति हैं जो समझौते को मूर्त रूप दे सकते हैं।

२. प्रश्न—क्या गांधीजी समझौते को मूर्त रूप दे सकेंगे ?

उत्तर—हां।

३. प्रश्न—समझौते की शर्त क्या होगी ?

उत्तर—पारस्परिक विश्वास और मित्रता ही उसका आधार होना चाहिए। विधान पर इस तरह अमल करना चाहिए कि उससे भारत की उन्नति हो और हम औपनिवेशिक स्वराज्य की ओर बढ़ सकें। (इसपर वे कहते हैं कि औपनिवेशिक स्वराज्य अथवा मित्रता कोई ऐसा पदार्थ नही है जिसे कोई कानूनी कागजपत्र जन्म देगा। उसकी प्राप्ति तो कठोर परिश्रम के बाद ही सम्भव है और उसे पाने के लिए ब्रिटेन से भी अधिक भारत को चेष्टा करनी होगी। फिर भी वे इस बात का आश्वासन देते हैं कि इस दिशा मे वे सदा हमारी सहायता करेंगे।)

४. हमे समझौता या संधि जैसे शब्दों से अरुचि है।

ये लोग कहते हैं कि इस समय इंग्लैंड में इन शब्दों के प्रति बड़ी दुर्भावना है। दोनो पक्षवालों को बद्धमूल धारणाओं को ध्यान मे रखना ही होगा। इसका उत्तर मैं यों देता हूं : "यदि सार वस्तु मिल जाती है तो मैं शब्दों को लेकर नहीं झगड़ूंगा। क्या आप एन्थनी ईडन को फ्रांस, इटली और दूसरी जगहों पर इसलिए नही भेज रहे हैं कि वे दिल खोलकर बातचीत करके आपसी समझौता करें ? क्या आप इस समय भी आयरलेंड से समझौता की बातचीत नही चला रहे हैं ?" इसका वे जवाब देते हैं : "मान लीजिये कि व्यक्तिगत सम्पर्क और समझौते के बाद हमारी ओर से यानी राजा की ओर से, पक्की घोषणा कर दी जाय और कांग्रेस उसका उत्तर दे, तो ?" मेरा जवाब यह है ; "यदि दोनों पक्ष कर्त्तव्यों के बारे में एक-दूसरे का दृष्टिकोण समझ ले तो मुझे कोई आपत्ति नही होगी।" मेरा उनसे कहना है कि समझौता उन्हीं के हित में अच्छा होगा, क्योंकि उससे दूसरा पक्ष बंध जायगा। फिर भी जबतक अभिप्राय को ठीक समझने की भावना मौजूद है तबतक मुझे कोई आपत्ति नही है।

५. प्रश्न—गांधीजी से मिले कौन ?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है कि पहल वायसराय को करनी होगी, क्योंकि जबतक वह ऐसा नही करेंगे तबतक दूसरे लोग गांधीजी से बातचीत नही कर सकेंगे। पर वायसराय की भेंट से ही प्रयोजन उतना सिद्ध नहीं होगा; किसी और को भी गांधीजी को अपने हाथ मे लेना होगा। इसके लिए मै एन्डरसन का नाम सुझाता हू।

प्रश्न—इमरसन[1] के बारे मे आपकी क्या राय है ? क्या वह गांधीजी को पसन्द है ?

उत्तर—कह नही सकता। लोग कहते तो है कि वह बहुत अच्छे आदमी है।

६. प्रश्न—क्या गांधीजी व्यावहारिक है ?

उत्तर—हेलीफैक्स, होर, स्मट्स और फिन्डलेटर स्टीवार्ट का हवाला काफी होगा। मै खुद व्यापारी हू, इसलिए मै किसी कोरे भावुक आदमी के पीछे कभी नही लगता।

७. प्रश्न—श्री गांधी से मिलने के बाद और हमारी ओर से घोषणा हो जाने पर क्या गांधीजी यह घोषणा कर सकेंगे : 'ये सुधार अच्छे नही है, इनमे वह बात नही है जो मै चाहता हू, पर रचनात्मक कार्य के लिए मुझे सद्भावना और सहायता का आश्वासन दिया गया है, इसलिए अपने देश की सहायता करने के लिए मै इन्हे कुछ समय तक कसौटी पर कसकर अवश्य देखूगा।'

उत्तर—हां, वह ऐसा उत्तर दे सकते है। मुझे इसकी बडी आशा है, बशर्ते कि आपको उनसे व्यवहार करने का ढग मालूम हो। अगर आप उनसे ईमानदारी का बर्ताव करे, उनके सामने अपना हृदय खोल कर रख दे और उन्हे अपनी सारी कठिनाइया बतलावे तो वह अवश्य आपकी सहायता करेगे।

८. इसपर वे लोग कहते है, "श्री गांधी के बारे मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि यद्यपि भारत की ९० प्रतिशत जनता उन्हें आदर और प्रेम की दृष्टि से देखती है तथापि उनकी कोई वैधानिक स्थिति नही है। हम अंग्रेजों को ऐसे आदमियो के साथ व्यवहार करने की आदत पड़ी हुई है जिनकी कोई वैधानिक स्थिति होती है।"

इस पर मै कहता हूं, "तो क्या आप तबतक प्रतीक्षा करेंगे जबतक गांधीजी मन्त्री न बन जायं ? तब तो इसके लिए आपको प्रलय काल तक बाट जोहनी होगी।"

---

१. सर हरबर्ट इमरसन जो, १९३३ से १९३८ तक पंजाब के गवर्नर थे।

तब मुझसे कहा जाता है, "दुर्भाग्यवश श्री गांधी और वायसराय के मिलन ने दो विरोधी नेताओं के मिलन का रूप ले लिया है।"

इसपर मै जवाब देता हूं, "यह सब आपका ही किया हुआ है। गांधीजी लार्ड चैम्सफोर्ड से मित्र की तरह मिले थे, और बाद में समझौता होने से पहले लार्ड रीडिंग और लार्ड इर्विन से भी इसी प्रकार मिले थे।"

६. प्रश्न--क्या आप नये वायसराय के जाने तक नही रुक सकते ?

उत्तर--तबतक बहुत देर हो जायगी।

मुझे उम्मीद है कि इन सवालों से आपको इस बात का आभास मिल जायगा कि यहां हवा का रुख किधर है।

अब कुछ लार्ड हेलीफैक्स, बटलर और लार्ड डरबी के बारे में सुन लीजिये। बटलर ने मुझसे जानबूझकर पूछा कि भारतवर्ष में लार्ड हेलीफैक्स के बारे मे लोगों के कैसे विचार है ? मैने कहा, "लोग अब भी उनसे प्रेम करते है, पर हमारा खयाल है कि उनकी वह प्रतिष्ठा नही रही है, भारतीय मामलों में अब उनका कोई प्रभाव नही रह गया है और भारत मे रहने वाले अंग्रेजों को तो वह बिल्कुल ही अप्रिय है।" उन्होंने कहा, "मै आपका भ्रम दूर करना चाहता हू। यह बात बिल्कुल गलत है कि उनकी प्रतिष्ठा जाती रही है। उनका बड़ा प्रभाव है और वह भारत को भूले नही है। भारत को तो उन्होंने अपने जीवन का एक मिशन बना लिया है।

श्री बटलर का दृष्टिकोण व्यापक है और वह बहुत ही योग्य और बुद्धिमान व्यक्ति है। उनमें जातीय भेदभाव या बड़प्पन की भावना लेशमात्र भी नही है। हम लोग अंग्रेजों की नेकनीयती पर संदेह करते है, इससे उन्हे बड़ा दु:ख होता है। वह मुझे हर प्रकार की सम्भव सहायता दे रहे है। पर अबतक मै जितने लोगों से मिला हूं, उन सबमे लार्ड डरबी का व्यक्तित्व सबसे आकर्षक है। वह तकल्लुफ से दूर रहते है। जब मैंने उनसे मिलना चाहा तब मुझे अपने घर बुलाने के बजाय वह स्वय मुझसे मिलने के लिए फौरन मेरे होटल मे चले आये। मै जिनसे भी मिलना चाहूंगा उनसे वह मेरी मुलाकात की व्यवस्था करा देगे। उन्होने कहा है कि जब कभी जरूरत हो, टेलीफोन कर दिया कीजिये, मै या तो स्वयं आपके पास आ जाया करूंगा या आपको बुला भेजूंगा। उन्होंने मुझसे पितृवत् स्नेह के साथ बातचीत की। मुझे तो वह बहुत ही अच्छे लगे।

मै समझता हूं कि अब पत्र लिखने की बारी आपकी है। आपको जो कुछ कहना हो लिखकर मेरे आदमी को दे दीजिये और वह उसे मेरे पास दिल्ली से हवाई डाक से भेज देगा। मुझे आशा है कि यहां मै आपका ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व कर रहा हूं। यहां के वातावरण में जो सचमुच की

गलतफहमी फैली हुई है उसे हटाने के लिए मुझे भारी प्रयास करना पड़ रहा है। जब क्वेटा से महादेवभाई का पत्र मिला तब मेरा हृदय टूक-टूक हो गया। वहां और यहां के वातावरण मे कितना भारी अन्तर है! भारतवर्ष मे रहते हुए मैं इस अन्तर को नहीं समझ पाता था। मै समझता हूँ कि अधिकांश दोष मशीनरी का है और यद्यपि यहां काफी सहृदय और नेक लोग हे तथापि मुझे मशीनरी के चलने में शंका है। मै तो, बस, इतना ही कह सकता हूं कि मशीनरी के कलपुर्जों में भरपूर तेल डाल दिया जायगा। मुझे आपके हरेक काम में गलतफहमी को दूर करने की चेष्टा दिखाई देती है। इस क्षोभकारी वातावरण में ऐसा करना अकेले आपही के लिए सम्भव है। एक प्रतिष्ठित मित्र का कहना है, "हम लोग वैधानिक कार्य-प्रणाली के अभ्यस्त हे। जबतक लायड जार्ज पदासीन रहे तबतक वह बहुत बड़े आदमी थे, पर अब जबकि वह अपने पद पर नही हे हम उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकते और न उनके विचारों पर अमल ही कर सकते है, चाहे हम उनका या किसी भी दूसरे आदमी का कितना ही सम्मान क्यों न करते हों। आपको यह बात भूलनी नही चाहिए कि श्री गांधी किसी पद पर नही हैं। जब आपकी अपनी सरकार हो जायगी तब बात कुछ और ही होगी। सिविल सर्विस वाले तो आपके दास मात्र होंगे। फिलहाल ऐसा मुमकिन नही है। यह परिवर्तन कोई आश्चर्य की बात नही होगी, क्योंकि सिविल सर्विस वालों को तो केवल अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करना सिखाया जाता है।" इस समय तो मै इस बात की प्रतीक्षा मे हूं कि सर फिण्डलेटर स्टीवार्ट मुझसे अगला कौन-सा कदम उठाने को कहते है।

जुलाई के महीने में मै बहुत ही व्यस्त रहा। प्रारम्भ मंत्रिमंडल के प्रधान श्री रैमसे मैक्डानल्ड की भेंट से हुआ। उन्होंने उन्हीं दिनों प्रधान मंत्रित्व का भार श्री बाल्डविन को सौंपा था। उनसे जो बातचीत हुई, उसके कुछ नोट नीचे देता हूं :

बातचीत ३५ मिनट तक जारी रही। उन्होंने पूछा, "भारत कैसा है ?" मैंने उत्तर दिया, "बड़ा दुःखी है।" वह बोले, "सभी दुःखी हे।" मैंने कहा, पर हमारी बात जुदी है। आपने हमें एक शासन-विधान दिया है, जिसके बारे में आपकी धारणा है कि वह सचमुच प्रगतिपूर्ण है और हमे हमारे लक्ष्य स्थान तक ले जायगा, जबकि हम समझते हे कि यह एक पीछे की ओर ले जाने वाला कदम है जिससे शिकंजा और भी कस जायगा। हमारी यह धारणा भारत-

व्यापी वातावरण के कारण है। हम लोगों के साथ कोढ़ियों जैसा अविश्वास-पूर्ण व्यवहार किया जाता है। आप लोग सहानुभूतिपूर्ण व्याख्यान झाड़ते हैं, पर उनसे हमारा कोई भला नहीं होता। हम लोग चाहते हैं सहानुभूति-पूर्ण कार्य। मानवीय सम्पर्क का पूर्णतया अभाव है। हम लोग जब कभी किसी अच्छे काम के लिए सहयोग देने की तत्परता प्रकट करते हैं, इन्कार कर दिया जाता है, और हमें नीचा दिखाया जाता है, और ऐसे वातावरण में आप लोग चाहते हैं कि हम सुधारों की सराहना करें। यह स्वाभाविक ही है कि हम इन सुधारों को और आपकी नीयत को संशय की दृष्टि से देखें। आप जमीन को भली प्रकार जोते बिना और सिंचाई का समुचित प्रबन्ध किये बगैर बीज बखेर रहे हैं। यह स्वाभाविक ही है कि आपको फसल से वंचित होना पड़े।"

उन्होंने कहा, "आपका कहना बिल्कुल ठीक है। मानवीय सम्पर्क अत्यावश्यक है। पर कठिनाइयां नहीं हैं, ऐसी बात नहीं हैं। वायसराय स्वयं एक अच्छे आदमी हैं, और श्री गांधी भी अच्छे आदमी हैं, पर वे एक-दूसरे के साथ मिल-बैठ नहीं सकते। दोनों दो प्रकार की सुन्दर गतों के समान हैं, उन्हें अलग-अलग निकाला जाये तो दोनों कर्ण-प्रिय लगेंगी, पर यदि दोनों को एक साथ निकाला जाय तो सामंजस्य का नितान्त अभाव सिद्ध होगा। बस, यही मुश्किल है। अब यही देखना है कि अगला वायसराय कौन होगा। कौन होगा?" मैं मुस्कराकर बोला, "आप यह सवाल मुझसे कर रहे हैं?—मुझसे, जिसे गुप्त बातों का कुछ भी पता नहीं है? मैं इस प्रश्न का उत्तर कैसे दे सकता हूं? पर अन्य लोग लार्ड लिनलिथगो, बंगाल के गवर्नर, लार्ड लोदियन और लार्ड पर्सी का नाम लेते हैं। आपका और होर का नाम भी लिया जा रहा है।" अब वह कुछ गम्भीर भाव से बोले, "देखिये, एक प्रान्तीय गवर्नर तो वायसराय हो ही नहीं सकता। लोदियन का प्रश्न ही नहीं उठता है। रहा मैं, सो यदि मेरा स्वास्थ्य ठीक रहता तो मैं अवश्य जाना चाहता, पर ऐसी बात नहीं है। आपको पता ही है कि मैं भारत से कितना प्रेम करता हूं। मैंने ही गोलमेज परिषद के सिद्धान्त को जारी रखवाया था। जब सरकार बदली तो मेरी एक शर्त यह भी थी कि इस प्रश्न को यों ही न छोड़ दिया जाय, बल्कि गोलमेज सिद्धांत में नये प्राणों का संचार किया जाय। हां, यह बात दूसरी है कि परिषद पहले की अपेक्षा कम बड़ी हो। हमें सहानुभूतिपूर्ण श्रीगणेश करना चाहिए। अनेक व्यक्ति चाहते हैं कि संरक्षण तुरत अमल में आवें। यदि कांग्रेस के साथ छिड़ गई तब तो संरक्षणों को महत्व प्राप्त होगा, अन्यथा यहां कोई संरक्षणों से काम लेना नहीं चाहता है। यदि कांग्रेस ने

श्रीगणेश शासनविधान का विध्वंस करने के इरादे से किया तो अनुदार दलवालों के मनोरथ सिद्ध हो जायगे। हा, हमे भी इस बात की चेष्टा करनी चाहिए कि प्रारम्भ सहानुभूतिपूर्ण ढग से हो। सारा व्यापार एक उद्यान जैसा है। आपको सतोषपूर्वक उद्यान का विकास करना है, आपको हमसे भी इस बात का वचन लेना चाहिए कि हम सहानुभूति-पूर्ण ढग से कार्य करेगे। मै आपसे इस मामले मे बिल्कुल सहमत हू कि वैसा वातावरण उत्पन्न करने के लिए कुछ-न-कुछ करना आवश्यक है।"

मैने कहा, "मै जो कुछ कहना चाहता था वह आपने और भी सुन्दर ढंग से कह दिया।" इसके बाद वह अपनी विचारधारा अनायास ही शब्दों द्वारा व्यक्त करने लगे। उनकी दृष्टि छत की ओर लगी हुई थी। बोले, "यह सबकुछ कैसे किया जाय, यही एक प्रश्न है। अभी हमने श्रीगणेश भी नही किया है। यह एक उतनी ही बडी समस्या है जितनी अपने नये दफ्तर मे कमरों का पता लगाने की। मै रास्तों और कोनों से बिल्कुल अनभिज्ञ हू और इस नई इमारत की शनैः-शनैः जानकारी हासिल कर रहा हूं। पर आपकी समस्या स्थायी तो है नहीं। हां, काफी बड़ी अवश्य है। उसका सामना तो करना ही होगा। न करना मूर्खता का काम होगा। पर मै यह नही जानता कि आपकी मदद कैसे करूं। सोच रहा हू कि आगामी शरद ऋतु मे भारत जाकर श्री गांधी से मिलू। मै विश्राम के लिए और एक पर्यटक की हैसियत से जा सकता हू। मेरे जाने के मार्ग में कठिनाइयां अवश्य है, पर मेरी इच्छा यही है कि जाऊं। मै मौके की तलाश मे रहूगा। यदि गया तो अपने मित्र श्री गांधी से अवश्य मिलूगा। मुझे इसकी चिन्ता नही है कि लोग क्या सोचेगे। यदि मै उनसे मिला तो मै जानता हू कि सारा झमेला तय हो जायगा। पर फिलहाल मुझे प्रकाश दिखाई नही दे रहा है। मै अभी-अभी भारी कार्य से अलग हुआ हूं और मुझे नींद न आने की अभी तक शिकायत है। अपना नया घर ठीक कर रहा हूं। मेरे नये घर मे अव्यवस्था और गडबड का राज्य है। न कोट टांगने के लिए खूटी है, न पुस्तक रखने के लिए अल्मारी। आप शायद जानते ही होंगे कि मै गरीब आदमी हूं। घर को ठीक-ठाक करने में एक सप्ताह लगेगा, इसके बाद इन चीजों की ओर अधिक ध्यान दूंगा। पर फिलहाल मुझे खुद दिखाई नहीं पड़ता कि मै किस प्रकार सहायता कर सकूगा।" उन्होंने बातचीत के दौरान मे तीन बार भारत जाने की इच्छा को दुहराया, और तब मैने कहा कि यदि वह न जा सकें तो कोई और आदमी ही गांधीजी से बात करे। बगाल के गवर्नर बात क्यों न करें? उन्हें

बंगाल के गवर्नर पर गर्व था, क्योंकि वह भी स्काटलेंड के निवासी थे। मैंने कहा, "पर आपको सहायता तो करनी ही होगी। आप मंत्रिमण्डल के सदस्य हैं, आप बहुत कुछ कर सकते हैं।" उन्होंने पूछा, "क्या आपने इंडिया आफिस से बात की है?" मैंने कहा, "हां।" उन्होंने बताया कि लार्ड जेटलेंड भले आदमी हैं। मैंने कहा, "सो तो है, पर मुझे पता नहीं कि उनमें होर जैसा लौह संकल्प है या नहीं।" उन्होंने कहा, " होर को बिल का समर्थन करने के मामले में न्याय का विश्वास हो गया था। जेटलेंड पहले से ही भारत के साथ सहानुभूति रखते हैं, इसलिए संभव है उनका समर्थन अपेक्षाकृत अधिक दूरस्थ हो। पर मैं कह नहीं सकता। जो हो, पहला कदम भारत सचिव की ओर से ही उठाया जायगा। हमारे मंत्रिमंडल की बैठक सप्ताह में एक बार दो घंटे के लिए होती है, इसलिए जेटलेंड से अधिक मिलने का अवसर नहीं मिलता है। पर वह जब किसी चीज को उठायेंगे तो वह पूरी होगी ही। वह इस बात से पूरी तौर से सचेत हैं कि यदि सुधारों को अच्छी तरह समर्थन नहीं मिला तो उनकी ख्याति को बट्टा लगेगा। अतएव सब आपकी बात सुनने को बाध्य हैं।" मैंने कहा, "लार्ड जेटलेंड मेरे साथ सहमत हैं और फिन्डलेटर स्टीवार्ट मेरी काफी मदद करते हैं। पर अगले कदम की बात कोई नहीं उठाता है।" मैंने उन्हें बताया कि मैं अबतक कितने आदमियों से मिल चुका हूं। उन्होंने कहा, "मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि आपने अपनी पहुंच काफी दूर तक फैला रखी है। पर आप यह मत समझिये कि वे लोग अगले कदम की बात सोच नहीं रहे हैं। वे सोच तो रहे हैं, पर वे अभी कुछ कह नहीं सकते। वे आपकी बात तो सुनेंगे ही। आप भारत इस धारणा के साथ न लौटिये कि अगला कदम है ही नहीं। आपको सफलता मिलेगी। मैं भारत जा सकता तो बड़ी बात होती, पर इस बीच मैं यह सोचूंगा कि आपकी किस प्रकार सहायता करूं। आप मुझसे एकबार फिर मिलिये।"

मैंने उन्हें बताया कि अपने नींद न आने के रोग से पीछा छुड़ाने के लिए मैंने क्या किया था। मैंने उन्हें अपनी खुराक में परिवर्तन करने की सलाह दी। उन्होंने कहा, "मुझे एक मित्र डाक्टर की दरकार है, पर वैसे मुझे डाक्टरों में आस्था नहीं है। मैं प्रतिदिन होर्डर के साथ नाश्ता करता हूं जिससे मुझे बड़ी सहायता मिलती है।" उन्होंने पुराने दिनों का जिक्र किया जब उन्होंने भारत जाकर खूब शिकार खेला था। उन्होंने कई पुराने व्यक्तियों की भी चर्चा की जिन्होंने उनके साथ बड़ी शिष्टता का व्यवहार किया था।

मैं व्यक्तिगत सम्पर्क के प्रचार-कार्य में जुटा हुआ था। अगले दिन मेरी मुलाकात लार्ड लिनलिथगो से हुई। मैंने दोपहार का भोजन श्रीमती बटलर के साथ किया, चाय श्री एटली और श्री लैन्सबरी के साथ ली, और रात का खाना लोकसभा के मजदूर दल के सदस्यों के साथ खाया। रात वाले भोजन-समारोह का विवरण नीचे देता हूं :

मेजर एटली, रेस डेवीस, सेमोर काक्स, टाम स्मिथ, टाम विलियम्स, मार्गन जोन्स, जान विलमोर और चार्ल्स एडवर्ड्स उपस्थित थे। मैंने कुछ खरी-खरी बातें कहीं, और देखा कि कुछ लोग चिढ़ गये हैं। प्रायः सभी निर्बुद्धि और नीरस निकले। मैंने कहा, "आप लोग एक ओर हमारी नेकनीयती पर शक करते आ रहे हैं, दूसरी ओर यह चाहते हैं कि हम आपकी सहानुभूति पर विश्वास करें, और हर बार आप ही यह तय करते हैं कि हमारे लिए क्या अच्छा रहेगा। जब हम लोग कष्ट मे होते हैं तब भी आप ही निश्चय करते हैं कि इस परिस्थिति में हमारे लिए क्या अच्छा रहेगा।" एटली ने सरकारी दृष्टिकोण सामने रखा और कहा, "दोष दोनों पक्षों का है। आप लोगों ने १९३० में, जबकि सरकार हमारी थी, मामले का निबटारा न करके भारी भूल की।" मैंने कहा, "आप हमें कोई बिल नहीं दे सकते थे क्योंकि सामन्त सभा आपके रास्ते में रुकावट डाल देती। आप मजदूर दल के सदस्य तो लम्बी-चौड़ी स्पीचें देना भर जानते हैं। आप जो वादे करते हैं उन्हें पूरा करने का आपका इरादा बिल्कुल नहीं है" इससे कुछ लोग चिढ गये और मैंने बातचीत का रुख आर्थिक समस्या की ओर फेरा, पर यहां भी भारत का प्रसंग आ ही गया। मैंने कहा, "आपलोगों के रहन-सहन का स्तर विदेशी व्यापार और विदेशों में लगाई पूंजी के ऊपर निर्भर है। आप जानते ही हैं कि विदेशी व्यापार की मात्रा में कमी होती जा रही है, और कभी वह समय भी आयगा जब आपको विदेशों में लगाई पूजी से हाथ धोना पड़ेगा। तब क्या आप अपने रहन-सहन का स्तर आंतरिक उत्पादन की सहायता से ही कायम रख सकेंगे?" उन्होंने कहा, "नहीं।" मैंने पूछा, "तो फिर आप अपना रहन-सहन सम्बन्धी स्तर और भी ऊँचा करने की आकांक्षा का मेल भारत की आत्मनिर्णय-सम्बन्धी अपनी मांग के साथ कैसे बढ़ा सकते है?" उन्हे इस असंगति का निर्देश कराया गया, सो उन्हें पसन्द नहीं आया। मैंने उन्हें कुछ ऐसी किंवदन्तियां सुनाई जो मैंने सुनी थीं।

मैंने एक प्रमुख मजदूर नेता से पूछा कि उन लोगो ने श्री बेन को इंडिया आफिस में क्यों रखा जबकि भारत के सम्बन्ध में उनका ज्ञान नहीं के बराबर था। मुझे बताया गया कि एक तीव्र बुद्धि के आदमी की यहां सर्विसों के साथ और वहां भारत सरकार के साथ झडप हो जाती है। श्री मैकडानल्ड ने बड़ी चतुरता के साथ हरेक आफिस मे एक ऐसा आदमी रख दिया जो काम सुचारु रूप से चलाता रहे और सर्विसो के आगे हमेशा झुकता रहे। मुझे बताया गया कि जब सन् १९२४ मे लार्ड पासफील्ड ने अपने विभाग का चार्ज सभाला तो विभाग के सभी सिविलियनों को इकट्ठा करके कहा, 'सज्जनों, मै जानता हूं कि अबतक आप ही मालिक रहे है, और भविष्य में भी आपही रहेगे। इसलिए कामकाज बदस्तूर जारी रखिये। एक अतिथि ने कहा, "बात सच्ची है। हम लोग जो कहते है उसे कर दिखाना सम्भव नही है। हमने गत परिषद मे तरह-तरह के प्रस्ताव पास किये। यदि उनपर अमल किया जाय तो सारे ससार की निधि समाप्त हो जाय।" "श्री एटली को यह बात पसन्द नही आई और वह और भी चिढ़ गये। मैंने जो कुछ भी कहा उन्होंने उसीका खण्डन किया। उन्होंने कहा, "मजदूर दल आपका सबसे बड़ा मित्र था। गांधी ने परस्पर विरोधी बाते कीं, वह विचक्षण राजनीतिज्ञ है और उनके दिल में जो कुछ होता है उसके विपरीत बात कहते है। कांग्रेस मे भ्रष्टाचार भरा हुआ है। भारत का कोई भी बड़ा नेता वयस्क मताधिकार नहीं चाहता। मैंने कहा, "मेजर एटली, ऐसा मालूम होता है कि आप गांधीजी को मुझसे अधिक अच्छी तरह जानते है। मै इंग्लैड अंग्रेजों का अध्ययन करने आया था, पर यह स्पष्ट है कि आप मुझे मेरे देश के सम्बन्ध में ही कुछ सिखाना चाहते है। परंतु मै आपसे कुछ सीखने को तैयार नही हू।" इसके बाद हम सब लोग शांत हो गये। एटली और अन्य सदस्यों ने कहा कि मुझे अनुदार दल के कुछ युवा सदस्यों से भेट करनी चाहिए। इस बात पर सब सहमत हुए कि वातावरण मे सुधार होना चाहिए; पर सभी ने इस मामले में लाचारी जाहिर की। उन्होंने कहा कि उनके पास न शक्ति है, न प्रभाव (वे यह भी जोड़ सकते थे कि 'और न बुद्धि')। वे अपने आपको नीचा समझने के रोग से पीड़ित है, वे लार्ड लिनलिथगो का वायसराय बनना भले ही मंजूर कर लेंगे, पर अपने ही दल के किसी आदमी को मंजूर नही करेंगे। उनपर अनुदार दलवालों का बड़ा रौब-दाब है, या लार्ड डर्बी जैसे अत्यन्त धनी आदमियों का

शासन-विधान के सम्बन्ध मे उन्होंने कहा, "आप गवर्नर जनरल के लिए रिजर्व रखे गये अधिकारों की बात को जरूरत से ज्यादा तूल दे रहे

है, पर यह बात भूल जाते हैं कि ससार के सभी शासन-विधानों में सर्वोच्च अधिकारी के विशिष्ट अधिकारों की व्यवस्था अवश्य रहती है। हमारे यहां भी राजा को वही अधिकार प्राप्त है।"

अन्त म हम लोग मित्रो की भाति बिदा हुए। मै तो नही समझता कि यह समय व्यर्थ नष्ट हुआ। लार्ड लिनलिथगो के साथ मेरी जो बातचीत हुई मैने उसे भी सक्षेप मे नोट करलेने की चेष्टा की :

लार्ड लिनलिथगो :

लम्बा कद, गठीला शरीर, तीव्र बुद्धि तो नही, पर सुयोग्य और ठोस। कल्पना शक्ति का अभाव, काम की बात से सरोकार, स्पष्टवादी और अच्छे संकल्प रखने वाले।

मैंने अपना पुराना तर्क आरम्भ किया। दो प्रकार के वातावरण उपस्थित है,—एक वातावरण इग्लैंड मे है जिसमें भविष्य के लिए सदाकांक्षा और सहानभूति की अनुभूति होती है, दूसरा भारत में है—कठोर और कड़े शासन से परिपूर्ण। भारत के लोग शासन-विधान का पारायण वहां के शासन के प्रकाश में करते है। ऐसी स्थिति का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि शासन-विधान भंग हो जायगा और कड़ुआहट और भी बढ़ेगी। नये शासन-विधान का आरम्भ करने के लिए यह आवश्यक है कि श्रीगणेश अच्छे ढंग से किया जाय।

उन्होंने सारी बात बडे ध्यान से सुनी और कहा कि वह पूर्णतया सहमत है, पर क्या मेरे पास कोई ठोस सुझाव हैं? मैंने व्यक्तिगत सम्पर्क और समझौते की चर्चा की। वह व्यक्तिगत सम्पर्क की बात पर तो राजी हुए, पर समझौते के खिलाफ थे। उन्होंने सुझाया कि पारस्परिक समझौता ठीक रहेगा। उन्होने बताया कि यहां के अनुदार दल में ऐसे पुराने दृष्टिकोण वाले लोग है जिन्हे भारत का अनुभव है, पर इंग्लैंड में समायोजन का, कहना चाहिये कि नूतन अनुस्थापन का सिलसिला, भी जारी है। ४५ से इधर की आयुवाले लोग उदार नीति के बरते जाने के पक्ष मे है। भारत में भी समायोजन अवश्यम्भावी है। यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि लक्ष्य-स्थान तक शासन-विधान के द्वारा ही पहुंचा जा सकता सकता है।

मैंने कहा कि यह हो सकता है, पर व्यक्तिगत सम्पर्क के बिना नही। उन्होंने कहा कि श्री गांधी को दो रास्तों मे से एक के सम्बन्ध में निश्चय करना होगा। भारतीय राष्ट्र के पुनर्जन्म के लिए कौनसा मार्ग श्रेयस्कर

है--पारस्परिक सम्पर्क, मैत्री और उनके द्वारा विकास का मार्ग, अथवा अपेक्षाकृत अधिक साहसपूर्ण कदमवाला मार्ग जिसके द्वारा वर्षों तक अशांति और अव्यवस्था का बोलबाला रहे और जिसके द्वारा स्वतंत्रता भी संभव है, और उल्टी खराबी भी।

मैंने उत्तर दिया कि गांधीजी ने कभी रक्तपातपूर्ण क्रांति में आस्था नहीं रखी। मुझे उसमें कोई खराबी दिखाई नही देती है, पर मैं जानता हूं कि उससे हमें सहायता मिलने वाली नही है, इसलिए मैं भी सम्पर्क और मित्रता का इच्छुक हूं। गांधीजी का रुख इस सम्बन्ध में बिल्कुल स्पष्ट है। मैंने अगाथा हैरिसन के नाम उनका पत्र दिखाया। उन्होंने उसे चाव के साथ पढ़ा और कहा, "हां, यह बड़े महत्व का है। मै आपसे सहमत तो हूं, पर मेरे दिमाग में कोई योजना नही है। मैं इस पर विचार करूंगा। यदि कोई बात सम्भव नही होगी तो साफ-साफ कह दूगा। इस बीच आप अन्य लोगों से मिलिये और १० तारीख के आसपास खबर दीजिये। तभी हमारी दुबारा बातचीत होगी। पर जब स्वतंत्रता-प्राप्ति के ढंग पर आपने अपनी सम्मति दी है तो मुझे भी अपनी सम्मति देने की अनुमति दीजिये। रक्तपातपूर्ण क्रांति साहसपूर्ण कदम अवश्य होगा, पर वह गलत कदम होगा। यातायात-सम्बन्धी सुविधाएं उपलब्ध होने के फलस्वरूप अब संसार बहुत संकुचित हो गया है, इसलिए उसका सफल होना उतना आसान नही है। इसके विपरीत मित्रतापूर्ण वातावरण मे शासनविधान को अमल मे लाने का परिणाम ठोस होगा।"

मैंने कहा कि मैं निष्कर्ष से तो सहमत हू, पर तर्क से नही। आज शासन-विधान प्राणशून्य देहमात्र है। सुन्दर-से-सुन्दर देह भी प्राण-शून्य होने पर केवल दाह के उपयुक्त होती है। मै चाहता हूं कि शासन-विधान एक स्पंदनयुक्त शरीर हो। केवल पारस्परिक सम्पर्क और पार-स्परिक समझौते के द्वारा ही ऐसे प्राणों का संचार हो सकता है।

वह पुनः सहमत हुए और उन्होने इस बात पर खेद प्रकट किया कि भारत की सिविल सर्विस और व्यापार में जो अंग्रेज हैं, वे इंग्लैंड के कोई बहुत अच्छे प्रतिनिधि नहीं हैं।

: १९ :

इंग्लैण्ड में बड़ी-बड़ी आशाएं

मैं गान्धीजी की ओर से प्रत्येक संभव प्रयास कर लेना चाहता था और इसलिए मैंने उन सभी आदमियों से भेंट की, जो सहायक हो सकते थे।

मैं भूतपूर्व भारत मंत्री सर आस्टिन चेम्बरलेन, जिन्होंने वायसराय का पद ग्रहण करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था, केंटरबरी के लाट पादरी, श्री बाल्डविन, टाइम्स के संपादक ज्योफरी डासन, सर वाल्टर लेटन, न्यू स्टेट्समैन के श्री किंग्सले मार्टिन, मैनचेस्टर गार्जियन के श्री बोर्न तथा अन्य लोगों से मिला। उस समय अनुदार दल के लोग सत्तारूढ़ थे। भारतीय शासन विधान के निर्माता वही थे, और वे सभी हितैषिता का दम भरते थे। मजदूर दल के और नरम लोगों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता था।

बाल्डविन लार्ड हेलीफैक्स के विशेष रूप से प्रशंसक थे। उनके सम्बन्ध में उनकी बड़ी ऊंची धारणा थी। यह स्पष्ट था कि लार्ड हैलीफेक्स के साथ मेरी जो मित्रता थी वह उनके निकट मेरी सबसे बड़ी सिफारिश थी। उनकी एक अजीब-सी आदत थी कि वह बिना किसी खास कारण के हर दो-तीन मिनट के अन्तर पर ठहाका मार कर हँस पड़ते थे। वह कहते थे कि पाँच वर्ष तक प्रधान मंत्री की हैसियत से घोर परिश्रम करने के बाद अब वह थक गये हैं। हां, बीच-बीच में कुछ ऐसा समय भी अवश्य गुजरता है जब वह थकावट महसूस नहीं करते।

स्वर्गीय लार्ड सेलिसबरी के साथ मेरी बातचीत का विवरण इस प्रकार है :

वृद्ध और बहरे। न अधिक सामर्थ्य है, न विशेष बुद्धि । पर अपने उत्तरदायित्व की ओर से सचेत है । मुझसे पूछने लगे कि क्या मुझे गान्धीजी प्रिय लगते है। मैंने कहा, "हा ।" उन्होंने कहा कि उन्हे गान्धीजी से मिलने का सुयोग कभी नही मिला । मैंने उन्हे बिल के प्रति उनके विरोध की याद दिलाई और कहा कि मैं भी बिल के खिलाफ ही हूं, पर अन्य कारणो से। मैंने कहा, "यह प्रगति अपर्याप्त है, पर क्या हम लोग राजनैतिक मतभेद के बावजूद बिल को सफल बनाने मे मित्रों की तरह आचरण नही कर सकते ?" उन्होंने पूछा "क्या हम इस समय मित्र नही है?" मैने कहा, "नहीं। इस समय भारत मे गलतफहमी और विरोध की भावना का वातावरण व्याप्त है।" उन्होंने उत्तर दिया "मै श्री गौड के सपर्क में आ चुका हूं। क्या वह भारत का प्रतिनिधित्व नही करते है ?" मैंने कहा कि उन्हें व्यवस्थापिका सभा मे जाने के लिए एक भी निर्वाचन-क्षेत्र न मिलेगा । वह बोले, "हा, यह मैं जानता हूं।" उन्होने ठोस सुझाव मागा। मैंने कहा, "हेलीफैक्स की भावना को पुन: जीवन दीजिये। उन्होने कहा कि वह हेलीफैक्स से सहमत नही है, परन्तु हेलीफैक्स ने जो कुछ किया वह केवल हेलीफैक्स के लिए ही सम्भव था। अच्छे आदमी है। डर्बी भी अच्छे आदमी है।' पर उनके साथ पटरी नहीं बैठती है। मैंने कहा, "और इस पर भी आप मित्र बने रह सके है।" वह सहमत हुए और बोले कि राजनैतिक मामलों मे सहमत हुए बिना भी वे मित्र बने रह सके।

उन्होने गांधीजी की साधुता, महान चरित्र और सदाकाक्षाओ की सराहना की, पर साथ ही कहा, "सब से बड़ी भूल की बात यही है कि आप भारतीय लोग सदगुणो और अनुभव को एक समझ लेते है। इगलैण्ड को १००० वर्ष का अनुभव प्राप्त है। आप लोग इस मामले मे बिलकुल कोरे है।" मैंने कहा, "हमारी पृष्ठभूमि इग्लैण्ड की अपेक्षा कही पुरानी और गौरवपूर्ण है।" उन्होंने कहा, "मैं तो घटाकर नहीं कहना चाहता हू। आपकी सभ्यता और आपके दर्शन-शास्त्र किसी भी देश की सभ्यता और दर्शन-शास्त्रों से पुराने है, पर यह प्रजातत्र तो नही है। आपको अभी सीखना है।" मैंने कहा, "क्या आप लोगों ने भूले नही की?" उत्तर मिला, "हां।" मैंने कहा, "हम लोगों मे कुछ चीजों का अभाव है, इसी कारण हम मैत्री की चर्चा चला रहे है।"

आदमी तो अच्छे है, किन्तु मै तो नही समझता कि वह विशेष उपयोगी सिद्ध होंगे ।

एक बात विचित्र-सी है, पर श्री विन्सटन चर्चिल की भेंट मेरा सबसे मुखद अनुभव था। वह भारत शासन विधान बिल के सबसे बड़े विरोधी थे और उन्हें सदन में सरकारी पक्ष की ओर से आक्रमण करने की सुविधा प्राप्त थी। पर मैंने उन्हें आग उगलने वाला नहीं पाया। उन्होंने मुझे अपने ग्राम्य निवास-स्थान चार्टवेल पर दोपहर के भोजन के लिए बुलाया। उस भेंट का ब्यौरा यह है :

बहुत ही असाधारण व्यक्ति हैं। निजी बातचीत मे भी उतने ही ओजस्वी हैं, जितने सार्वजनिक व्याख्यानों में। उनके साथ जो बातें हुई उन्हें तद्वत् देना असंभव है। मैं उनके साथ दो घंटे रहा।

श्रीमती चर्चिल भी बड़ी रोचक हैं, पर जब उनके पति बात करते हैं तो वह चुपचाप सुनती भर हैं। वह गत वर्ष केवल छः घंटे के लिए भारत में ठहरी थी।

जिस समय मैं वहां पहुंचा, श्री चर्चिल अपने उद्यान मे थे। उन्हें उनकी धर्मपत्नी ने बुला भेजा। वह एक मजदूरों का जामा पहने हुए थे, जिसे उन्होंने दोपहर के भोजन के समय भी नहीं बदला। इसके बाद वह बडा-सा परदार टोप ओढ़कर फिर उद्यान मे चले गये। भोजन के बाद वह उद्यान में मुझे भी अपने साथ लेते गये। उन्होंने मुझे चारों ओर घुमाकर उद्यान दिखाया और वे इमारतें भी दिखाईं जो उन्होंने बनाई थीं और वे ईंटें दिखाईं जो उन्होंने स्वय अपने हाथ से तैयार की थी। उन्होंने वे चित्र भी दिखाये, जो उन्होंने बनाये थे।

मकान, उसके आसपास की वस्तुएं, उनका तैरने का हौज—सभी कुछ अत्यन्त आकर्षक है। तैरने के हौज़ के पानी को एक बायलर द्वारा गर्म रखा जाता है। एक पम्प जल को हौज़ मे से खीचता है, उसे गर्म करता है, छानता है और फिर उसे हौज़ मे वापस भर देता है। श्री चर्चिल ने मुझे बताया कि वह पुस्तकें लिखकर जीविका अर्जन करते हैं। मैंने स्वगत कहा, "तब तो इस विलासिता का काफी मूल्य चुकाना पड़ता होगा।" पर उन्होंने बताया कि वह इस हौज़ पर केवल तीन पौंड प्रति सप्ताह खर्च करते हैं। बातचीत में तीन-चौथाई हिस्सा उनका था, बाकी एक-चौथाई मे मैं और श्रीमती चर्चिल थे। मैं बीच-बीच मे उनकी कोई बात ठीक करने के लिए अथवा एकाध प्रश्न करने के लिए बोल उठता था, पर वैसे मुझे उनकी बातचीत बड़ी अच्छी लगी। बातचीत से कभी ऊब पैदा नही हुई और

कभी-कभी उन्होंने काफी भावातिरेक प्रकट किया। पर उन्हे भारत के सम्बन्ध में बिलकुल गलत जानकारी है। उनकी कुछ अपनी धारणाएं हैं। उदाहरण के लिए, उनका विश्वास है कि भारत के गांव शहरों से बिलकुल अलग हैं। मैंने उनकी भूल सुधारी और कहा कि भारत मे कोई भी शहरी सोलह आने शहरी नहीं है, हरएक का गांव से सम्पर्क बना हुआ है। मै जिन पच्चीस हजार आदमियों को अपनी मिलों में लगाये हुए हूं वे वर्ष में एक से अधिक बार अपने घर जाते हैं। इस प्रकार वास्तव में लिस्ट में ५०,००० व्यक्ति हैं। उनका यह भी खयाल था कि मोटर गाडियां गांव तक नहीं पहुंची हैं। मैंने उनकी यह भूल भी सुधारी; अमरीकी मोटर गाड़ियां सड़कों के बिना भी यात्रा कर सकती है, इसलिए मोटर गाड़िया देश के कोने-कोने मे जा पहुंची हैं।

उनकी धारणा थी कि शिक्षित व्यक्ति—ग्रेजुएट और राजनेता—सब शहरों में ही हैं। मैंने उनकी यह भूल भी ठीक की। मैंने कहा, "मै अपने गाव मे से ही आधा दर्जन ग्रेजुएट निकाल सकता हूं। हां, वे अपने गांव मे बीच-बीच मे आ जाते है, वहां स्थायी रूप से ठहरते नही है।"

उन्हे अपने आपको अनुदार बताने का बड़ा गर्व है। उन्होंने कहा, 'पिछले तीन वर्षो में भारत में १० करोड़ प्राणी और बढ गये हैं। उनके निर्वाह का प्रश्न भी एक समस्या है। उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए शान्ति आवश्यक है। जबतक हम कानून और व्यवस्था बनाए रखेगे तबतक सब कुछ ठीक रहेगा, पर भारत मे तो साम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं। लाहौर, कानपुर, कलकत्ता सब जगह। अब इन दंगों की सख्या मे वृद्धि होगी और फल भोगना पड़ेगा जनता को।" मैंने उन्हे बताया कि पजाब मे एक देहाती दल भी है जिसमें जाट और मुसलमान शामिल हैं। उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार के अन्तर्गत शायद आर्थिक ढंग के दल बनेंगे। इससे अवस्था में सुधार संभव है। साम्प्रदायिक निर्णय से कोई सहायता नहीं मिली, पर आपसी समझौते के अभाव में वह अनिवार्य था। मैंने उन्हें यह भी बता दिया कि मेरा दृष्टिकोण इतना निराशापूर्ण नही है। उन्होंने कहा, "संभव है आपकी बात ठीक हो।"

उन्होंने पूछा, "गांधीजी क्या कर रहे हैं" मैंने बताया। उन्हें बड़ी दिलचस्पी हुई। उन्होंने कहा, "जब से गांधीजी ने अस्पृश्यों का पक्ष लेना आरंभ किया है वह मेरी दृष्टि से बहुत ऊंचे उठ गये हैं।" उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण कार्य के सम्बन्ध में विशेष जानकारी हासिल करने की इच्छा प्रकट की। मैंने बताया। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मैं अस्पृश्यता निवारक संघ का प्रधान हूं। इसके बाद उन्होंनें गांधीजी के ग्रामोद्धार-संबंधी कार्य के सम्बन्ध में

जानना चाहा। मैंने बताया। उन्होंने पूछा, "भारतीय किसान की कृषि-सम्बन्धी प्रणाली पिछड़ी हुई क्यों है?" उन्होंने कहा कि यह लार्ड लिनलिथगो की राय है। मैंने बताया कि इसका कारण यह है कि बराबर उसकी उपेक्षा होती रही है। "अब तो आपको अवसर मिल ही रहा है। मुझे बिल अच्छा नही लगता है, पर अब वह कानून बन ही गया है। अब मैं उसके सम्बन्ध मे अधिक माथापच्ची नही करूंगा, पर आप हम यह कहने का मौका मत दीजिये कि हम तो पहले ही जानते थे कि यह असफल सिद्ध होगा। यदि ऐसा हुआ तो अनुदार दलवालों को हर्ष होगा। आप लोगों के हाथ में अपार शक्ति आ गई है। सिद्धान्त रूप मे सारी शक्ति गवर्नरों के हाथ मे है, पर वास्तव में उनके हाथ में कुछ नही है। सिद्धान्त-रूप मे राजा के हाथ मे सारी शक्ति है, पर व्यवहार मे उसके हाथ मे कुछ भी नहीं है। जब समाजवादियों ने शासन की बागडोर हाथ मे ली थी तो उनके हाथ में सारी शक्ति थी, पर उन्होंने कोई उन्मूलक कार्य नही कर दिखाया। गवर्नर लोग कभी अभिरक्षण काम मे नही लायंगे, इसलिए आप विधान को सफल बनाइये।" मैंने पूछा, "आपका सफलता का मापदंड क्या है?" उन्होंने उत्तर दिया, "मेरा मापदंड जनसाधारण की नैतिक और मौलिक अवस्था मे सुधार है। मुझे इसकी चिन्ता नही है कि आप ब्रिटेन के प्रति कितने वफादार है, मुझे अधिक शिक्षा-प्रसार की भी चिन्ता नही है। पर जन-साधारण को मक्खन अवश्य दीजिये। मै तो मक्खन का समर्थक हूं। जैसा कि फ्रांस के राजा ने कहा था--मुर्गी को हांडी मे डालो।" जी हां, मै तो हमेशा मक्खन का हामी रहा हू। गायों की संख्या मे कमी करिये, पर उनकी नस्ल सुधारिये। हरएक खेतिहर अपना जमीदार हो। सबसे बढ़िया नस्ल को जिबह मत होने दीजिये। हरएक गांव के लिए एक सांड की व्यवस्था कीजिए। गांधीजी से कहिये कि जो अधिकार दिये जा रहे है उन्हें काम मे लावे और विधान को सफल बनावे। गांधीजी इंगलैंड में थे उस समय मैं उनसे नहीं मिला था। अवस्था ही कुछ ऐसी भोंडी थी, पर मेरा लड़का तो उनसे मिला ही। अब मैं उनसे मिलना चाहूंगा। मरने से पहले एक बार भारत जाने की साध है। यदि गया तो कोई छह महीने ठहरूंगा।"

उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या गान्धीजी शासन-विधान का विध्वंस करना चाहते है? मैंने कहा, "गांधीजी उदासीन है। उनका विश्वास है कि राजनैतिक स्वतन्त्रता बिलकुल हमारी चेष्टाओं के द्वारा ही प्राप्त होगी और राजनैतिक प्रगति हमारे ऊपर ही निर्भर करती है। अतएव वह जनता के उत्थान मे दत्तचित्त है। शासन-विधानों में उन्हें विशेष

रुचि नही है।" वह सहमत हुए। पूछा कि यदि वह भारत गये तो क्या उनकी आवभगत की जायगी। मैंने कहा, "आप इस ओर से निश्चित रहिये।" उन्होंने बताया कि जबतक लार्ड विलिंगडन वहां हैं तबतक वह वहां नही जाना चाहते हैं, पर उनके चले आने के बाद वह अवश्य जाना चाहेंगे। बोले, "भारत के प्रति मेरी वास्तविक सदाकांक्षा है। भारत के भविष्य के सम्बन्ध में मैं सचमुच चिन्तातुर हूं। मेरी धारणा है कि भारत हमारे लिए भारस्वरूप है। हमें सेना रखनी पड़ती है। यदि भारत अपनी देख-भाल स्वयं कर सके तो हमें आनन्द होगा। आदमी का जीवन है ही कितना? मैं अधिक स्वार्थपरता से काम नही लूंगा। यदि सुधार सफल सिद्ध हुए तो मुझे बेहद खुशी होगी। मेरी हमेशा से धारणा रही है कि पचास भारत है। अब आपको असली पदार्थ मिल ही गया है, आप उसे सफल बनाइये और यदि आपने ऐसा किया तो आप जब और अधिक की मांग करेंगे, मे आपका समर्थन करूंगा।"

मैं वहाँ जो कुछ कहता रहा था उसका मैंने एक संक्षिप्त विवरण तैयार किया और उसकी प्रतिलिपि लार्ड हैलीफैक्स को भेजी, जिससे मेरे विचारों का स्पष्टीकरण हो जाय। वह विवरण इस प्रकार है:

गान्धी-इर्विन समझौता भारत और ब्रिटेन को एकसूत्र मे बांधने की दिशा मे एक बड़ा कदम था। उसने एक उदाहरण कायम किया। उसने अव्यवस्था फैलाकर राजनैतिक प्रगति करने के तरीके की जड़ो पर प्रहार किया और पारस्परिक चर्चा और विश्वास के तरीके की स्थापना की। किन्तु उसके फलितार्थों को समझौते के रचयिताओं को छोड़ बहुत कम लोगों ने समझा। समझौते के कागज की स्याही भी मुश्किल से सूख पाई होगी कि दोनों ही देश से बाहर चले गये।[१] अगर वे दोनों भारत मे रहे होते तो समझौता जीवित रहता। कांग्रेस के अनुयायी और सरकारी हल्के इन दोनों ने ही समझौते को गलत समझा। कांग्रेसी लड़ना तो जानते थे, किन्तु यह नही जानते थे कि समझौता किस तरह किया जाता है। सरकारी हल्कों ने यह कभी नही छिपाया कि उन्हे उत्तेजना फैलानेवालों से अरुचि है। उनसे

---

१. इर्विन का कार्यकाल खत्म होगया और वे इंग्लैंड चले गये। गांधीजी राउन्ड टेबल कान्फरेंस मे शामिल होने को विलायत चले गये थे।

चर्चा करने का अर्थ अपनी प्रतिष्ठा घटाना था। इसलिए समझौते ने अलग-अलग कारणों से दोनों पक्षों मे असन्तोष पैदा कर दिया और दोनों ने ही उसे पहला अवसर मिलते ही दफना दिया।

इसके बाद दूसरा संघर्ष शुरू हुआ और आर्डिनेन्स राज चला। कांग्रेस को दबा दिया गया। गान्धीवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया का दौर शुरू हुआ। गांधीवाद अपने विशुद्ध रूप मे अहिंसा, सच्चाई और कष्ट-सहन द्वारा अंग्रेज़ों का हृदय-परिवर्तन करने मे विश्वास रखता है। घृणा का उसमे कोई स्थान नही, ऐसा माना जाता है; किन्तु वातावरण घृणा से व्याप्त है, कारण सत्याग्रहियों ने गान्धीवाद को उसके विशद्ध रूप मे कभी अंगीकार नही किया। उग्र पंथियों ने उससे फायदा उठाया, किन्तु उसमे उनकी आस्था न थी। उनका लक्ष्य राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति है, साधनो की उन्हे चिन्ता नही है। इस प्रकार कांग्रेस की हार ने एक नई शक्ति को जन्म दिया, जिसका सिद्धांत ही दूसरा था।

आमरण-अनशन और अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन के बाद स्थिति ने मूर्त रूप धारण कर लिया। उग्र पंथियों को गान्धीवाद की उपयोगिता मे संदेह होने लगा। वे वाम पक्ष की ओर झुक गये, जब कि लोकमत के एक अन्य महत्वपूर्ण अग को असेम्बली-बहिष्कार के औचित्य मे सन्देह होने लगा। इस समय गान्धीजी ने महसूस किया कि ससदीय कार्यशीलता स्थायी बन चुकी है। साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि कांग्रेस के अनुयायियों मे अहिसा के वेश में हिसा घुस आई है। इसलिए वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द कर सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक बुराइयो को दूर करने के काम मे जुट गये। उन्होने हरिजन-सेवा और ग्राम-सुधार का काम प्रारम्भ किया। इस प्रकार वह काग्रेस की शुद्धि करना चाहते थे। गान्धीजी ने हमेशा यह माना है कि स्वराज्य भीतर से आयगा, बाहर से नही। गांधीजी ने अनुभव किया कि अपने विचारों को लोगों पर लादा तो जा सकता है, किन्तु लोगों के लिए उनको पचाना कठिन होगा। इसलिए उन्होंने अपने विचारो पर आग्रह करने : अपेक्षा काग्रेस की सक्रिय सदस्यता से अलग होना ही अच्छा समझा ।

असेम्वली भंग कर दी गई, इससे ससदीय मनोवृत्ति वाले दल को नया बल प्राप्त हुआ। उग्रपंथियों ने इसका विरोध किया, कारण उनकी यह धारणा थी कि उससे आम जनता का ध्यान कार्यक्रम से हट जायगा। किन्तु वे प्रतिरोध नही कर सके। चुनाव हुए। गृह मंत्री कांग्रेसी नेता श्री भूलाभाई देसाई की भावना और भाषणों से प्रभावित तो हुए, पर मानवीय सपर्क के दर्शन नही हुए। सरकार ने व्यक्तिगत सम्पर्क और पारस्परिक

समझौते के महत्व को न पहचानकर एक अच्छा खासा अवसर हाथ से गंवा दिया। असेम्बली के अधिवेशन के समाप्त होते-न-होते विरोधी पक्ष के भाषण अधिकाधिक उत्तरदायित्व-शून्य होते गये। कांग्रेसी सदस्यों ने वायसराय की अतिथि-पुस्तिका में हस्ताक्षर नही किये, जिससे लार्ड विलिंगडन चिढ गए। खाई और भी चौड़ी हुई, उग्रपंथियों की शक्ति बढ़ी। जब हाल ही में जबलपुर कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुई और असेम्बली के काम का पर्यालोचन होने लगा तो इस वर्ग (कांग्रेस समाजवादी पार्टी) ने संसदीय कार्यशीलता मे आस्था रखनेवाले सदस्यों के विरुद्ध खुल्लम-खुल्ला विद्रोह कर दिया। अनेक उग्र प्रस्ताव पेश किये गये और नाममात्र की जीत भी हासिल हुई। स्थिति को दक्षिण पक्ष वालों की, खासकर श्री राजगोपालाचार्य की, व्यवहार-कुशलता और बुद्धिमत्ता के द्वारा ही सम्हाला जा सका। इस प्रकार दक्षिण पक्षीय कांग्रेसियों को दो शक्तियों से लड़ना पड़ रहा है, एक ओर तो सरकार से और दूसरी ओर समाजवादियों से। समाजवादी सीधा हमला कर रहे है। वे नेताओं को यह कह कर बदनाम करते है कि वे कुछ भी हासिल नही कर सके। सरकार दक्षिण पक्ष की उपेक्षा करके अप्रत्यक्ष रूप से समाजवादियों की सहायता कर रही है। इस प्रकार दक्षिण पक्ष दो शक्तियों के बीच कुचला जा रहा है। इसका परिणाम या तो यह होगा कि दक्षिण पक्षवाले हट जायंगे और समाजवादियों के लिए मैदान खाली छोड़ देंगे, या यह होगा कि वे लोकमत को अपने साथ रखने के लिए सुधारों के सम्बन्ध में कोई उग्र कार्यक्रम अपनायंगे। वर्तमान वातावरण का कांग्रेस के दक्षिण पक्ष पर यही प्रभाव पड़ा है। मुसलमानो पर यह प्रभाव पडा है कि वे यह मानने लगे है कि उनके बुरे कामों की ओर से भी आँखें मूंद ली जायंगी। हाल ही मे मुलतान की एक सार्वजनिक सभा में प्रस्ताव पास किया गया कि पैगम्बर की आलोचना करने के लिए अमुक हिन्दू को मौत के घाट उतार दिया जाय। पुलिस को इसका पता तुरन्त चल गया, किन्तु उस हिन्दू को नहीं बचाया जा सका और उसकी हत्या हो ही गई। यह स्थिति खतरनाक है और इसके परिणाम गभीर हो सकते है। जब सरकार कोई कड़ी कार्रवाई करती है, जैसा कि करांची मे किया गया, तो उसकी गंभीर प्रतिक्रिया होती है।

इस वातावरण से सरकारी अमला भी अछूता नही रहा है। चाहे कैसा ही लोकप्रिय आन्दोलन हो, उसे शंका और विरोध की भावना से देखने की मनोवृत्ति एक ऐसी बात है जिसका भविष्य में गंभीर परिणाम हो सकता है। ऐसे वातावरण मे रचनात्मक काम असंभव हो जाता है। सरकार कानून और व्यवस्था कायम रखने में जुटी है और लोग सरकार

से मोर्चा लेने में संलग्न है।

और इधर सरकार ने विश्वस्त भारतीय नेताओं को क्वेटा न जाने देने का जो निश्चय किया है उससे सारे भारत में रोष की लहर फैल गई है। वातावरण में पहले से ही खिचाव मौजूद था, इस निश्चय ने असन्तोष के एक नये कारण को जन्म दिया है।

भारत के नए विधान का सूत्रपात ऐसे ही वातावरण मे किया जायगा जब कि न व्यक्तिगत संपर्क मौजूद है, न पारस्परिक विश्वास।

इंगलैड में भारत के प्रति वास्तविक सहानुभूति और सद्भावना मौजूद है। यहां सबका हृदय से विश्वास है कि विधान के द्वारा वास्तविक प्रगति करने वाला कदम उठाया गया है, कि उससे भारतीयों को सचमुच भारी अधिकार मिलेंगे और भारत अपने लक्ष्य स्थान तक पहुँच सकेगा। इस नेकनीयती की अनुभूति इंगलैड मे ही होती है, भारत उससे बिलकुल बेखबर है। भारत मे इन प्रस्तावों को प्रतिगामी कदम समझा जाता है। इसका कारण यह है कि पारस्परिक विश्वास, मित्रता और व्यक्तिगत सम्पर्क के बिना कोई साझेदारी सभव हो सकती है ऐसा विश्वास करने को कोई भी भारतवासी तैयार नहीं है। भारत के लोग शासन विधान को पढ़ते है और उसकी शब्दशः व्याख्या करते है, तो उन्हे यही दिखाई देता है कि उसमे वायसराय और गवर्नरों के हाथ मे कितने विशाल अधिकार सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। वे इस स्पष्टीकरण को केवल मित्रतापूर्ण वातावरण मे ही स्वीकार कर सकते है कि शोधक प्राधिकारी (corrective authority) की व्यवस्था सभी विधानों मे है।

यदि नये विधान को दोनों देशों के हित मे सफलता-पूर्वक अमल में लाना है तो यह नितान्त आवश्यक है कि वर्तमान वातावरण को बदलने के लिए तुरन्त कुछ-न-कुछ किया जाय। एक नई भावना को जन्म देना होगा, ऐसी भावना को जो इर्विन-गान्धी समझौते मे व्याप्त थी।

समझदार भारतीय स्त्री-पुरुष अंग्रेजों की सहायता की आवश्यकता को समझते है, वे उनकी मित्रता की कामना करते है। इसलिए प्रश्न यही है कि एक ओर सरकार की स्थिति और प्रतिष्ठा को और दूसरी ओर भारतीयों की स्थिति और स्वाभिमान को ध्यान मे रखकर इस मित्रता को कैसे प्राप्त किया जाय।

इसी बात को ध्यान में रखकर मै निम्न सुझाव प्रस्तुत करने का साहस करता हूँ :

१. पहला कदम जो उठाया जाय वह हो व्यक्तिगत सम्पर्क, जिससे और अधिक सम्पर्क स्थापित हो सके और एक-दूसरे को समझने की दिशा

में प्रगति हो। परेशान करनेवाली और अनावश्यक अटकलबाजी से वचने के लिए भेंट अनौपचारिक तौर पर और किसी गैर राजनैतिक विषय को लेकर हो तो अच्छा रहेगा।

२. यह सम्पर्क बढ़ाया जाय। एक-दूसरे का दृष्टिकोण समझने का प्रयत्न किया जाय। यदि यह समझा जावे कि दिल्ली मे सफलता सम्भव नही है तो सर जान एंडरसन जैसा आदमी इन प्रश्नों को हाथ मे ले।

३. अगर अन्तिम पूर्ति भावी वायसराय के द्वारा करानी हो तो अंतरिम काल का उपयोग उसके लिए भूमिका तैयार करने मे किया जाय, जिससे खाई और चौड़ी न हो सके।

४. इसके लिए सबसे अच्छा वातावरण इंगलैण्ड मे ही मिल सकता है, अतः क्या यह संभव नही है कि गाधीजी को और किसी काम से इगलैण्ड बुला लिया जाय? मुझे याद पड़ता है कि उन्हें सन् १९२९ मे या तो चर्च के कुछ लोगों ने या किसी विश्वविद्यालय ने निमंत्रण दिया था।

५. क्या भारत मत्री या भावी वायसराय अगली सर्दियों मे वहा जानेवाले किसी कमीशन के अध्यक्ष बन कर भारत जा सकते है?

६. साथ ही क्या यह सभव नही है कि किसी तीसरे आदमी की मार्फत विचार-विनिमय किया जाय जिससे दोनों पक्षों की ओर से उपयुक्त घोषणाएं की जा सकें? वैसी अवस्था मे व्यक्तिगत सम्पर्क की बारी इन घोषणाओं के बाद आवेगी।

लार्ड हैलीफैक्स ने अपने उत्तर में कहा कि वह इस विवरण की एक प्रति भारत के भावी वाइसराय लार्ड लिनलिथगो को भेज रहे हैं।

लार्ड लिनलिथगो से मै कई बार मिला और इंगलैण्ड से रवाना होने से पहले उन्हें एक पत्र भी भेजा, जिसमें मैंने लिखा:

मै दो-एक बाते और भी कह देना चाहता था। नये वायसराय को अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने के निमित्त कठोर परिश्रम करना पड़ेगा, इसलिए उन्हें किसी ऐसे आदमी की सहायता की दरकार हो सकती है जो पक्षपात से मुक्त हो। क्या लार्ड विलिगडन की भाति नये वायसराय के लिए भी अपना प्राइवेट सेक्रेटरी यहां से ले जाना अच्छा नही रहेगा?

जब नये वायसराय व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर चुकेंगे तो कुछ समस्याएं विचारार्थ उपस्थित होंगी। मै उन्हे यहां दे रहा हूँ, जिससे आप उनका हल सोच सकें:

१. अहिंसात्मक राजनैतिक बन्दियों की रिहाई। इनकी संख्या अधिक तो नहीं है, पर इनमे अब्दुल गफ्फार खाँ और पंडित नेहरू जैसे व्यक्ति हैं। शायद पंडित नेहरू को शीघ्र ही रिहा कर दिया जायगा।

२. जब्त की गई भूमि की वापसी। गांधी-इर्विन पैक्ट मे यह बात मान ली गई थी, पर पैक्ट का अंत होने पर यह बात खटाई में पड़ गई। जब तक कांग्रेसवादियों के सहकर्मी इस प्रकार बीच मे लटके रहेगे, उन्हे पदों पर बने रहना नही भायेगा।

३. आतंकवादियो की समस्या को भी हल करना होगा। आतंकवाद से पूरी तरह निस्तार पाने के हेतु किसी-न-किसी प्रकार की योजना का पता लगाना ही होगा। इस मामले मे कांग्रेस और सरकार, दोनों का दृष्टिकोण समान है, पर उनकी कार्य-प्रणाली जुदी-जुदी है। कांग्रेस दंड के द्वारा नही, मेल के द्वारा आतंकवाद का अन्त करना चाहती है। जहां एक ओर कांग्रेस को अपनी कार्यप्रणाली मे से दंड को बाद नहीं देना चाहिए, वहां मेरी राय में सरकार को भी मेल का मार्ग नही त्यागना चाहिए। मै एक ऐसी अवस्था की बात सोच रहा हूँ जिसके अन्तर्गत सरकार और विरोधी वर्ग, दोनों ही एक समान दृष्टिकोण अपना सके और इस प्रकार आतंकवाद का पूरी तौर से मुकाबला कर सकें। श्री शरतचद्र बोस की रिहाई एक ठीक दिशा मे उठाया गया कदम हैं, और मै समझता हूँ उनके भाई श्री सुभाषचन्द्र बोस पर भी काबू पाया जा सकता है। ऐसे किसी फार्मूले को खोज निकालना सर जान एंडरसन के बुद्धिकौशल के लिए असम्भव नहीं है।

मै ये सारी बाते मात्र आपके विचारार्थ लिख रहा हूँ, क्योंकि किसी--न-किसी दिन आपको इन बातों पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करना पडेगा और आप शायद पहले से ही सोच रखना अच्छा समझे।

आपके सौजन्य और सद्भावना के लिए धन्यवाद।

भवदीय
जी० डी० बिडला

इस प्रकार मैने इंगलैण्ड से काफी बड़ी आशाएं लेकर विदा ली। लार्ड लोदियन के इस पत्र से कि नये वाइसराय लार्ड लिनलिथगो हमारे राष्ट्रीय नेताओं के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने का निश्चित उद्देश्य लेकर भारत पहुंचेंगे, मुझे खास तौर से प्रसन्नता हुई।

: १७ :

भारत-वापसी

सितम्बर १९३५ में मैं भारत लौटा और तुरन्त वर्धा गया, ताकि गांधीजी के साथ रहकर उन्हें खुद अपनी जबानी अपने संस्मरण सुना सकूं। गांधीजी का यह अनुभव करना स्वाभाविक ही था कि मुझे इंगलैण्ड में जिस मित्रता के दर्शन हुए, वह अभी भारत के सरकारी हल्कों में व्याप्त नहीं हुई है। फिर भी उन्होंने मुझसे लिनलिथगो और दूसरों को यह लिखने को कहा कि वह वायसराय के भारत पहुंचने के पहले सुधारों के बारे में कांग्रेस को कोई भी नया निश्चय न करने की सलाह देंगे और इस उद्देश्य की सिद्धि में अपने प्रभाव का उपयोग करेंगे। अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए लार्ड लोदियन ने जो टिप्पणी की उस यहाँ देना प्रासंगिक प्रतीत होता है :

सरकार चलाना बड़ा ही कठिन कार्य है। अरस्तू और यूनानी लोग इसे सबसे बड़ी कला समझते थे। लोग शासन करना तभी सीख सकते हैं जब वे उत्तरदायित्व ग्रहण करें और अपने विचारों को अनुभव की कसौटी पर कसें। मेरा विश्वास है कि भारत का समूचा भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि उसका युवा समाज प्रान्तों में और उसके बाद केन्द्र मे शासन भार ग्रहण करने के हेतु निर्वाचनों मे जोर- शोरके साथ भाग लेता है या नहीं। भारत का शासन-विधान चाहे जो हो, युवा समाज प्रकृत कार्य द्वारा ही राजनैतिक रंग-पट्ठे बना सकेगा और भारत के आगे सांप्रदायिकता, दरिद्रता, अल्पसंख्यकों का प्रश्न, देशी नरेश, सम्पत्ति का सामर्थ्य आदि जो मौलिक समस्यायें मौजूद हैं उनका निबटारा करने के लिए आवश्यक चरित्र का निर्माण कर सकेगा। मैं आपके पास 'ट्वेन्टियथ सेन्चुरी' नामक मासिक पत्रिका के उस अंक की एक प्रति भेजता हूं जिसमें

मैंने इस विचार को अपने मस्तिष्क मे प्रश्रय देने के कारण बताये हैं कि महात्मा गान्धी जिस मौलिक हृदय परिवर्तन पर हमेशा से जोर देते आये हैं, वह यहां सचमुच हुआ है, और कि भारतीय सरकार का संचालन करने का भार अब से भारतीय कंधों पर ही रहेगा। यदि उन्होंने यह नही देखा हो तो आप इसका अवलोकन करने के बाद उनके पास भेज दें तो बड़ी कृपा हो।

यदि शासन-विधान मे अपने रंग पट्ठों को अभ्यस्त करने के बाद तरुण भारत को पता चले कि वास्तविक सुधारों की सिद्धि में स्वयं शासन-विधान ही बाधक है तो उसके लिए उसकी पुनरावृत्ति की मांग करना वैध होगा, और यदि वह मांग पूरी न की गई तो उसके लिए अधिक प्रत्यक्ष कार्रवाई करना भी औचित्यपूर्ण होगा। इसके अलावा व्यावहारिक सरकार-संचालन कार्य में युवकों ने जो दीक्षा और अनुभव प्राप्त किया होगा वह उन्हें सफलता प्राप्त करने और भारत के लिए सुन्दर सरकार उपलब्ध करने में समर्थ बनायगा। पर यदि तरुण भारत अभी से सविनय अवज्ञा और असहयोग का अथवा हिंसापूर्ण क्रान्ति का मार्ग अपना लेगा तो वह उदार और वैधानिक ढग की शासनप्रणाली की शिक्षा से वंचित रहेगा और फलतः तानाशाही के उन कठोर दाव पेचों में उसकी आस्था दृढ़ हो जायगी जो वैयक्तिक स्वतन्त्रता का विनाश कर यूरोप का विध्वंस कर रहे है, वैयक्तिक विचार का स्थान सामूहिक संगठन को दे रहे है और इस प्रकार विश्व को युद्ध की ओर वापस ले जा रहे हैं। यदि ऐसा हुआ तो यह निश्चित है कि भारत खड-खंड और विनष्ट हो जायगा। मुझे इसमे तनिक भी संदेह नही है कि यदि उपनिवेशों की भांति नवीन भारत भी अपने देश को अच्छी सरकार देने मे समर्थ हुआ तो अन्य स्थानों की भांति उसके हाथों मे भी पूर्ण सत्ता अनायास भाव से और अनिवार्य रूप से आ जायगी। इस समय ब्रिटेन में इस विचारधारा का प्राधान्य है कि यद्यपि वह भारत के साथ व्यापार करना चाहता है तथापि उस पर अधिकार न बनाये रखा जावे। हां, यह देखना है कि भारत संकट मे पड़े बगैर भी स्वराज्य का उपभोग कर सकता है या नहीं। जहां ब्रिटेन के जनमत ने यह देखा कि भारत के राजनेता भारतीय शासन और सुधार से सम्बन्ध रखनेवाली समस्याओं पर व्यावहारिकता और समझदारी के साथ काबू पा रहे है, बस, अभिरक्षण उसी प्रकार गायब हो जायंगे जिस प्रकार कनाडा और आस्ट्रेलिया में हो गये थे। अतएव किसी भी दृष्टिकोण से देखिए, कांग्रेस और उसके प्रतिद्वन्द्वियों के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रान्तीय सरकार पर अधिकार करे, उसे सफल बनावें और उसके बाद केन्द्र में भी यही करें।

स्वयं लार्ड लिनलिथगो ने लिखा :

मेरी निजी धारणा यह है कि पिछले दस वर्षों मे भारतीय आकांक्षाओ के प्रति सहानुभूति रखने की दिशा मे यहा के जनमत मे काफी प्रगति हुई है। मेरा विश्वास है कि इस बात को अच्छी तरह ध्यान मे रखना बहुत आवश्यक है कि जनमत की प्रगति एक खास सीमा में होती है। नई परिस्थितियों और दृष्टिकोणों के अनुरूप रुख अपनाने के मामले में वयस्क पीढ़ी को युवा समाज की अपेक्षा अधिक कठिनाई होगी और राज-कार्य इसी पीढ़ी के हाथ में है। वास्तव मे बात तो यह है कि ४५ वर्ष की आयु के बाद साधारणतया लोग नई परिस्थितियों को सहज ही नही अपनाते है। यह बात दोनों ही देशों के निवासियो और सभी नस्लो के लोगो पर लागू होती है। असीम धैर्य की दरकार होगी, और यदि किसी चेष्टा के प्रारम्भिक काल में तुरन्त ही अनुकूल परिणाम उपलब्ध न हों तो निराशा के आगे सिर न झुकाने के लिए काफी साहस की आवश्यकता होगी।

मुझे नये विधान का यथाशक्ति अच्छे-से-अच्छा उपयोग करना होगा, और जहां तक मुझसे संभव होगा, मेरी यही चेष्टा रहेगी कि उसकी मर्यादा के भीतर रहकर सभी प्रकार के राजनैतिक दलों के स्त्री-पुरुष काम कर सके। शायद आप इस बात से सहमत होगे कि भारत की राजनैतिक अवस्था पर कैसा-क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका इस समय अनुमान करना बुद्धिमान-से-बुद्धिमान आदमी के लिए भी सभव नही होगा। इसलिए मेरी तो यही धारणा है कि इस समय हमारी सम्मति जो भी हो, हमे अन्तिम निर्णय उस समय तक के लिए स्थगित कर देना चाहिए जबतक चित्र और भी अधिक स्पष्ट न हो जाय। जैसा कि मै समझता हू आप स्वय जानते है, मै इस बीच मे पारस्परिक सम्मान और पारस्परिक विश्वास की उस भावना को बल देने और उसके क्षेत्र को अधिक व्यापक करने की चेष्टाओ मे, जिसके अभाव में कोई भी मंगलदायी कार्य सम्पन्न होना सम्भव नही है, अपना योग देने को सदैव तत्पर मिलूगा। मै व्यक्तिगत मित्रता के उन सबधो को भी दृढ़ करने मे पूरा योग दूगा जिनके द्वारा सार्वजनिक जीवन की कठिनाइयाँ बहुधा कम हो जाती है और उसके भार हल्के हो जाते है। इन मैत्री-पूर्ण सम्बन्धों का अपना निजी महत्व और अपना निजी मूल्य है।

पर अफसोस, आशाओं के इस नीलाकाश पर शीघ्र ही बादल छाने वाले थे। कलकत्ते के कट्टर अग्रेज व्यवसायियों के निहित स्वार्थ विरोध की कितनी भारी दीवार खड़ी कर देंगे यह बात

लार्ड लिनलिथगो ने नहीं सोची थी। विरोध तो बम्बई के अंग्रेज व्यवसायियों की ओर से भी हुआ, पर उतना नहीं। जब वाइसराय पहली बार कलकत्ता गये और वहाँ उन्होंने विशुद्ध यूरोपीय बंगाल क्लब का भोजन का निमन्त्रण स्वीकार न कर, कलकत्ता क्लब का निमंत्रण स्वीकार किया, जिसके सदस्य यूरोपीय भी थे और भारतीय भी, तो सारा यूरोपीय समाज उनके खिलाफ उठ खड़ा हुआ। न उन्होंने उन चंद उच्च अफसरों के असहायक रवैये की बात भी नहीं सोची थी, जिनकी सहायता और सहयोग पर अधिकांशतः निर्भर करना उनके लिए अनिवार्य था। वैसे ये लोग अपने अमले की परिपाटी के अनुरूप ब्रिटिश सरकार और पार्लमेन्ट के इरादों और विधान निहित भावना को वफादारी के साथ मूर्तरूप देना चाहते थे, पर कई ऐसी बातें थीं जिनके कारण उनका झुकाव विपरीत दिशा में हो गया। प्रथम तो जिन अंग्रेज व्यापारियों के साथ घनिष्ठ समाजिक मेलजोल था, उनके विचार काफी कट्टर थे और वे आपस में अपने विचारों को खुले तौर पर व्यक्त करते थे। कहना तो यह चाहिए कि एक ओर तो कुछ अंग्रेज व्यापारी, जिनका निकास समाज के निचले स्तर से हुआ था, यह चाहते थे कि उनके पुत्र भारतीय सिविल सर्विस या भारतीय सेना में भर्ती हो जायं, क्योंकि वे जिस स्तर पर पहुंचना चाहते थे वे समझते थे कि इस प्रकार वे उसकी एक सीढ़ी और लांघ जायंगे। दूसरी ओर अंग्रेज अफसर अपने व्यवसायी मित्रों से अनुनय करते थे कि वे उनके पुत्रों को अपनी फर्मों में भरती कर लें, ताकि उनका आर्थिक जीवन एक औसत दर्जे के अफसर की अपेक्षा अधिक समृद्ध हो सके।

सन् १९३१ की गर्मियों के जोरदार आतंकवादी आन्दोलन ने, जो कि गाँधी-इर्विन समझौते को भंग करके शुरू किया गया था, अंग्रेज अफसरों और व्यवसायियों के रुख को और भी कठोर कर दिया था, जैसा कि स्वाभाविक ही था। जब यह आन्दोलन चलाया गया तब गांधीजी भारत से बाहर थे, हालांकि बंगाल

. डा० विधानचन्द्र राय और नलिनी रंजन सरकार जैसे कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं ने सार्वजनिक रूप से इस आन्दोलन से अपनी असहमति प्रकट की थी। दूसरा मुख्य प्रभाव भूतपूर्व वाइसराय का पड़ा, जिन्होंने खुले तौर पर गांधीजी के प्रति अविश्वास प्रकट किया। अफवाह थी कि उन्होंने बापू को फालतू आदमी कहा था। यह धारणा सरकारी और व्यापारी, दोनों ही क्षेत्रों में व्याप्त थी और उनका तर्क यह था कि माना कि उनमें से अधिकांश का बापू के साथ साक्षात्कार नहीं हुआ है, पर लार्ड विलिंगडन तो उनसे मिल चुके हैं और वह जो कुछ उनके बारे में कहते हैं, सोच-समझ कर ही कहते होंगे। सर हरबर्ट इमर्सन उल्लेख योग्य अपवाद सिद्ध हुए। गांधी-इर्विन समझौते के सरकारी पहलू को कार्यान्वित कराने का भार उन्हीं पर था। इस सिलसिले में बापू से उनका अनेक बार साक्षात्कार हुआ, जैसा कि स्वाभा-विक ही था। नतीजा यह हुआ कि दोनों एक-दूसरे को अच्छे लगने लगे और दोनों के बीच एक-दूसरे के प्रति विश्वास की वृद्धि हुई; पर कुल मिलाकर सरकारी अफसर गांधीजी की नेक-नीयती में विश्वास नहीं करते थे, आपसी बातचीत में नये वाइसराय के उग्र आलोचक थे और उनकी इस बात से खास तौर पर नाराज थे कि वह अपना प्राइवेट सेक्रेटरी अपने साथ लाये और इसके लिए उन्होंने इण्डिया आफिस के एक अधिकारी को छांटा। वे प्राइवेट सेक्रेटरी के पद को भारतीय सिविल सर्विस वालों का इजारा और गवर्नरी के पद के लिए एक सीढ़ी समझते थे।

एक और दुर्भाग्यपूर्ण बात यह हुई कि इन सारी बातों का स्वयं लार्ड लिनलिथगो पर सामूहिक प्रभाव पड़ा। वह काफी लम्बे समय तक अपने प्रारंभिक रवैये पर डटे रहे। उन्होंने कांग्रेस को शासन विधान को कार्यान्वित करने, प्रान्तीय स्वशासन की योजना के अधीन पद ग्रहण करने और सरकारों की रचना करने के लिए राजी किया और खुद गांधीजी के साथ मित्रता

का नाता जोड़ा। पर धीरे-धीरे उपरोक्त शक्तियों ने उन्हें इतना प्रभावित कर दिया कि सन् १९३९ में जर्मनी के साथ युद्ध छिड़ते-छिड़ते उनका भारतीयों, और खासकर कांग्रेस, पर से कुछ ऐसा विश्वास उठ गया था कि वह शुरू से ही राष्ट्रीय सरकार की रचना और सम्मिलित युद्ध-प्रयास-संबंधी सुझाव को दृढतापूर्वक ठुकराते रहे। उनका यह रुख इसलिए और भी अधिक असंगत और बेहूदा लगा कि वह तो वह, जिस ब्रिटिश सरकार का वह प्रतिनिधित्व कर रहे थे वह स्वयं, हिटलर की खुशामद करके उसे मनाने की नीति का अनुसरण कर रही थी, जब कि भारतीय लोकमत शुरू से अन्त तक नाजी विरोधी रहा। हां, वह जर्मन विरोधी नही था। इसके अलावा, भारतीय लोकमत ने चीन का भी जोरों से समर्थन किया और मंचूरिया पर जापान के आक्रमणों को धिक्कारा। श्री नेहरू की प्रेरणा पर कांग्रेस ने एक डाक्टरी दल का संगठन करके चीनियों की सहायता के लिए भेजा। इसके विपरीत भारत में रहनेवाले अंग्रेजों की दृष्टि केवल उनके व्यापारिक हितों पर केन्द्रित प्रतीत होती थी। उन्होंने इस संभावना की ओर से आँखें बन्द कर रखी थीं कि कभी भारत पर हमला करने के लिए हिटलर और जापान में गठबंधन हो सकता है। वह तो कलकत्ते से कच्चा लोहा जहाजों में लादकर जापानी वन्दरगाहों को रवाना करने में व्यस्त थे। यही लोहा बाद में भारतीय और अंग्रेज सैनिकों की छातियों को छेदने वाली गोलियों की शक्ल में वापस आया।

यहां बापू का एक पत्र देता हूं जिससे पता चलता है कि आर्थिक समस्याओं से निबटने में बापू कितना सीधा-सादा और सहज तरीका बरतते थे :

सेगांव, वर्धा
४-७-३६

प्रिय घनश्यामदास

मैंने संग्रहालय के बारे मे महादेव को लिखने के लिए नही कहा था।

असल में मैंने उसे दूसरी इमारतों के बारे में लिखने को कहा था। तुमको याद होगा कि मैंने अपनी जरूरतें गिनाते समय यह कहा था कि दूसरी इमारतों के लिए १,००,००० की आवश्यकता होगी। बाद मे विद्यालय को इमारतों में शामिल कर लिया गया, हालांकि जब १,००,०००, की राशि का उल्लेख किया गया था, मैंने विद्यालय के मामले को, इसलिए अलग रखा था कि मै विद्यालय की इमारत के अलावा १,००,००० रुपये की लागत से अन्य इमारतें बनाने की सोच रहा था। किन्तु कोष मे या सुरक्षित निधि में इतना रुपया नहीं है कि विद्यालय के निमित्त हुआ खर्च पूरा किया जा सके। मेरा यह खयाल था कि तुमने १,००,००० रु० की राशि मे से कुछ रुपया बच्छराज एण्ड कम्पनी को भेज दिया है। अब मुझे पता चला है कि इस मद मे कुछ भी जमा नही हुआ है। इसीलिए मैंने त्रिवेन्द्रम तुम्हे पत्र भेजा था। शायद यह पत्र तुम्हे नही मिला। अगर उस १,००,००० की राशि मे से कुछ निकालना सम्भव हो तो करना चाहिए।

मैंने डा० मुजे को एक पत्र लिखा है। उसकी प्रतिलिपि तुम्हे मिली होगी।

पारनेरकर के साथ क्या व्यवस्था तय पाई है ?

बापू के आशीर्वाद

महादेवभाई का अगला पत्र इस समय के बापू के जीवन-क्रम पर रोचक प्रकाश डालता है :

मगनवाड़ी, वर्धा
३०, अगस्त १९३६

प्रिय घनश्यामदासजी

मैं आपको अलग डाक से विश्वभारती संसद की कार्रवाई की नकल भेज रहा हूं। आपको यह जान कर खुशी होगी कि ६०,०००रुपये के गुप्तदान[1] द्वारा उन लोगों को अपना पुराना कर्ज उतारने मे मदद मिली है और कम-से-कम एक बार तो उनके बजट मे संतुलन आ ही गया प्रतीत होता है। पर ऐसा कबतक होता रहेगा, पता नही। कश्मीर में क्या आपका समय अच्छी तरह नहीं बीता ?

---

१. कवीन्द्र रवीन्द्र को वह गुप्तदान मैंने ही दिया था। इस दान के पीछे एक मर्म-स्पर्शी इतिहास है, जिसे यहां दुहराने की जरूरत नहीं है।

मैंने जान-बूझकर उस ऐतिहासिक मुलाकात के बारे में नहीं लिखा। ऐसी बातों की चर्चा पत्रव्यवहार द्वारा नही की जा सकती। मै अगले महीने आपके यहां आने की बाट देखूंगा। गत सप्ताह जवाहरलालजी के आगमन के अवसर पर मौसम जैसा कुछ रहा, शायद आपके आगमन के समय उसकी अपेक्षा अधिक मंगलकारी सिद्ध होगा। उन्हें थोड़ा रास्ता वर्षा और कीचड़ में तय करना पड़ा। बापू अपने ग्राम-सेवा के कार्य में अधिकाधिक व्यस्त होते जा रहे हैं और पत्रव्यवहार अथवा लेखन-कार्य के लिए थोड़ा-सा भी समय निकालने को तैयार नहीं हैं। तीन या चार सप्ताह पूर्व उन्होंने समाजवाद पर अपना वक्तव्य पूरा किया था, किन्तु उसे फिर से देख जाने के लिए उन्हें अभीतक एक क्षण का भी समय नहीं मिल सका है। उन्होंने अपने घर मे (सारे घर में एक ही तो कमरा हैं) कुछ मित्रों को इकट्ठा किया और उन सबके रोगों से सम्बन्ध रखनेवाली समस्याओं मे ही उनका अधिकांश समय खपने लगा। पर सारी कहानी यही समाप्त नही हो जाती है। असल बात यह है कि वह कांग्रेस और सारी बाहरी कार्यशीलता से अपना दिमाग हटा रहे हैं और उसे पूर्णतः गांव और उसकी समस्याओं पर केन्द्रित कर रहे हैं। वह इसीको अपनी साधना बताते हैं और अन्य किसी कार्यक्रम द्वारा उसमें बाधा पड़े, यह वह नही चाहते। उनके पास सर पी० टी० (सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास) के आग्रहपूर्ण पत्र आये कि उहे अफ्रीकी प्रतिनिधि मंडल के स्वागत के लिए बम्बई जाना चाहिए, परन्तु उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। नवम्बर के शुरू में गुजरात साहित्य परिषद की अध्यक्षता करनी है, एक साल पहले उन्होंने इसका वादा कर लिया था। पर उनकी इस वादे को भी पूरा करने की इच्छा नही है—मना रहे हैं कि कोई-न-कोई ऐसी बात हो जाय कि उनका जाना रुक जाय। जब आप यहां आवेंगे तो शायद उनकी मौजूदा मनोवृत्ति का सही अन्दाजा लगा सकेंगे।

आशा है, आप अच्छी तरह होंगे।

आपका
महादेव

: १८ :

लिनलिथगो का शासन-काल

लिनलिथगो भारत के लिए कोई अजनबी न थे। वह पिछले वर्षो मे कृषि-संबंधी शाही कमीशन के अध्यक्ष रह चुके थे और इस हैसियत से उन्होंने काश्मीर और पेशावर से लगाकर कन्या-कुमारी तक देश के सभी भागों की यात्रा की थी। वह कृषि-संबंधी विषयों के विशेषज्ञ प्रसिद्ध थे और जब वह वायसराय बनकर भारत आये तो उनके साथ मेरा प्रथम सम्पर्क मुख्यत: साँड़ों और गायों के विषय को लेकर ही हुआ। मैं पिलानी में शिक्षण-संबंधी एक बृहद् प्रयोग में लगा हुआ था। वहाँ बच्चों के लिए दूध की समुचित व्यवस्था हो, इसके लिए अच्छी नस्ल के पशुओं की दरकार थी और यही मेरी समस्या थी। इंगलैण्ड के प्रवास के समय मैंने एक होलस्टीन साँड़ खरीदा, किन्तु मुझे परिणाम से संतोष नहीं हुआ। मेरी एक सूझ यह थी कि बड़े शहरों को जो दुधारू गायें भेजी जाती हैं, उनकी वापसी यात्रा का रेल-भाड़ा इस तरह निर्धारित किया जाय कि जब ये गायें दूध देना बन्द कर दें तो उन्हें कसाईखानों में भेजने के बजाय वापस अपने घरों को लौटाना ज्यादा लाभदायक प्रतीत हो। मेरी प्रेरणा पर वायसराय ने इस मामले की बारीकी से जाँच कराई, पर अपने कार्यकाल के प्रारम्भ में ही उन्हें ऐसी नौकरशाही से पाला पड़ा, जिससे वह इस मामले में पार न पा सके। रेलवे ने इस सुझाव को रद्द कर दिया। इतने पर भी वायसराय की पूरी पराजय नहीं हुई; रेलवे बोर्ड ने स्वीकार किया कि जो पशु किसी उत्तर-पश्चिम स्टेशन से हावड़ा भेजे जायंगे, उनके लिए

विशेष वापसी दर जारी की जायगी, अर्थात् प्रति चार पहियों की गाड़ी पर भेजे जाने वाले पशुओं के लिए छः आना प्रति मील के हिसाब से किराया वसूल किया जायगा, पर शर्त यह होगी कि वापसी नौ महीने के भीतर हो जानी चाहिए। किन्तु मैंने वायसराय को लिखा कि अधिकतर ग्वाले अशिक्षित हैं, वे वापसी टिकट नहीं खरीदेंगे, इसलिए यह ज्यादा अच्छा हो कि कलकत्ता भेजी जानेवाली गायों के लिए एक समान किराया तय कर दिया जाय और नौ महीने के भीतर वापस पशु भेजने वाले के लिए मुफ्त टिकट दे दिया जाय। इसका यह अर्थ होता कि भेजने वाले को वापसी टिकट खरीदना ही पड़ता। इस टिकट को वह गाय के साथ ऐसे किसी भी व्यक्ति के हाथ बेच सकता था जो गाय को देश वापस लाना चाहता।

अपनी लन्दन की मुलाकात के बाद मैं नये वायसराय से पहली बार ५ अगस्त १९३६ को मिला और हमारी मुलाकात करीब एक घंटे तक रही। इस मुलाकात का जो विवरण मेरे पास है, उससे यह चित्र स्पष्ट होता है कि वायसराय एक सदाशयी और ईमानदार आदमी है, जिन्हें अपने वातावरण के साथ संघर्ष करना पड़ रहा है। उनकी अवस्था उस तैराक जैसी थी जो नदी की तेज धारा में प्रवाह के विरुद्ध तैरने की कोशिश कर रहा हो। इस प्रवाह की तेजी का उन्होंने पहले कभी अंदाजा नहीं लगाया था। अन्त में उन्हें उस प्रवाह में बह जाना पड़ा।

मैं मानता हूं कि भेंट के समय अधिकतर बात मैंने ही की। मैंने उन्हें याद दिलाई कि जैटलैण्ड, हेलीफैक्स, लोदियन और होर ने मुझसे कहा था कि गाँधीजी को नये वायसराय से मिलने के पहले कोई नया निर्णय नहीं करना चाहिए। मैंने उन्हें यह भी बताया कि किस प्रकार मैंने उनके व्यक्तिगत संदेश और अपने संस्मरण गाँधीजी तक पहुंचा दिये थे। स्थिति के बारे में मेरे आशावादी दृष्टिकोण के साथ सहमत होने में उन्हें कठिनाई का बोध हुआ था, किन्तु उन्होंने वादा किया था कि काँग्रेस

के लखनऊ-अधिवेशन के अवसर पर कोई नया निर्णय न किया जाय, इसकी वह चेष्टा करेंगे। मैंने कहा कि लार्ड विलिंगडन ने यह डर फैलाने में सक्रिय भाग लिया है कि यदि वायसराय गाँधीजी से मिलेंगे तो परिणाम अच्छा न निकलेगा। लिनलिथगो को इस बात का अच्छी तरह पता था, और वह सहमत थे। वह जिस वातावरण से घिरे हुए थे उसकी विरोध भावना की गंध उनकी नाक में पहुंच चुकी थी।

मैंने कहा, "गांधीजी ने अपने वचन का पालन किया है। मुझे पता नहीं कि आप अब भी पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने के इच्छुक हैं, अथवा आपके विचारों में परिवर्तन हो गया है। मैंने लन्दन मे अपने विचार-बिन्दु पर जोर दिया था, पर अब मै ऐसा नहीं करूंगा। मैंने जब आपसे लन्दन में बात की थी उस समय आपको वस्तुस्थिति का उतना ज्ञान नहीं था जितना मुझे था, पर अब यह नहीं कहा जा सकता है कि आपको स्थिति का अध्ययन करने की उतनी सुविधा प्राप्त नही है जितनी मुझे है। आपको मेरे विचार मालूम ही है। मै उन पर उसी प्रकार डटा हुआ हूं। यदि आप समझते है कि आपको सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कुछ-न-कुछ करना चाहिए तो आप मेरा पथ-प्रदर्शन करिये। इसके विपरीत यदि आपने अपने विचार बदल दिये है और उसी पुरानी नीति को अपनाने का निश्चय कर लिया है तो मै केवल इतना ही कहकर बात खतम कर दूंगा कि ऐसा करना बड़ी भूल होगी।" वह कुछ क्षण विचार-मग्न हो गये, फिर बोले, "गांधी और जवाहरलालजी का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है?" मैंने उत्तर दिया, आपको स्थिति को समझनेके लिए दोनों के स्वभाव को समझना होगा। दोनों के स्वभाव, दृष्टिकोणों और विचारों मे ज़मीन आसमान का अन्तर है। पर इसके कारण दोनों के पारस्परिक स्नेह-संबंध में कोई अन्तर नही पड़ता है। जबतक गांधीजी जीवित है, मै कांग्रेस में फूट पड़ने की कोई सम्भावना नहीं देखता हूं।" उन्होंने कहा, "मैं भी यही समझता हूं।" उन्होंने पूछा, "निर्वाचन का खर्च कौन उठावेगा? गांधीजी?" मैंने कहा, "मै तो ऐसा नहीं समझता हूं। यह सब कांग्रेस के द्वारा ही किया जायगा, और जहांतक मै समझता हूं, कांग्रेसवादी पांच प्रान्तों में बहुमत से जीतेंगे।"

इसके बाद उन्होंने कहा, "मैं आपसे साफ कह रहा हूं। जब मै यहां आया तो सरकारी हल्कों में भारी त्रास फैला हुआ था। मैंने सर हेनरी क्रेक से अच्छी तरह बातचीत की। मुझे भय है कि फिलहाल मेरे लिए कोई कदम

उठाना सम्भव नहीं होगा। मै जानता हूं कि कांग्रेस बड़ी मजबूत पार्टी है और प्रान्तों में बहुमत प्राप्त करेगी। मै यह भी स्वीकार करता हू कि कांग्रेस ने जनता मे स्वाभिमान और राष्ट्रीयता की भावना जागृत की है और भारत में जो वैधानिक परिवर्तन हुए है उनका बहुत-कुछ श्रेय उसीको है। पर अन्य महत्वपूर्ण पार्टियां भी तो है, और यदि मै कांग्रेस के साथ आवश्यकता से अधिक मैत्री करने लगू तो अन्य पार्टियों को असुविधा की स्थिति में डाल दूगा और इससे निर्वाचनों मे कांग्रेस को आवश्यकता से अधिक महत्व मिल जायगा। सम्भव है, मुझे पक्षपात का दोषी ठहराया जाने लगे। अतएव राजा के प्रतिनिधि की हैसियत से मेरे लिए ऐसा कोई काम करना उचित नहीं होगा जिससे पक्षपात की गंध आवे। इसके अलावा एक बात और भी है। मै आज गांधीजी से किस विषय पर बात करूंगा? मै उनके साथ खिलवाड़ नही करना चाहता हूं। मै भारत सरकार विधान का एक अर्ध-विराम तक बदलने में अशक्त हू। मै बंगाल के कैदियों को भी रिहा नही कर सकता। फिर बताइये, मै उनसे किस विषय पर बात करूं। हां, यदि कोई अग्रगण्य व्यक्ति मुझसे मिलना चाहे तो मै हमेशा तैयार हूं। पं० मदनमोहन मालवीय मुझसे मिल ही चुके है। आप मिले ही है। पर यदि मैं गांधीजी को विशेषरूप से निमन्त्रण दू तो इसका कोई वैध कारण नही दिखाई देता है।" मैंने कहा, "मै आपकी बात अच्छी तरह समझता हू। इस समय गांधी-जी भेट की याचना नही करेंगे। पर इसका यह मतलब नही है कि वह थोथे लोकोपचार मे विश्वास रखते है। आपके यह कहने भर की देर है कि आप उनसे मिलना चाहते है, और वह तुरन्त लिखकर भेट की याचना करेंगे। पर उन्हें स्वयं कुछ नही कहना है। मै काग्रेसवादी नही हूं। अतएव जब मुझे आपकी स्थिति काग्रेस को और काग्रेस की स्थिति आपको समझानी पड़ती है तो मुझे असुविधा का सामना करना पडता है। आप स्वयं गांधीजी जैसे किसी काग्रेसवादी को कांग्रेसी राजनीति की चर्चा करते हुए देखने का अवसर क्यों नही ढूंढ़ते है? यदि आप ऐसा करें तो आपको उनके रुख के संबंध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त होगा और उन्हे भी आपका दृष्टिकोण समझने का अवसर मिलेगा। फिलहाल भारत-सरकार के विधान मे किसी प्रकार का परिवर्तन करना सम्भव है, ऐसा मैंने कभी नही सुझाया है; पर इसके अलावा और बहुत-सी बाते की जा सकती है और करनी चाहिए। क्या आतंकवाद के सम्बन्ध मे एक-समान ग्राह्य फार्मूला तैयार करना सम्भव नही है? और भी अनेक ऐसी बातें है जिन्हें करना सम्भव है। मै तो नही समझता कि इस समय सरकार निष्पक्षता से काम ले रही है। खानसाहब के रिहा होते ही उनके ऊपर पंजाब और सीमा-प्रान्त में प्रवेश की निषेधाज्ञा

लगा दी जाती है। फर्ज़ करिये, खान साहब मंत्री बनने वाले हों। आप ऐसा करके उन्हें निर्वाचन-संबन्धी प्रचार-कार्य की सुविधा से वंचित कर रहे हैं। यह कहा का न्याय है? यह न निष्पक्षता है, न न्याय। इन सारी अनुचित बातों को हटाकर वातावरण मे सुधार किया जा सकता है, पर जैसा कि मैंने अभी कहा है, मै इस मामले पर अधिक जोर नही दूगा। मैंने काफी जोर दिया है। अब आप खुद निर्णय करिये।" साथ ही मैंने पूछा, "पर क्या आपका खयाल है कि निर्वाचन के बाद स्थिति में परिवर्तन होगा?" उन्होंने कहा, "निश्चय ही, भारी। निर्वाचन के बाद तो चित्र बिलकुल दूसरे ही ढंग का होगा। निर्वाचन के बाद स्वयं मेरा हिस्सा ठोस रहेगा, पर मैं वचन नही देता हूं। हम नहीं जानते कि निर्वाचन के बाद स्थिति कैसी होगी और हमे क्या कार्रवाई करनी पडेगी।" इसके बाद उन्होंने बताया कि उन्हे खबर मिली है कि कांग्रेसी लोग पद-ग्रहण करने से बचने की चेष्टा कर रहे है, क्योंकि उन्होंने कोई रचनात्मक कार्य किया और शिक्षा-प्रसार और अन्य धधों के लिए उन्हे टैक्स लगाना पड़े तो वे बदनाम हो जायंगे। मैंने कहा, "आपकी खबर बिलकुल निराधार है। मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नहीं है कि यदि उचित अवबोध रहा, और वातावरण मे सुधार हुआ, और कांग्रेस ने पद-ग्रहण किया तो वे लोग, शिक्षा, सफाई आदि के लिए उन लोगों पर टैक्स लगाने मे, जो टैक्स का भार वहन करने मे समर्थ है, तनिक भी नही हिचकिचायेगे। वास्तव मे इससे कांग्रेस की लोकप्रियता बढ़ेगी ही।" उन्होंने मेरी बात मानी, पर कहा कि उन्हे यह खबर एक काग्रेसवादी ने ही दी है। पर उन्होने यह भी कहा, "फर्ज करिये मै गान्धीजी से मिलू और कहूं कि मै यह कर दूंगा और वह कर दूंगा और विधान को अत्यन्त उदार ढंग से अमल मे लाऊंगा और जोखिम भी उठाने को तैयार रहूंगा, क्या आप पद-ग्रहण को तत्पर है तो मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि उनका उत्तर होगा, "नहीं। "मैंने उत्तर दिया, "महोदय, आप पहले से ही बहुत कुछ फर्ज़ किये ले रहे है।" उन्होंने पूछा, "क्या आप समझते है कि वह पद-ग्रहण करने को राजी हो जायगे?" मैने कहा, "बेशक, बशर्ते कि उन्हे विश्वास हो जाय कि जनता की सेवा के लिए रचनात्मक कार्य करने योग्य वातावरण मौजूद है। गान्धीजी आरम्भ से ही रचनात्मक कार्य करते आये है, इसलिए कांग्रेस के पद ग्रहण करने से वह तनिक भी घबराने वाले नहीं है। पर शर्त यही है कि वातावरण ठीक ढंग का हो।" इसके बाद मैने कहा, "मै आपके विचारों से परिचित हूं, मै उन्हे गांधीजी के पास पहुंचा दूंगा। मुझे इस बात से खुशी हुई कि आपने सारी बात इतनी स्पष्टता और स्वच्छता के साथ रखी। अब मैं आपको इस मामले को लेकर और अधिक परेशान नही करूंगा।

यदि आपको कभी मेरी सहायता की ज़रूरत पड़े तो मैं हाजिर हूं, पर फिलहाल आपको स्थिति का अध्ययन करने की सुविधा प्राप्त है, इसलिए मैं अधिक कुछ नहीं कहूंगा। मैं आपके निष्कर्षो से सहमत नही हूं, पर कोई बात नही है।

इसके बाद हमने पशुपालन के सम्बन्ध में कुछ बातें की। उन्होंने कहा, "यदि मैं किसानों को कुछ लाभ पहुँचा सकू तो मेरा अन्तःकरण सुखी होगा। यदि मै ऐसा करने मे सफल हुआ तो मुझे इसकी चिन्ता नही है कि लोग मेरे सम्बन्ध म क्या सोचेगे।" इसके बाद बोले, "गान्धीजी से कह दीजिये कि मेरी राय मे राष्ट्रीयता अपराध नही है और मै सहज दृष्टि-कोण अपनाने मे समर्थ हूं।" फिर वह बोले, "जिस समय मै भारत पहुंचा तो अधिकारियो में कितना त्रास फैला हुआ था इसका आप अंदाजा नही लगा सकते।" मैने उनसे कहा, "मै पहले ही जानता था और इस सम्बन्ध मे मैने आपको एक पत्र मे चेतावनी भी दी थी।" उन्होंने कहा, "मै नही समझता था कि स्थिति इतनी बुरी निकलेगी।"

कहना अनावश्यक है कि वार्त्तालाप के दौरान में पूरी सहृदयता का दौरदौरा रहा, और मै अपनी इस सम्मति पर दृढ़ हूं कि वह एक अच्छे ईमानदार आदमी है। वह अपने विचारों का त्याग करने को बाध्य हुए है, और यद्यपि वह निर्वाचन के बाद कुछ कार्रवाई करेंगे, तथापि वह कोई वचन देने को तैयार नही है। जब मैने कहा कि मै उनसे फिर मिलने की आशा करता हूं तो वह बोले, "मेरे पास अधिक मत आइये, नही तो यह समझा जायगा कि आप मुझे बहुत अधिक प्रभावित करने की चेष्टा कर रहे है। हां, आप जब चाहे लिख अवश्य सकते है, भले ही मै आपसे सहमत न होऊं।"

इस मुलाकात के बाद लार्ड लोदियन का एक पत्र मिला। मैने उत्तर मे लिखा :

मुझे आपकी यह धारणा जानकर आनन्द हुआ कि वायसराय लोकोप-चार की परवाह न कर पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करनेको दृढ-प्रतिज्ञ है। अभी तक तो मुझे उसके कोई लक्षण दिखाई नही दिये है। मैं वायस-राय से परसों मिला था और मैने देखा कि अभी कुछ होने वाला नही है।

भारत वापस आने पर मैने देखा कि लार्ड विलिंगडन ने इस बात को लेकर कि नया वायसराय भारत में आकर क्या कुछ करने वाला है त्रास फैलाना आरम्भ कर दिया है। "नया वायसराय गांधी से मिलेगा और पुरानी नीति को बदल देगा।" मानो गांधी के वायसराय-भवन में पदार्पण करने

मात्र से आकाश फट पड़ेगा। 'मार्निंग पोस्ट' में एक तार छपा है और उस के बाद ही सर तेज ने मित्रों और प्रेसवालों को आपका पत्र दिखाया, जिसमे आपने यह कहा मालूम होता है कि मैंने गांधीजी से वचन ले लिया है कि वह वायसराय से मिलने तक कोई नई कार्रवाई नही करेंगे। आशा है, आप मेरी बात को ग़लत नही समझेंगे, क्योंकि मै आपको दोष नही दे रहा हूं। जो लोग पारस्परिक सम्पर्क स्थापित किये जाने के भविष्य में दिलचस्पी रखते थे, उन्होंने इस सबका पूरा उपयोग किया। स्वयं मेरा पत्र 'हिन्दुस्तान टाइम्स' अपने बंबई-स्थित संवाददाता द्वारा भेजी गई यह मूर्खतापूर्ण ख़बर छापने की गलती कर बैठा कि लार्ड हैलीफैक्स गांधीजी के साथ पत्र-व्यवहार कर रहे हैं।

मुझे हमेशा से आशंका रही है कि सरकारी अमला शासन के प्रधान और विरोधी दल के पारस्परिक सम्पर्क के बिलकुल खिलाफ है। अमले ने इस त्रास और उसकी भोंडी उपलक्षणा (implications) को प्रश्रय दिया ही, और जब लार्ड लिनलिथगो आये तो उन्होंने वातावरण को त्रास और भय से लदा हुआ पाया। मुझे यह तो पता नहीं कि उन्होंने क्या किया और क्या सोचा, पर वस्तुस्थिति यह है कि उन्होंने फिलहाल पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने का विचार त्याग दिया है। मेरी अपनी धारणा है कि उन्हे यह सब विवश हो कर करना पड़ रहा है।

शायद उन्हे सलाह दी जा रही है कि यदि उन्होंने निर्वाचन के पहले कुछ किया तो वैसा करने से कांग्रेस को बल मिलेगा। मुझे आशंका है कि उन्ह बिल्कुल गलत सलाह दी गई है। पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने का विचार एक साधन-मात्र है। सारा प्रश्न इस बात का है कि क्या हमे भारत की सारी सामर्थ्य को हमेशा के लिए रचनात्मक कार्य करने की दिशा में लगाना चाहि । यह केवल आपके शब्दों में 'पुलिस राज्य' का अन्त करके पारस्परिक अव-बोध का वातावरण उत्पन्न करने से ही सम्भव हो सकता है जिससे प्रत्यक्ष कार्रवाई का विचार तक बहुत काफी दिनों तक के लिए खत्म हो जाय।

पारस्परिक वार्तालाप के दौरान में नेताओं के लिए यह जानना जरूरी है कि ब्रिटेन भारत की प्रगति में कहांतक सहायता करने को तैयार है और सुधारों को अत्यन्त उदारता-पूर्वक किस प्रकार अमल में लाया जायगा और जरूरत पड़ने पर जोखिम भी उठाई जायगी या नही। इस सारी बातों पर निर्वाचन के बाद नहीं,'बल्कि अभी बातचीत होनी आवश्यक है। इसके लिए सबसे अच्छा समय एक वर्ष पहले था। बिहार के भूकंप ने मिलजुल कर काम करने और पारस्परिक सम्पर्क करने का अच्छा अवसर दिया था। अब मौका उतना अच्छा नहीं है, पर निर्वाचन के बाद, जब कि कांग्रेस अनेक

प्रान्तों में बहुमत के साथ जीतेगी, मेरी समझ में मौका और भी बुरा हो जायगा। यदि कांग्रेस की विजय होने के बाद सरकार मैत्री का भाव दिखावेगी तो उसका अधिक प्रभाव नही पड़ेगा। मुझे तो आशंका है कि कही निर्वाचन के दौरान में ही भिड़न्त न हो जाय। यदि ऐसा हुआ तो सारा वातावरण ही बिगड़ जायगा। निर्वाचन के प्रति सभी प्रान्तीय सरकारों ने निष्पक्षता का रवैया नही अपनाया है।

एक बात और है। लार्ड लिनलिथगो ने अपने लिए बड़ा अच्छा वातावरण तैयार कर लिया है। उनके गांधीजी से मिलने के हौए ने उन्हे कुछ लोकप्रिय बना दिया है और देहाती मामलों मे दिलचस्पी लेने के कारण उस लोकप्रियता में वृद्धि हो गई है। निर्वाचन के बाद सम्भव है. इस मोहिनी का अन्त हो जाय।

कुछ ऐसी बाते हो रही है जिनके लिए उन्हे दोषी ठहराना ही पड़ेगा। अब्दुल गफ्फार खाँ के सीमाप्रान्त और पंजाब मे प्रवेश करने का निषेध है, जब कि नये सुधारों के अन्तर्गत यदि कोई व्यक्ति नई सरकार पर काबू पा सकता है तो अकेले वही, क्योंकि जनता उनके वश मे है। एक प्रकार से उन्हें निर्वाचन-सम्बन्धी प्रचार-कार्य करने से वंचित कर दिया गया है। हमे यह फर्ज क्यों नही करना चाहिए कि नये सुधारों के अन्तर्गत वह सीमा-प्रान्त के प्रधान मन्त्री बन जायंगे? इधर वर्तमान सरकार उनके प्रवेश पर प्रतिबंध लगाकर उन वर्तमान मंत्रियों के पक्ष मे लड़ रही है जो उनके विरुद्ध मोर्चा ले रहे है। अभी तक वायसराय के खिलाफ एक शब्द तक नही कहा गया है। कांग्रेसी समाचार-पत्र या तो खामोश है, या उनके सम्बन्ध मे कुछ-न-कुछ अच्छा ही कह रहे हैं। पर मुझे आशंका है कि यह स्थिति जारी नही रहेगी। हा, ईश्वर से मेरी यह प्रार्थना अवश्य है कि ऐसा हो। पर जहां एक बार वातावरण विषाक्त हुआ कि दोनों पक्षों के लिए मित्रता का आचरण करना कठिन हो जायगा। अतएव मेरी सम्मति मे अवस्था ऐसी है कि देर करना ठीक नही होगा।

यह मेरे लिए बड़ी ही निराशा की बात हुई कि मै इंगलैण्ड गया, वहां से ऐसी अच्छी धारणा और गांधीजी के लिए आपके और अन्य मित्रों के व्यक्तिगत संदेश लाया और गांधीजी ने उनका समुचित उत्तर दिया, तब भी अन्त में मुझे इस प्रकार असफल होना पड़ा। पर ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान की ऐसी इच्छा नही थी। मै लार्ड हेलीफैक्स को अलग से नही लिख रहा हूं, क्योंकि आप उन्हें यह पत्र दिखाना चाहेंगे। मेरी अब भी यही प्रार्थना है कि वायसराय अविलम्ब अच्छा वातावरण उत्पन्न करने की आवश्यकता को समझेंगे। वह किसी हद तक असहाय भी है, पर वह

जब कभी साहसपूर्ण कदम उठाने का निश्चय करेंगे, उन्हे अपने आदमियों के विरोध का सामना करना पड़ेगा। मै तो समझता हूं कि जब लार्ड हेलीफैक्स ने गांधीजी को बातचीत के लिए बुलाया था तो उन्हे भी इसी प्रकार का अनुभव हुआ होगा। यही दुःख कहानी है।

किन्तु अगले मार्च के चुनाव समाप्त हो जाने के बाद वायसराय के साथ मेरी जो बातचीत हुई वह कुछ अधिक आशाप्रद थी। उन्होंने कहा :

"मुझे खुशी है कि कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। मै पहले से ही जानता था, पर मेरे आदमी यह नहीं जानते थे। मुझे अंग्रेज़ी अनुभव था। मै जानता था कि मैदान मे और कोई पार्टी मौजूद नही है, कांग्रेस सुगठित संस्था है और जनता को प्रिय लगेगी, इसलिए उसकी विजय होनी चाहिए। मुझे तो आश्चर्य है कि उसे बबई मे बहुमत प्राप्त नही हुआ। उसे वहां १० सीटें और मिल सकती थीं।" मैंने उन्हे बताया कि इसका कारण महाराष्ट्र है, जहा कांग्रेस का देहाती जनता के साथ पूरा सम्पर्क नही है। वह सहमत हुए।

इसके बाद मैंने कहा, अब क्या होगा? आपने सुना ही होगा कि कांग्रेस का दिमाग किस ओर काम कर रहा है। मैं वर्धा से आ रहा हूं, इसलिए गाधीजी की विचारधारा से परिचित हू। उनकी स्थिति कुछ-कुछ इस प्रकार है। आप लोग अपनी स्पीचों मे हमसे बराबर कहते आ रहे है कि हमे सचमुच के अधिकार दिये जा रहे है। आपने अभिरक्षण अवश्य रखे है, पर आपने बराबर यही बताया है कि वे जोखिम का बीमा मात्र है। अब गांधीजी आप की ही बात स्वीकार करके कहते है कि जबतक हम विधान को तोड़ने या आपके अस्तित्व के विरुद्ध कुछ करने को न आवें, तबतक आप अभिरक्षणों से काम मत लीजिये। हमे काम करने दीजिये।" उन्होंने कहा, मै इस स्थिति को अच्छी तरह समझता हू। वस्तुस्थिति को देखा जाय तो मूल बातों में गाधी की स्थिति में और मेरी स्थिति मे कोई भेद नहीं है। अग्रेज लोग विवेकशील होते है और यदि यह विधान प्रदान करने के बाद वे कांग्रेस को उसे अमल मे लाने की स्वतन्त्रता नही देगे तो वह हमें कहां ले जाकर पटकेगा? यदि हम दखल देगे और गतिरोध उत्पन्न करेंगे तो आप लोग मतदाताओं के पास दुबारा जायंगे और फिर बहुमत प्राप्त करके वापस आ जायंगे। इसलिए हम लोग अभिरक्षणों का उपयोग केवल कौतुक के लिए नही करना

चाहते है। पर यदि आप आकर कहेंगे, 'हम विधान को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहते हैं' तब तो हमे अभिरक्षण काम मे लाने ही पड़ेगे। इसलिए आप मुझसे जैसी सार्वजनिक घोषणा कराना चाहे, मै करने को तैयार हू और सहानुभूति और सद्भावना सम्बन्धी जैसा आश्वासन दिलाना चाहे, देने को तैयार हू। मैने इस सम्बन्ध मे अपने गवर्नरों से जो कुछ कहा है आपको वह सब मालूम हो जाय तो आपको आश्चर्य होगा। पर यदि कोई अभिरक्षणों का खातमा चाहे तो यह असम्भव है। मेरे लिए ऐसा करना सम्भव नही है, क्योंकि मुझे विधान को बदलने का अधिकार नही है, और मुझे आशंका है कि हमे गलत समझा जायगा, क्योंकि यदि कोई आकर कहे, 'अभिरक्षणों का खात्मा करिये" और मैं उत्तर दू, 'हम ऐसा नही कर सकते' तो सारे समाचार-पत्र कहने लगेगे कि अभिरक्षणो द्वारा ही शासन-कार्य चलाया जायगा, यद्यपि वास्तव मे ऐसी बात नही हैं। अतएव मुझे इस स्थिति से कुछ चिन्ता-सी हो गई है।' मैने बताया कि जहा तक मे समझ सका हू, गाधीजी यह नही चाहते कि विधान बदला जाय, पर वह भद्रपुरुषो का समझौता अवश्य चाहते है। मै बोला, 'मै समझता हू, गवर्नर लोग अपने-अपने प्रान्तों के कांग्रेसी नेताओं को बुला भेजेगे, पर वे लोग गवर्नरों के सामने केवल कांग्रेस द्वारा निश्चित सिद्धान्त ही पेश कर सकेंगे, जिनके उत्तर मे वे कहेगे 'न'। ओर प्रान्तीय नेता द्वितीय श्रेणी के है—हां, मदरास की बात दूसरी है जहा हमारे राजगोपालाचार्य मौजूद है। वह बीच ही मे बोल उठे, "मै जानता था कि आप उन्हे बाद देगे।' मैने कहना जारी रखा, 'इसलिए क्या यह सभव नही है कि बातचीत का क्षेत्र प्रान्तों से हटाकर दिल्ली मे रखा जाय, क्योकि वैसी अवस्था मे बात अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण ढग से हो सकेगी। तब फिर समस्या का हल ढूढ निकालना कठिन न होगा।' मैने उन्हें यह भी बताया कि यदि वह गाधीजी से मिलेगे तो वह अपनी बात अधिक जोरदार भाषा में तो अवश्य कहेगे, पर साथ ही कोई हल भी ढूढ निकालेगे। पर सवाल यह है कि वैसी स्थिति कैसे उत्पन्न की जाय?' उन्होने कहा, 'कार्य कठिन अवश्य है। यदि आज मुझसे गांधीजी मिलने के लिए आवे (उन्हे यह खबर लगी थी कि उनसे गाधीजी मिलने के लिए आ रहे है) तो केवल इसी विषय पर बात कर सकते है। अब से छः महीने पहले वह एक दूसरे ही मिशन को लेकर आ सकते थे, पर उस समय मेरे आदमियों ने मुझे पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने की सलाह नही दी। यदि वह एक सप्ताह बाद आवे तब भी सम्भव है, अवस्था भिन्न हो। पर इस समय मैने आपसे जो कुछ कहा है उनसे इससे अधिक और क्या कह सकता हूं?' मैने उन्हे बताया कि उन्हे बिल्कुल

गलत खबर मिली है। वह उनसे भेंट करने बिल्कुल नहीं आ रहे हैं, और दिल्ली भी वह जवाहरलालजी के अनुरोध पर आ रहे हैं। पर साथ ही मैंने उन्हें यह भी बताया कि क्या कुछ होना सम्भव है। उन्हें स्वयं अपने दिमाग से काम लेकर समस्या का हल तलाश करना होगा। उन्होंने कहा, 'मैं समझ गया, गान्धीजी का मुझसे मिलने के लिए आज आना सम्भव नही है, न मेरी समझ में यही आ रहा है कि उन्हें कैसे बुलाऊं। उस पर भी मेरी धारणा है कि हम दोनों मे किसी प्रकार का मतभेद नही हैं। मुझे आशा है कि उन्हें भी मालूम होगा कि हम दोनों के बीच किसी तरह की गलतफहमी नहीं है।' मैंने उन्हे इसका आश्वासन दिया।

बातचीत का नतीजा कुछ नही निकला, क्योंकि यद्यपि उन्होने बड़ी सहृदयता दिखाई और एक प्रकार से उन्मूलनवादी विचार बड़े अच्छे ढग से प्रकट किये, तथापि वह यह स्थिर नही कर सके कि अब उन्हे क्या करना चाहिए। जब मैंने नौकरशाही पर आक्रमण किया और बताया कि किस प्रकार अधिकारियों ने युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त में कांग्रेस के विपक्षियो का खुल्लमखुला साथ दिया, तो उन्होंने उन के पक्ष में कुछ नही कहा। उन्होंने कांग्रेस की विजय पर बारबार संतोष प्रकट किया। उन्होंने आश्वासन दिया कि वे किसी भी गवर्नर को अपने अधिकारों से काम नही लेने देंगे, पर सहानुभूति और सद्भावना के आश्वासन से अधिक वह और कुछ नहीं दे सके, न यही बता सके कि अभिरक्षणों का खात्मा किस प्रकार सम्भव है। हां, वह अपने सहानुभूति और सद्भावना के आश्वासन को प्रकाशन तक देने को प्रस्तुत थे। साथ ही उन्होंने यह भी देख लिया कि गांधीजी विधान का खात्मा नही चाहते हैं।

उन्होंने जवाहरलालजी के सम्बन्ध मे बातकी और कहा, "क्या मेरा यह कहना ठीक होगा कि गांधी और जवाहरलाल में बड़ा गहरा स्नेह है?' मैंने उत्तर दिया, "हां।" उन्होंने कहा, "मै समझा हू देश मे जवाहरलाल की स्थिति भी बनी-बनायी है। यदि किसी समझौते की बात पर जवाहरलाल सहमत न हों तो क्या गांधीजी उनके खिलाफ उठ खड़े होंगे?" मैंने उत्तर दिया, "जवाहरलालजी चुपचाप अनुकरण करेंगे।" उनकी भी यही राय हुई।

इसके बाद हम दोनों ने बिड़ला कालेज के सम्बन्ध मे बातचीत की।

तीन दिन बाद वायसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री लथवेट ने इच्छा प्रकट की कि वह चाय पीने और बात करने के लिए

आना चाहेंगे । १७ मार्च को मैंने वायसराय के लिए अपना अगला पत्र उनके पास भेजा :

प्रिय श्री लैथवेट

आपने देखा ही होगा कि गांधीजी के फार्मूला को कार्यकारिणी ने मंजूर कर लिया है और मुझे इसमें संदेह नही है कि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति भी उसे मंजूर कर लेगी। अब यह घोषणा करने का भार कि गवर्नर अपने हस्तक्षेप-सम्बन्धी विशेषाधिकारों से काम नहीं लेंगे अथवा मंत्रियों की सलाह को रद्द नहीं करेंगे, मुख्य मंत्री पर ही रहेगा। मुख्य मंत्री को इस सम्वन्ध में अपना संतोष करना होगा और इस प्रकार गवर्नर का काम बहुत सरल हो जायगा। यदि मुख्य मंत्री के साथ कोई और कांग्रेसी नेता भी हो और उसे साथ लेकर गवर्नर के साथ विचार-विमर्श बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से हो सकता हो तो यह भी सम्भव होगा ।

मेरी राय में "विधान के भीतर" एक बड़ा महत्वपूर्ण वाक्यांश है, जिसके द्वारा कांग्रेस की ओर से गारंटी दी जा रही है कि केवल गतिरोध के खातिर गतिरोध करने की कोई इच्छा नही है। यदि गवर्नर लोग सहानुभूति के साथ पेश आयंगे तो मुझे आशा है कि उचित अवबोध के मार्ग में कोई कठिनाई उपस्थित नही होगी। मैं समझता हूं कि यह कांग्रेस के दक्षिणपक्ष की बहुत बड़ी विजय है, और यदि इसका उचित उत्तर मिला तो इससे कांग्रेस के हाथ बहुत मजबूत हो जायंगे। आशा है, हिज ऐक्सीलेन्सी इस स्थिति को समझते हैं।

सदाकांक्षाओं के साथ,

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

बापू का दिमाग इस समय बहुत ही महत्व की समस्या में लगा था, तब भी वह अपने 'गोरे सामाजिक कार्यकर्ताओं' की कितनी हितचिन्ता रखते थे, इसका पता रामेश्वरदास के नाम उनके इस पत्र से चलता है :

सेगांव, वर्धा
२५-६-३७

प्रिय रामेश्वरदास

आपका पत्र मिला। बच्छराज एंड कंपनी से रकम के बारे में मुझे सूचना मिली है। लगभग एक लाख रुपया ग्रामोद्योग संघ को देना है। आप व्यक्तिगत खर्च के लिए जो दे रहे है वह निश्चय ही अलग हैं।

ब्रजमोहन द्वारा मुझे कई 'गोरे सामाजिक कार्यकर्ताओं' के लिए इंगलैंड जाने को जहाज की सीटें मिली थी। अब वह यहां नहीं है। कलकत्ते में मुझे किसको लिखना चाहिए या आप ही लिखकर यह पूछें कि क्या एक अंग्रेज बहन को जहाज द्वारा भेजना संभव होगा?

बापू के आशीर्वाद

: १६ :

कांग्रेस द्वारा पद-ग्रहण

अगली गर्मियों में मैं फिर भारत और ब्रिटेन के बीच व्यापारिक समझौते की बातचीत करने के लिए लंदन गया। मैंने इस अवसर से लाभ उठाया और पारस्परिक संदेहों को दूर करने और ऐसे समझौते पर पहुँचने की कोशिश की जिसके द्वारा कांग्रेस के लिए प्रान्तों में पद-ग्रहण करना सम्भव हो सके और उस स्वशासन का प्रयोग आरम्भ हो जाय जिसे उस समय प्रान्तीय स्वायत्त शासन का प्रेरणाहीन नाम दिया गया था। पारस्परिक संदेह के कारण दोनों ओर काफी बिगाड़ हो रहा था। वायसराय गांधीजी से मिलने का विचार लेकर भारत आये थे, पर अभीतक गांधीजी से उनकी मुलाकात नहीं हुई थी। हमारे अपने पक्ष के सम्बन्ध में मुझे यह खेद के साथ कहना पड़ता है कि मेरे लन्दन पहुंचने के कुछ ही समय बाद मुझे बापू के विश्वस्त प्राइवेट सेक्रेटरी महादेव देसाई का पत्र मिला, जिसमें उन्होंने यहतक लिख डाला कि लार्ड हेलीफैक्स हमारे साथ दुरंगी चाल चल रहे है और भारत के मित्र नहीं है। उन्होंने लिखा, "क्या आपका यह पूरा विश्वास है कि ये लोग हमारी सहायता करने को उतने ही उत्सुक हैं, जितना वे आपको लिखे गए पत्रों में प्रकट करते है? मेरी सूचना तो यह है कि यह हेलीफैक्स ही हैं जो किसी प्रकार का समझौता नहीं चाहते। दूध का जला छाछ को भी फूक-फूंक कर पीता है और यह हेलीफैक्स भारत सचिव और दूसरों को यह सलाह देते प्रतीत होते है कि गाँधीजी के साथ किसी भी हालत में फिर समझौता न किया जाय।" मैंने उन्हें यह उत्तर दिया :

१६, जून १९३७

प्रिय महादेवभाई

मैं यहां मित्रों से बातचीत कर रहा था और वार्तालाप के दौरान में मैंने यही पाया कि केवल अविश्वास काम कर रहा है, वस्तुस्थिति के सम्बन्ध में कोई मौलिक मतभेद नहीं है। बातचीत के दौरान में मुझे ऐसा लगा कि यदि दोनों पक्षों के विचारों को इस प्रकार से सजाया जा सके कि वह दोनों के लिए ग्राह्य हो तो बड़ी बात हो। कुछ-कुछ इस प्रकार :

"यदि गवर्नर और उसके मंत्री में गहरा मतभेद हो तो चाहे उस मतभेद का विषय उत्तरदायित्वों में से ही एक क्यों न हो, मंत्रिगण और गवर्नर पहले समझौता करने की भरसक चेष्टा करेंगे, पर यदि वे अपनी चेष्टा मे असफल रहें और गवर्नर के लिए अपने मंत्रियों की सलाह का त्याग करना आवश्यक हो जाय तो वह उन्हे लिख कर देगा कि इस मामले में वह उनकी सलाह मानने मे असमर्थ है, चाहे इसके कारण मंत्री को त्यागपत्र ही क्यों न देना पड़े। वैसी अवस्था में उक्त मंत्री गवर्नर की उस सूचना का अर्थ यह लगायगा कि उससे त्यागपत्र मांगा जा रहा है।"

विचार कर रहा हूं कि यह सुझाव भारत सचिव के सम्मुख अपना बता कर रखूं। हां, मैं यह साफ-साफ कह दूंगा कि मुझे यह सुझाव बापू अथवा और किसी की ओर से रखने का अधिकार नहीं है। फिर भी मै यह जानना चाहूंगा कि इससे बापू की मांग की पूर्ति होती है या नही। मेरी तो धारणा है कि होती है, इसलिए मैंने सोचा था कि इसे लेकर भारत सचिव पर दबाव डालूं। परन्तु यदि बापू इसे सन्तोषजनक न समझें तो इस पत्र के मिलते ही तार भेजना अच्छा होगा। जहाँ तक मै समझता हूं, तथ्य की बात यही है कि मंत्रिमण्डल को भंग करने का उत्तरदायित्व गवर्नर के कंधों पर रहे। इस मसविदे में मैंने इस विचार की रक्षा की है।

इस वक्तव्य में लेशमात्र सत्य नहीं है कि लार्ड हेलीफैक्स व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किये जाने के विरुद्ध है। मै यह इसलिए कह रहा हूं कि मुझे इस बात की पूरी जानकारी है।

सम्भवत: कार्यकारिणी की बैठक शीघ्र ही होने वाली है। यहां स्थिति निराशाजनक हो, ऐसी कोई बात नहीं है। अतएव जबतक मै यह न देखूं कि यहां कुछ होने वाला नहीं है तबतक, मुझे आशा है, कार्यकारिणी ऐसा कोई काम नहीं करेगी जिससे दरवाजा बन्द हो जाय। यहां तो लोग हृदय से चाहते हैं कि कांग्रेस पद ग्रहण करे। यदि उन्हें बर्खास्तगी के सम्बन्ध मे बापू की बात से सहमत होने में थोड़ा-बहुत संकोच है तो केवल इसी कारण कि समझौते से पैदा होने वाली परिस्थितियों के सम्बन्ध में उन्हें भरोसा

नहीं है। जहां तक बापू का सम्बन्ध है, मुझे तो अभी तक एक भी ऐसा आदमी नहीं मिला है जिसे उनके सम्बन्ध में गलतफ़हमी हो। इस समय का वातावरण १९३५ के वातावरण से बिल्कुल भिन्न है। ये लोग बापू के अविश्वास को समझते हैं, परन्तु साथ ही उनका कहना है 'कि वह पद ग्रहण करके स्वयं पता क्यों नहीं लगाते कि हम उनकी किस हद तक सहायता कर सकते हैं ?' मैं तो उनके सामने बापू के विचारों को ठीक ढग से पेश कर ही रहा हूं, और मैं यह देख रहा हूं कि उनकी दलीलों का उत्तर देना इन लोगों के लिए कठिन हो रहा है। इसलिए अच्छा यही है कि अपनी ओर से दरवाजा उस समय तक खुला रखा जाये जबतक कि ये लोग स्वयं उसे बन्द न कर दें, और मेरा विश्वास है कि ये लोग ऐसा नहीं करेंगे।

तुम्हारा
घनश्यामदास

कुछ सप्ताह बाद मुझे यह खुशखबरी मिली कि काँग्रेस ने पद-ग्रहण कर लिया है। मैंने महादेवभाई को लिखा :

प्रिय महादेवभाई

अभी-अभी रायटर ने टेलीफोन पर सूचना भेजी है कि बापू के कहने से कार्यकारिणी ने छह प्रान्तों में पद-ग्रहण करना स्वीकार कर लिया है। इस समाचार से मुझे बेहद खुशी हुई। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि बापू ने ठीक ही निश्चय किया है और केवल बापू ही ऐसा निश्चय कर सकते थे। मेरी यह धारणा तो अवश्य है कि हमारी मांगें आंशिक रूप से पूरी हो गई हैं, परन्तु किसी साधारण कोटि के राजनेता को ऐसी परिस्थितियों में आगे कदम बढ़ाने का साहस न होता। अस्तु, हमारी परीक्षा का समय आरम्भ होता है और मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि बापू की देखरेख में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल सबसे सफल मंत्रिमण्डल सिद्ध होंगे और हम अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होंगे।

अब मैं कल लार्ड हेलीफैक्स और सर फिन्डलेटर स्टीवार्ट से और दो-एक दिन में फिर लार्ड जेटलेंड और लार्ड लोदियन से मिलूंगा। इस देश से विदा होने के पहले मैं दो-चार अन्य राजनेताओं से भी मिल लूं, ऐसा विचार है। मैं उनके दिमाग़ में यह बात बिठा देना चाहता हूं कि यदि कांग्रेस द्वारा पद-ग्रहण कराने में इतनी कठिनाई हुई तो उसे पद-ग्रहण किये रहने को राजी करने में और भी अधिक कठिनाई होगी और यदि उसके साथ विवेक से काम

नही लिया गया तो वह पदत्याग देगी। मैं उन्हें यह भी बताऊंगा कि नौकरशाही को सीमा के भीतर रखना कितना आवश्यक है।

वैसे राजाजी के पत्र से मेरी आशाओं पर तुषारपात हो गया था, तो भी मैं कांग्रेस द्वारा पद ग्रहण किये जाने की सम्भावना की ओर से बिल्कुल ही निराश नही हुआ था। पहली बात तो यह हुई कि तुमने जो एकदम खामोशी साध रखी थी उससे भी मुझे आशा बँधी हुई थी। तुम जानते ही हो कि मैं जबसे यहाँ आया हूं तुमने मुझे एक भी चिट्ठी नही लिखी है। मैंने अपने मन में सोचा कि यह संयोग मात्र नहीं हो सकता है, ऐसा जानबूझ कर और बापू की ताकीद से किया जा रहा है। इसका एकमात्र अर्थ यही हो सकता था कि तुम इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहते थे कि बापू क्या सोच रहे हैं। शायद बापू कार्यकारिणी की वर्धावाली बैठक की समाप्ति तक रुकना चाहते थे।

बापू को यह भी बता देना कि मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक है। आरम्भ में काम उतना नही था, इसलिए मैंने पटेबाजी का कुछ अभ्यास किया था। काम बढ़ने पर वह छोड़ देना पड़ा। पर वैसे मैं काफी व्यायाम कर लेता हूं। मेरे लिए पटेबाजी नई चीज़ नही है, क्योंकि बचपन में मैं अच्छी खासी लाठी चला और कुश्ती लड़ लेता था। यहां यह सब मैं पुराने अभ्यास को ताजा करने के लिए कर रहा था। पर यह सबकुछ बेकार-सा है। यह सब मैं तुम्हें इसलिए लिख रहा हूं कि इससे तुम्हारा मनोरंजन होगा।

सस्नेह तुम्हारा ही
घनश्यामदास

ग्रासवेनर हाउस, पार्क लेन
८ जुलाई, १९३७

प्रिय महादेवभाई

आज मैंने लार्ड हेलीफैक्स से बात की और उन्हें बताया कि गवर्नरों और नौकरशाही के लिए निष्कपट भाव से आचरण करना कितना आवश्यक है। मैंने उनसे कहा कि कांग्रेस केवल विधान को चलाने के लिए पद ग्रहण नहीं कर रही है, बल्कि अपने लक्ष्यस्थल की ओर अग्रसर होने के लिए। मैंने बताया कि कांग्रेसवादी अपने लक्ष्य की ओर वैधानिक मार्ग से भी बढ़ सकते हैं और प्रत्यक्ष कार्रवाई के द्वारा भी। फिलहाल उन्होंने प्रत्यक्ष कार्रवाई का मार्ग छोड़कर वैधानिक मार्ग अपनाया है। यदि गवर्नरों और नौकरशाही ने घपलेबाजी से काम नहीं लिया तो वैधानिकता का बोल-

वाला होगा, अन्यथा कांग्रेस पुनः प्रत्यक्ष कार्रवाई करने को बाध्य होगी। राजनीतिमत्ता का तकाज़ा यही है कि गवर्नरों और नौकरशाही को पार्लमेंट के इस इरादे से अवगत कर दिया जाय कि घपलेबाजी से काम नही चलेगा।

उन्होंने मुझे आश्वासन दिया और कहा, "मैं आपसे पहले भी कह चुका हूँ और अब फिर कहता हूँ कि आपको इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की आशंका को जगह नही देनी चाहिए। अंग्रेजों का चरित्र ही कुछ इस प्रकार का है कि उन्हे अपने आपको नई परिस्थितियों के अनुरूप बनाने मे देर नही लगती है। शायद भारतीय अफसरों को इस मामले मे कुछ देर लगे, पर अंग्रेज़ों को देर नही लगेगी।"

तुम्हे शायद मालूम ही होगा कि मुझसे एक बार बापू ने तीथल मे कहा था कि पद-ग्रहण के बाद वह स्वयं लार्ड लिनलिथगो से सीमाप्रान्त के आयोजित दौरे के सम्बन्ध में मुलाकात की दरख्वास्त करेगे। जब मैंने हेलीफैक्स को यह बात बताई तो वह बड़े खुश हुए और बोले कि लार्ड लिनलिथगो भी बापू से मिलकर निस्संदेह प्रसन्न होंगे, और आशा है कि उनके प्रस्तावित दौरे के सम्बन्ध में कोई अड़चन पैदा नही होगी।

मैंनें उन्हे चेतावनी दी कि कांग्रेस-राज निर्विघ्न रूप से चलता रहेगा, ऐसी बात नहीं है। यदा-कदा कठिनाइयाँ उत्पन्न होती रहेंगी और यदि लार्ड लिनलिथगो बापू को समझ लेगे तो उनके परामर्श से सदा लाभान्वित होते रहेंगे। उन्हें स्वयं यह बात मालूम थी और उन्होंने कहा, "मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नही है कि लिनलिथगो बापू के साथ पारस्परिक मैत्री का सम्पर्क स्थापित करने का अवसर नही गंवायंगे।" मै समझता हूं कि बापू को अपनी योजनाएं अभी से स्थिर कर लेनी चाहिए।

मुझे लोदियन के नाम बापू का पत्र, जिसमें उन्होंने उन्हें भारत आने का निमन्त्रण दिया है, बड़ा रोचक लगा। मैंने स्वयं उनसे इस विषय पर कुछ दिन पहले बात की थी और वह इस बारे में विचार कर रहे हैं। मैंने इसकी चर्चा हेलीफैक्स से की। कहा कि लोदियन के अतिरिक्त और लोगों को भी भारत जाना चाहिए जिससे अधिक सम्पर्क स्थापित किया जा सके। इस सिलसिले में मैंने लेन्सबरी और चर्चिल का नाम लिया। उन्हें सुझाव रुचा और वह बोले कि इससे वैयक्तिक मैत्री की भावना तो बढ़ेगी ही, वे ब्रिटिश हितों को भारत को, और भारतीय हितों को ब्रिटेन को समझाने में भी समर्थ होंगे।

आज तीसरे पहर में सर फिन्डलेटर स्टीवार्ट से फिर मिला। उनसे भी मैंने उन्हीं बातों की चर्चा की, जिनकी चर्चा लार्ड हेलीफैक्स से की थी और उनके उत्तर भी प्रायः हेलीफैक्स के उत्तरों जैसे ही थे। मैं जेटलैन्ड

से भी मिलूंगा और जो बातें औरों से कहता आ रहा हूँ उन्हींको लेकर उनपर भी जोर डालूंगा। इधर तुम्हारे पास से कोई नया मसाला मिल गया तो मित्रों के सामने वह भी रख दूंगा।

कल रात मैं सर जार्ज और लेडी शुस्टर के साथ भोजन कर रहा था तो सर जार्ज के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में बड़ी मनोरंजक बातचीत हुई। मैंने उन्हें बताया कि हमें सामाजिक कार्य को आगे बढ़ाने में रुपये-पैसे की दिक्कत होगी और उनसे पूछा कि कोई सुझाव हो तो बताइये।

उन्होंने मुझे स्केन्डिनेवियन देशों की यात्रा करके वहां की अवस्था का अध्ययन करने की सलाह दी। उन्होंने मुझे डेनियल हैमिल्टन का स्थान भी देखने की सलाह दी और कहा कि वह भारत में अधिक कुछ न कर सकेगा, क्योंकि भारत में हरेक काम रुपये को लक्ष्य मानकर किया जाता है। उन्होंने कहा कि बैंकिंग जांच कमीशन पर भारत सरकार के २९ लाख रुपये खर्च हुए। हमें इंग्लैण्ड में भी रुपये को लक्ष्य बनाकर काम करना पड़ता है; परन्तु भारत में, जहां रुपये को लक्ष्य बनाकर काम कराने का क्षेत्र, सम्भव है उतना विस्तीर्ण न हो, सेवा-भाव के क्षेत्र में विस्तार की गुंजायश है। जब उसका पूर्ण विकास हो जायगा तो रुपये का खेल खुद ही पिछड़ जायगा।

उन्होंने मुझे चेतावनी भी दी कि यदि मैं सैद्धान्तिक रूप से बात करना आरम्भ करूंगा तो उससे भारत का अनुदार वर्ग सशंकित हो जायगा। पर उन्हें इस बात का पूरा विश्वास था कि बापू की प्रेरणा से सेवा-भाव के क्षेत्र को विस्तीर्ण करना सम्भव है और बजट में वृद्धि किये बिना ही हमारे लक्ष्य की सिद्धि हो सकती है। दूसरे शब्दों में वह धन के मापदण्ड को पद-च्युत करके उसके रिक्त स्थान पर परिश्रम के मापदण्ड को आसीन देखना चाहते हैं।

इस पत्र के साथ 'टाइम्स' का जो लेख भेजा जा रहा है उसमें तुम देखोगे कि सम्पादक ने किस प्रकार मुक़ाबला करने में और विध्वंस करने में भेद किया है। आखिर अब इन लोगों की समझ में भेद आ गया।

उस दिन मैं श्री बटलर के साथ दोपहर का भोजन कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें गवर्नर बनाकर भारत भेजा जायगा। यहां सब लोग पूर्ण रूप से सन्तुष्ट दिखाई पड़ते हैं और मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि कांग्रेस के प्रति सभीको सहानुभूति रहेगी और सभी सहायता करना चाहेंगे। कुछ दिनों बाद मैं चर्चिल से मिल रहा हूं। लार्ड डर्बी ने मुझे दोपहर के भोजन के लिए दावत दी है और ओलीवर स्टेनले, जो एक मंत्री हैं और व्यापार-मंडल में भी हैं, मेरे साथ दोपहर का भोजन करने आ रहे

हैं। बम्बई के गवर्नर सर रोजर लमले भी मेरे यहां भोजन करने आ रहे हैं।

इन पारस्परिक सम्पर्कों के दौरान में इन लोगों के दिमाग़ में यही बात बैठाने की चेष्टा कर रहा हूँ कि कांग्रेस केवल शासन-विधान को सफल बनाने के लिए नहीं आई है, बल्कि आगे बढ़ना चाहती है। उसके मार्ग में रोड़े न अटकाकर उसकी सहायता करनी चाहिए। यदि रोड़े अटकाये गये तो कांग्रेस को बाध्य होकर पुनः प्रत्यक्ष कार्रवाई करनी पड़ेगी। परन्तु यहां मैंने यही पाया है कि सभी की सहानुभूति कांग्रेस के साथ है और सभी यह आश्वासन देते है कि ब्रिटिश जनता यही चाहेगी कि कांग्रेस अपने लक्ष्य की ओर बढ़े। लोग कांग्रेस का लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य ही मानते हैं। यदि स्वतंन्त्रता का अभिप्राय साम्राज्य से नाता तोड़ना हो तो ये लोग इसके सर्वथा विरुद्ध है। औपनिवेशिक स्वराज्य में भी सम्बन्ध-विच्छेद करने का अधिकार मौजूद है, और यही काफी है।

सस्नेह तुम्हारा ही
घनश्यामदास

ग्रासवेनर हाउस, पार्क लेन
लन्दन, १२ जुलाई १९३७

प्रिय महादेवभाई

ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ माडरेट कहाने वाले लोगों ने यहां अभी से इस ढंग की बातचीत शुरु करदी है जिससे यहां संकेत मिलता है कि कांग्रेस अधिक दिनों तक पदारूढ़ नही रहेगी। बहुत सम्भव है कि यह सब कुछ 'इच्छा विचार की जननी' वाली बात हो। ये लोग कुछ-कुछ इस ढंग से बात करते है कि यदि जवाहरलाल ने राजद्रोह करने की सलाह देना आरम्भ किया तो क्या होगा? क्या उन्हें गिरफ्तार कर लिया जायगा? यदि नहीं तो गवर्नर दखल देने को बाध्य होगा? इस तरह की दुनियाभर की फजूल बातें यहा के राजनेताओं और राजनीति-विशारदों के पास पहुँचाई जा रही है, परन्तु इनका अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है।

मैंने एक माडरेट को यह बताने की चुनौती दी कि जवाहरलाल द्वारा राजद्रोह फैलाये जाने से उनका क्या अभिप्राय है। उन्होंने उत्तर दिया कि सम्भव है, वह स्वतन्त्रता की आवाज बुलन्द करें। मैंने करारा उत्तर दिया कि स्वतन्त्रता की आवाज बुलन्द करने में क्या बुराई है, क्या उपनिवेशों का सम्बंध तोड़ने का अधिकार प्राप्त नहीं है? दक्षिण अफ्रीका

की यूनियन सरकार के सदस्य तो साम्राज्य से संबंध-विच्छेद करने की आवाज बुलन्द कर ही रहे है।

मै यह सब सिर्फ यह बताने के लिए लिख रहा हूं कि माडरेटों को इस बात से हार्दिक प्रसन्नता नही हुई है कि कांग्रेस ने पद ग्रहण कर लिया है, क्योंकि यदि कांग्रेस ने शासन की बागडोर हाथ मे ले ली तो नरम दल वालों का इतिहास हमेशा के लिए खत्म हो जायगा। ये लोग अब भी शासन करने का स्वप्न देख रहे है।

सस्नेह तुम्हारा ही
घनश्यामदास

सर रोजर लमले (अब लार्ड स्कारबुरो) व्यक्तिगत सम्पर्क में विश्वास रखनेवाले प्रतीत होते थे। वह इस समय बम्बई के गवर्नर निर्दिष्ट हो गये थे। उनसे बातचीत करने के बाद मैंने महादेवभाई को लिखा:

हमने करीब दो घंटे बात की। उन्होंने मुझसे हमारे लोगों के बारे में अधिक जानकारी हासिल करने की कोशिश की। वह खासतौर पर बापू से मिलना चाहते है और बहुत उत्सुक है कि भारत पहुंचते ही उन्हे बापू से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिले। क्या बता सकते हो कि यह किस प्रकार संभव हो सकेगा? यह ठीक है कि बापू बंबई कभी-कभी ही जाते है, पर शायद गवर्नर से मिलने जा सके।

दूसरी महत्वपूर्ण बात वह यह जानना चाहते हैं कि मंत्री लोगों को जब कभी निमंत्रित किया जायगा तो वे उनके साथ भोजन करने आयंगे या नहीं। मैंने कहा कि इस संबध मे मै कुछ नहीं कह सकता। मैंने उनसे कहा कि बापू इस प्रकार के आतिथ्य-सत्कार के विरुद्ध हैं, पर निमन्त्रण मिलने पर मन्त्रियों को भोजन-समारोहों में जाने की छुट्टी रहेगी या नही, इस बारे में मै कुछ नहीं कह सकता। इस बात के लिए तो बापू ही सबसे अधिक उपयुक्त है।

तुमने जो यह सुझाव दिया है कि मै फ्रान्स में लौरडेस जाऊं, सो उसके बारे मे यह कहना चाहता हूं कि मुझे इस बात के सिवाय और किसी बात में दिलचस्पी नहीं है कि मैं जल्दी-से-जल्दी भारत पहुंच जाऊं। पर मुझे लगता है कि सितम्बर के मध्य तक हमको यहीं रुकना पड़ेगा।

हां, मै तुम्हारे लिए बढ़िया औजारों के बक्स और विज्ञान के बक्स लेता आऊंगा। और किसी चीज की जरूरत हो तो लिख देना।

मैंने श्री चर्चिल के साथ अपनी मुलाकात का यह विवरण वापू को भेजा :

२२ जुलाई १९३७

आज मै चर्चिल के साथ उनके घर दोपहर का भोजन कर रहा था। फिर दो घंटे तक उनका साथ रहा। वह यथापूर्व बड़ी सहृदयता से पेश आये। बड़े मिलनसार हैं, परन्तु भारत के विषय मे उनका अज्ञान वैसा ही बना हुआ है।

मुझे देखते ही उन्होंने कहा, "तो एक महान प्रयोग का आरम्भ हो ही गया।" और जब मैंने उत्तर मे कहा, "हां सो तो है, परन्तु इसे सफल बनाने मे आपकी सारी सहानुभूति सदाकांक्षा की दरकार होगी," तो उन्होंने मुझे इसका आश्वासन दिया। साथ ही उन्होंने कहा, "यह सबकुछ आप ही लोगों पर निर्भर है। आप जानते ही हैं कि जबसे सम्राट ने विधान पर हस्ताक्षर किये हैं, मैंने उसके विरुद्ध जबान तक नही खोली है। यदि आप इस प्रयोग को सफल बना सकें तो अपने लक्ष्य पर स्वतः ही पहुंच जायंगे। आप देख ही रहे है कि दुनिया भर में प्रजातन्त्र पर किस तरह हमला किया जा रहा है और यदि आप अपने कार्यों द्वारा यह दिखा सकें कि आप प्रजातन्त्र को सफल बना सकेंगे तो आपको आगे बढ़ने में कोई कठिनाई नही होगी। आप खेल के नियमों का पालन करिये, हम भी वैसा ही करेंगे।"

मैंने पूछा, खेल के नियमों का पालन करने से आपका क्या अभिप्राय है ?" उन्होंने उत्तर दिया, "प्रान्तों को सन्तुष्ट,शान्तिपूर्ण और समृद्ध बनाइये, हिंसा मत होने दीजिये और अंग्रेजों की हत्या मत करिये।" मैने कहा, "आपने जो कुछ कहा उससे तो मै हक्का-बक्का रह गया। क्या आप सचमुच यह विश्वास करते हैं कि हम अंग्रेजों की हत्या करेंगे ?" वह मेरी आत्मतुष्टि से चकित तो हुए,परन्तु उन्होंने मेरे इस आश्वासन को स्वीकार कर लिया कि भारत हिंसा मे विश्वास नही करता है। मैंने यह भी कहा कि "उग्र-से-उग्र कांग्रेसवादी भी अंग्रेज-विरोधी नहीं है। वह स्वतन्त्रता तो चाहता है, परन्तु इसके लिए अंग्रेज-विरोधी होना जरूरी नहीं है।" उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या यही बात जवाहरलाल के संबंध मे भी कही जा सकती है ? मैंने उत्तर दिया, "हां, यद्यपि मै पूंजीवादी हूं और वह समाजवादी हैं और सामाजिक

कल्याण के संबन्ध में हम दोनों के दृष्टिकोण भिन्न हैं, तथापि उनके साथ न्याय किया जाय तो यह कहना पड़ेगा कि वह एक महान् व्यक्ति हैं, बहुत साफ तबीयत के आदमी हैं और अंग्रेज-विरोधी तो जरा भी नहीं हैं। सारी बातों का पता लगाने के लिए आपको स्वयं भारत जाना चाहिए। इससे हमें भी बड़ी सहायता मिलेगी।" उन्होंने उत्तर दिया "मैं जाना तो चाहूंगा। लिनलिथगो ने तो मुझे दावत दे ही रखी है, और यदि गान्धीजी की भी यही इच्छा हुई तो मैं जाऊंगा। अपने नेता से मेरा अभिवादन कहिये और उनसे कहिये कि मैं उनकी सफलता की कामना करता हूं। समाजवाद से मोर्चा लेने में कोताही मत करिये। धन-संग्रह अच्छी चीज है, क्योंकि इससे सूझ पैदा होती है। हां, पूंजीवादियों को स्वामी नहीं, सेवक होना चाहिए।"

यूरोप की राजनैतिक स्थिति के सम्बन्ध मे उन्हें घोर संशय है। अगले साल भर तक तो उन्हे युद्ध की आशंका नहीं है, परन्तु वह सुदूर भविष्य के सम्बन्ध मे कुछ कहने मे असमर्थ हैं। उन्होंने कहा "तानाशाह लोग पागल होते जा रहे हैं और अपनी शक्ति को अक्षुण्ण बनाने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। रूस उत्तरोत्तर कम साम्यवादी और जर्मनी अधिक समाजवादी होता जा रहा है। इस प्रकार दोनों में एक प्रकार का सामंजस्य स्थापित हो गया है। इंग्लैण्ड ही एक ऐसा देश है जिसने प्रजातंत्र को बनाये रखा है। मैंने इंग्लैंड को पुनः सशस्त्र करने का आन्दोलन इसलिए आरम्भ किया कि मेरा विश्वास है कि राष्ट्रों का शासन या तो अधिकार के द्वारा होता है या बल के द्वारा। शासन करने का श्रेयस्कर मार्ग अधिकार है, परन्तु जबतक आपके पास बल न हो, आप अधिकार से वंचित रहेंगे। और अब हमारे पास बल हैं और उसकी सहायता से हम अपने अधिकार का प्रतिपादन कर सकते हैं। इटली तो एक साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रहा है!"

वह इसी लहजे में देर तक बातें करते रहे। इस बार उन्होंने स्वयं अनुरोध किया कि मैं उन्हे भारत की स्थिति के संबंध मे सूचित करता रहूं। मैंने वचन दे दिया है।

इसके साथ कुछ कतरनें भेजता हूं जिनमें तुम्हारी दिलचस्पी होगी। 'मार्निंग पोस्ट' तो यहां की जनता के कानों में विष उंडेलता ही रहता है। परन्तु इससे क्या हुआ। हम ठीक रास्ते पर चलते रहें।

युद्ध के बारे में श्री चर्चिल का अनुमान कितना ठीक निकला! एक साल तो और शान्ति रही, उसके बाद क्या होना था, यह कोई नहीं जानता था।

इस आड़े वक्त में लार्ड लोदियन भारत के अच्छे मित्र सिद्ध हुए। मैंने महादेवभाई को (बापू के लिए) लिखा:

कल शाम लार्ड लोदियन मिलने आये। उनके साथ भविष्य के सम्बन्ध में बहुत देर तक बातचीत होती रही। मैंने उन्हे बताया कि यद्यपि कांग्रेस ने पद ग्रहण कर लिया है, तथापि ऐसा उसने इसलिए नही किया है कि उसका विधान-मात्र से सन्तोष करने का विचार है बल्कि इसलिए कि उसका स्थान किसी तरह ऐसी वस्तु को दिया जाय जो उसे पसन्द हो, और अब जब कि उसने आपकी इच्छा के अनुरूप आचरण किया है, यह आप कहां तक संभव समझते है कि इस विधान को अमल मे ला कर वह उसके स्थान पर अपनी पसन्द की चीज़ स्थापित कर देगी, उन्होंने उत्तर दिया, "आप लोगों को फिलहाल नौकरियों के और साम्प्रदायिक प्रश्न को नही छेड़ना चाहिए, परन्तु समाज-सुधार के अन्य पहलुओं पर आपको गवर्नरों के हस्तक्षेप को कदापि सहन नहीं करना चाहिए। ऐसे शनैः-शनैः एक प्रकार की परिपाटी स्थापित हो जायगी और प्रान्तीय स्वतन्त्रता पूर्ण रूप से स्थापित हो जायगी। रही संघ-शासन-व्यवस्था की बात, सो जब वह अस्तित्व में आयगी तो मुझे आशा है कि कांग्रेस अपना निजी मंत्रिमंडल बना लेगी।"

मैंने उन्हें बताया कि ३७५ सीटों मे कांग्रेस को मुश्किल से १०० मिलेंगी और इस प्रकार वह बहुसंख्यक दल के रूप मे नही जा सकेगी। इसके उत्तर मे उन्होंने कहा कि बहुसंख्यक न होते हुए भी वह एक सबसे अधिक संख्या वाले दल की हैसियत से बहुसंख्यक दल का गठन कर सकेगी। मैंने इसका खण्डन नही किया। इसके बाद उन्होने सुझाव दिया कि हमें तुरन्त ही सैनिक बजटों को चुनौती देना आरम्भ कर देना चाहिए। इसके फलस्वरूप गवर्नर जनरल के साथ बातचीत का मौका मिलेगा और फलतः सैनिक बजटों के मामले में अधिक कहने का अवसर मिलेगा। मैंने पूछा, "इससे हमे सैनिक अथवा वैदेशिक मामलों पर अधिकार करने का अवसर किस प्रकार मिल जायगा? आपका दावा है कि शासन-विधान में स्वतः विकास के अणु विद्यमान है। अब आपको यह साबित करना होगा कि इसके द्वारा हमें वह मिल जायगा जिसे हममें से कुछ लोग औपनिवेशिक स्वराज्य कहते हैं।"

उन्हे यह बात स्वीकार करनी पड़ी कि एक नये कानून के बगैर यह सम्भव नही होगा। तब मैंने उन्हें बताया कि मै इस चीज की विभावना किस रूप में करता हूं। मैंने यह बात मानली कि बुद्धि-विवेक और समझाने-बुझाने

के मार्ग द्वारा हम ऐसी परिपाटी को जन्म दे सकेंगे जिसके द्वारा दो-तीन वर्षों के भीतर ही हमें पूर्ण प्रान्तीय स्वतन्त्रता मिल जायगी। हमें यह देखना होगा कि कानून और व्यवस्था की रक्षा होती है और साम्प्रदायिक मामलों मे निष्पक्षता से काम लिया जाता है या नहीं। नौकरियां वास्तव में सेवा करने के साधन बन जायंगी। यह सबकुछ तो ठीक है, परन्तु जहां तक केन्द्र का सम्बन्ध है मुझे इसमें पूरा सन्देह है कि यह अवस्था हस्तान्तरित विषयों तक के सम्बन्ध में उत्पन्न की जा सकेगी। इसलिए मैंने यह सुझाव रखा कि शासन-विधान को दो-तीन साल तक अमल मे लाने के बाद हमें अपने सार्वजनिक कार्यकर्ताओं का एक छोटा-सा दल इंग्लैण्ड भेजना चाहिए। यह दल यहां मंत्रिमंडल के सदस्यों से मिल कर उन्हे बतायगा कि हमने वैधानिक उपायों से आगे बढ़ने की भरसक चेष्टा की है, पर अब प्रगति सम्भव नहीं है और इसके लिए एक नया कानून बिल्कुल आवश्यक होगया है। इस दल को यहां की सरकार को इसके लिए राजी करने की चेष्टा करना चाहिए कि अब हमे अपनी पसन्द की चीज मिल जानी चाहिए। दल को यहां वालों को स्पष्टरूप मे बता देना चाहिए कि भारत अपनी वर्तमान अवस्था से सन्तुष्ट रहने वाला नही है और यदि स्थायी समझौता नही हुआ तो प्रत्यक्ष कार्रवाई की सम्भावना है।

इसके बाद मैंने लार्ड लोदियन से पूछा कि क्या यह कार्य-प्रणाली अपनाने से यहां की सरकार हमारे साथ औचित्यपूर्ण व्यवहार करने और हमारी बात सुनने को राजी हो जायगी। मैंने यह सुझाव भी पेश किया कि आगामी दो-तीन वर्षों मे हमे शासन-विधान को हर प्रकार से सफल बनाने की चेष्टा करनी चाहिए और पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करना चाहिए जिससे समय आने पर यहां के मंत्रिमंडल के सदस्य और यहां की जनता हमारे साथ मैत्री का आचरण कर सके। इंग्लैण्ड के प्रमुख व्यक्ति भारत जावे और भारत के प्रमुख व्यक्ति इंग्लैड आएं।

उन्होंने उत्तर दिया कि सुझाव अच्छा है। उन्होंने आशा प्रकट की कि समय आने पर इसका इंग्लैड की जनता पर गहरा प्रभाव पड़ेगा और इस कार्य-प्रणाली के द्वारा, संभव है, हमें अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त हो सके। उन्होंने बताया कि उन्होंने बापू को चिट्ठी लिखी है और शायद नवम्बर के मध्य तक वह खुद भी भारत के लिए रवाना हो जायं। परन्तु उन्होंने कहा कि इस बात को गुप्त रखा जाय। मैंने पूछा कि क्या इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई कार्यक्रम निर्धारित किया है? उन्होंने कहा, 'न'। स्पीचें झाड़ने की मेरी बिल्कुल इच्छा नही है। मैंने उत्तर में कहा कि मै यह तो नही चाहता कि आप स्पीचें दे, परन्त मै यह अवश्य जानना चाहता हं कि आप भारत

अंग्रेजों के अतिथि होकर जायंगे या भारत के? उन्होंने कहा, "निश्चय ही भारत का। मैं गांधीजी से मिलूगा।" परन्तु मैंने कहा, "इतना ही काफी नहीं है। आपको अधिक-से अधिक कांग्रेसवादियों से मिलना चाहिए। आपको गवर्नमेन्ट हाउसों में न ठहर कर भारतीयों के यहां ठहरना चाहिए।

मैंने उनसे पूछा कि क्या वह दिल्ली और कलकत्ते में मेरे पास ठहरना पसन्द करेंगे। उन्होंने उत्तर दिया, "मुझे एक दिन के लिए तो गवर्नमेन्ट हाउस में ठहरना ही होगा, परन्तु वैसे मुझे आपके साथ ठहर कर बड़ी खुशी होगी।" मैंने उन्हें बताया कि मैंने इसी तरह की बात चर्चिल के साथ की है, परन्तु वह शायद तभी जायंगे जब बापू उन्हें बुलायंगे। उन्होंने इस सम्वाद में बड़ी रुचि दिखाई। वह मुझसे सहमत थे कि मुझे इसी प्रकार का अनुरोध बाल्डविन से भी करना चाहिए।

मैंने उन्हे बताया कि यदि दो-तीन साल बाद प्रगति नही हुई तो भारत प्रत्यक्ष कार्रवाई करने को बाध्य हो जायगा। परन्तु प्रत्यक्ष कार्रवाई का अर्थ लार्ड लोदियन ने रक्तपात-पूर्ण क्रान्ति लगाया है। वह अहिंसात्मक सामूहिक सविनय अवज्ञा की कल्पना तक नही कर सकते है। उनका खयाल है कि जवाहरलाल बापू के सामने सिर केवल इसलिए झुका रहे है कि इसके सिवा और कोई चारा नही है। परन्तु ठीक समय पर वह उठ खड़े होंगे और चूंकि अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा में उनका विश्वास नही है, इसलिए वह भारत को क्रान्ति की ओर ले जायंगे। युवा समाज उनके पीछे हो लेगा, इसका फल यह होगा कि पूंजीपति फासिस्ट ढंग पर अपना संगठन करेंगे और किसान लोग साम्यवादी ढंग पर।

मैंने उन्हे बार-बार बताने की कोशिश की कि वह यूरोपियन है, इसलिए उन्हें साम्यवाद और फासिज्म के अलावा और किसी चीज का पता नहीं है, जब कि भारत में एक तीसरी दिशा में कदम उठाया गया है, जिसमें कुछ सफलता भी मिली है, और वह है अहिंसात्मक क्रान्ति। मैंने उन्हें बताया कि जबतक कांग्रेस को यह यकीन न हो जायगा कि प्रत्यक्ष कार्रवाई करने पर भी उसकी अहिंसात्मक रूपरेखा वैसी ही बनी रहेगी तबतक वह वैसा नहीं करेगी। परन्तु उन्होंने कहा कि मानवी प्रकृति जैसी कुछ है, रहेगी। वह इस बात पर विश्वास ही न कर सके कि यह सबकुछ सम्भव है।

इसके बाद उन्होंने कहा, "गान्धीजी का आदर इसलिए किया जाता है कि वह संत पुरुष है, परन्तु जब सघर्ष की नौबत आयगी तो वे लोग उनकी बात तक नहीं पूछेगे। जवाहरलाल कभी गांधीवाद के आगे सिर नहीं

झुकायेंगे।" लाख समझाने पर भी मैं उन्हें अपनी बात का विश्वास नहीं दिला सका। उन्होंने केवल इतना ही कहा कि वह मेरे कथन के मर्म को समझने के लिए भारत जायंगे।

मुझे इसी डाक से बापू का अपने हाथ से लिखा हुआ पत्र मिला है। तुम्हारा पत्र भी मिला है। मुझे बापू का पत्र इतना पसन्द आया कि मैंने उसकी नकलें लार्ड हेलीफैक्स, लोदियन और चर्चिल को भी भेजी हैं। मैंने मंत्रियों के वेतन पर बापू के अन्तिम लेख की नकल भी प्रमुख व्यक्तियों के पास भेज दी है।

मुझे सारी बातों की खबर देते रहना। वैसे मैं यूरोप के अन्य देशों के लिए रवाना हो रहा हूं, क्योंकि ये लोग अगस्त में काम-काज नहीं करते हैं, परन्तु हम लोग सितम्बर के पहले सप्ताह में फिर इकट्ठे होंगे। यह बात बड़ी खिझाने वाली है कि हमें उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, परन्तु इसके सिवा और चारा भी क्या है।

हमें यदाकदा 'टाइम्स' और 'डेली हेरल्ड' में भारत के सम्बन्ध में प्रेस-समाचार पढ़ने को मिलते रहते हैं। पर वैसे हम लोग एक प्रकार से अलग-थलग से हो गये हैं। इसलिए मैंने देवदास से 'हिन्दुस्तान टाइम्स' नियमित रूप से भेजने को कह दिया है।

ग्रासवेनर हाउस, पार्क लेन
लन्दन
४ सितम्बर १९३७

प्रिय महादेवभाई

तुम्हारे पत्रों को केवल रोचक कहना काफी नहीं होगा। मैं एक ऐसे आदमी की तरह हूं जो सहरा के रेगिस्तान में हो और प्यास से तड़प रहा हो। मैंने देवदास से 'हिन्दुस्तान टाइम्स' भेजने को लिख दिया था, परन्तु उन्होंने अभी तक भेजना शुरू नहीं किया है। इसके परिणाम-स्वरूप भारत से मेरा सम्बन्ध कटा-सा हो गया। मेरा लड़का कुछ कटिंग भेजता रहता है और मैं 'हरिजन' से सम्पर्क बनाए हुये हूं। परन्तु इन सारी चीजों से मुझे वह सामग्री नहीं मिलती है जो तुम्हारे द्वारा मिल सकती है। इसलिए मुझे जब तुम्हारे पत्र मिलते हैं तो मैं उनका अच्छी तरह पान करता हूं। और जब कभी बापू लिखते हैं तब तो मैं अपने आपको सशरीर स्वर्ग में पाता हूं। मैं यदा-कदा तुम्हारे पत्रों के उद्धरण लार्ड हेलीफैक्स के पास भेज देता हूं, पर इधर कई दिनों से नहीं भेज रहा हूं, क्योंकि भारत का प्रश्न मेरे लिए बड़े महत्व का हो सकता है, उनके लिए शायद

वह इस समय महत्व का न हो, जब कि शंघाई में गोली-वर्षा हो रही है और फ्रेन्को ब्रिटिश जहाजों को टारपिडो मार कर डुबो रहा है।

बापू ने अण्डमान के भूख-हड़तालियों की हड़ताल भंग कराने में कमाल का काम किया है। उनके इस कार्य की बड़ी सराहना हो रही है। मुझे इसमें सन्देह नही है कि जब अधिकारियों ने बापू को उनके छुटकारे के लिए आते देखा होगा तो चैन की सांस ली होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि वायसराय के साथ बापू की मित्रता घनिष्टतर होती जा रही है, परन्तु सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि वह हमें सहयोग का मार्ग दिखा रहे हैं। वह कई बार कह चुके हैं कि वह सहयोग करने के लिए बेहद आतुर हैं और असहयोग भी सहयोग की दिशा में उठाया गया एक कदम है। अब वह आचरण द्वारा यह सिद्ध कर रहे हैं। निस्संदेह यदि हम अपने भीतर सामर्थ्य उत्पन्न कर ले तो सहयोग से किसी प्रकार के अनिष्ट की संभावना नहीं है।

लक्ष्मी निवास भारतीय समाचार-पत्रों की जो कतरनें भेजता रहता है उनसे पता चलता है कि उच्छृङ्खलता ज़ोर पकड़ती जा रही है। बिहार में किसानों ने व्यवस्थापिका सभा पर धावा बोला, भवन में प्रवेश करके सीटों पर अधिकार कर लिया और मुख्य मंत्री के कहने पर भी वहीं जमे रहे। यह सब मुझे बिल्कुल अच्छा नही लगा। इसपर तुर्रा यह कि मुख्य मंत्री ने भाषण द्वारा उन्हें मीठी-मीठी बातें तो बताईं, पर यह नहीं बताया कि उन्होंने व्यवस्थापिका सभा की सीटों पर अधिकार करके और वहां से जाने से इन्कार करके ग़लती की। राघवेन्द्रराव के विरुद्ध जो प्रदर्शन किया गया, बापू ने उसकी आलोचना करके ठीक ही किया, परन्तु मुझे आशंका है कि यदि कठोरता नहीं बरती गई तो उच्छृङ्खलता में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। मुझे आशा करनी चाहिए कि कांग्रेस के अधिकारी इस परिस्थिति की ओर से अचेत नहीं हैं और इस सम्बन्ध में सारी आवश्यक कार्रवाई करेंगे। आम लोगों मे यह धारणा जड़ पकड़ती जा रही दीखती है कि स्वतन्त्रता और उच्छृङ्खलता एक ही चीज है।

अपने दफ्तर के बारे में तुमने जो कुछ कहा उससे मुझे आश्चर्य हुआ। तुम कहते हो कि मुझे इन सारी चीजों मे फेरफार करने में एक दिन तुम्हारी सहायता करनी चाहिए। मैंने इसके लिए इन्कार कब किया है? क्या तुमने मुझसे इस सम्बन्ध में कभी कुछ कहा? तुम्हारे दफ्तर के बारे मे मुझे बापू से झगड़ा करते सात वर्ष हो गये, पर अभीतक कोई नतीजा नहीं निकला है। बापू को सारे पत्र अपने हाथ से, कभी इस हाथ से कभी

उससे, लिखने पड़ते है। तुम्हारे टाइपिस्ट लोगों के लिए उपयुक्त स्थान तो अजायब-घर हैं। मैंने कार्यदक्षता के सम्बन्ध में बापू से बहस की है। वह मुझसे सिद्धान्तरूप में तो सहमत हैं, परन्तु जब उन्हें लन्दन में एक स्टेनोग्राफर की जरूरत पड़ी और मैंने एक स्टेनोग्राफर देने की तत्परता दिखाई तो उन्होंने पोलक की बहन को काम के लिए बुला लिया! खैर, महादेवभाई, जहांतक मेरा सम्बन्ध हैं, मै तैयार हूं।

मैंने एटलस के लिए अभी आर्डर नहीं दिया हैं। रही संदर्भ–रेफरेन्स, की पुस्तकों की बात, सो स्टेट्समैन इयर बुक के लिए आर्डर दे ही रहा हूं। तुम्हें और जिन-जिन पुस्तकों की दरकार हो, मुझे लिखो, मैं आर्डर दे दूगा। मै तुम्हारे लड़के के लिए बढ़ई के औजारों का बक्सा भी भेज रहा हू।

सस्नेह तुम्हारा ही
घनश्यामदास

ग्रासवेनर हाउस, पार्क लेन
लन्दन
८ सितम्बर १९३७

प्रिय महादेवभाई

जहां तक बापू के स्वास्थ्य का सम्बन्ध है, तुम्हारे २६ तारीख के पत्र से चिन्ता हुई। मैंने उनके सम्बन्ध मे तुम्हारे पास तार भेजा और तुम्हारा उत्तर न मिलने से चिन्ता और भी बढ़ गई है। गनीमत यही है कि उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में समाचार-पत्रों मे कुछ नही निकला हैं। इससे मैंने यही समझा है कि अब वह पहले से अच्छे हैं। फिर भी उनके आराम लेने के प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। तुमने केवल अपने अन्तिम पत्र में लिखा है कि बापू ने अवस्था को समझ लिया हैं और अब वह अधिक विश्राम ले रहे हैं। इसलिए समझ मे नही आता कि उनके स्वास्थ्य में गड़बड़ी क्यों हुई।

तुमने अपने पत्र में लिखा था कि मुझे शीघ्र चल पड़ना चाहिए। मैंने तुम्हें तार दिया है कि वैसे मेरा विचार ७ अक्टूबर को रवाना होने का था, परन्तु यदि मेरी दरकार इससे पहले हो तो मैं सबकुछ छोड़कर यहां से चल दूगा।

फिलहाल मैं तुम्हारे पत्रों और लेखों का कोई उपयोग नहीं कर रहा हूं, क्योंकि इस समय इस देश में भूमध्यसागर और सुदूर पूर्व-सम्बन्धी समस्या को लेकर बड़ी बेचैनी फैली हुई है। सब कोई कार्य में बेतरह व्यस्त दिखाई

देते हैं और मुझे आशंका है कि शनैः-शनैः अवस्था गंभीर रूप धारण कर लेगी। ब्रिटेन १९३५ में सारे अपमान सहता गया, पर अब वह पहले से अधिक शक्तिशाली है और एक वर्ष बाद उसकी शक्ति में और भी अधिक वृद्धि हो जायगी। भूमध्यसागर और सुदूरपूर्व में उसके साथ जिस प्रकार छेड़खानी की जा रही है उसके कारण उसने पहले से अधिक कठोर रुख अख्तियार कर लिया है और एक वर्ष बाद जब वह खूब शक्तिशाली हो जायगा तो शायद यह छेड़-छाड़ बर्दाश्त नहीं करेगा। उधर जापान भी लड़ाई पर उतारू दिखाई देता है और हिटलर अपने उपनिवेश वापस चाहता है, और इटली भी अपनी तलवार झनझना रहा है। हो सकता है, यदि इन्हें इस बात का पता लग जाय कि ब्रिटेन एक वर्ष बाद अबसे कहीं अधिक शक्तिशाली हो जायगा तो शायद ये एक वर्ष प्रतीक्षा करने के बजाय फौरन युद्ध छेड़ना चाहेंगे। उधर इटली और रूस में निश्चित रूप से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है और पता नहीं, बात कहां तक बढ़े। इस प्रकार तुम देखोगे कि इस समय राजनैतिक अवस्था बड़ी नाजुक है। साथ ही यह भी निश्चित है कि ब्रिटेन लड़ाई छेड़ने को उत्सुक नही है। यदि लड़ाई छिड़ भी गई तो वह जितने दिन तक सम्भव होगा अलग रहना चाहेगा। पर एक ओर फासिस्ट देशों और बोल्शेविक रूस में और दूसरी ओर जापान और ब्रिटेन में मनमुटाव काफी बढ गया है।

सस्नेह तुम्हारा ही
घनश्यामदास

: २० :

१९३७

मैंने सन् १९३७ में कुछ समय इंग्लैण्ड में बिताया। पर वहाँ भी दो ज्वलंत प्रश्न मुझे बराबर सताते रहे। पहला प्रश्न यह था कि काँग्रेस को प्रान्तों में पद ग्रहण करना चाहिए या नहीं। दूसरा यह कि नजरबन्दों की रिहाई होनी चाहिए या नहीं। काँग्रेस ने पद ग्रहण न करने का जो हठ पकड़ रखा था उससे मुझे बड़ा मानसिक क्लेश पहुंचा। मेरे मनोभाव राजाजी के नाम ३ जुलाई १९३७ के पत्र में प्रकट हुए।

आपके निर्णय से मुझे जो निराशा हुई है, मेरा विश्वास है कि आप उसे समझेंगे। मैं आपकी अपेक्षा इंग्लैंड के प्रतिनिधियों के अधिक निकट संपर्क में हूं और इसलिए जितना अविश्वास आपको है, उतना मुझे नहीं है। इसलिए मेरी यह धारणा स्वाभाविक ही है कि यदि मेरी तरह आप भी उनके निकट सम्पर्क में आवें तो आपका अविश्वास काफूर हो जायगा। और संपर्क स्थापित करने का उपाय है पद-ग्रहण। इतने स्पष्टीकरण के बाद कोई भी गवर्नर हस्तक्षेप करने का साहस करेगा ऐसा मैं क्षण भर के लिए भी मानने को तैयार नहीं हूं। मेरी सारी दलीलें इसी आधार पर अवस्थित हैं। मैं जानता हूं कि आप इस तर्क को स्वीकार नहीं करते, पर मैं इसके जवाब में इसके सिवा और कोई दलील पेश नहीं कर सकता कि आप खुद आजमायश कर देखिये।

मुझे अबतक याद है कि किस प्रकार, जब बापू लार्ड इर्विन के निवास-स्थान पर गये थे तो उनकी लगभग पक्की धारणा थी कि लार्ड इर्विन सच्चे आदमी नहीं हैं और वहां वह यही अविश्वास की भावना लेकर गये थे। किन्तु जब वह लौटे (लौटने पर मैं ही उनसे सबसे पहले मिला था, क्योंकि वह मुझे लेने के लिए मेरे निवास-स्थान पर उतर पड़े थे) तो मेरा पहला सवाल यही था कि आदमी कैसा जंचा? उन्होंने उत्तर दिया था कि आदमी तो

ईमानदार है। इस जवाब से मुझे बड़ी तसल्ली हुई। मैं आपसे आज भी यही कहूंगा कि अविश्वास का एकमात्र कारण व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव है और हमें अपने ही हित में व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। पर शायद बापू का निर्णय हममें से किसी भी व्यक्ति के निर्णय के मुकाबले में अधिक युक्तिसंगत होगा, इसलिए हम सबको उसे ही मानना चाहिए। वैसे मेरे मन की बात तो यह है कि मेरा दिमाग़ ऐसा करने से इन्कार करता है।

कभी-कभी हताश हो जाता हूं, पर साथ ही मुझे इस विचार से सांत्वना मिलती है कि मेरा यही पुरस्कार क्या कम है कि मैंने बापू के आगे अंग्रेजों का पक्ष लिया और अंग्रेजों के आगे बापू का। यह काम भी बड़ा रोचक है। वैसे इस कार्य से मेरा जी ऊब जाता है, पर मैं जितनी ही अधिक बापू की चर्चा अंग्रेजों से और अंग्रेजों की चर्चा बापू से करता हूं, मुझे उतना ही अधिक प्रतीत होता जाता है कि दुनिया की इन दो बड़ी शक्तियों में मेल न होना कितने दुर्भाग्य की बात है। मेरा ख़याल है कि जब इन दोनों शक्तियों में मेल हो जायगा तो संसार का बड़ा उपकार होगा। अपने इस विश्वास से मुझे प्रोत्साहन मिलता है।

मंत्रियों के पद ग्रहण करने की देर थी कि राजनैतिक नजरबन्दों की रिहाई की लोकप्रिय माँग सामने आ गई। बंगाल के लिए यह स्वभावतः ही मुख्य प्रश्न था। मैंने १७ सितम्बर को लन्दन से एक पत्र में श्री नलिनी रंजन सरकार को लिखा :

आपको एक विशेष प्रश्न के ऊपर लिखना चाहता हूं। आप जानते हैं कि गांधीजी ने नजरबन्दों के बारे में क्या कुछ किया है। उन्होंने सभी को भारी परेशानी से बचा लिया है और मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है कि इसके लिए भारत सरकार और अन्य सब कोई उनके प्रति आभारी हैं। किन्तु अब नजरबन्दों की रिहाई का सवाल उठता है। आप जानते ही हैं कि गांधीजी नजरबन्दों को राहत पहुंचाने के लिए वचनबद्ध हो चुके हैं और 'राहत' का मतलब नज़रबन्दों की रिहाई के अलावा और क्या हो सकता है?

मैं आपकी कठिनाइयों को समझता हूं। सभी नज़रबन्दों को तुरन्त रिहा करने में जो अड़चनें सामने आवेंगी, मैं उनसे बेखबर नहीं हूं। किन्तु एक बार रिहाई का सिलसिला बाक़ायदा शुरू हो जाने के बाद तमाम नज़र-बन्दों की रिहाई का प्रश्न केवल समय का ही प्रश्न रह जायगा। मैं तो नहीं

समझता कि कोई बदला लेने की भावना से प्रेरित है। इन लोगों को कानून और व्यवस्था के हित में नज़रबन्द किया गया था, और यदि उनकी रिहाई से कानून और व्यवस्था मे बाधा न पड़ती हो तो उनकी रिहाई आवश्यक हो जाती है।

गांधीजी का स्वास्थ्य बहुत खराब है और इधर उन्होंने नज़रबन्दों की रिहाई का बीड़ा उठा लिया है। जब मैंने देखा कि उनके हस्तक्षेप के कारण नज़रबन्दों की भूख हड़ताल का अंत हो गया तो मुझे बड़ा हर्ष हुआ। पर मुझे उसके फलितार्थों पर चिन्ता-सी होने लगी है। इसलिए आपसे अनुरोध है कि आप कृपा करके इस बारे में गांधीजी की इच्छाओं को पूरा करने के लिए अपनी शक्ति भर अधिक-से-अधिक प्रयत्न करें।

मुझे मालूम हुआ है कि गांधीजी ने आपके मंत्रिमंडल से अपील की थी और उसका उन्हें बहुत ही अभद्रतापूर्ण उत्तर मिला है। इसके विपरीत, वायसराय ने उन्हें बड़ा ही मित्रता-पूर्ण उत्तर भेजा। सोचिये तो सही, हमारे अपने ही आदमियों ने उन्हें कैसा रूखा उत्तर दिया। एक मंत्री के नाते आपके सिर पर कितनी भारी जिम्मेदारियां है, सो आपको बताना न होगा। आप अन्य मंत्रियों पर कुछ-न-कुछ दबाब अवश्य डाल सकते हैं।

क्या आप मेरी ओर से गवर्नर महोदय से स्थिति का विश्लेषण करने का अनुरोध करेंगे? मेरा मुख्य उद्देश्य यही है कि गांधीजी को शान्ति-पूर्ण वातावरण उत्पन्न करने के सारे अवसर दिये जायं। उन्होंने काकोरी के कैदियों के पक्ष में किये गए प्रदर्शन को किस प्रकार धिक्कारा, सो आप जानते ही हैं। अहिंसा की भावना को देश मे स्थायी रूप देने के संबंध में वह आये दिन जो कुछ कहते रहते है, सो भी आपसे छिपा नहीं है। और आप भी जानते हैं और मैं भी जानता हूं कि गांधीजी कल्पना के राज्य में विचरण नही करते है। इस समय जो कुछ किया जायगा, वह हमारे लिए और हमारे हिस्सेदार अंग्रेजों के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगा सर जान एंडर्सन निस्सन्देह ऐसे व्यक्ति हैं जो दूर भविष्य की बात सोच सकते हैं। वायसराय का रुख भी बहुत ही सहायतापूर्ण हैं। गांधीजी बूढ़े हो गए हैं। जब वह हमारे बीच नही रहेंगे तो हमें काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। पर यदि हम उनके जीवन-काल में सहयोग और शान्ति की परम्पराएं स्थापित कर सकें तो इससे भारत बहुत सी कठिनाइयों से, और इंग्लैंड कॉफी परेशानी से बच जायगा। जरूरी हो तो मेरा पत्र गवर्नर महोदय को सुना दीजिए, पर आप शक्ति भर प्रयत्न अवश्य कीजिए। आपको यह न भूलना चाहिए कि आपके पद का जो भी स्वरूप हो, आप

एक मंत्री हैं और आपकी जिम्मेदारियां हैं। विश्वास है, आप स्वयं इस तथ्य को समझते होंगे।

बंगाल में राजबंदियों का जेल में रखा जाना लोगों में नाराजगी और अशान्ति का कारण बना हुआ था। इंग्लैण्ड में मैं और जितने दिन रहा मेरे समय का काफी भाग ब्रिटिश सरकार को यही सुझाने में खर्च हुआ। स्वदेश लौटने पर मैंने एक योजना तैयार की जिसे गांधीजी और नलिनी सरकार दोनों ने स्वीकार किया, नलिनी सरकार ने बंगाल-सरकार की ओर से। प्रस्ताव यह था कि जो लोग अपने घरों और गाँवों में नजर-बन्द हैं उनमें से ११०० को तत्काल रिहा कर दिया जाय और जो जेलों में नजरबन्द हैं, उन्हें जत्थों में एक निश्चित समय के भीतर, जो चार महीनों से अधिक न हो, रिहा किया जाय। चार महीने के बाद कोई भी जेल में न रहे, सिवा इस अवस्था के कि किसी खास बंदी के बारे में गांधीजी यह कहें कि उससे उन्हें सन्तोषजनक आश्वासन नहीं मिला और इसलिए वह उसकी रिहाई की सिफारिश नहीं कर सकते। किन्तु सरकार को गांधीजी की तमाम सिफारिशों को स्वीकार कर लेना चाहिए। नलिनी सरकार स्वभाव से ही अपनी जिम्मेदारियों को समझने वाले व्यक्ति थे और बंगाल के सच्चे सेवक थे।

दुर्भाग्यवश, गाँधीजी उसी समय बहुत बीमार पड़ गये और उनका स्थान लेनेवाला उतना ही विश्वस्त पंच कोई दूसरा उपलब्ध नहीं था। कुछ गैरकाँग्रेसी नेताओं द्वारा हिंसा के प्रतिपादन ने रिहाई की समस्या को काफी जटिल बना दिया। उस समय दुर्भाग्यवश बंगाल की राजनीति ने विभिन्न दलों के बीच झगड़ों-टंटों का रूप धारण कर लिया और बंगाल की सरकार को, जो उस समय कई दलों की मिलीजुली सरकार थी, अरुचिकर वातावरण में काम करना पड़ा।

: २१ :

कुछ भीतरी इतिहास

काँग्रेस ने प्रांतों में पदग्रहण किया और हमारे सामने उज्ज्वल भविष्य आ उपस्थित हुआ। दो वर्ष बाद यह उज्ज्वल भविष्य महायुद्ध के थपेड़ों में आकर अत्यन्त दुःखद रूप से खण्ड-खण्ड होनेवाला था। इस वृत्तान्त को यहीं छोड़ने से पहले पदग्रहण के भीतरी इतिहास के कुछ अंशों पर दृष्टिपात करना अच्छा रहेगा। बापू ने मुझे स्वयं लिखा :

सेगांव
१८ जुलाई, १९३७

भाई घनश्यामदास

मै तुम्हारे सारे पत्र ध्यान से पढ़ता हूं। तुम्हे लिखने का न समय मिला न इच्छा हुई। ओर लिखता भी क्या? प्रतिक्षण अवस्था बदल और सुधर रही थी। ऐसी अवस्था में तुम्हें कुछ लिखना अनुपयुक्त होता। दूसरों को लिखना जरूरी था, क्योंकि मैं भी उतना ही प्रभावित होना चाहता था, जितना वे लोग मुझे लिखते थे। परन्तु मैं इतना अवश्य कह सकता हूं कि मै विदेशों से आये हुए पत्रों से उतना प्रभावित नहीं हुआ जितना कि भारत की घटनाओं से। यह कहो कि मेरी अवस्था उस स्त्री जैसी थी जिसके शीघ्र ही बच्चा होने वाला हो। ऐसी स्त्री के शरीर के भीतर न जाने क्या-कुछ होता है, पर बेचारी उन सारी बातों का वर्णन नही कर सकती है। अब हम सब जानते ही हैं कि क्या हुआ। पर मै इतना अवश्य कहूंगा कि कार्यकारिणी की बैठक मे जवाहर ने जो कुछ किया और कहा वह सचमुच विलक्षण था। वह पहले ही मेरी निगाह में ऊँचे थे, अब वह बहुत ऊँचे उठ गये हैं। तिसपर तुर्रा यह कि हम दोनों अब भी सहमत नहीं हैं।

अब हमारी कठिनाइयों का श्रीगणेश होता है। यह अच्छा ही है कि हमारा भविष्य हमारे सामर्थ्य, सत्यवादिता, साहस, संकल्प, सतर्कता

और नियंत्रण पर निर्भर करता है। तुम जो काम कर रहे हो ठीक ही है। अधिकारियों की समझ मे यह बात आ जानी चाहिए कि कार्यकारिणी के प्रस्ताव मे शब्दाडम्बर का आश्रय नहीं लिया गया है। प्रत्येक शब्द सार्थक है और जो कुछ कहा गया है उस पर अमल किया जायगा। अन्त मे यह भी कहूंगा कि जो कुछ किया गया है ईश्वर के नाम पर और ईश्वर पर भरोसा रखकर। तुम साधु बनोगे और साधु ही रहोगे। आशीर्वाद।

बापू

बापू के विश्वस्त निजी मंत्री महादेव देसाई के पत्र से कुछ और भी अधिक भीतरी इतिहास के दर्शन हुए:

मगनवाड़ी, वर्धा
१६-७-३७

प्रिय घनश्यामदासजी

मेरी खामोशी पर आपको जो आश्चर्य हुआ उसे मै समझता हूं। खामोशी अनिवार्य तो थी ही, वह जानबूझ कर साधी गई थी, क्योंकि लिखने लायक कोई बात थी ही नही। मै यह तो देख ही रहा था कि बापू को देश के कोने-कोने से जो चिट्ठियां मिल रही थी उनके कारण वह पद ग्रहण करने के पक्ष में अधिकाधिक होते जा रहे थे, परन्तु साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि इस ओर निश्चयात्मक रूप से उनका झुकाव लार्ड जेटलैण्ड की दूसरी स्पीच के बाद से हुआ। मेरा अभिप्राय उस स्पीच से है जिसमें उन्होंने इस आलोचना का खण्डन किया था कि समझौते और मेल का दरवाज़ा बन्द कर दिया गया है। उस स्पीच का बापू पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। जब जवाहर कार्यकारिणी की बैठक से तीन दिन पहले वर्धा आये तबतक बापू इस सम्बन्ध में निश्चय कर भी चुके थे। मै जवाहर के पक्ष में यह अवश्य कहूंगा कि उन्हें इस मामले में राजी करने में कोई कठिनाई नही हुई। कार्यकारिणी की बैठक के दौरान में उनका रुख भद्रतापूर्ण और उनकी साधुतापूर्ण आत्म-प्रेरणा के अनुरूप ही रहा। यही कारण है कि बैठक का काम अबाध रूप से चलता रहा।

खैर, अब तो यह सबकुछ इतिहास की सामग्री बन गया है। अब मै आपको यह बताऊं कि बापू ने इस समस्या के प्रति कैसा रवैया अपनाया है। श्री राजगोपालाचार्य ने पदग्रहण करने के अवसर पर अपने और अपने सहयोगियों के लिए आशीर्वाद का तार भेजने की कामना की। बापू ने तार

तो भेजा, परन्तु यह स्पष्ट कर दिया कि उसे प्रकाशित न किया जाय। उन्होंने तार में कहा, "निजी। बैठक का पथप्रदर्शन करने में मुझे जिस स्रोत से स्फूर्ति प्राप्त हुई है वह है मनोयोग-पूर्ण प्रार्थना। आप जानते ही हैं कि मेरा सारा भरोसा आपही पर है। ईश्वर आपका प्रयत्न सफल करे। इसे प्रकाशित मत करिये। सदस्यों को संदेश भेजने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। इसके लिए आपको जवाहरलाल से अनुरोध करना होगा। सस्नेह।"

लार्ड हेलीफैक्स जैसे व्यक्तियों से अपनी बातचीत के दौरान में आप इस तार का हवाला दे सकते हैं और तार भी दिखा सकते हैं। परन्तु व्यवस्थापिका सभा में किस भाव को लेकर जाय इसका निदर्शन आपको बापू के उस लेख से और भी अधिक अच्छी तरह मिलेगा जो उन्होंने हाल ही में 'हरिजन' में लिखा है और जिसकी एक प्रति इस पत्र के साथ भेजता हूं। मैं जानना चाहूंगा कि अंग्रेजों में इस लेख की क्या प्रतिक्रिया हुई। इसका निश्चय आप उन्हें यह लेख दिखाकर ही कर सकते हैं, क्योंकि वैसे वे लोग शायद इसे न पढ़ पावें। आप उसकी प्रतिलिपियां तैयार कराके मित्रों में वितरण कर सकते हैं। इस पत्र के साथ चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य की वह स्पीच भी भेजता हूं जो उन्होंने गवर्नर द्वारा आमंत्रित किये जाने के दो दिन पहले दी थी।

सप्रेम आपका ही
महादेव

इन दिनों बापू ने 'हरिजन' में जो लेख लिखे, उनकी ओर काफी ध्यान आकर्षित हुआ। उनमें बापू ने सादगी और किफायतशारी पर जोर दिया था (इस हद तक कि हमारे मंत्रियों को उनकी अपेक्षा को पूरा करना असंभव-सा प्रतीत हुआ—मोटर-गाड़ी भी नहीं!) एक लेख में उन्होंने एक अंग्रेज धनपति के विचारों को विस्तार से उद्धृत किया था जो भारत में अनेक उच्च पदों पर रह चुके थे। वह सर जार्ज शुस्टर थे और मैंने ही उनके विचारों को बापू के पास भेजा था। उन्होंने इस बात की आवश्यकता पर जोर दिया था कि रुपये की प्रेरणा के स्थान पर सेवा की प्रेरणा और सहकारिता को प्रतिष्ठित करना चाहिए।

जब बापू और वायसराय पहली बार मिले तो भविष्य सचमुच अधिक उज्ज्वल प्रतीत हुआ।

वायसराय शिविर, भारत
२३ जुलाई १९३७

प्रिय श्री गांधी

मैं शिमला लौट रहा हूं। आप नई दिल्ली में आकर मुझसे मिल सकें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। यदि आप इस सुझाव को पसन्द करें तो क्या ४ अगस्त, बुधवार को ११-३० बजे वायसराय भवन में मुलाकात सुविधा-जनक होगी ?

सार्वजनिक ढंग का कोई खास काम नहीं है जिसे लेकर आपको कष्ट दूं। पर आपसे मिलकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी, और मुझे पूरी आशा है, कि आपके लिए आ सकना संभव होगा।

भवदीय
लिनलिथगो

सेगांव, वर्धा
२४.७.३७

प्रिय मित्र

आपके कृपा-पत्र के लिए धन्यवाद।

कुछ समय से मैं यह सोच रहा था कि मैं आपसे मिलने की प्रार्थना करूं। मैं यह चर्चा करना चाहता था कि खान साहब अब्दुल गफ़्फ़ार खां के सीमा-प्रान्त-प्रवेश पर जो प्रतिबन्ध है, क्या उसे हटाया जा सकता है और क्या मैं भी सीमाप्रान्त की यात्रा कर सकता हूं ? मेरे सीमाप्रान्त में जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, पर अधिकारियों की स्वीकृति प्राप्त किये बिना वहां जाने का मेरा कोई इरादा नहीं है।

इसलिए आपका पत्र दुहरे स्वागत के योग्य है। मैं यह समझे लेता हूं कि अपनी मुलाक़ात के समय इन दोनों विषयों को उठाने पर कोई आपत्ति नहीं होगी। मुझे आगामी ४ अगस्त को ११-३० बजे वायसराय भवन, नई दिल्ली, आने में प्रसन्नता होगी।

आपका
मो० क० गांधी

इन पत्रों की प्रतिलिपियाँ मुझे लन्दन में महादेवभाई के एक लम्बे पत्र के साथ मिलीं। मद्रास में राजाजी को और अन्य प्रांतों में दूसरों को जो सफलता प्राप्त हुई उसका उल्लेख करने के बाद महादेवभाई ने लिखा।

आपने लिखा है कि सर रोजर लमले बापू से मिलने को उत्सुक हैं और आपने पूछा है कि यह किस प्रकार संभव होगा। शायद उन्हें परिस्थितियों का आपसे ज्यादा अच्छा ज्ञान था, क्योंकि सम्पर्क का मार्ग बन गया है। यह पत्र आपके हाथों में पहुंचने के पहले ही समाचारपत्रों में मोटे अक्षरों मे छप चुकेगा कि बापू वायसराय से मिले हैं। चार दिन पहले सेगांव में इस स्थान के मजिस्ट्रेट को देखकर हर्षमिश्रित आश्चर्य हुआ। वह एक महत्वपूर्ण सरकारी कागज़ बापू के हाथ में सौंपने खास तौर से आये थे। वह कागज लार्ड लिनलिथगो का व्यक्तिगत पत्र था, जिसमें उन्होंने बापू को बुलाया था। मैं आपको बापू की तात्कालिक प्रतिक्रिया बताता हूँ, क्योंकि इस छोटी-सी बात से पता चलता है कि बापू के रोम-रोम मे किस प्रकार अहिंसा समाई हुई है। बापू ने कहा, "मुझे लगता है कि किसी ने वायसराय से यह जरूर कहा होगा कि बुलाये बगैर मै उनसे मिलने नहीं जाऊंगा और ज्योंही दुनिया को यह पता चलेगा कि मैंने मुलाकात की दरख्वास्त नही की है, बल्कि उन्होंने ही मुझे निमन्त्रण भेजा है, त्योंही बेचारे को गलत रोशनी में देखा जाने लगेगा।" बापू की प्रकृति में जो अहिंसा है उसने स्वभावतया ही वायसराय की प्रतिष्ठा की सम्भावित हानि के विरुद्ध विद्रोह किया। तब उन्होंने अपने ही हाथ से उसका उत्तर लिखा। दोनों पत्रों की प्रतिलिपियाँ इसके साथ भेजता हूं। बापू अपने उत्तर में अपने भाव किसी-न-किसी रूप में व्यक्त कर ही देते, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। मुझसे बोले, "क्या वह (वायसराय) अपना काम नहीं जानते ? मै उन्हें सलाह देने की ज़िम्मेदारी क्यों लूं . . ?" वायसराय इस समय आसाम और बिहार का दौरा कर रहे हैं और मैं नही जानता कि बापू का पत्र उन्हें दिल्ली पहुंचने के पहले मिल भी पावेगा या नहीं। बापू ने सीमा-प्रान्त का सवाल उठाया है, पर हमारा विश्वास है कि उसके कारण कोई अड़चन उत्पन्न नहीं होगी। इस मुलाकात का उद्देश्य यदि पगडंडी तैयार करना भर है तो वायसराय इससे अधिक और कहते भी क्या ? पर यह ज़ाहिर है कि यह सबकुछ गांधीजी से मिलकर प्रसन्न होने के लिए नहीं किया गया होगा। दोनों केवल एक-दूसरे की कुशल-मंगल पूछ कर ही एक-दूसरे से विदा नहीं ले लेंगे। वैसे मुलाकात के

एक घंटे से अधिक चलने की संभावना नही है। पर मुझे पहले से ही अटकल नही लगानी चाहिए। हां, तो आप सर रोजर लमले से कह सकते है कि उनके बापू को बुलावा-मात्र देने की देर है और बापू खुशी के साथ उपस्थित हो जायंगे।

आपने मंत्रियों द्वारा भोजों और पार्टियों के निमन्त्रण स्वीकार किये जाने के संबंध में सर रोजर से जो कुछ कहा, उससे पता चलता है कि आप बापू को कितने सहज भाव से समझते है। गत सप्ताह वल्लभभाई इस संबंध में तथा अन्य प्रश्नों के संबंध में चर्चा करने यहां आये थे। आपको यह जान कर खेद होगा कि सबने भोज आदि से बिल्कुल अलग रहने का फैसला किया है। गवर्नर के निमन्त्रण को स्वीकार करने का यह अर्थ होता है कि मंत्रियों को भी वैसे ही शिष्टाचार का परिचय देने के लिए तैयार होना चाहिये। हमारे गरीब मंत्रियों के लिए ऐसी सामाजिक कार्यशीलता क्योंकर संभव है? किन्तु प्रश्न केवल गरीबी का नहीं है। बापू का विश्वास है कि देश के सर्वोत्तम हितों को ध्यान में रखते हुए कुछ वर्षों तक तो नपा-तुला औपचारिक संबंध रखना ही समझदारी का काम होगा।

आपने चर्चिल के बारे में जो कुछ लिखा, मजेदार रहा। जब उन्होंने हिंसा और हिन्दुस्तानियों द्वारा अंग्रेजों की हत्या किये जाने वाली बात कही तो आपने उन्हें उनके उस लेख की याद क्यों नही दिलाई जिसमें उन्होंने हमको धमकी दी थी कि यदि हमने पद ग्रहण करने से इन्कार किया तो हमारे हक में बहुत ही बुरा होगा? बापू के वक्तव्य के बारे में उन्होंने जिन निर्दयता-पूर्ण शब्दों का प्रयोग किया था उनकी याद अब भी कांटे की तरह कसकती है। क्या आप जानते है वे शब्द क्या थे? उन्होंने बापू के उन उद्‌गारों को 'कांटेदार तार की बाड़ से घिरी हुई फुसलाने वाली बातों' का नाम दिया था। पर यह सबकुछ चर्चिल के अनुरूप ही था। जब उन्होंने आयरिश नेता माइकल कॉलिन्स को अपने निवास-स्थान पर दावत दी तो मज़ाक में कहा कि ब्रिटिश सरकार ने तो उनके (अर्थात् कॉलिन्स के) सिर का मूल्य केवल १०००पौण्ड आंका था, जब कि बोअर लोगोंने उनके (अर्थात् चर्चिल के) शीश को १० पौड के लायक समझा। मुझे पूरा यकीन है कि चर्चिल ने बापू का जो अभिनन्दन किया है, वह हार्दिक है। आप इसके लिए उन्हें बापू का धन्यवाद पहुंचा दें। सन् १९३१ में उन्होंने बापू से मिलने से इन्कार कर दिया था, पर यदि अब वह बापू के अनुरोध पर भारत आये तो मै समझता हूं कि वह खुद ही बापू से मिलने की प्रार्थना करेंगे।

शीघ्र ही वायसराय के साथ बापू की पहली मुलाकात का वृत्तान्त आ गया।

वायसराय लौज
४ अगस्त ३७

प्रिय घनश्यामदासजी

विचित्र जगह से पत्र लिख रहा हूं। क्यों, है न यही बात? और आप देखेंगे कि मैं इस स्थान से परिचित तक नहीं हूं, क्योंकि दिल्ली वाला प्रासाद वायसराय हाउस कहलाता है, वायसराय लौज शिमला वाले भवन का नाम है। अस्तु, उधर बापू वायसराय के साथ मुलाकात कर रहे हैं, इधर मैं अपने आपको उपयोगी बना रहा हूं, और बापू ने मार्ग में जो कई पत्र लिखने को कहा था उन्हें लिख रहा हूं। आपका प्यारा-सा पुराना मोटर ड्राइवर, मेरा मतलब उस सुन्दर युवक ड्राइवर से है जो मुझसे भी अधिक उज्ज्वल वस्त्र पहनता है, हमें यहां लाया और बापू हिज ऐक्सीलेसी के साथ ११-३० से बन्द हैं। जैसा कि मैंने आपको लिखा था, मुलाकात का हेतु आपसी मनमुटाव को दूर करना है। किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह मुलाकात नहीं की गई है। बापू भी यह संकल्प करके भीतर गये हैं कि उत्तर-पश्चिम सीमा की समस्या को छोड़कर और किसी बात की चर्चा नहीं उठायेंगे। और उत्तर-पश्चिम सीमा की चर्चा उन्होंने वायसराय के नाम अपने उत्तर में ही कर दी थी। परन्तु मैंने अपने सारे पत्र लिख डाले हैं, इधर एक बजने वाला है, जिसका अर्थ यह है कि महत्वपूर्ण विषयों की चर्चा हो रही है।

ऐसा प्रतीत होता है कि आपका एक पत्र वर्धा में मेरा इन्तजार कर रहा है, क्योंकि देवदास को कल उसकी नक़ल मिली थी। उसका मूल भी वर्धा में उसी समय पहुंच गया होगा। मैं समझता हूं, जिस समय लार्ड लो० आपसे बात कर रहे थे उस समय उन्हें मालूम था कि यह मुलाकात होने वाली है।

सप्रेम, आपका ही
महादेव

पुनश्च:—यह मुलाकात के बाद लिख रहा हूं। बातचीत सहृदयतापूर्ण, स्पष्ट और मिलनसारी से भरी हुई थी और कोई डेढ़ घंटे तक जारी रही। जहां तक गांधीजी का सम्बन्ध है, सीमा-प्रान्त का द्वार उनके

लिए खुला है, परन्तु जहां तक ख़ान साहब का सम्बन्ध है, उन्हे इसके लिए गवर्नर से लिखा-पढ़ी करनी चाहिए। बापू ने हिज ऐक्सीलेसी को बताया कि ख़ान साहब कौन हैं और किस प्रकार उनके लिए लिखा पढ़ी करना असम्भव है। परन्तु उन्हे आशा है कि रास्ता निकल आवेगा। अब सीमा-प्रान्त के मंत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे ही दिया है, इसलिए हमे आशा करनी चाहिए कि सबकुछ ठीक हो जायगा।

हिज़ एक्सीलेसी ने सीमा-सम्बन्धी समस्या की चर्चा करने के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं की और बापू के वहां जाने के सम्बन्ध में भी उन्होंने कोई कठिनाई खड़ी नहीं की।

जिन अन्य विषयों पर बातें हुई वे हैं ग्रामसुधार, गायें, हाथ का बना कागज, सरकंडे की कलम, इत्यादि।

महादेव

वर्धा
६ अगस्त, ३७

प्रिय घनश्यामदासजी

इस पत्र के साथ मुलाक़ात का संक्षिप्त विवरण भेज रहा हूँ। यह सिर्फ आपही के लिए है और आपके २७ और २८ तारीख के पत्रों के उत्तर में भेजा जा रहा है। यद्यपि पारस्परिक सम्पर्क पुनः स्थापित हो गया है, तथापि बापू इसे उतना ही महत्व देते हैं जितना वह मैत्री-पूर्ण विचार-विनिमय को देते। पुराना साम्राज्यवाद अटूट बना हुआ है और उसे आत्मसमर्पण करने मे अभी बहुत दिन लगेंगे। बापू इन पारस्परिक सम्पर्कों को विशेष महत्व देने के खिलाफ आपको चेतावनी देते हैं, और उन्होंने जो निमन्त्रण लार्ड लोदियन को दिया है वह चर्चिल या लार्ड बाल्डविन या अन्य मित्रों को देने को बिल्कुल तैयार नही है। यदि वे अपनी खुशी से आवे तो अवश्य आ सकते है, पर बापू उनसे आने का अनुरोध नही करेंगे। इसके अलावा वह उन्हें निमन्त्रण देने के मामले मे कांग्रेस के नेता का पद ग्रहण नही करना चाहते हैं। लार्ड लोदियन की बात दूसरी है। उन्होंने दोनों पक्षों के बीच पुल बांधने के मामले मे महत्वपूर्ण काम किया है और इसके अलावा वह सीधे बापू को कई बार लिख भी चुके है। इसलिए उन्हें जो सुझाव कहिये या निमंत्रण कहिये, दिया गया था सो स्वतः ही स्वाभाविक घटनाक्रम के दौरान में आत्मप्रेरणा द्वारा दिया गया था। चर्चिल प्रभृति आये और उन्होंने यहां आकर साम्राज्यवादी अनर्गल प्रलाप किया तो उन्हें बुलाना

इस प्रकार की बातें करने का अनुमति-पत्र देने के समान होगा। न, बापू इस पारस्परिक सम्पर्क वाले व्यापार से कोई सरोकार नहीं रखेंगे।

सीमाप्रान्त के सम्बन्ध में वायसराय ने वचन दिया है कि गवर्नर से पत्रव्यवहार के बाद वह बापू को लिखेंगे। संभव है, प्रतिबंध उठा लिया जाय।

आशा है, आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। आपको मेरे सारे पत्र मिल गये न? यह स्थान ही ऐसा निकम्मा है कि बहुधा ठीक समय पर डाले गये पत्र भी हवाई डाक के समय तक नहीं पहुँच पाते। मैंने एक भी हवाई डाक को हाथ से नहीं गंवाया है। सी० एफ० एन्ड्रयूज कल आ रहे हैं, किस सिलसिले मे, सो अनुमान मैं अभीतक नहीं लगा सका हूं।

सप्रेम, आपका ही
महादेव

२५ जनवरी ३८

प्रिय घनश्यामदासजी

मुझे ५० हजार रुपया ग्राम-शिक्षा के लिए और उतने ही ग्रामोद्योग के लिए ज़रूरत है। फिर हरिजन सेवक संघ का भी बोझा है। इस संबंध में और अधिक बातचीत करने की ज़रूरत है। आशा है, बृजमोहन बहुत अच्छे होंगे और किशन भी।

बापू के आशीर्वाद

: २२ :

नये मंत्रियों की कठिनाइयां

ज्यूरिच
१६ अगस्त १६३७

प्रिय महादेवभाई

तुम्हारे दो पत्र बगैर जवाब दिये पड़े हैं। रिप वान विन्कल होना तो एक ओर, तुम मुझे पूरी जानकारी करा रहे हो और इसके लिए मैं तुम्हारा बड़ा उपकृत हूं। मुझे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की प्रतियां नहीं मिल रही हैं और लन्दन छोड़ने के बाद से 'हरिजन' से भी सम्बन्ध टूट-सा गया है। इस प्रकार मुझे भारत के विषय में जो कुछ समाचार मिलते हैं वे या तो निजी पत्रों के द्वारा या फिर ब्रिटिश समाचार-पत्रों के द्वारा। अब-तक 'टाइम्स' ने हमारे प्रति बड़ी दयालुता का परिचय दिया है और श्री इंगलिस हमेशा प्रशंसात्मक समाचार ही भेजते हैं। 'मार्निंग पोस्ट' शत्रुता-पूर्ण ढंग से लिखा करता था, परन्तु जबसे मैंने इस बात की चर्चा चर्चिल और लार्ड हेलीफैक्स के साथ की है, उसके रुख में परिवर्तन हुआ है। सम्भव है, यह संयोग मात्र हो।

मुझे इस समय जो समाचार मिल रहे हैं उनसे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ है। किसी दिन मैं समाचार पढ़ता हूँ कि यदि शिक्षा मंत्री अमुक काम नहीं करेंगे तो विद्यार्थी हड़ताल कर देंगे। दूसरे दिन पढ़ने में आता है कि यदि उद्योग मंत्री दियासलाई के कारखाने में काम करने वालों की मांगों का निपटारा सन्तोषजनक रीति से नहीं करेंगे तो वे हड़ताल कर देंगे। कानपुर की बड़ी हड़ताल का अन्त में निपटारा तो हो गया, परन्तु मैंने पढ़ा है कि एक बार तो हड़तालियों ने पंतजी के निर्णय को मानने से इन्कार कर दिया था। उधर अण्डमान की भूख हड़ताल से लोगों के दिमाग परेशान हैं ही।

ऐसा प्रतीत होता है कि कांग्रेसी शासन में हर कोई मनमानी करना चाहता है। मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि नियंत्रण-सम्बन्धी जनमत तैयार करने के मामले में बापू कुछ उठा नहीं रखेंगे, पर किसी दिन मुझे यह खबर सुनकर आश्चर्य नहीं होगा कि प्रदर्शनकारी दल बनाकर झंडों के साथ

जयघोष करते हुए मंत्रियों के घरों में जा घुसे। अबतक जनता के उद्गारों को जिस प्रकार दबाया गया है उसकी प्रतिक्रिया अब दिखाई दे रही है। और यह अच्छा ही है कि दबी हुई गैस निकल जाय, परन्तु जनता के लिए यह जानना बिल्कुल जरूरी है कि स्वराज्य में भी उन्हें कानून मानकर अनु-शासन और बुद्धिविवेक के साथ चलना होगा। यह मानी हुई बात है कि जनता धीरे-धीरे यह सबकुछ जान जायगी, परन्तु क्या तुम्हारी यह राय नही है कि जनता को इस ढंग की शिक्षा देने का काम अविलम्ब आरम्भ कर दिया जाय।

मेरी समझ में यह बात अच्छी तरह नही आई कि मेरे तुम्हें यह बताने पर कि बापू की कीमत बहुत ऊँची चली गई है, उन्हें अविश्वासपूर्ण ढग से हँसी क्यों आई। मै यह स्वीकार करता हूं कि रुपये के बाजार में भाव ऊँचे भी जाते है और नीचे भी गिरते है, पर मै एक व्यापारी की हैसियत से तुम्हे यह तो बता ही दू कि भाव उतनी तेजी से नही घटते जितना तुम समझते हो। यदि आंकड़े ठीक-ठीक ढंग से रखे गये तो एकरूपता काफी दिनों तक जारी रहती है। इसलिए मेरा यह कहना ठीक ही था कि हमारा शासन-प्रबन्ध काफी दिनों तक चल सकता हैं। हां, यदि हम भंग करना चाहें तो वह काफी दिनों तक नहीं चलेगा। परन्तु चूंकि हमारी ऐसी इच्छा नही हैं, इसलिए मै तो नही समझता कि किसी प्रकार की अड़चन उपस्थित होगी। यदि हमारे मंत्री लोग स्थायी रूप से चलते रहें तो न तो अंग्रेजों को ही देवता बनने की जरूरत पड़ेगी और न हमारे मंत्रियों को ही उनके आगे मस्तक नवाना पड़ेगा। सम्भवतः यही होगा कि दोनों पक्ष अपने रुखों में फेरफार कर लेगे और यह बात समझ लेगे कि दोनों ओर अच्छाई प्रचुर मात्रा में मौजूद है, कसर इतनी ही थी कि उसे अभीतक समझा नही गया। अंग्रेज लोग बड़े चतुर होते हैं और दूर तंक की सोचते हैं। मुझे तुमसे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सभी प्रान्तों में गवर्नरों और मंत्रियों ने श्रीगणेश अच्छे ढंग से किया।

गवर्नरों के सामाजिक निमन्त्रण मंत्री लोग स्वीकार करें या न करें, इस सम्बन्ध में बापू का निर्णय मेरी धारणा के अनुकूल ही निकला। मैंने सर रोजर के सामने उनका दृष्टिकोण ठीक ढंग से ही रखा। पर यदि मुख्य मंत्री सामाजिक सम्पर्क रख पाते तो अच्छा ही होता, क्योंकि इससे कोई ग़लतफहमी नहीं होती। अब वैसा होने की सम्भावना हैं। मुख्य मंत्रियों के सम्बन्ध में इस प्रकार की कड़ाई न बरती जाती तो अच्छा रहता।

चर्चिल के सम्बन्ध में तुमने जो कहा सो जाना। परन्तु तुमने मेरे इस प्रश्न का उत्तर नही दिया कि बापू चर्चिल का भारत आना पसन्द

करेंगे या नहीं। चर्चिल जो कहते हैं उसकी ओर कान मत दीजिए। वह तो सोलहआने राजनीतिज्ञ हैं और उनकी एक नीति सार्वजनिक होती है, दूसरी निजी। पर मैं इतना तो कह ही दूं कि आदमी की हैसियत से उनमें सहृदयता भरी पड़ी है। वह मिथ्या गर्व से मुक्त हैं और उनमें बच्चों जैसी सरलता है। उन्होंने मेरे सामने यह स्वीकार करने की ईमानदारी दिखाई कि जब उन्होंने राज्यच्युत राजा (एडवर्ड) के पक्ष का समर्थन किया तो उन्हें यह पता नहीं था कि जनमत उसके इतना विरुद्ध है। मैंने उनसे इंग्लैंड में राजतंत्र की अवस्था की भी चर्चा की और इस सम्बन्ध में भी बातचीत की कि वह ब्रिटिश सरकार के मंत्रिमण्डल में क्यों नहीं हैं। मैंने अनुभव किया कि वह इंग्लैंड पर शासन करने वाले आधा दर्जन आदमियों में से एक हैं। उन्होंने मुझे साफ-साफ बता दिया कि वह भारत के पक्ष में लेख लिखेंगे। राजनीति क्या पदार्थ है, सो मुझे उन्हींके द्वारा याद आया।

तुम्हारे दिल्ली वाले पत्र से मुझे कोई खास समाचार नहीं मिला। शायद तुम विवेकपूर्ण चुप्पी साधना चाहते थे। तुमने देवदास के पास अपने नाम भेजे पत्र की नक़ल का ज़िक्र किया है। मैं हमेशा एक प्रति देवदास को, एक राजाजी को और एक अपने भाई रामेश्वरजी को भेजता हूं जिससे वह सरदार को दिखा सकें।

मुझे तुम्हारे पत्र से पहली बार मालूम हुआ कि सीमाप्रान्त के मंत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया है। तो अब आप लोगों के सात मंत्रिमंडल होंगे।

मैंने तुम्हारे पास बापू के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जो तार भेजा उसका कारण यह था कि तुम्हारे पत्र के अलावा मैंने समाचार-पत्रों में भी पढ़ा था कि जब बापू दिल्ली में उतरे तो बड़े थके दिखाई पड़ते थे। आशा है, अब उनकी थकावट पूरी तरह दूर हो गई होगी। मैं इस सम्बन्ध में बापू को कुछ नहीं लिख रहा हूं क्योंकि मैं जानता हूं कि उनके स्वास्थ्य की देख-भाल स्वयं उनसे अधिक अच्छी तरह कोई नहीं कर सकता है। कसर की बात इतनी ही है कि वह कभी-कभी सामर्थ्य से अधिक काम करने लगते हैं। मैं वापसी पर इस सम्बन्ध में उनसे बात करूंगा।

मैं इस मामले में तुमसे पूरी तौर से सहमत हूं कि सरदार और राजेन्द्र-बाबू ने अलग रहकर भारी भूल की। शायद एक वर्ष के अनवरत कार्य के बाद यह गलती दूर कर ली जाय।

मैं मधुमक्खी-पालन और केबिनेट सरकार पर पुस्तकें लेता आऊंगा। तुमने अपने पत्र के साथ जिस सूची के नत्थी करने की चर्चा की है वह मुझे

नहीं मिली है। परन्तु मैं इस विषय पर कुछ अच्छी पुस्तकें लेता आऊंगा।

तुम्हारा ही सस्नेह
घनश्यामदास

इसके बाद ही गाँधीजी को सीमाप्रान्त के गवर्नर सर जार्ज कनिंघम का यह पत्र प्राप्त हुआ—

गवर्नर का शिविर
उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त
एबटाबाद
१७ अगस्त, १९३७

प्रिय श्री गांधी

मुझे अभी-अभी वायसराय महोदय का एक पत्र मिला है जिसमें उन्होंने आपके साथ अपनी गत ४ अगस्त की बातचीत का सारांश दिया है। मैं समझता हूं कि हिज ऐक्सीलेंसी ने आपको बताया है कि यदि आप उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त मे आना चाहे तो उन्हे कोई आपत्ति नही है। मैंने इस विषय की चर्चा अपने मंत्रियों से की है और उनकी सहमति सहित आपको सूचित करता हूं कि आपके इस प्रान्त में आने पर कोई आपत्ति नहीं है। मुझे मालूम हुआ है कि हिज ऐक्सीलेसी ने आपसे कह दिया था कि यह जरूरी है कि आप अपने दौरे में कबीलों के मामले से सम्बन्ध रखनेवाली बातों से बिल्कुल अलग रहें। मै समझता हूं कि आपने इस सम्बन्ध में हिज़ ऐक्सीलेंसी के निश्चय को स्वीकार कर लिया था और मै जानता हूं कि आप इस आश्वासन का अक्षरशः पालन करेंगे।

यदि हमारी भेंट का कोई अवसर उपस्थित हुआ तो मुझे उस पुरानी जान-पहचान को, जिसका जन्म उस समय हुआ था जब मैं लार्ड हेलीफैक्स के साथ था, ताजा करके प्रसन्नता होगी।

आपने हिज़ ऐक्सीलसी से खान अब्दुल गफ्फार खाँ वाले मामले का भी जिक्र किया था। यह मामला अभी मंत्रिमंडल मे विचाराधीन है। आशा है, दो-एक दिन में फैसला हो जायगा।

भवदीय
जी० कनिंघम

मंत्रियों को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनके जन्मदाता गवर्नर लोग नहीं थे, खुद हमीं लोग थे। गवर्नरों ने तो अपने आपको नई परिस्थितियों के साँचे में ढालने में काफी तत्परता का परिचय दिया। हिंसा के दर्शन हुए। साथ ही पद-लोलुपों की भीड़ इकट्ठी होने लगी। महादेवभाई के लम्बे पत्र के ये कुछ उद्धरण हैं, जिनसे कठिनाई के प्रारम्भ का पता चलता है:

मंत्रिमंडल ठीक ही चल रहे हैं। अफसरों की ओर से सहयोग का अभाव नहीं है। मुझे तो शक-सा होता है कि उन्हें ठीक-ठीक आचरण करने का लदन से आदेश मिला है। अहमदाबाद के कमिश्नर गैरेट मंत्री मुरारजी को लेने स्टेशन जाता है और उनके साथ काफी दूर तक तीसरे दर्जे में सफर करता है। है न अनहोनी-सी बात? आपको बारडोली और खेड़ा की नीलाम की हुई जमीनों के झगड़े की तो याद होगी ही। ऐसा प्रतीत होता है कि अब गैरेट जमीनें उनके मालिकों को दिलाने में कोई अड़चन नहीं डालेगा। जिस पुलिस दरोगा के खिलाफ अधिकार का घोर दुरुपयोग करने का आरोप था उसने मंत्री मुरारजी के बारडोली पहुंचते ही गोली मार कर आत्म-हत्या कर ली। पर इसका तो मैंने योंही जिक्र कर दिया। राजाजी को सिविलियनों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो रहा है। बेचारे उड़ीसा में शायद कुछ अड़चन पैदा हो तो हो, पर वह भी कुछ दिनों के लिए ही होगी।.

मुझे भय है कि हमारी कठिनाइयां स्वयं हमारे ही द्वारा उत्पन्न की जायंगी। अभी हममें संगठन की बड़ी कमी है। हमारे मित्र लोग इस नवीन परिस्थिति से लाभ उठाकर चारों ओर हड़ताल कराना चाहेंगे और स्थिति पर काबू पाने में असमर्थ रहने के लिए मंत्रिमण्डलों की बदनामी देख कर खुश होंगे। राजाजी ने अपने प्रान्त के सभी राजनैतिक बंदियों को, जिनमें हिंसावादी और अहिंसावादी दोनों शामिल हैं, रिहा कर दिया है। अन्तिम मोपला बन्दी को अभी उसी दिन रिहा किया गया है। परन्तु इसका परिणाम क्या हुआ? मेहरअली को राजाजी के पदग्रहण करने से पहले छः मास का कारावास हुआ था। राजाजी ने उसे, उसकी अपील खारिज होते ही, रिहा कर दिया, यद्यपि उसकी रिहाई के मामले में उन्हें कुछ अड़चनों का सामना करना पड़ा था जैसा कि मैं अपने एक पत्र में कह ही चुका हूं। परन्तु रिहा होने के दो दिन के भीतर ही इस आदमी ने

एक स्पीच मे आग उगली और लोगों को हिंसा के लिए उभारा। बेचारे राजाजी क्या करें। बम्बई में इस ढंग के आधा दर्जन कैदी अभी जेल में हैं ही। मंत्रियों ने उनकी रिहाई का हठ पकड़ा, पर वे अपनी चेष्टा मे सफल नही हुये। पर क्या हम इस प्रश्न को लेकर सम्बन्ध-विच्छेद कर सकते है। यदि अहिंसा के प्रश्न पर हम लोग एकमत होते तो यह प्रश्न उतना कठिन नहीं होता, पर अभी तो अहिंसा के अर्थ को लेकर ही जवाहरलाल और बापू मे गहरी खाई मौजूद है। इस समस्या के कारण कार्यकारिणी की हाल की बैठक खास तौर से कठिन प्रमाणित हुई, पर अन्त मे सबकुछ सकुशल समाप्त हो गया।

अन्य जटिल समस्याओं को लेकर भी अधिक कठिनाई नही रहेगी। सबकुछ कह चुकने के बाद स्थिति यही दिखाई पड़ती है कि जवाहरलाल के सम्बन्ध में जो कठिनाई है वह ऐसी नही है कि उसपर काबू पाया ही न जा सके। वह भड़कते है और गुस्से में लाल-पीले हो जाते है, परन्तु अन्त में एक खिलाड़ी की भांति पुनः पहले जैसे हो जाते है, तुरन्त ही खेद प्रकट करते है और जबतक उन्हे यह निश्चय नही हो जाता कि कोई खिचाव बाकी नही रह गया है, दम नही लेते।

यह पत्र लम्बा होता जा रहा है, इसपर भी काम की बात अभी बाक़ी रही जाती है। आपको याद होगा कि गत फरवरी मास में आपने दो महिलाओं के लिए, जो यहां भारत के लिए काम कर रही हैं, अपने जहाजों मे से एक में निःशुल्क समुद्र-यात्रा का प्रबन्ध किया था। अब ये लन्दन में आपके एजेन्टों के साथ बातचीत कर रही है कि भारत आने वाले आपके एक जहाज में निःशुल्क समुद्र-यात्रा का प्रबन्ध हो सकता है या नही। इसके अलावा एक तीसरी महिला है जो हमारे साथ कार्य करनेवाले एक जर्मन मित्र, की भावी पत्नी हैं। इन्हें जर्मनी से उनके शान्तिवाद के लिए निकाल दिया गया है। हंसा लाइन के जहाज में इस महिला की उपस्थिति ठीक नही रहेगी। क्या हंसा लाइन के अलावा कोई कार्गो बोट है जिसमें ये तीनों महिलाएं किसी अंग्रेजी बन्दरगाह से या किसी इटालियन बन्दरगाह से निःशुल्क यात्रा कर सकें?

आपने अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कुछ नही कहा। आपने आपरेशन करा लिया या अवकाश के दिन ज्यूरिच में यों ही बिता रहे हैं? बापू जानने को बहुत उत्सुक हैं। मैंने इस सम्बन्ध में रामेश्वरदासजी को भी लिखा है, क्योंकि सम्भव है, आपने उन्हें विस्तृत रूप से लिखा हो। आशा है, आपको बापू के सम्बन्ध में मेरा तार मिल गया होगा। उनके रक्तचाप में तो वृद्धि नहीं हुई थी, पर कार्याधिक्य के कारण वह थकान महसूस कर रहे

थे। उन्होंने देखा कि यदि अभी सतर्कता से काम नही लिया गया तो आगे खतरा है। उन्होंने अपनी दिनचर्या में तुरन्त ही काट-छांट की और आराम लेना शुरू कर दिया। वह प्रतिदिन प्रार्थना के बाद स्वतः ही मौन धारण कर लेते हैं। इससे दूसरे दिन सुबह चार बजे तक उन्हें पूरा विश्राम मिल जाता है। घबराने की कोई बात नही है, खातिर-जमा रखिये।

आपका
महादेव

२६ अगस्त को महादेवभाई ने इसी विषय पर फिर लिखा :

जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, त्रुटि अपने ही लोगों की है। आपको 'काकोरी डकैती काण्ड' के कैदियों की तो याद होगी ही। उन्हें कुछ वर्ष पहले घोर हिंसात्मक और अक्षम्य अपराधों के लिए दण्ड दिया गया था। पंतजी ने उन सबको रिहा कर दिया है। यह उनके लिए श्रेय की बात तो हुई ही, हेग के लिए भी कुछ कम श्रेय की बात नही हुई, क्योंकि वह यदि चाहते तो उनकी रिहाई के विरुद्ध आपत्ति खड़ी कर सकते थे। परन्तु उनके रिहा होते ही हमारी मूढ़ कांग्रेस कमेटी ने घोषणा की कि उनका जलूस निकाला जायगा। बेचारे पंतजी असमंजस में थे। उनसे दृढ़ता दिखाने को कहा गया और उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि इस मामले में हठ किया गया तो भविष्य में वह ऐसा करने में असमर्थ रहेंगे। जवाहरलाल ने भी इन जोश-खरोश वाले कांग्रेसियों को किसी प्रकार का बढ़ावा नही दिया। इस प्रकार बात वही-की-वही रह गई।

मदरास में राजाजी ने परिस्थिति पर अत्यन्त दक्षता-पूर्वक काबू कर रखा है। परन्तु उन्हे भी चिन्ता से मुक्त नहीं कहा जा सकता है। उन्हें अथक परिश्रम करना पड़ता है। एक मोपला एम० एल० ए० को बड़ी अभिलाषा थी कि मंत्रिमण्डल में उसे भी स्थान मिले। उसे नही लिया जा सका। अब उसने राजाजी के पास इस आशय के पत्रों का ढेर लगा दिया है कि मोपला विद्रोह अनिवार्य है। उन प्रदेशों में एक प्रकार की धारणा बद्धमूल है कि हर बीस साल बाद विस्फोट अवश्यम्भावी है। ईश्वर का आदेश यही है। आखिरी बार विस्फोट १९२१ में हुआ। अब नये विस्फोट के लिए उपयुक्त समय आ पहुंचा है, या आने ही वाला है। राजाजी ने तो जोरदार शब्दों में कह दिया है, "मैं इन लोगों की खामोशी नही खरीदूंगा।" सम्भव है, ये सब बन्दरघुड़कियाँ मात्र हों, पर इनका सिलसिला जारी है।

पंतजी को कानपुर में जैसी कुछ विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ा, आपको मालूम हो है। अन्य प्रदेशों में भी स्थिति चिन्ता से मुक्त नहीं है। खेर ने गुलजारीलाल को अपना सेक्रेटरी नियुक्त करके अक्लमन्दी का काम किया है। वह यत्र, तत्र, सर्वत्र घूमते रहते हैं और अबतक तो हड़तालों का बड़े सन्तोषजनक ढंग से अन्त करने में सफल हुए हैं; परन्तु उनके सामर्थ्य की भी सीमा तो है ही।

सप्रेम, आपका ही
महादेव

इन दिनों लार्ड लिनलिथगो के साथ मेरी जो बातचीत हुई उसके दौरान में उन्होंने यह प्रकट किया कि वह व्यक्तिगत रूप से संघ में विश्वास नहीं करते। भारतीय शासन-विधान मोटे तौर पर दो भागों में विभक्त था। एक भाग के द्वारा तुरन्त प्रान्तीय स्वायत्त शासन प्रदान किया गया था और मंत्रियों द्वारा शासन की व्यवस्था की गई थी। दूसरे भाग में सारे भारत के लिए एक संघ की कल्पना की गई थी, पर उसका अस्तित्व में आना तभी संभव था जब राजा लोग, जो मुख्यरूप से बाधक सिद्ध हो रहे थे, उससे सहमत हो जाते। दुर्भाग्यवश संघ के प्रति लार्ड लिनलिथगो की व्यक्तिगत नापसंदगी ने, जिसका संभवत: उनकी कार्यकारिणी परिषद् के कुछ सदस्य भी स्वागत करते थे, उन्हें ऐसा कोई कदम उठाने से विरत रखा, जिससे राजाओं को संघ का विचार स्वीकार करने में प्रोत्साहन मिलता। यदि उन्होंने ऐसा कदम उठाया होता तो उनके पास उसके पक्ष में जबर्दस्त दलील थी, क्योंकि उस समय क्षितिज पर युद्ध के बादल उमड़ रहे थे। पर उस समय ब्रिटेन के प्रधान मंत्री नेबिल चेम्बरलेन थे और लार्ड लिनलिथगो और भारत के अधिकाँश अंग्रेज व्यवसायी आँख मूँदकर चेम्बरलेन के पद-चिन्हों का अनुसरण कर रहे थे। चेम्बरलेन की भविष्यवाणी थी कि युद्ध नहीं होगा। इस कारण संघ के पक्ष में जो सबसे वजनदार दलील थी, उसकी उपेक्षा कर दी गई।

केवल आखिरी क्षणों में वायसराय को अपने इस कर्तव्य का ध्यान आया कि उन्हें राजाओं से संघ के पक्ष में जोरदार ढंग से कहना चाहिए, पर इतने पर भी उन्होंने अपने कर्तव्य को अधूरे दिल से ही पूरा किया। उन्होंने रियासतों का दौरा करने के लिए एक ऐसा प्रतिनिधि नियुक्त किया, जिसे संघ के लिए खुद लार्ड लिनलिथगो की अपेक्षा अधिक उत्साह नहीं था। शायद सर आर्थर लोदियन को अपना यह सही चित्रण स्वीकार होगा। जब युद्ध शुरू हुआ तो वायसराय ने संघ की योजना को आगे बढ़ाने के बजाय सारी योजना को ही झटपट खत्म कर दिया। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया होता तो भारत का सारा इतिहास ही दूसरा होता और हमें देश का विभाजन न देखना पड़ता।

वायसराय के साथ मेरी जो मुलाकात हुई उसका मैंने एक विवरण तैयार किया था और उसे बापू के लिए महादेवभाई के पास भेजा था। यह वह विवरण है :

४ दिसम्बर १९३७

प्रिय महादेवभाई

इसके बाद हमने संघ-व्यवस्था के सम्बन्ध मे बात की। वाम और दक्षिण पंथियों, दोनो ही ने व्यवस्था के विरुद्ध आपत्तियां खड़ी की हैं। यदि स्थिति पर सतर्कता और सहानुभूति के साथ विचार नही किया गया तो दुबारा वार्ता भंग होने की सम्भावना है। उन्होंने कहा कि वह स्वयं संघ-व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं हैं। वह आलोचकों की आपत्तियों को समझते हैं। पर उनकी इच्छा रहते हुए भी कानून नहीं बदला जा सकता। हमारे आलोचना-कार्य के सम्बन्ध मे उन्हें एक बात पसन्द नही आई। उनके सामने कोई रचनात्मक सुझाव नहीं रखा गया। मैने उन्हे बताया कि ऐसा सुझाव बापू की ओर से आयगा, परन्तु स्वयं उन्हे (वायसराय को) अभी से यह सोचने में लग जाना चाहिए कि वह समस्या का क्या हल पेश कर सकते हैं। स्वयं मेरे दृष्टिकोण से भी दो बातें आपत्तिजनक हैं। नरेशों के प्रतिनिधि बिना किसी चुनाव के आ धमकेंगे। इसके अलावा स्वयं विधान के रचयिताओं को यह प्रमाणित करना है कि विधान मे स्वतः विकास के अणु

विद्यमान है, जैसा कि अंग्रेज लोग आये दिन दावा करते रहते हैं। यदि लोकप्रिय मंत्रियों के हाथ में सेना और विदेश विभाग नहीं दिये जायंगे तो हम औपनिवेशिक स्वराज्य के लक्ष्य तक कैसे पहुचेंगे ? यह काम तो वायसराय का है कि वह किसी-न-किसी तरह भारत की जनता को इस बात का विश्वास दिलाये कि विधान में जो कुछ कहा गया है वह कोरा ज़बानी जमा-खर्च नहीं है। वायसराय ने उत्तर में कहा कि विधान के सम्बन्ध में जो दावा किया गया है वह ज़बानी जमाखर्च मात्र नहीं है। वह अपने मंत्रिमंडल को सेना और विदेश विभाग के मामले में उत्तरदायित्व-रहित मानने को तैयार नहीं हैं। यह माना कि कानूनी तौर से उनके मंत्रिमंडल का इन विषयों पर कोई अधिकार नहीं है, पर परिपाटी के द्वारा उनके हाथों में यह अधिकार सौंपा जा सकता है। परन्तु यह उनकी अपनी सम्मति थी। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि इस मामले को फिलहाल यहीं छोड़ दिया जाय, जिससे वह ठीक समय पर इस विषय में अपना दिमाग काम में ला सकें। मैंने बताया कि संघ की स्थापना के पहले उनका गांधीजी से बात करना कितना जरूरी है और साथ ही यह भी कहा कि यदि वह जवाहरलालजी के साथ जान-पहचान कर सकें तो इससे गांधीजी के कंधों का भार बहुत-कुछ हल्का हो जायगा। उन्होंने मुझसे पूछा कि जवाहरलालजी कलकत्ता कब आ रहे हैं और जब मैंने बताया कि सम्भवत: वह ८ तारीख को पहुंच जायंगे तो उन्होंने कहा, "ओह, इतनी जल्दी।" तुम्हें शायद पता ही होगा कि वायसराय १३ या १४ को कलकत्ता पहुंच रहे हैं।

इस पत्र के द्वारा मंत्रियों की प्रारंभिक कठिनाइयों पर प्रकाश पड़ता है:

३१ दिसम्बर १९३७

प्रिय महादेवभाई,

कल मुझसे लेथवेट मिलने आये। उनसे दो घण्टे तक लम्बी-चौड़ी बातचीत होती रही। नज़रबन्द और दण्डित कैदियों और संघ की चर्चा खास तौर से हुई। वह सारी बात वायसराय को बतायेंगे। इसके बाद यदि जरूरत समझी गई तो मुझसे वायसराय से मिलने को कहा जायगा। नज़रबन्दों और दण्डित बन्दियों के सम्बन्ध में मैंने उन्हें वही बातें बताईं जो एन्ड्रयूज ने और मैंने गवर्नर से कही थीं। बापू के दृष्टिकोण के सम्बन्ध में मुझे तुम्हारा पत्र मिल ही गया था। मैंने वह पत्र लेथवेट को पढ़कर सुनाया और कहा कि बापू यहां आवें, इससे पहले ही कैदियों की रिहाई

आरम्भ हो जानी चाहिए और जारी रहनी चाहिए। यदि इस नीति क अवलम्बन नहीं किया गया तो जनता और कैदियों में बेचैनी फैल जायगी और यदि कैदियों ने दुबारा भूख हड़ताल की तो इससे सभी को परेशानी होगी और इसका बापू के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा सो अलग; क्योंकि उनका स्वास्थ्य भी राजनैतिक महत्व रखता है। उन्होंने मेरी बात मानते हुए कहा कि बापू का स्वास्थ्य निश्चय ही राजनैतिक महत्व रखता है। उन्होंने पूछा कि क्या मैं यह चाहता हूं कि कैदियों को थोड़ी-थोड़ी संख्या में छोड़ना अभी से आरम्भ कर दिया जाय जिससे जनता को भी आश्वासन हो कि समस्या की अवहेलना नहीं की जा रही है ? मैंने कहा; हां। इसपर वह बोले कि जहां तक अंडमान के कैदियों का सम्बन्ध है, उन्हे भारत वापस लाया जा रहा है। उन्होंने वायसराय के नाम बापू के उस तार का जिक्र किया जो उन्हे उस समय मिला जब कैदियों के भूख हड़ताल करने की खबर मिली थी। उन्होंने बताया कि बापू को कैदियों के भारत ले जाने की खबर कर दी गई थी। उन्होंने कहा कि यह कार्य ४ या ६ सप्ताह के भीतर समाप्त हो जायगा, फिर उनकी रिहाई के प्रश्न पर विचार किया जायगा। मैंने कहा कि नजरबन्दों को तुरन्त ही रिहा किया जा सकता है। उन्होंने इस सम्बन्ध मे वायसराय से बात करने का वचन दिया। मुझे आशा है कि वायसराय सहायता करेंगे। वायसराय से बात करने के बाद मैं गवर्नर से दुबारा मिलूगा।

संघ व्यवस्था के सम्बन्ध में मैंने उनसे कहा कि यह नितान्त आवश्यक है कि बापू के स्वास्थ्य लाभ करने के तुरन्त बाद वायसराय उनसे बातचीत आरम्भ कर दें। यदि संघ व्यवस्था को मतगणना के अभाव में लादा गया तो उसका बड़ा बुरा परिणाम होगा। मैंने कहा कि मेरी तो समझ मे विलम्ब करना ठीक नहीं होगा। इसके विपरीत मुझे आशा है कि बापू समस्या का हल सोच निकालेंगे। वायसराय तक यह बात भी पहुचा दी जायगी।

इसके बाद हम लोगों ने युक्तप्रान्त के सम्बन्ध मे बातचीत की। मैंने बताया कि जब कांग्रेस कानून और व्यवस्था कायम रखने की भरपूर चेष्टा कर रही है तो गवर्नर का हस्तक्षेप उचित नही हुआ। लेथवेट का कहना था कि गवर्नरों ने और कहीं हस्तक्षेप नही किया, केवल इसी मामलेमें हस्तक्षेप हुआ, क्योंकि परमानन्द हिंसा का प्रचार कर रहे और देहरादून में सैनिकों पर उसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ रहा था। पंतजी से इसके लिए बारम्बार आग्रह किया गया, पर किसी-न-किसी कारण से पंतजी इस ओर से उदासीन रहे। क्या मंत्रियों को इस हद तक छूट देना अच्छा होगा कि अन्त में स्थिति इतनी शोचनीय हो जाय कि मिलिटरी की सहायता लेने के सिवा

और कोई चारा ही न रहे ? उन्हें किदवई की वह स्पीच भी अच्छी नहीं लगी, जिसमें उन्होंने कहा था कि यदि जनता अहिंसात्मक वातावरण नहीं बनाये रखेगी तो उन लोगों को इस्तीफा देना पड़ेगा। यदि मंत्रियों का रुख यही है तब तो गवर्नरों को मंत्रियों के अहिंसा बनाये रखने की क्षमता में सदैव सन्देह रहेगा। क्या यह गवर्नर के साथ न्याय होगा कि मंत्री लोग स्थिति को बिगाड़ कर इस्तीफा दें ? क्या वैसी अवस्था में गवर्नरों का यह कर्तव्य नहीं होगा कि वे सदैव इस ओर से सतर्क रहें कि अवस्था अधिक न बिगड़े ? मैंने किदवई की स्पीच का अपेक्षाकृत अधिक उत्तम अर्थ लगाया। मैंने कहा कि मंत्रियों को अधिकार उनके निर्वाचकों से प्राप्त हुए हैं और यदि समूची जनता विद्रोह पर उतारू हो जाय तो मंत्रियों के पास निर्वाचकों से यह कहने के अलावा और कोई चारा नहीं रह जाता है कि चूंकि अब हम लोगों पर आपका विश्वास नहीं रहा है इसलिए हम इस्तीफा दे रहे हैं, कुछ इस कारण नहीं कि हमें गवर्नरों के खिलाफ कोई शिकायत है, बल्कि स्वयं आप लोगों की उच्छृङ्खलता के कारण। मेरी समझ में किदवई की स्पीच उनकी अवस्था को सही-सही बताने वाली थी। उसका गलत अर्थ नहीं लगाना चाहिए था। उन्होंने मेरी बात को समझ तो लिया, पर साथ ही उन्होंने यह दलील पेश की कि यदि मंत्री लोग निर्वाचकों के भय से कानून और व्यवस्था कायम रखने के लिए आवश्यक कार्रवाई नहीं करेंगे तो किसी-न-किसी समय गवर्नर को हस्तक्षेप करना ही पड़ेगा। लेथवेट मेरी इस बात से तो सहमत नहीं हुए कि युक्तप्रान्त के गवर्नर सीमा से बाहर चले गये हैं, पर तो भी उन्होंने यह तो स्वीकार किया ही कि मंत्रियों को गलतियां करने के मामले में भी पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। वह यह जानने को उत्सुक थे कि सारे प्रान्तों में से युक्तप्रान्त में ही हिंसाप्रिय वर्ग के साथ ढिलाई क्यों दिखाई गई। अन्य कांग्रेसी प्रान्तों की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

सस्नेह, तुम्हारा ही
घनश्यामदास

भविष्य का चित्र काफी अच्छा प्रतीत हो रहा था। पर लार्ड लिनलिथगो ने विधान मंडल से परामर्श किये बिना ही भारत को युद्ध में घसीटने की भारी भूल कर डाली। मंत्रियों के लिए इस कड़वी खुराक को निगलना मुश्किल हो गया। उन्होंने समस्या का हल निकालने की कोशिश की भी, पर निष्फल रहे और युद्ध

आरम्भ होने के कुछ ही सप्ताह बाद पद त्याग कर दिया। यदि वायसराय ने भारत से परामर्श करने की दूरदर्शिता दिखाई होती तो मुझे सन्देह नहीं कि भारत ब्रिटेन का ही समर्थन करता।

१९४१ के दिसम्बर मास में बापू ने मुझे हिटलर के नाम एक खुले पत्र की प्रति भेजी। कहने की आवश्यकता नही कि सरकारी सेंसर ने हस्तक्षेप किया और उसे प्रकाशित नहीं होने दिया। शायद यह पत्र हिटलर तक भी कभी नहीं पहुंचा। नीचे उस पत्र की नक़ल दी जाती है :

वर्धा, २४ दिसम्बर १९४१

प्रिय मित्र

मैं आपको एक मित्र के नाते लिख रहा हूँ, सो कोरा शिष्टाचार मात्र नहीं है। मैं किसी को अपना शत्रु नहीं मानता। पिछले ३३ वर्षों के बीच मेरा यह जीवनकार्य रहा है कि जाति, रंग और धर्म का भेद किये बिना समूची मानव जाति के साथ मित्रता का नाता जोड़ूं।

आशा है, आपके पास यह जानने के लिए समय होगा और इच्छा भी होगी कि मानव-जाति का एक बड़ा-सा भाग, जो विश्वव्यापी मैत्री के सिद्धान्त मे विश्वास करता है, आपके कार्यो को किस दृष्टि से देखता है। आपकी वीरता और पितृभूमि के प्रति आपकी निष्ठा के सम्बन्ध मे हमें संदेह नही है और आपके विरोधियों ने आपको जो दानव बताया है सो भी हम लोग मानने को तैयार नही है। पर आपकी और आपके मित्रों और प्रशंसकों की रचनाओं और घोषणाओं से इस विषय में सन्देह नही रह जाता है कि आपके बहुत सारे काम दानवतापूर्ण हैं और मानवी प्रतिष्ठा की कसौटी पर ठीक नही उतरते, विशेष रूप से मेरे जैसे विश्वव्यापी मित्रता के पुजारियों की दृष्टि में। चेकोस्लोवाकिया को लांछित किया गया, पोलैण्ड के साथ बलात्कार किया गया, डेन्मार्कको हड़प लिया गया—ये सब कार्य इसी कोटि मे आते है। आपका जीवन सम्बन्धी जैसा कुछ दृष्टिकोण है, उसके अनुसार ऐसे दस्युतापूर्ण कार्यो की गणना अच्छाइयों में है, सो मैं जानता हूँ। पर हम लोगों को तो बचपन से ही ऐसे कृत्यों को मानवता को गिराने वाला बताया गया है। अतएव हमारे लिए आपकी सशस्त्र विजय की कामना करना सम्भव नहीं है।

किन्तु हमारी स्थिति अपने ढंग की निराली है। हम ब्रिटिश साम्रा-

ज्यवाद का नाज़ीवाद से कुछ कम प्रतिरोध नहीं करते हैं। यदि अन्तर है तो केवल परिमाण का। मानव-जाति के इस पंचमांश को अंग्रेजों ने अपने शिकंजे में जकड़ने के लिए जिन साधनोंका अवलम्बन किया वे औचित्यपूर्ण कदापि नहीं थे। पर हम अंग्रेजी प्रभुत्व का प्रतिरोध करते हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अंग्रेज जाति का अमंगल चाहते है। हम उनको युद्धभूमि में हराना नहीं चाहते, उनका हृदय-परिवर्तन करना चाहते है। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध हमारा विद्रोह शस्त्रविहीन विद्रोह है। हम उनका हृदय परिवर्तन कर सकें या न कर सकें, हमने उनके शासन को अहिंसात्मक असहयोग द्वारा असंभव बनाने का संकल्प अवश्य कर लिया है। यह कुछ ऐसा तरीका है कि इसमें पराजय के लिए कोई स्थान है ही नही। उसका आधार यह ज्ञान है कि विजेता को अपने शिकार के स्वेच्छा-पूर्वक या जबरदस्ती दिये गए सहयोग के बिना लक्ष्य सिद्धि नही हो सकती। हमारे शासक हमारी भूमि और हमारे शरीर पर अधिकार कर सकते हैं, हमारी आत्मा पर कदापि नहीं। भारतवासी मात्र—पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों—का विनाश कर के ही वे हमारी जमीन और हमारे शरीर पर कब्ज़ा कर सकते हैं।

यह ठीक है कि ऐसी वीरता का परिचय देना सबके लिए शायद संभव न हो, और संभव है, भय की अधिक मात्रा से विद्रोह की कमर टूट जाय। पर यह तर्क यहां असंगत है, क्योंकि यदि भारत में ऐसे स्त्री-पुरुष काफी संख्या में मिल सकें जो अपहर्ताओं के प्रति बिना किसी प्रकार की दुर्भावना रखे उनके आगे घुटने टेकने के बजाय अपने जीवन का बलिदान करने को तैयार हों तो वे हिंसा की बर्बरता से मुक्ति का मार्ग दिखाने मे अवश्य समर्थ होंगे। मेरा अनुरोध है कि आप इस बात पर विश्वास करिये कि आपको इस देश मे ऐसे स्त्री-पुरुष आशा से अधिक संख्या में मिल जायंगे। पिछले बीस वर्षों से उन्हें इसीकी दीक्षा दी जाती रही है।

हम पिछली आधी शताब्दी से ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेकने की कोशिश कर रहे है। स्वतन्त्रता का आंदोलन आज जितना प्रबल है उतना पहले कभी नही था। देश की सब से अधिक शक्तिशाली राजनैतिक संस्था, अर्थात् कांग्रेस, इस लक्ष्य की प्राप्ति में प्रयत्नशील है। हमने अहिंसात्मक उपायों द्वारा पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। हमें दुनिया की सब से अधिक संगठित हिंसा का, जिसका ब्रिटिश सत्ता प्रतिनिधित्व करती है, मुकाबला करने के लिए उपयुक्त साधन की तलाश थी। आपने उस सत्ता को चुनौती दी है। अब यही देखना है कि ब्रिटिश सत्ता और जर्मन सत्ता में कौन अधिक संगठित है। हमारे और दुनिया की अन्य गैर यूरोपीय जातियों के लिए

ब्रिटिश प्रभुत्व का क्या अर्थ होता है सो हम जानते है; किन्तु हम ब्रिटिश शासन का अंत जर्मनी की सहायता से कभी नहीं करना चाहेंगे। हमें अहिंसा के रूप में जो शक्ति प्राप्त हुई है यदि उसे संगठित रूप दिया जाय तो वह दुनिया की हिंसक-से-हिंसक शक्तियों के संयुक्त बल से मोर्चा ले सकती है। जैसा कि मै कह चुका हूँ, अहिंसा-प्रणाली में पराजय के लिए कोई स्थान नहीं है। उसका मंत्र तो 'करो या मरो' है, और वह दूसरों को मारने या चोट पहुंचाने मे विश्वास नही रखती है। उसके उपयोग मे न धन की दरकार है, न उस विनाशकारी विज्ञान की जिसके विकास को आपने इतनी चरम सीमा तक पहुंचा दिया है। मुझे तो यही आश्चर्य है कि आप यह क्यों नही समझते कि आपकी प्रणाली पर किसी का इजारा नहीं है। यदि अंग्रेज न सही तो निश्चय ही कोई और शक्ति आपकी प्रणाली मे सुधार करके आपके ही हथियार से आपको पराजित कर देगी। आप अपनी जाति के लिए कोई ऐसी विरासत नहीं छोड़ रहे है, जिसपर वह गर्व कर सके। निर्दयतापूर्ण कृत्यों का पाठ करने मे उसे गर्व का बोध कदापि नहीं होगा, उनकी रचना में चाहे कितना ही बुद्धि-कौशल क्यों न खर्च किया गया हो। इसलिए मै मानवता के नाम पर आपसे युद्ध बन्द कर देने की अपील करता हूं। आप उन समस्त विवादग्रस्त विषयों को, जो आपके और ब्रिटेन के बीच मे हों, दोनों पक्षों की पसन्द के किसी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सौंप देगे तो आपकी कोई क्षति नही होगी। यदि आपको युद्ध में सफलता मिल गई तो इससे यह सिद्ध नहीं होगा कि न्याय आपके पक्ष मे था। इससे तो केवल यही सिद्ध होगा कि आपकी विनाशकारी शक्ति अपेक्षाकृत अधिक प्रबल थी। इसके विपरीत, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का फैसला, जहां तक मनुष्य के लिए संभव हो सकता है, यह प्रकट करेगा कि न्याय किस ओर था।

आप जानते ही है कि मैंने कुछ ही समय पहले अंग्रेज-जाति मात्र से अहिंसात्मक प्रतिरोध की प्रणाली अपनाने की अपील की थी। मैंने यह अपील इसलिए की थी कि अंग्रेज जानते है कि मै विद्रोही होते हुए भी उनका हितैषी हूं। आप और आपकी जाति के लोग मुझसे परिचित नहीं है। मैने अंग्रेजों से जो अपील की थी, वही अपील आपसे करने का तो साहस मुझे नही होता है, पर वर्तमान सुझाव तो अधिक सरल है, क्योंकि वह अधिक व्यावहारिक भी है और सबका जाना-बूझा भी है।

इस घड़ी यूरोप के लोगों के हृदय शान्ति के लिए छटपटा रहे है और हमने अपना शान्तिमय संघर्ष भी स्थगित कर दिया है। क्या मेरा आपसे इस

घड़ी शान्ति सबन्धी प्रयास करने की अपील करना अनधिकार चेष्टा समझा जायगा ? इस घड़ी का मूल्य स्वयं आपके निकट चाहे कुछ न हो, पर लाखों करोड़ों यूरोपवासियों के लिए वह बहुत मूल्यवान सिद्ध हो सकती है, जिनका शान्ति का चीत्कार मेरे उन कानों मे आ रहा है जिन्हे जन-साधारण की मूक वेदना को सुनने का अभ्यास है। मैंने आपके और सिन्योर मुसोलिनी के नाम, जिनसे इंगलैण्ड की गोलमेज परिषद मे भाग लेकर वापस लौटते समय रोम में मिलने का मुझे सुअवसर मिला था, एक संयुक्त अपील भेजने का इरादा किया था। मैं आशा करता हूँ कि वह इस अपील को आवश्यक परिवर्तन के बाद अपने को भी संबोधित मान लेगे।

मैं हूं आपका सच्चा हितैषी
मो० क० गांधी

मंत्रियों की कठिनाइयों से सम्बन्ध रखने वाला अध्याय समाप्त करने के पहले, मैं यह भी लिख दू कि सन् १९३७ के प्रारम्भ में मैंने श्री चर्चिल को एक पत्र लिखने का दुस्साहस किया था। मैंने लिखा था कि भारत की राजनैतिक स्थिति के बारे में समाचारपत्रों में उनके उद्‌गारों को देख कर मुझे निराशा हुई। मैंने उन्हें अपने इस कथन की याद दिलाई कि कांग्रेस और पुरानी सरकार के प्रतिनिधियों के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव है और पारस्परिक अविश्वास की भावना फैली हुई है। साथ ही मैंने उन्हें यह भी बताया कि कुछ प्रान्तों में चुनावों में ऊंचे से ऊंचे अफसरों ने खुले तौर पर कांग्रेस-विरोधी पक्ष लिया, यह भी कहा कि कांग्रेस ने ऐसे ही वातावरण में नये विधान का श्रीगणेश किया है। मैंने आगे लिखा :

यकीन मानिये, गांधीजी और उनके जैसे विचार रखनेवाले दूसरे लोग विधान को जनता के कल्याण के लिए ईमानदारी के साथ अमल में लाना चाहते हैं।

मैंने आपके वे उद्‌गार गांधीजी तक पहुंचा दिये थे : 'अपने देशवासियों को अधिक रोटी और अधिक मक्खन दीजिये, बस मैं बिल्कुल संतुष्ट हो जाऊंगा। मैं ब्रिटेन के प्रति अधिक वफादारी नहीं, जनसाधारण के लिए अधिक रोटी-मक्खन चाहता हूं।' कांग्रेस ने जो निर्वाचन-सम्बन्धी घोषणा-

पत्र तैयार किया था, सो जनता को अधिक रोटी-मक्खन देने के उद्देश्य से ही किया था। जब कांग्रेस ने आश्वासनों की मांग की तो, गलत या सही, उसका यही खयाल था कि गवर्नर लोग उसके कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में हस्तक्षेप करेंगे। आप इस सन्देह की आलोचना कर सकते है, अथवा जैसा कि लार्ड लोदियन ने कहा, इसका कारण लोकतंत्रीय अनुभव का अभाव हो सकता है, फिर भी वह मौजूद तो है ही। साथ ही मेरा यह विश्वास है कि राजनीतिज्ञता और व्यक्तिगत सम्पर्क से इस गलतफ़हमी को दूर किया जा सकता है।

क्या आपका यह ख़याल नहीं है कि आप जैसा असाधारण राजनेता इस समस्या को हल करने में बहुत अधिक सहायक सिद्ध हो सकता है ?

मैंने यह उद्धरण अपनी स्मरणशक्ति के आधार पर दिया था, और हो सकता है कि उस समय मैंने श्री चर्चिल की बात को गलत समझा हो और उन्होंने 'ब्रिटेन के प्रति अधिक वफादारी नहीं' के स्थान पर 'ब्रिटेन के प्रति अधिक वफादारी भी' या 'साथ ही ब्रिटेन के प्रति अधिक वफादारी भी' कहा हो। जो हो, उन्होंने यह मानने से इन्कार कर दिया कि उन्होंने कहा था, कि उन्हें भारत से ब्रिटेन के प्रति अधिक वफादारी की आशा नहीं है। यह है उनका उत्तर जो उस समय 'व्यक्तिगत' शब्द से चिन्हित किन्तु जिसे अब उन्होंने प्रकाशित करने की अनुमति दे दी है।

व्यक्तिगत

११ पोरपथ मेन्शस,
वेस्टमिन्स्टर
३०, अप्रैल १९३७

प्रिय श्री बिड़ला

आपके पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। आपके वृत्तों में मेरी रुचि बराबर बनी रहेगी। पर आपने जिस वाक्य का उल्लेख किया है, उसमें आपने मेरे कथन को ठीक-ठीक उद्धृत नही किया है। मैंने उन शब्दों का प्रयोग हर्गिज़ नही किया था।

आपको दुनिया की वर्तमान अवस्था पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। यदि ब्रिटेन को किसी कारण से, चाहे वह कारण भारतीय हो या यूरोपीय, स्वेच्छापूर्वक या जबरदस्ती भारत परसे अपना संरक्षण हटा

लेना पड़ा तो भारत फासिस्ट तानाशाही राष्ट्रों—इटली, जर्मनी अथवा जापान—का बराबर शिकार बनता रहेगा, और तब आधुनिक सुविधाओं को देखते हुए, शासन-व्यवस्था में ऐसी कठोरता आ जायगी कि उसकी मिसाल गुजरे हुए जमाने में भी मुश्किल से मिल सकेगी। भारतीय मत-दाताओं और कांग्रेस का तो यही कर्तव्य है कि वे उस महान दायित्व को सम्हालें जो उनके सामने पेश किया गया है, और यह दिखा दे कि वे भारत को एक सुखी देश बना सकते हैं। साथ ही उन्हें ब्रिटेन की साख प्राप्त करने की भरसक कोशिश करनी चाहिए और उसके प्रति आभारी और वफादार होना चाहिए, क्योंकि वही संसदीय शासन-व्यवस्था और भारतीय शान्ति का संरक्षक है।

आपका
विन्सटन चर्चिल

: २३ :

युद्ध-कालीन घटनाएं

लार्ड लिनलिथगो ने विधान-मंडल अथवा भारतीय लोकमत से परामर्श की रस्म पूरी किये बिना ही भारत को युद्धरत राष्ट्र घोषित करने की जो गम्भीर भूल की, उसका परिमार्जन असंभव हो गया। कांग्रेसी मंत्रियों ने युद्ध के पहले पतझड़ में ही पद त्याग कर दिया। यही नहीं, जहां एक ओर वीर भारतीय सेना, जिसपर आज हम ठीक ही इतना गर्व करते हैं, अपनी विशिष्टता स्थापित कर रही थी और ब्रिटिश सेना से भी अधिक तेजी के साथ विक्टोरिया क्रास और दूसरे सम्मान प्राप्त कर रही थी, वहां दूसरी ओर जनता को इन चीजों में किसी प्रकार के आनन्द का बोध नहीं हो रहा था, और यदि वह खुले रूप से विरोधी न थीं तो उदासीन अवश्य थी। बहुतों के दिलों में तो नात्सियों के प्रति एक प्रकार की सहानुभूति तक पैदा हो गई थी। जापान के प्रति तो प्रायः सभी हल्कों में सहानुभूति थी। इसपर विचित्र बात यह थी कि उसकी विजय की कामना किसी को नहीं थी।

पर वायसराय ने फिलहाल गांधीजी के साथ सम्पर्क बनाये रखा और दोनों के बीच काफी पत्र-व्यवहार हुआ। दोनों में उस समय कैसे विचित्र ढंग का सम्बन्ध था सो मेरे नाम महादेवभाई के इस पत्र से प्रकट होगा।

सेवाग्राम
२५. ६. ४२

प्रिय घनश्यामदासजी

ग़नीमत है कि स्वामीजी आपके पास आ रहे हैं। अब मैं आपको

सचमुच का पत्र लिख सकूंगा। आप स्वयं सोच सकते हैं कि आजकल डाक से कोई चीज भेजना कितना असम्भव है।

फिशर की पुस्तक 'मेन एन्ड पोलिटिक्स' आप पढ़ ही रहे हैं। वह यहां चार-पांच दिन के लिए आया था। यहां से रवाना होने से पहले फिशर ने मुझे अपनी डायरी का वह अंश देखने दिया जिसमें बापू के सम्बन्ध में उसके और वायसराय के वार्तालाप का निचोड़ दर्ज था। वार्तालाप रोचक भी था और विचित्र भी। वायसराय ने फिशर से कहा था, "गांधी का रुख इन कई वर्षों के दीर्घकाल मे मेरे प्रति बड़ा अच्छा रहा है और यह कहना मामूली बात नही है, क्योंकि यदि वह यहां दक्षिण अफ्रीका की भांति संत बने रहते तो मानवता का बड़ा कल्याण होता, पर दुर्भाग्यवश वह यहां राजनैतिक पचड़े मे पड़ गये जिससे उनमें मिथ्या गर्व और आत्मश्लाघा उत्पन्न हो गई, परन्तु आप कहते हैं कि कुछ सिविलियनों ने आपको बताया है कि उनका प्रभाव समाप्त हो गया है और उनकी चिन्ता करना अनावश्यक है सो यह वाहियात-सी बात है। उनका प्रभाव बेहद है और जनता से मनमानी कराने के मामले में वह अपना सानी नहीं रखते हैं। जवाहरलाल की बारी भी उनके बाद ही आती है। कांग्रेस में बाकी जो लोग हैं उन्हें अपने-अपने काम का शुल्क मिलता है। कांग्रेस व्यापारियों की संस्था है, वे लोग उसका खर्च चलाते हैं और उसे चालू रखते हैं। गांधी इस समय ऐसी चाल चल रहे हैं जो रहस्य से भरी हुई है। वह खतरनाक भी सिद्ध हो सकती है। मैं पूरे तौर से चौकन्ना हू। वह युक्तप्रान्त और बंगाल के लोगों को भड़काने की योजना बना रहे हैं। वह किसानों से कहेंगे कि अपने घरों को छोड़कर मत जाओ। मैं जल्दबाजी से काम नही लूंगा, पर यदि उनके कार्य-कलाप ने युद्ध-चेष्टा में अड़चन डाली तो मुझे उन्हें नियन्त्रण में रखना ही होगा।"
'मेरी स्मरण-शक्ति के अनुरूप यह वस्तुस्थिति की अच्छी खासी रिपोर्ट है।

बापू ने जवाहर और मौलाना से विस्तृत रूप से बातचीत की। जवाहर का दिमाग़ चीन और अमरीका से भरा हुआ है। बापू ने फिशर वाली मुलाक़ात के दौरान में अपने पुराने रवैये में जो परिवर्तन किया था सो निस्सन्देह जवाहर को ध्यान में रखकर ही किया था। और उन्होंने जो कुछ कहा था वह जवाहर की अभिलाषा के सर्वथा अनुरूप था। जवाहर ने सुझाया कि बापू चांग काई शेक को एक पत्र लिख कर उसे अपनी स्थिति समझावें, उसे स्वतन्त्र भारत के साहाय्य का आश्वासन दें और कहें कि विदेशी सेनाओं के भारत से हटाये जाने का सुझाव एकमात्र चीन की सहायता करने की इच्छा से प्रेरित होकर ही किया गया था। पता नहीं, चांग ने पत्र के 'हरिजन' में प्रकाशित न किये जाने का तार क्यों भेजा, पर वह पत्र

चीन और अमरीका, दोनों को एक साथ ही तार द्वारा भेजा गया, और एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ कि चर्चिल की भेट के समय तक वह रूज़वेल्ट के हाथों में पहुँच गया।

राजाजी दो दिन के लिए यहां आये थे, पर उनके साथ दो दिनों तक अत्यन्त मित्रतापूर्वक बात करने के बाद बापू ने कहा, "देखता हूं, इनके और मेरे बीच जो मतभेद हैं कि वह उतना साधारण नही है जितना कि मैं समझता था। उन्होंने राजाजी को जिन्ना से मिलने का बढ़ावा दिया, यद्यपि उन्हे ऐसे बढावे की कोई खास जरूरत न थी। अब वह उनसे मिलेंगे। परन्तु जबकि वह आदमी 'टाइम्स आफ इण्डिया' को वह गर्हित ढंग की मुलाकात दे चुका है, तो अब वह बापू का डटकर विरोध करने को बाध्य होगा ही और मैं नही समझता कि राजाजी उसके साथ बातचीत में विशेष सफल होंगे। जो हो, वह उससे मिलेगे अवश्य। इसके बाद वह वर्धा वापस आकर बतायगे कि मुलाकात का क्या नतीजा निकला। पर मुझे कुछ आशंका-सी है कि उनके और जिन्ना के बीच जो कुछ बातचीत होगी, बापू को वह सब-की-सब नही बतायंगे। इसका अर्थ यह नही है कि वह जानबूझ कर कोई बात छिपा लेंगे। असली बात यह है कि वह हर-एक पदार्थ को अपनी प्रिय योजना की ऐनक से देखते है, इसलिए वह ऐसी कोई बात नही बतायंगे जिसके द्वारा उनका हवाई किला गिरने की सम्भावना हो। अस्तु, यह अच्छा ही है कि वह जिन्ना से मिल रहे है।

मुझे विश्वास है कि मैंने बताने लायक सारी बाते बता दी। बापू बुरी तरह थक गये है और दिन बीतने पर तो बिल्कुल ही बेदम हो जाते है। हम लोग उनके कार्य की मात्रा में भरसक कमी करने की चेष्टा करते है, पर नई कार्य-योजना सम्बन्धी माथापच्ची उन्हे बिल्कुल थका डालती है। उनका वजन कम हो गया है, भोजन की मात्रा कम हो गई है, कम टहलते हैं और काम-काज से थक जाते हैं। यह बड़े परिताप की बात है, पर हम उनकी ठोस सहायता करने में असमर्थ है। मै तो केवल इतना ही कर सकता हूं कि 'हरिजन' के लिए वह केवल दो कालम भर मैटर दे दे और अवशिष्ट स्थान मैं भर दिया करूं। ऐसा मै आसानी से कर भी सकता हूं, क्योंकि मै उनके विचारों को सहज ही पेश कर सकता हू। पर सोचना और कार्यविधि निर्धारित करना अकेले उन्हींका काम है। इस काम मे केवल भगवान ही उनकी सहायता कर सकते हैं।

होरेस एलेक्जेंडर और सायमन्ड्स् यहां आ गये है। अन्य सभी क्वेकरों की भांति वे भी भले आदमी है। होरेस लंदन से रवाना होने से पहले एमरी से मिले थे। एमरी ने होरेस से गांधी और अन्य लोगों से मिलने को कहा

था, पर इससे कुछ होने-जाने वाला नहीं है, क्योंकि वह क्रिप्स की हिमायत लेकर आये हैं। फिर भी दोनों हैं अच्छे आदमी। मैं उनसे आपके पास ठहरने को कह रहा हूं। आशा है, आपको कोई आपत्ति नहीं होगी। आप होरेस को कुछ दीक्षा भी दे सकते हैं, क्योंकि वह बहुत अनभिज्ञ व्यक्ति हैं। आपको भी उनसे कुछ-न-कुछ मिलेगा ही। वह वहां किसी को नहीं जानते, इसलिए मैंने सोचा कि दोनों के लिए यही ठीक रहेगा कि वे आपके पास ठहरें। इससे आपकी योजनाओं में कुछ व्याघात तो अवश्य पड़ेगा, पर मुझे आशा है कि आप उस ओर ध्यान नहीं देंगे।

सप्रेम, आपका ही
महादेव

इंगलैण्ड में क्वेकरों ने और समझौता समिति के कार्लहीथ जैसे अन्य सदाशाली व्यक्तियों ने कोई रस्ता ढूँढ निकालने का व्यर्थ प्रयास किया। उन्होंने परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए एक प्रतिनिधि-मंडल भेजा। महादेवभाई ने वर्धा से बापू की ओर से मुझे सबको ठहराने की व्यवस्था करने को लिखा। मैंने प्रसन्नता-पूर्वक सारी व्यवस्था कर दी।

२७ जून १९४२

प्रिय महादेवभाई

तुम्हारी चिट्ठी ज्ञातव्य बातों से परिपूर्ण थी। मुझे यह दिमागी भोजन भेजा, इसके लिए धन्यवाद।

श्री होरेस और सायमन्डस यहां आ पहुंचे हैं। मैंने दोनों को एक ही कमरे में टिका दिया है। अच्छा होता कि दोनों को दो कमरे दे सकता, पर यह सम्भव नहीं था। फिर भी दोनों बड़े खुश हैं। मैं उनके आराम का खयाल रखूंगा। उनके दिल्ली-प्रवास के सम्बन्ध में कोई चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है।

बहुत-सी बातें करनी हैं, पर मैं भेंट होने तक रुकूंगा। मैं शायद अगस्त के आरम्भ तक वहां आ पहुंचूंगा।

शायद तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। स्वयं तुमने 'हरिजन' में यह बात स्वीकार की है। तो फिर दिल्ली क्यों नहीं आ जाते? अगर आ जाओ तो मैं वादा करता हूं कि तुम्हारा साथ देने के लिए मैं अपना प्रोग्राम

बदल डालूंगा। या मैं तुम्हें पिलानी ले जाऊंगा, जहां तुम्हारी शान्ति में विघ्न डालने वाली कोई बात नहीं होगी। कामकाज की खातिर भी तुम्हें मूर्च्छित होते रहने के बजाय पूरी तौर से आराम करना चाहिए। तुम्हे यह अवश्य ही बुरा लगा होगा कि बापू भयंकर गर्मी में पैदल चले और तुम ऐसा करने में असमर्थ रहे। मैं तो समझता हूं कि तुम्हें विश्राम की निश्चित रूप से आवश्यकता हैं। इसलिए तुम्हे विश्राम ही करना चाहिए। देवदास मुझसे सहमत हैं।

सस्नेह, तुम्हारा ही
घनश्यामदास

युद्ध ने गांधीजी के लिए और वास्तव में सभी भारतीयों के लिए कठिनाइयां और उलझनें पैदा कर दीं। पाकिस्तान के लिए जिन्ना की मांग अधिकाधिक तीखी होती जा रही थी, जिसके परिणामस्वरूप अतिरिक्त कठिनाइयां उत्पन्न हो रही थीं। सबके ऊपर आया बंगाल का भयंकर दुर्भिक्ष। चीन ने जापान के विरुद्ध जो रुख अपनाया उसे लेकर चीन के प्रति श्री नेहरू की सहानुभूति जाग्रत हो उठी। इससे वह महान सेनानी चांग काई शेक और उनकी उतनी ही प्रसिद्ध धर्मपत्नी के सम्पर्क में आये। उन्होंने भी भारतीय स्वाधीनता के लिए जवाहरलालजी की आकुलता के प्रति सहानुभूति दिखलाई। वह लार्ड लिनलिथगो से भारत की स्वतंत्रता की वकालत करने भारत भी आये और उन्हींके अतिथि हुए। बापू चांग-दम्पति से कलकत्ते में मेरे मकान पर मिले और सबकी एक साथ तसवीर ली गई। पर महादेव ने मेरे पास जो चिट्ठी भेजी उसके द्वारा एक-दूसरे ही ढंग की तसवीर देखने को मिली:

सेवाग्राम
१६. ७. ४२

प्रिय घनश्यामदासजी

मैं आपके पास एक पत्र मीरा बहन के हाथों भेजना चाहता था, पर बहुत थक गया था और सुबह के वक्त सन्तोषजनक पत्र लिखने

का समय नहीं था। इस बार की कार्यकारिणी की बैठक से आँखे खुल गई। खान साहब को छोड़कर किसी मुसलमान का दिल कांग्रेस के या, यों कहिये कि बापू के प्रोग्राम मे नहीं है। रहे जवाहरलाल, सो वह चीन और अमरीका के मामले मे इतने पैठ चुके है कि उनके लिए कोई काम तुरन्त ही हाथ मे ले लेना संभव नही है। मुझे आशंका है कि अवस्था इससे भी ज्यादा खराब है। रामेश्वरभाई मुझे 'लाइफ' नियमित रूप से भेजते रहते है। इस सप्ताह के अक से वस्तुस्थिति के भंयकर रूप मे दर्शन होते है। बापू महासेनानी चांग काइ शेक से कलकत्ते मे आपके घर मिले थे। इस सप्ताह के अंक में उस अवसर पर लिये गए सभी चित्र निकलें है। चित्रों के नीचे जो विवरण दिया गया है वह या तो स्वयं मेडम चांग ने दिया है या उनके अमले के ही किसी आदमी ने, क्योंकि इस अवसर पर मेरे या उन लोगों के अलावा और कोई मौजूद नही था जो ऐसा विवरण देता। और बापू सम्बन्धी विवरण कितना शरारत से भरा हुआ है! कितना अपमानजनक और कितना कृतघ्नतापूर्ण ! मै तो समझे बैठा था कि कृतज्ञता चीनियों का एक सबसे बड़ा गुण है, पर यह दम्पति इस गुण से भी सर्वथा शून्य है। यदि वे पूंजीपतियों से कोई सरोकार न रखने पर इतने उतारू थे तो उन्होंने बेचारे लक्ष्मीनिवास का आतिथ्य क्यों ग्रहण किया? इस सारे व्यापार से जी मिचलाने-सा लगा है। इन लोगों को यहां नही आना चाहिए था। पर यह अच्छा ही हुआ कि उस रहस्यपूर्ण आदमी के साथ (जैसा कि बापू उसे हमेशा से कहते आये है) बापू का साक्षात्कार हो गया। महासेनानी चांग ने बापू के नाम अपने ताजा संदेश मे उन्हे उतावली में कुछ न कर डालने की सलाह दी है, क्योंकि हेलीफैक्स ने ब्रिटेन के लिए रवाना होने से पहले उसके प्रतिनिधि को न्यूयार्क मे बताया है कि वह इंग-लैण्ड-स्थित अधिकारियों पर भारत के साथ समझौता करने पर जोर डालेगे। बापू ने उसे उत्तर मे लिखा है कि वह उतावली में तो कोई काम नहीं करेंगे, पर साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि अगला कदम उठाने मे अधिक विलम्ब नही किया जायगा, क्योंकि विलम्ब करने से वह कदम उठाने का उद्देश्य ही नष्ट हो जायगा। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस संदेश में कोई सार नहीं है। या तो हेलीफैक्स चांग को बुद्धू बना रहा है या चांग और हेलीफैक्स दोनों मिलकर हमें बुद्धू बना रहे हैं।

मूल्य नियंत्रण सम्बन्धी आपके पत्र के बारे मे बापू का कहना है कि इस दिशा मे आपही लोगों को, अर्थात् व्यापारियों को, कदम उठाना चाहिए। यदि नलिनी कोई कदम उठावें और उसमें आपको भी साथ में ले तो इससे अच्छी बात क्या हो सकती है। एक बार मीराबहन से भी बात करिये।

उनमें स्फूर्ति कूट-कूट कर भरी है। काश, उनकी जानकारी के विषय में भी यह बात कही जा सकती! पर यदि वह तीन बड़ों से बात करेंगी तो कोई हानि नही होगी, बशर्ते कि उन्हे मुलाक़ात करने का अवसर मिले। इस पत्र की प्राप्ति के बाद मुझसे एक बार बात कर लीजियेगा।

आपका ही
महादेव

मैंने बापू और जिन्ना के बीच की खाई को पाटने की चेष्टा में स्व० लियाकतअली खां से कुछ बातचीत की थी। मैंने इस बातचीत से बापू को पूरी तरह से अभिज्ञ रखा था और उनकी ओर से किसी तरह का कौल करार नहीं किया था। इस बातचीत का कोई नतीजा नहीं निकला और जिस प्रकार दूध बिखर जाने पर रोना-धोना बेकार होता है उसी प्रकार उस बातचीत की ऊहापोह करना व्यर्थ है।

लार्ड लिनलिथगो ने जिस स्थिति की कल्पना की थी और जिसके बारे में मुझे फिशर के हवाले से महादेवभाई ने लिखा था, वह सामने आ गई। गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन का श्रीगणेश किया। उसके बाद सन् ४२ का 'भारत छोड़ो' आंदोलन आया। वह स्वयं पूना के आगाखां महल में नजरबन्द कर दिए गये और एक के बाद एक कांग्रेस के नेता गिरफ्तार होते और जेल जाते रहे।

युद्ध मंथर गति से जारी रहा। हम भारतीयों को, जो स्वतंत्रता की आशा लगाये बैठे थे, कभी-कभी ही कोई समाचार मिल पाता था। गांधीजी ने २१ दिन का उपवास किया। इस समय उनको रिहा करने के लिए जो भी अनुरोध किये गए उन सबको सरकार ने ठुकरा दिया। गांधीजी ने अपना अनशन सफलता पूर्वक पूरा किया, पर उससे सारा देश हिल उठा।

: २४ :

भारत और युद्ध

बापू ७ अगस्त १९४२ को गिरफ्तार हुए थे। उनकी गिरफ्तारी के बाद हिंसा का विस्फोट हुआ, जिसके फलस्वरूप युद्ध-चेष्टा को धक्का लगा और लार्ड वेवेल को युद्ध का मोर्चा जापान द्वारा अधिकृत बर्मा तक फैलाने के प्रयास में लज्जा-जनक ढंग से विफल मनोरथ होना पड़ा। बापू की गिरफ्तारी और तज्जनित हिंसा के विस्फोट के जो कारण बताये गए हैं उनके सम्बन्ध में कुछ ऐसी ज्ञातव्य बातें हैं जिन्हें भावी इतिहास-कार को अच्छी तरह ध्यान में रखना होगा।

यह तो निश्चित ही है कि युद्धकाल में लार्ड लिनलिथगो ने अपने सैनिक सलाहकारों से परामर्श किये बिना और प्रकटतः अपनी ही जिम्मेदारी पर इतना गम्भीर निर्णय कर डाला कि उसका युद्ध की गति पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। प्रधान सेनापति लार्ड वेवेल उस समय भारत में नहीं थे। बाद में उन्होंने कहा कि वह इस बारे में कुछ नहीं जानते। ८ अगस्त रविवार को बड़े सवेरे गिरफ्तारियां हुई। उसी दिन बम्बई में दंगे भड़क उठे। उसी दिन संध्या को रांची पूर्वी कमाण्ड के सेनापति ने 'स्टेट्समैन' के सम्पादक के साथ कलकत्ते में भोजन किया। उन्हें गिरफ्तारियों और दंगों का कुछ पता न था। कलकत्ते में प्रेसीडेंसी डिवीजन की कमान के जनरल भी इस अवसर पर मौजूद थे। उन्हें भी इन सारी घटनाओं का पता नहीं था। उनका परिस्थिति से गहरा सम्बन्ध था। सम्पादक आर्थर मूर ने सार्वजनिक रूप से इस बात का उल्लेख

किया है कि जब इन सैनिक अधिकारियों को उनसे इन घटनाओं का पता चला तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

दूसरा निर्विवाद तथ्य यह है कि गांधीजी की गिरफ्तारी को यह आरोप लगाकर औचित्यपूर्ण सिद्ध नहीं किया जा सकता कि वह अथवा कांग्रेस हिंसा का आश्रय लेने की योजना बना रहे थे। गांधीजी की नजरबन्दी के दिनों में उनसे जो प्रश्न किये गए उनके उत्तर इस प्रकार दर्ज हैं:

प्रश्न—अहिंसा में आपकी जो श्रद्धा है, उसका मेल आप उन आरोपों के साथ कैसे बैठाते हैं जो आपके और कांग्रेस के विरुद्ध लगाये जाते हैं कि ८ अगस्त के बाद जो भी तोड़-फोड़ और हिंसा के काम हुए वे सब इसलिए हुए कि आपने या कांग्रेस ने कुछ गुप्त हिदायतें जारी की थी ?

उत्तर—इन आरोपों में तनिक भी सचाई नहीं है। मैंने तोड़-फोड़ के लिए या किसी भी प्रकार की हिंसा के लिए कोई गुप्त या अप्रत्यक्ष हिदायत कभी नहीं दी। अगर कांग्रेस ने ऐसी कोई हिदायत दी होती तो मुझे उसका पता होता। न तो मैंने ही और न कांग्रेस ने ही ऐसी हिदायतें जारी की।

प्रश्न—तो फिर आप तोड़-फोड़ और हिंसा के इन कामों को नापसन्द करते हैं ?

उत्तर—बिल्कुल नापसन्द करता हूं। मेरे अनशन-काल में मुझसे जो भी मित्र मिले हैं, उन सबसे मैंने यही बात कही है। जो लोग हिंसा में विश्वास करते हैं, मैं उनका निर्णायक नहीं बनना चाहता। पर मैं उनसे यह ज़रूर कहूंगा कि वे स्पष्ट रूप से इस बात की घोषणा कर दें कि वे इन हिंसात्मक कार्यों को अपनी ही ओर से कर रहे हैं और इसलिए कर रहे हैं कि उनका हिंसा में विश्वास है। कांग्रेस के प्रति न्याय करने के लिए इन हिंसा और तोड़-फोड़ करनेवालों को यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर देनी चाहिए। वे मेरी सुने तो मैं तो उन्हें सलाह दूंगा कि उन्हें अपने को पुलिस के हवाले कर देना चाहिए। केवल इसी प्रकार वे लोग देश के हित-साधन में सहायक हो सकते हैं। पर यदि कोई व्यक्ति कांग्रेस के ध्येय और मेरे तरीके में विश्वास नहीं रखता है तो उसे सभी सम्बद्ध लोगों के निकट यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए।

प्रश्न—यह कहा गया है कि आपने यह आन्दोलन इस खयाल से शुरू किया कि मित्र-राष्ट्र हारनेवाले हैं और आपने इस आन्दोलन के लिए ऐसा

समय चुना जब मित्र-राष्ट्र कठिनाई में पड़े हुए थे और आप उनकी स्थिति से अनुचित लाभ उठाना चाहते थे।

उत्तर—इसमें सत्य का लेश भी नहीं है। आप 'हरिजन' में मेरे लेख पढ़ सकते हैं और मैंने यह जरूरत से ज्यादा स्पष्ट कर दिया है कि मेरा ऐसा इरादा कभी नहीं था।

प्रश्न—हां, मैंने आपके लेख 'हरिजन' में पढ़े हैं। मैंने तो यही पाया कि आप जर्मनी या जापान के पक्षपाती तो क्या, उल्टे नात्सी-विरोधी और फासिस्ट-विरोधी हैं। यही बात है न ?

उत्तर—क़तई। नात्सीवाद और फासिस्टवाद के खिलाफ मुझसे अधिक कठोर शब्दों का व्यवहार और किसीने नहीं किया है। मैंने तो नात्सियों और फासिस्टों को इस दुनिया की गन्दगी कहा है। जब मई १९४२ में मीराबहन उड़ीसा में थीं तो मैंने उन्हें एक पत्र लिखा था। मैं उस पत्र की प्रतिलिपि तो आपको नहीं दे सकता, क्योंकि मैं जेल में हूं; पर मुझे मालूम हुआ है कि मीराबहन ने उस पत्र की नकल भारत सरकार को भेजी है। आप सरकार से उसकी प्रतिलिपि मांग सकते हैं और अपनी तसल्ली कर सकते हैं। मैंने उस पत्र में विस्तृतरूप से हिदायतें दी हैं कि जापानी भारत पर आक्रमण करें तो उनका प्रतिरोध किस प्रकार किया जाय। उस पत्र को पढ़ लेने के बाद कोई भी व्यक्ति मुझ पर नात्सीवाद या फासिस्टवाद या जापान से सहानुभूति रखने का आरोप नहीं लगा सकता।

प्रश्न—क्या स्थिति यह नहीं है कि अगर भारत स्वतंत्र हो जाय और राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो जाय तो कांग्रेस मित्रराष्ट्रों के ध्येय की पूर्ति में सैनिक सहायता देने के लिए वचनबद्ध है ?

उत्तर—आपने जो निष्कर्ष निकाला है, वह बिल्कुल ठीक है। इसमें कोई शक नहीं कि यदि भारत को स्वतन्त्र कर दिया गया तो राष्ट्रीय सरकार अपने समस्त सैनिक साधनों के साथ मित्र-राष्ट्रों के पक्ष में लड़ेगी और हर संभव तरीके से मित्र-राष्ट्रों को सहयोग देगी।

प्रश्न—हां, कांग्रेस की नीति यही है। परन्तु आप तो शान्तिवादी हैं। क्या आप मित्र-राष्ट्रों को सैनिक सहायता देने की कांग्रेसी योजना में बाधा नहीं डालेंगे ?

उत्तर—कदापि नहीं। मैं शान्तिवादी हूं। किन्तु यदि राष्ट्रीय सरकार बनी और उसने मित्र-राष्ट्रों को सैनिक सहायता देने के आधार पर सत्ता की बागडोर संभाली, तो जाहिर है कि मैं बाधा नहीं डाल सकता, और न डालूंगा ही। मेरे लिए हिंसा के किसी काम में प्रत्यक्ष भाग लेना संभव नहीं होगा। पर कांग्रेस मेरी ही तरह शान्तिवादिनी नहीं है और

में स्वभावतया ही कांग्रेस के इरादों की पूर्ति में बाधा डालने वाला कोई काम नहीं करूंगा।

बापू जब आगाखां महल, पूना में नजरबन्द थे तो उनके इस निश्चय से, कि यदि वायसराय और सरकार उन्हें और कांग्रेस को उनकी गिरफ्तारी के बाद के विद्रोह और तोड़-फोड़ के कामों की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं करेगी तो वह २१ दिन का अनशन करेंगे, उनके मित्र घबरा गये। अब वह काफी वृद्ध हो गए थे, इसलिए इस सम्भावना ने कि सरकार उन्हें रिहा नहीं करेगी और अनशन करने देगी, हम सबको भयभीत कर दिया। श्री कन्हैयालाल माणेकलाल मुनशी ने, जो इस समय उत्तर प्रदेश के गवर्नर हैं, और मैंने तुरन्त एक प्रतिनिधि सम्मेलन, जो यथासम्भव अधिक-से-अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण हो, बुलाने का निश्चय किया, जिससे सरकार को बापू को रिहा करने के लिए प्रेरित किया जा सके। तदनुसार हमने श्री राजगोपालाचार्य और सर तेजबहादुर सप्रू को संयुक्त तार भेजकर इनसे सम्मेलन में उपस्थित होने और उसे आगे बढ़ाने का अनु ध किया। वे राजी हो गये। मेरा दिल्लीवाला मकान इतने बड़े सम्मेलन के लिए नाकाफी होता, इसलिए हम लोगों ने उसका अधिवेशन भारतीय व्यापारी संघ के अहाते में एक शामियाने में किया। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख——सभी जातियों के प्रतिनिधि काफी संख्या में मौजूद थे। हम सबने वैधानिक और राजनैतिक सवालों को छुआ तक नहीं और जो प्रस्ताव अपनाये उनमें अपील का आधार शुद्ध मानवता को ही बनाया। पर सरकार का दिल नहीं पसीजा। सिंहावलोकन करने पर आश्चर्य होता है कि सरकार ने अपने सिर पर कितनी बड़ी जोखिम ले ली थी। गांधीजी की मृत्यु हो गई होती तो सारे देश में आग लग जाती और सरकार युद्ध-चेष्टा में सहायक होने के बजाय स्वयं ही अपने आपको तोड़फोड़ की कार्रवाई का दोषी सिद्ध करती। सरकार के भाग्य अच्छे थे कि गांधीजी जीवित रहे और उनका

अनशन निर्विघ्न पूरा हो गया। सरकार की स्थिति सचमुच कठिन थी। उससे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह कांग्रेस को निर्दोष घोषित कर देती, जब कि वह वास्तव में उसे जिम्मेदार समझती थी। पर वह 'सांप मरा न लाठी टूटी' की नीति तो अपना सकती थी। वह यह कह देती कि अन्य किसी प्रश्न के सही या गलत होने पर विचार न करते हुए उसने केवल मानवता के आधार पर गांधीजी को रिहा करने का फैसला किया है। हमारी अपील का आधार भी यही था। वह अच्छी तरह जानती थी कि बापू का अपने अनुयायियों का कायापलट करने का दावा भले ही अतिरंजित हो, स्वयं बापू को हिंसा से घोर अरुचि है। ऐसी दशा में सरकार बापू के सिर पर थोड़ी-सी अप्रत्यक्ष जिम्मेदारी थोप सकती थी, और बस। वह खुले तौर पर पहले ही स्वीकार कर चुकी थी कि गांधीजी ने शान्तिमय वातावरण बनाये रखने में भारी सेवा की है।

बापू के विश्वस्त निजी मंत्री महादेवभाई का नजरबन्दी काल में ही देहावसान हुआ। प्यारेलाल और उनकी बहन डा० सुशीला का गांधीजी के साथ दीर्घकाल से संबंध था। अब महादेवभाई का स्थान प्यारेलाल ने लिया।

जब बापू रिहा हुए और मेरे लिए उनके साथ पुनः पत्र-व्यवहार करना संभव हुआ तो मैंने प्यारेलाल के साथ पत्र-व्यवहार करना शुरू किया। इसका कारण यह था कि मैं बापू का समय नहीं लेना चाहता था, हालांकि मैं उनके स्वास्थ्य के बारे में चिन्तित था और उनका पथ-प्रदर्शन प्राप्त करने को उत्सुक था।

दिलकुशा, पंचगनी
३१. ७. ४४

प्रिय घनश्यामदासजी

बापू ने कुछ विदेशी पत्र-पत्रिकाएं नियमित रूप से मंगवाने का प्रबन्ध करने को कह दिया है। मैंने श्री शान्तिकुमार के पास निम्नलिखित सूची भेजी थी :

१. न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन
२. टाइम (अमेरिकन)
३. रीडर्स डाइजेस्ट
४. साप्ताहिक मैन्चेस्टर गार्जियन
५. साप्ताहिक टाइम्स
६. यूनिटी, और ७. एशिया।

उन्होंने लिखा है कि उन्होंने चेष्टा की, पर असफल रहे। क्या आप इन्हें मंगवाने का भार लेंगे?

आपका
प्यारेलाल

७. ८. ४४

प्रिय प्यारेलाल

तुम्हारा ३१ तारीख का पत्र मिला। तुमने जिन पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखा है उन्हें मंगाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। तुम्हें वे सब सीधे ही मिल जाया करेंगे। मैं आज ही अपने लंदन और न्यूयार्क के दफ्तरों को आवश्यक कार्रवाई करने के लिए तार भेज रहा हूं। जब मिलने लगें तो मुझे सूचित कर देना।

यदि कोई लिखने योग्य बात हो तो मुझे सूचित करते रहा करो, जैसा कि महादेवभाई किया करते थे। जरूरत पड़ने पर अपनी निजी विचार-धारा दे सकते हो।

मैं अभी बम्बई नहीं जा रहा हूं, पर मेहरबानी करके बापू से कह देना कि उन्हें मेरी जब कभी जहां कहीं, सेवाग्राम में या और किसी जगह, दरकार हो मैं आ जाऊंगा। मैं उन्हें इसलिए नहीं लिख रहा हूं कि उनके पास वैसे ही बहुत कुछ करने को है। इसलिए मैं उनकी डाक का बोझ अनावश्यक रूप से नहीं बढ़ाना चाहता। आशा है, केचुए अब बिल्कुल नहीं रहे होंगे।

तुम्हारा
घनश्यामदास बिडला

आगा खां महल से रिहा होने के बाद बापू तनिक भी प्रसन्न न थे। उनके सहकर्मी और साथी अभी जेल में ही थे, तिस पर पहले तो महादेव और बाद में बा आगा खां महल में ही उनसे बिछुड़ गये थे। बापू अनुभव करते थे कि या तो उनके साथियों की रिहाई होनी चाहिए या फिर उन्हें ही वापस जेल चले जाना चाहिए। इसी अवसर पर कुछ मित्रों ने, जिन्होंने

मेरे परिवार के साथ बापू के सम्पर्क को सदैव अपनी ईर्ष्या का विषय बनाया था, यह आपत्ति उठाने की कृपा की कि जब कभी बापू दिल्ली या बम्बई जाते हैं तो बिड़ला-भवन में ही क्यों ठहरते हैं। जब यह बात बापू के कानों में आई तो उन्होंने बिड़ला-भवन का परित्याग करने से साफ इन्कार कर दिया। वह अनेक वर्षों से जब-तब वहीं ठहरते आ रहे थे। तब इन मित्र कहाने वाले सज्जनों ने यही दलील देकर बापू को बिड़ला-भवन में ठहरने से विरत करना चाहा कि आप शायद फिर गिरफ्तार हो जायं, इसलिए आपके लिए बिड़ला-परिवार के साथ अधिक घनिष्ठ सम्पर्क रखना उचित नहीं होगा। आप पहले भी बिड़ला-भवन में ही गिरफ्तार हुए थे, इसलिए बिड़ला-परिवार की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

जब बापू ने इस विषय की पूना में मुझसे चर्चा की तो मैं आश्चर्य-चकित रह गया। मैंने बापू से साफ-साफ कह दिया कि खतरा चाहे जैसा हो, आपके साथ सम्पर्क बनाए रखने में कोई जोखिम उठाने का प्रश्न हो तो मैं उससे बचने के लिए अपनी जिम्मेदारी का परित्याग करने की एक क्षण के लिए भी कल्पना नही कर सकता। पर बापू ने आग्रह करके मेरे भाई रामेश्वरदास को बम्बई में निम्नलिखित पत्र भेजा। रामेश्वरदास ने भी अपने उत्तर में वही बात कही जो मैंने कही थी :

सेवाग्राम, वर्धा
१२. ८. ४४

भाई रामेश्वरदास

बहुत दिनों से लिखने की इच्छा हो रही थी, लेकिन लिखने का समय ही नहीं मिला। अब तो लिखना ही चाहिये। जिन्ना साहेब का खत किसी भी वख्त आ सकता है। मैंने तो लिखा है कि ३।४ दिन की मुद्दत मिलनी चाहिये। मुझ पर बहुत दबाव डाला जाता है कि मै बिरला हाउस में तो हरगिज न रहूं। मैंने साफ साफ कह दिया है कि मै बिना कारण बिरला हाउस का त्याग नहीं कर सकता हूं। प्रश्न तो इसी कारण खड़ा होता है

कि कोई भी संजोगवशात् मेरा वहां रहना अनुचित माना जाय तो बगैर संकोच के मुझे कह देना। यह प्रश्न पूना मे ही उठा था और उस वक्त तय हुआ था कि तुम्हारे तरफ से संकोच की कोई बात हो नहीं सकती। मुझे याद नही उस वक्त तुम थे या नही। बात घनश्यामदास से हुई थी। लेकिन सावधानी के कारण आज तुमको हर प्रकार से सुरक्षित रखने के कारण जब मुझे मुम्बई जाने का समय नजदीक आ रहा है तो पूछ लेना धर्म हो गया है।

दूसरी बात अधिक अगत्य की है, लेकिन समय की दृष्टि से इतनी अगत्य की नहीं जितनी मुम्बई निवास की है। अगर मेरी गिरफ्तारी होने वाली ही है तो उसके पहले जो कार्य मुझे करने चाहिये उसे मै कर सकूं तो एक प्रकार का संतोष मिलेगा। तालीमी संघ का कार्य बहुत अच्छा है, ऐसा मेरा विश्वास है। उसके लिये १।२ (आधा) लाख रुपये का प्रबन्ध कर लेना चाहता हूं।

मीरा बहन के लिये रुपये दान मे मिले थे वह वापस देना चाहता हूं। वह उसे वापस देने का धर्म हो गया है। इसका बोझ यों तो सत्याग्रह आश्रम कोष पर पड़ना चाहिये। थोड़े पैसे है भी सही। लेकिन नारायणदास ने रचनात्मक कार्य में रोक लिये हैं। उसमे से निकल तो सकते है लेकिन उस कार्य को हानि पहुंचा करके ही निकाल सकता हूं। हो सके तो उस कार्य मे हानि पहुंचाना नही चाहता हू। इसमें शायद आधा लाख तक पहुंच जाता हूँ। ठीक रकम कितनी देनी है वह मुझे पता नही चला है। वर्षो से जो रकम आती रही वह दानों मे लिखी है, उसे निकालने मे कुछ देर लगती ही है। आश्रम की सब किताबें इधर उधर पड़ी है। अच्छी तरह रखे हुए चौपड़े में से भी ऐसी रकमों को चुन लेना घास मे गिरी हुई सुई को ढूढ़ लेना सा हो जाता है। तब भी मैंने लिख दिया है कि वह सारा हिसाब निकाला जाय।

कुछ फुटकर खर्च पड़ा है। इसका कुछ करना आवश्यक है। इसमें कुछ १।२ (आधा) लाख चला जायगा। मैंने ठीक ठीक हिसाब निकाला नहीं है।

क्या इतनी रकमे आराम से दे सकते है? इसका उत्तर नकार में भी बगैर संकोच दिया जा सकता है। मेरे सब कार्य ईश्वराधीन रहते हैं। ईश्वर अगर वह कार्य रोकना नही चाहता है तो किसी-न किसी को अपना निमित्त बनाकर मुझको हुंडी भेज देता है। तो न मिलने से मै न ईश्वर से रूठूंगा न तुम से। जिस वृक्ष के नीचे मैं बैठता हूं उसी वृक्ष का छेदन आज तक नहीं किया, ईश्वर की कृपा होगी तो भविष्य मे नहीं होगा।

तुम सबका स्वास्थ्य अच्छा होगा। यह पत्र चि० जगदीश के मारफ़त भेजता हूं। वह यहां भाई मुनशी का ख़त लेकर आया है। डाक से क्या भेजा जाय, क्या न भेजा जाय इसका निर्णय करना मुश्किल हो जाता है।

बापू के आशीर्वाद

जिन्ना अपनी जिद पर अड़े हुए थे। उसके साथ बापू की निष्फल मुलाकात के कुछ ही पहले मुझे एक पत्र मिला। जिन्ना के साथ होने वाली मुलाकात के विरोध में जिस उग्रता के दर्शन हो रहे थे और स्वयं बापू के प्रति विरोध की जो भावना दिखाई दे रही थी, सो सब उनकी उस मृत्यु का पूर्वाभास-मात्र था, जिसका उन्हें अन्त में धर्मोन्मत्त हिन्दुओं के हाथों शिकार होना पड़ा था।

बम्बई
९ सितम्बर १९४४

प्रिय घनश्यामदासजी

मुझे आपका ३ सितम्बर का वह पत्र मिला जिसमें आपने 'स्पेक्टेटर' के कटिंग भेजे हैं। तदर्थ धन्यवाद। बापू ने तीनों कटिंग देख लिये हैं। मेरे पास होरेस एलेक्ज़ेंडर की पुस्तक भी थी। मैं आवश्यक कार्रवाई करूंगा।

आपने समाचार-पत्रों में सेवाग्राम मे धरना देने वालों के कारनामे पढ़े ही होंगे। वैसे उनके नेता ने पहले ही दिन साफ-साफ कह दिया था कि यह तो पहला क़दम है और आगे ज़रूरत पड़ी तो बापू को क़ायदे आज़म से मिलने जाने से रोकने के लिए बल का भी प्रयोग किया जायगा। पर जहां तक हमारा सम्बन्ध है हम इस सारे व्यापार को कौतुक मात्र समझते आ रहे थे। कल उन्होंने सूचना दी कि वे गांधीजी को अपनी कुटिया छोड़ने से बलात् रोकेंगे। साथ ही उन्होंने कुटिया के तीनों द्वारों पर धरना बैठा दिया।

आज प्रातःकाल मुझे पुलिस के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेंट का टेलीफोन मिला कि धरना देनेवाले उत्पात पर उतारू है, इसलिए पुलिस को कार्रवाई करने को बाध्य होना पड़ेगा। बापू का विचार था कि वह वर्धा की ओर पैदल चल पड़ेंगे और जबतक धरना देनेवाले ही उनसे गाड़ी में बैठने के लिए न कहेंगे, इसी प्रकार चलते रहेंगे। यात्रा का समय दोपहर के १२ बजे का था। इस समय के कुछ ही देर पहले डिप्टी सुपरिन्टेन्डेंट ने आकर

बताया कि पुलिस ने धरना देने वालों को चेतावनी देने के बाद, यह देखकर कि समझाने-बुझाने से कोई लाभ नहीं होगा, उन्हे गिरफ्तार कर लिया। आपको शायद यह तो पता होगा ही कि आजकल वर्धा जिले में किसी प्रकार के जुलूस निकालने या प्रदर्शन करने का निषेध है।

धरना देने वालों का अगुआ उत्तेजित हो जाने वाला धर्मान्ध व्यक्ति दिखाई पड़ा और उससे कुछ चिन्ता उत्पन्न हो गई। जब गिरफ्तार करने के बाद तलाशी ली गई तो उसके पास से एक लम्बा-सा छुरा मिला।

जिस पुलिस अफसर ने गिरफ्तार किया था उसने व्यंग्यात्मक लहजे में कहा कि कम-से-कम तुम्हे तो शहीद बनने का सन्तोष रहेगा। फौरन उत्तर मिला कि न, यह तो तभी होगा जब कोई गान्धीजी की हत्या करेगा। उक्त पुलिस अफसर ने प्रफुल्लता-पूर्वक कहा कि यह मामला नेताओं के हाथों में क्यों नही छोड़ देते, वे ही आपस में निपट लेगे। उदाहरण के लिए सावरकर यहां आकर बातचीत कर लें। उत्तर मिला कि गान्धीजी इतने बड़े सम्मान के योग्य नही है। इस काम के लिए तो एक जमादार काफी होगा।

बापू आश्रमवासियों के साथ गंभीर विचार विनिमय कर रहे है। उन्होंने सलाह दी है कि यदि आश्रमवासी परीक्षा के अवसर पर आजमायश में पूरे उतरने लायक संगठन करने में असमर्थ हों तो आश्रम का अन्त कर देना चाहिए। बापू की राय है कि आश्रम की वर्तमान असफलता का कारण आश्रम में उनकी उपस्थिति है। इसलिए यदि आश्रम का पुनर्गठन करने के पक्ष में निश्चय किया गया तो वह या तो सेवाग्राम वाले बिड़ला हाउस में चले जायेंगे या वर्धा। उन्होंने अखिल भारतीय चर्खा संघ मे आमूल परिवर्तन करने के सम्बन्ध में जो सुझाव दिया है सो आपने देखा ही होगा। मैंने उसे छपने भेज दिया है। उसे ध्यानपूर्वक पढ़िये। उसके बाद कुछ नई बातें हो गई हैं, इसलिए पहले से यह कहना कठिन है कि ऊंट किस करवट बैठेगा।

भवदीय

प्यारेलाल

इस पत्र से मै इतना चिन्तित हुआ कि मैंने उत्तर में एक्सप्रेस तार भेजा :

मेरी सलाह है कि सेवाग्राम के पिकेटिंग करनेवालों के संबंध में समा-

चारपत्रों को सही-सही ख़बर दी जाय। यह आवश्यक है कि जनता को जानकारी हो।

घनश्यामदास
१३। ९। ४४

किन्तु बापू ने ऐसा करने की इजाजत नहीं दी।

बिडला हाउस
माउण्ट प्लेजेण्ट रोड
बम्बई
१६ सितम्बर १९४४

प्रिय घनश्यामदासजी

आपका तार मिल गया था। बापू का कहना है कि इस काण्ड से गहरा सम्बन्ध रखने वाली बाते अभी प्रकाशित नहीं की जा सकती हैं, क्योंकि अभी मामला कायदे-कानून की दृष्टि से विचाराधीन है।

मैं कायदे-कानून की बात जानबूझ कर कह रहा हू, क्योंकि पुलिस के डिप्टी सुपरिटेण्डेट का, जो मुझसे मिला था, विचार है कि धरना देने-वालों को बापू की सेवाग्राम वापसी तक रोक रखा जाय जिससे उनकी वापसी पर उपद्रव को नये सिरे से शान्त न करना पड़े।

बातचीत सहजरूप से चल रही है। शुरू-शुरू में दिन में दो वार मुलाकात होती थी, अब केवल एक बार सन्ध्या को होती है, क्योंकि प्रातःकाल का समय डा० दिनशा के लिए निकाल दिया गया है जो क़ायदे आज़म का उपचार करते हैं।

आपके दोनों तार मिल गये। मैंने रामेश्वरजी को सारी बातें समझा दी हैं। वह फोन पर बात कर लेंगे।

भवदीय
प्यारेलाल

पुनश्च:—बापू ने भी आपके दोनों तार देख लिये हैं। उनका उत्तर तार द्वारा आपके पास भेजा जा रहा है जो इस प्रकार है:

'मेरी एकान्त इच्छा है कि तुम मसूरी जाओ। मुझे तुम्हारी दरकार होगी तो वहां प्रवास की अवधि कम कर देना।'

प्यारेलाल ने ६ दिसम्बर १९४४ को भविष्यवक्ता के से लहजे में लिखा :

बापू इस महीने के अन्त में यथापूर्व कामकाज शुरू कर देने की आशा करते हैं। हमको भी ऐसी ही आशा रखनी चाहिए, पर मेरी राय है कि भविष्य में उनके काम के क्षेत्र और स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन होना चाहिए। उन्हें अब इंजन-चालक के बजाय केवल झंडी दिखानेवाले का ही काम करना चाहिए। वह विचार दें और नैतिक एवं आध्यात्मिक प्रभाव से मार्ग आलोकित करें। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि उनके पथ-प्रदर्शन की किसी भावी अवसर पर इतनी अधिक दरकार होगी कि हम आज उसकी कल्पना तक नहीं कर सकते। उनके हाथों अभी और भी महान कार्य होने वाले हैं। अपनी और दुनिया की खातिर उन्हें अपनी शक्ति को अच्छे-से-अच्छे ढंग से संचित करके रखना चाहिए।

राजाजी आज जा रहे हैं। मैं चाहता हूं कि उनके जैसा कोई आदमी बापू के पास रह सके। बापू अपनी तमाम अनासक्ति के बावजूद अत्यधिक मानव हैं और पुराने नेताओं में से किसी एक की निकट उपस्थिति का महत्व कम नहीं आंका जा सकता। बापू को जिस प्रकार के आध्यात्मिक एकान्त में रहना पड़ रहा है, वह भयकारक है। यह ठीक है कि उनके इस एकान्त को उनकी विशालता से अलग नहीं किया जा सकता। पर उसकी कठोरता को कम करने के लिए तो कुछ-न-कुछ किया ही जा सकता है।

: २५ :

भारत के मित्र

यह पुस्तक भारत के आधुनिक इतिहास निर्माण-कार्य में एक तुच्छ-सा योगदान मात्र है। इसके रचना-कार्य के दौरान उन कतिपय विदेशियों का उल्लेख करना, जो भारत की स्वतंत्रता के लिए सचेष्ट रहे और उसमें योगदान करते रहे, उचित ही ही होगा। वैसे अमरीका में और अन्य देशों में भी सहानुभूति रखनेवालों की कमी नहीं थी, पर उनकी चेष्टायें उतनी फलदायिनी सिद्ध नहीं हुई। ब्रिटेन अधिक ठोस काम कर सका जो कि स्वाभाविक ही था। यदि विश्वलोकमत विशाल रूप धारण कर सके तो उसकी प्रभावोत्पादकता असंदिग्ध है। किन्तु हस्तक्षेप के प्रयत्नों से ब्रिटिश प्रतिरोध की मात्रा में वृद्धि ही हुई। इसका एक उदाहरण हमारे पक्ष में अमरीकी राजदूत फिलिप्स का सदाशयतापूर्ण हस्तक्षेप है। प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट और श्री चर्चिल के बीच घनिष्ठता थी, पर इस हस्तक्षेप का एक मात्र परिणाम यही हुआ कि श्री चर्चिल का रुख और भी कड़ा होता दिखाई दिया।

हमारे अंग्रेज मित्र दो श्रेणियों में बंटे हुए थे, एक श्रेणी ब्रिटेन में थी और दूसरी भारत में। ब्रिटेन-स्थित मित्रों की भी श्रेणियां थी। कुछ लोग मुख्यत: कर्त्तव्य की सम्मानास्पद भावना से प्रेरित थे और समझते थे कि उन्हें समय के साथ चलना चाहिए। कट्टर विचार वाले व्यक्तियों की बात दूसरी है, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि मैकाले के जमाने से ही ब्रिटिश पार्लमेंट की यह घोषित नीति रही है, और कुल मिलाकर ब्रिटिश जनता का भी यही एकमात्र राष्ट्रीय कार्यक्रम बना रहा है कि भारतीयों

को उत्तरोत्तर अपना शासन-कार्य स्वयं चलाने की कला सीखनी चाहिए, और सो भी जल्दी-से-जल्दी। लार्ड हेलीफैक्स ने एक बार कहा था कि ब्रिटिश जनता का लक्ष्य इसके अलावा और कोई हो ही नहीं सकता। सर सेमुअल होर और उनके अधिकांश अनुदार दलीय साथी इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित थे। उन्होंने श्री एटली और विपक्षी दल की मदद से और अपने ही दल के अनेक सदस्यों की इच्छा के विरुद्ध, भारतीय शासन-विधान पार्लमेंट में पास कराया।

किन्तु शासकवर्ग में ऐसे भी व्यक्ति थे जो केवल अपने सम्मान और कर्त्तव्य की भावना से ही नही, बल्कि धार्मिक विश्वासों और मानवजाति के प्रति प्रेम की भावना से भी प्रेरित थे। उनकी इन भावनाओं ने उनके मन में भारत के प्रति गहरी सहानुभूति जागृत कर दी थी और वे हर्षपूर्वक हमारी भावी स्वतंत्रता की बाट जोह रहे थे। इनमें लार्ड हेलीफैक्स का प्रमुख स्थान था। वह अनुदार-दलीय वायसराय थे और बाद को ब्रिटेन के मंत्री रह चुके थे। दूसरे लार्ड लोदियन थे, जो नरम दल के सदस्य थे और मिलीजुली सरकारों में भारत के उप-सचिव और ब्रिटेन के मंत्री रह चुके थे। बापू और इन दोनों के बीच सच्ची मित्रता हो गई थी। वैसे बापू व्यक्तिगत सम्पर्क के लिए उत्सुक रहते थे, पर जब मैंने उन्हें चर्चिल के साथ अपनी मुलाकात का हाल लिख कर भेजा, जिसमें मेरी प्रेरणा पर चर्चिल की भारत-यात्रा सम्बन्धी तत्परता की चर्चा थी, तो बापू को विशेष उत्साह नहीं हुआ। बापू ने मुझे साफ बता दिया कि जहां तक उनका संबंध है, वह श्री चर्चिल को कोई निमन्त्रण या प्रोत्साहन नहीं देंगे। उन्होंने कहा कि लार्ड लोदियन की बात दूसरी है, वह उनके भारत-आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करेंगे। लार्ड लोदियन का भारत-आगमन बहुत सफल रहा और उससे हम सबको बड़ी खुशी हुई। वह दिल्ली में और अन्यत्र मेरे अतिथि रहे। जब वह वर्धा गये तो उन्होंने बापू के अतिथि

के रूप में सेवाग्राम आश्रम के सादे जीवन को अंगीकार किया।

कुछ अन्य मित्र थे, खास तौर पर क्वेकर लोग, जो अपनी धार्मिक भावनाओं के कारण बापू के अहिंसा-व्रत के प्रति सहानुभूति रखते थे। भारत में उनकी श्रेणी में मिशनरियों को रखा जा सकता था। इन मिशनरियों में से अधिकांश ने, चाहे वे अंग्रेज रहे हों चाहे अमरीकी, हमारे साथ सहानुभूति दिखाई। केथलिक मिशनरियों को शायद अपवाद-स्वरूप माना होगा। वे लोग अधिकतर लैटिन देशों के थे। उनके निजी विचार चाहे जो रहे हों, उन्होंने अपना कोई राजनैतिक मत प्रदर्शित नहीं किया। मजदूर-दल के प्राय: सभी संसदीय सदस्यों ने, और सभी श्रमजीवी संस्थाओं ने, सहानुभूति प्रदर्शित की। जब युद्ध समाप्त हो गया तो बहु-आलोचित साइमन-कमीशन के भूतपूर्व सदस्य श्री एटली को ब्रिटेन के वादों को पूरा करने का गौरव प्राप्त हुआ। सर्व-साधारण लोगों में पादरी सोरेनसेन और श्री फेनर ब्राकवे के नाम उल्लेख योग्य हैं। उन्होंने कभी-कभी जानकारी के अभाव का परिचय अवश्य दिया, पर उसकी पूर्ति उन्होंने अपनी लगन से की। विरोध उन्हीं लोगों की ओर से होता था, जिनका अंग्रेजी प्रभुत्व में निहित स्वार्थ था। यह स्वाभाविक भी था। इंगलैण्ड में बड़ी-बड़ी व्यापारिक संस्थाएं थीं, जिन्होंने औपनिवेशिक व्यापार के द्वारा खूब धन कमाया था। भारत सुई से लगा कर जहाजों तक हर किस्म के तैयार माल के लिए एक विस्तृत बाजार बना हुआ था और कभी-कभी तो इन पदार्थों के लिए कच्चा माल मुख्यत: भारत से ही जाता था। उदाहरण के लिए, रुई ब्रिटिश जहाजों में लद कर लंकाशायर जाती थी और उसका ही कपड़ा बन कर भारत आता था, जिसकी खपत का यहां कोई अंत न था। फिर, ब्रिटेन के उच्च और मध्यम वर्ग के ऐसे असंख्य परिवार थे, जिनके मुखियों ने भारत में सेना, सिविल सर्विस या और किसी हैसियत में नौकरी की थी। उन्होंने मौज की जिन्दगी गुजारी थी, कुछ रुपया भी

बचाया था और अच्छी पेंशन ले कर चेल्टनहम, केम्बरले और बेडफोर्ड में जाकर डेरा जमाया था। ये लोग भारत को अपनी सन्तान के लिए एक मौरूसी जायदाद समझने लगे थे।

भारत में भी उनकी प्रतिमूर्त्तियां मौजूद थीं। वैसे भारतीय सिविल सर्विस इंगलैण्ड से आये हुए आदेशों का वफादारी के साथ पालन करती थी और भारत में संसदीय संस्थाओं के विकास का प्रयत्न ईमानदारी के साथ करती थी। पर उसमें ऐसे लोगों का अभाव नहीं था जो उन आदेशों के प्रति अपनी खालिस नापसंदगी को छिपाते नहीं थे। वे अपने को हमारे लिए आवश्यक फौलादी सांचा मानते थे और उन्हें हमारी शासन करने की योग्यता पर विश्वास न था। इसका कारण यह था कि उन्हें हम पर हुकूमत करना अच्छा लगता था। भारतीय सेना और जल-सेना को इसका सम्मानास्पद अपवाद कहा जा सकता है। ये अपने को राजनीति से अलग रखे हुए थीं। इन सेनाओं में अफसरों और सैनिकों के बीच सच्चा भाईचारा था, क्योंकि युद्ध में दोनों को समान रूप से जीवन की बाजी लगानी पड़ती थी और वे सभी एक-दूसरे पर निर्भर करते थे।

व्यापारी हल्कों में निहित स्वार्थ भी उसी प्रणाली का अनुसरण करते थे। बैंक, बीमा और जहाजरानी के व्यवसायों पर अंग्रेजों का अधिकार समझा जाता था। स्काटलैण्ड के कुछ खास परिवारों ने पटसन के व्यापार पर एकान्त अधिकार कर रखा था। बंगाल के खेतों और हुगली मिल से लगा कर डंडी पहुंचने तक सारे व्यापार और धंधे पर उन्हींका इजारा था। उन्होंने बेशुमार धन कमाया था और वे यह आशा करते थे कि उनके बच्चे भी उन्हींके पद-चिन्हों का अमुसरण करेंगे। बड़े शहरों में बड़ी-बड़ी मैनेजिंग एजेन्सी फर्मों का विकास हुआ और उनका जाल सारे भारत पर छा गया। इस वर्ग के प्रायः सभी लोग शक्तिशाली विरोधी थे। वे ब्रिटिश प्रभुत्व के पक्के हिमायती प्रतीत होते थे। हां, इतना अवश्य है कि जब ब्रिटिश सरकार ने लार्ड माउन्ट-

बैटन को अपना अन्तिम वायसराय बना कर भारत भेजा और अपने भावी इरादों को साफ तौर से जाहिर कर दिया तो उन्होंने अपने विरोध का अंत यथासम्भव मृदुलता के साथ कर दिया। उन्होंने जल्दी ही दिखा दिया कि वे अपने को नये सांचे में ढाल लेने की क्षमता रखते हैं।

पर इन सुविधा-भोगी क्षेत्रों मे भी सदा उल्लेखनीय अपवाद मौजूद रहे हैं। उदाहरण के लिए, इंगलैण्ड में लार्ड डरबी को मैंने न्यायप्रिय, पक्षपातशून्य और बिल्कुल दम्भरहित व्यक्ति पाया, हालांकि प्रादेशिक आधार पर लंकाशायर उनसे अधिक पक्षपात की आशा कर सकता था। हम भारतवासियों को याद है कि कांग्रेस की स्थापना अंग्रेजों ने की थी, जिनमें कलकत्ते के स्काट व्यापारी एण्ड्रयू यूल का स्थान प्रमुख था। भारतीय सिविल सर्विस के सर हैनरी काटन उन पुराने दिनों के मित्रों में से थे। पत्रकार जगत में राबर्ट नाइट का नाम आता है, जिन्होंने १९ वी शताब्दी में 'टाइम्स आव इंडिया' की और बाद में 'स्टेट्समैन' की स्थापना की। ये भी भारत के पक्के हिमायती थे। इसमें सन्देह नहीं कि और भी अनेक ज्ञात और अज्ञात सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति मौजूद थे। जब बापू ने हमें उठा कर खड़ा किया, हमारे स्वाभिमान में वृद्धि की और हमें अपने पांवों पर खड़े होना सिखाया तो इन मित्रों की संख्या में खूब वृद्धि हुई। लायड जार्ज ने 'नरम हिन्दू' के विशेषण को जन्म दिया और इस नरमी ने कहावत का रूप धारण कर लिया। किन्तु जब अंग्रेजों ने देखा कि नरमी की भी एक सीमा होती है तो वे लोग हमारा अपेक्षाकृत अधिक सम्मान करने लगे।

: २६ :

गतिरोध

गतिरोध का प्रारम्भ युद्ध के पहले हेमन्त में कांग्रेसी मंत्रियों के त्यागपत्र से हुआ। पर इससे वायसराय और राष्ट्र-नेता के संबंध तुरन्त ही नहीं टूट गये। दोनों में सद्भावनापूर्ण पत्र-व्यवहार का सिलसिला जारी रहा, दोनों हृदय से ही कोई-न-कोई समझौता ढूँढ़ निकालने के लिए सचेष्ट रहे और बीच-बीच में मिलते भी रहे। पर दोनों ओर संदेह की जड़ मजबूत होती गई। सन्देह से सन्देह पैदा होता है और किस पक्ष ने संदेह का प्रारम्भ किया, इसका निर्णय करना आसान काम नहीं है। उस संदेह का जन्म ब्रिटिश पार्लमेंट में अथवा भारत के बाहर के अंग्रेजों में नहीं, स्वयं भारत में ही रहनेवाले अंग्रेजों में हुआ और इसका इतिहास पुराना है। वे लोग अपनी सुविधा-भोगी स्थिति की रक्षा करने के लिए हमेशा चौकन्ने रहते थे। वे व्यापारी होने के नाते राजनीति से अपने को अलग रखने का दिखावा करते थे और व्यवस्थापिका सभाओं तक में महत्वपूर्ण विवादग्रस्त विषयों पर कोई खास पक्ष लेने से बचते थे, पर हमारी संख्या का भूत उन्हें बराबर सताता रहता था। उनकी कल्पना थी कि वे मुट्ठी भर होते हुए भी जो इस अभागे जन-समुदाय के बीच चैन की बंसी बजा रहे हैं सो किसी मोहनी-मंत्र के चमत्कार से ही। पर निर्धन जनता की जनसंख्या जिस तेजी से बढ़ रही थी उससे यह साफ जाहिर था कि इन लाखों-करोड़ों का समूह अन्त में अरबों का समूह बन जायेगा। इसमें संदेह नहीं कि इस जन-समुदाय के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने की समस्या को अंग्रेजों ने जन्म नहीं दिया था। अलबत्ता उन्होंने

शांति को अवश्य जन्म दिया, और न यह समस्या अंग्रेजों के चले जाने से ही हल हो जाती। अवस्था विषम थी। जो गैर-सरकारी अंग्रेज आबादी साधारणतया इतनी मस्त दिखाई देती थी (भारतवासी इस मस्ती में हद दर्जे के छिछोरेपन के दर्शन करते थे, क्योंकि अभी भारतीय सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों ने पदार्पण नहीं किया था) उसीमें १८५७ के बाद से अचानक त्रास की लहर दौड़ जाती थी। जहां कोई अफवाह उड़ी कि बड़े दिन पर अथवा अमुक दिन गदर होनेवाला है कि सबके रोंगटे खड़े हुए और उन्होंने इस काल्पनिक भय से सशंकित होना शुरू किया कि सबको सोते-सोते मौत के घाट उतार दिया जायगा। वे अपने आपसे प्रश्न करते कि मोहनी का चमत्कार कबतक बना रहेगा?

दूसरी ओर हम भारतवासी, जिनमें बापू भी शामिल थे, आवश्यकता से अधिक शंकाशील हो गये थे। अधिकांश भारतवासी अंग्रेजों को उन्हीं लोगों द्वारा जानते थे, जिनके सम्पर्क में आने का या जिनके साथ व्यवहार करने का उन्हें भारत में अवसर मिलता था। ये लोग अपने देशवासियों के अच्छे खासे और औसत दर्जे के नमूने होते थे और कुछ तो औसत से भी काफी ऊँची कोटि के होते थे, पर होते थे आवश्यकता से अधिक सुविधा-भोगी। फलतः उन्हें अपने बचाव की ही चिन्ता रहती थी। दुर्भाग्यवश अंग्रेजों के आने के पहले हमारे देश में पारस्परिक संदेहों और षड्यंत्रों का अभाव था, और देश निरंकुश राजाओं द्वारा शासित अनेक टुकड़ियों में बंटा हुआ था। ऐसी अवस्था में हममें से अधिकांश के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे अपने नये अंग्रेज प्रभुओं को संदेह की दृष्टि से देखते और उनके इरादों को बुरा समझते। आम जनता उन्हें निरंकुश समझती थी। उसने लोकतंत्रीय संस्थाओं का नाम तक नहीं सुना था।

बापू स्वयं मूलतः इस नियम के आश्चर्यजनक अपवाद थे।

बचपन से ही, और युवावस्था में भी, उन्हें शक्कीपन छू तक नहीं गया था। वस्तुतः वह जन्मजात सत्यवादी थे। बचपन के उस लुकाव-छिपाव की जड़ में भी, जिसका उन्होंने अपने आत्म-चरित में इतनी सच्चाई के साथ उल्लेख किया है, उनका यह सरल विश्वास काम कर रहा था, कि जो साथी धूम्रपान और मद्यपान करने या नियम तोड़ने की सलाह देते हैं, सच ही कहते होंगे कि इसमें कोई हानि नहीं है। इन प्रभावों से उनकी रक्षा स्वयं उन्हीं की स्नेहशील प्रकृति ने की। वह मातृ-भक्त थे और उन्होंने महसूस किया कि वह बुरे संसर्ग में रहेंगे तो उनकी मां का दिल टूट जायगा।

यह युवक कानून का अध्ययन करने इंग्लैण्ड गया, भारत वकालत करने लौटा और वकील की हैसियत से ही दक्षिण अफ्रीका गया, पर बराबर असाधारणतया स्पष्टवादी, निर्दोष और शंकारहित बना रहा। वास्तव में गांधीजी उस समय अंग्रेज-भक्त थे। उन्होंने अंग्रेजों को उन्हींके देश में अच्छी निगाह से देखना सीखा था और उनका विश्वास था कि उनके सम्पर्क से अन्त में भारत में भी वैसी ही लोकतन्त्रीय संस्थाओं का विस्तार हो सकेगा। इसलिए जब वह बोअर युद्ध के समय दक्षिण अफ्रीका में थे तो उनकी सहानुभूति किस पक्ष के साथ है, इस बारे में कभी कोई शक पैदा नहीं हुआ और हम यह मान कर चल सकते हैं कि उस दूरवर्तीकाल में भी उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें बता दिया होगा कि दक्षिण अफ्रीका में उनके मुख्य विरोधी अंग्रेज नहीं, बल्कि 'अफ्रीकान्डर' कहलाने वाले डच प्रवासी सिद्ध होंगे, ठीक जिस प्रकार बाद में ब्रिटेन में उनका सब से कड़ा विरोध उपनिवेश प्रवासी अंग्रेजों ने किया। किन्तु समय पर आशा पूरी न होने से दिल टूट जाता है। प्रत्येक अवसर पर अंग्रेज-प्रवासियों ने (कुछ सम्मानास्पद अपवाद तो हमेशा ही रहे) स्वशासन की दिशा में भारत की प्रगति का विरोध किया और वे सुधार की गति को मंद बनाने में इतने सफल हुए कि अंत में बापू को पूरा

सन्देह होने लगा। उन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध में ब्रिटेन का समर्थन करना जारी रखा, पर फिर एक ऐसा मोड़ आया कि उसके बाद से संशयशीलता ने एक टेव का रूप धारण कर लिया। इस काया-पलट का श्रेय रोलेट कानून को है। यह काया-पलट जिस चीज को लेकर हुआ उसे ध्यान में रखा जाय तो ऐसा प्रतीत होगा मानो बापू ने भारतीय राष्ट्रीयता की दीर्घकालीन वकालत के दौरान में अंग्रेजों की उन विशेषताओं को भुला दिया था, जिनसे वह काफी परिचित हो चुके थे। सरकार ने रौलट कानून के द्वारा संभावित संकटकालीन अवस्था का सामना करने के लिए ही विशेषाधिकार अपने हाथ में लिये थे। उनका एक बार भी उपयोग नहीं किया गया और आज स्वतन्त्र भारत की सरकार उन सब अधिकारों को अपने हाथों में रखना आवश्यक समझती है और उसे साम्यवादियों के खिलाफ उनका उपयोग भी करना पड़ा है।

इस समय वायसराय के साथ अपनी बातचीत के दौरान में बापू ने औपनिवेशिक स्वराज्य शब्द पर घोर आपत्ति की। आगे के वर्णन में उनके विचारों पर प्रकाश पड़ेगा। १२ जनवरी १९४० को मैंने महादेवभाई को लिखा :

मैं नहीं जानता कि हम औपनिवेशिक दर्जे (डोमिनियन स्टेटस) और स्वतन्त्रता मे अनावश्यक भेद क्यों पैदा करना चाहते है। हम ब्रिटेन से सम्बन्ध तोड़ना भी चाहेंगे तो वेस्टमिन्स्टर विधान के नमूने का औपनिवेशिक दर्जा प्राप्त करने के बाद भी ऐसा कर सकते है। हम ब्रिटेन से क्यों कहें कि वह हमसे नाता तोड़ दे? हम नाता तोड़ना चाहेगे तो, जब हमे ऐसा करने की आज़ादी मिल जायगी उस समय, उसकी जिम्मेदारी हम खुद अपने ऊपर ले सकते है। यदि हम वैसी अवस्था मे संबंध तोड़ेगे तो मत-दाताओं की पूर्ण सहमति के साथ ही ऐसा करेगे। राष्ट्रमंडल से हमें अलग करने के लिए ब्रिटेन से कहने का यह अर्थ होता है कि हम ब्रिटेन से कुछ ऐसा काम करने को कहते है जिसे करने का अधिकार हमारे मतदाताओं को होना चाहिए। वास्तव में ब्रिटेन ठीक ही यह कह सकता है, "हम जिम्मेदारी क्यों ले? जब आपको औपनिवेशिक दर्जा मिल जाय तो आप

चाहें तो संबंध तोड़ सकते है।" और मेरी समझ मे उनका ऐसा करना बिलकुल तर्कसंगत होगा।

और १४ ता० को बापू ने वायसराय को लिखा :

मैंने आपका बम्बई का भाषण एक से अधिक बार पढ़ा। पर यह पत्र मै आपके सामने अपनी कठिनाइयां रखने के लिए लिख रहा हू। वेस्ट-मिन्स्टर विधान के अर्थ में औपनिवेशिक दर्जे और स्वतन्त्रता को पर्यायवाची माना जाता हैं। यदि यही बात है तो आप ऐसे वाक्य का प्रयोग क्यों न करें जो भारत की स्थिति के अनुरूप हो ?

१५ ता० को महादेवभाई ने मुझे लिखा :

आपने इंगलैड के लिए भारत की स्वतंत्रता की घोषणा करना सम्भव न होने की जो बात कही हैं एवं और जो कुछ कहा है उसे मै तो समझ गया, पर बापू का विचार भिन्न हैं। परन्तु यदि सबकुछ ठीक-ठीक रहे और केवल इसी बात पर मामला अटकता हो तो बापू पुर्नविचार करेंगे, हालांकि उनका यह दृढ़ विश्वास हैं कि वायसराय उनके दृष्टिकोण को और किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं। वास्तव में बापू का कहना तो यह हैं कि यदि वह (अर्थात् बापू) इंगलैड मे हों तो वह इंगलैड को औप-निवेशिक दर्जे के बजाय स्वतत्रता शब्द का प्रयोग करने को आसानी से राजी कर सकेंगे।

कभी-कभी बापू के बदलते हुए मानस से महादेवभाई के धीरज की कड़ी परीक्षा हो जाती थी। यदाकदा वह अपना धैर्य खो बैठते थे जैसा कि उनकी इस उक्ति से पता चलता है कि सेवाग्राम तो एक 'पागलखाना' बन गया है।

सेगांव, मध्य प्रदेश
२७. १. ४०

प्रिय घनश्यामदासजी

बापू भी विचित्र है। उनका विश्वास हैं कि दिल्ली उन्हे एक या दो दिन से ज्यादा नहीं ठहरना पड़ेगा—यह हुआ निराशावाद। परन्तु साथ ही वह यह भी कहते हैं कि यदि औरों को भी बुलाया गया तो ज्यादा

दिन भी ठहरना हो सकता है, और यह आशावाद है। फिर वह कहते हैं कि यदि १० ता० तक ठहरना पड़ा तो १० ता० को हरिजन सेवक संघ की बैठक बुलाई जा सकती है। ज्यादा अच्छा होता कि बैठक के लिए ७ या ८ ता० की घोषणा कर दी जाती। बापू का मन तो यहां अस्पताल में रमा हुआ है। गुजराती 'हरिजनबन्धु' में बापू का एक लेख छपा है 'गुजरातियों से'। उसे अवश्य पढ़ियेगा। सेगांव का नाम बदल कर सेवाग्राम रखा जा रहा है। सरकारी कागज़ों में यह नाम दर्ज कराने के लिए अर्जी दे दी गई है। नाम तो बदल ही जायगा, पर अच्छा होता कि उसका नाम 'पागलखाना' रख दिया जाता।

आपका
महादेव

बापू ने उसी दिन मुझे एक तार भेजा, जिससे उनकी अस्थिरता प्रकट होती थी। मैं भी आश्चर्य करता रह गया कि मुझे यहां रहना है, वहां जाना है, या क्या करना है।

पूर्व घोषणा के अनुसार हरिजन सेवक संघ की बैठक यहां होगी या ६ तारीख से वहां होगी। विशिष्ट कार्य पूरा होने के बाद मेरे वहां ठहरने की आशा मत करना। या फिर मलिकन्दा के बाद वर्धा के लिए कोई तारीख निश्चित कर लेना।

उन दिनों शांति करानेवालों का मार्ग कांटों से ढका हुआ था। महादेवभाई के एक और पत्र से पता चलता है कि बापू को अपने कुछ मित्रों का लिहाज न होता तो वह समझौते की दिशा में ज्यादा आगे बढ़ पाते।

आपको यह जानकर दिलचस्पी होगी कि जिस समय आपने फोन पर मुझे ज़फरुल्ला के साथ हुई अपनी बातचीत का हाल सुनाया था, उसी समय मैंने जिन्ना पर एक लेख पूरा करके बापू के सामने रखा था। मैंने इस लेख का आपसे ज़िक्र नहीं किया, क्योंकि मुझे यह भरोसा नहीं था कि बापू उसे छापने की स्वीकृति दे देंगे। पर बापू की स्वीकृति मिल गई और वह इस सप्ताह के 'हरिजन' में छपने भी चला गया। एक और लेख है जिसे आप पसन्द करेंगे। हां, उसका सर्वोत्कृष्ट भाग बापू ने काट दिया कि कहीं

जवाहर को बुरा न लगे। मैंने लेख में आयर्लैंड के इतिहास का एक पन्ना दिया था, और वैधानिक प्रश्न सम्बन्धी तथ्यों का सार देने के बाद ग्रिफिथ का यह उद्धरण दिया था :

"हमने आयरिश प्रजातंत्र की स्थापना की शपथ ली है, पर जैसा कि प्रेसिडेन्ट डि वेलेरा ने कहा है, इस शपथ का मतलब यह है कि हमने आयर्लैंड का यथाशक्ति अधिक-से-अधिक हित करने का बन्धन स्वीकार किया है। हम भी उस शपथ से यही समझते हैं। हमने आयर्लैंड का अपनी शक्ति भर अधिक-से-अधिक हित किया है। यदि आयर्लैंड के लोग कहे कि हमें और तो सबकुछ मिल गया, केवल प्रजातंत्र का नाम नहीं मिला और हम उसके लिए लड़ेंगे, तो मैं उनसे कहूंगा कि तुम मूर्ख हो।"

मैंने इस वाक्य को इस टीका के साथ उद्धृत किया था :

"ये शब्द हमारे कुछ अतिउत्साही व्यक्तियों के लिए भी थोड़ी चेतावनी देने वाले हैं।" बापू ने इसको काट दिया। मैंने बापू से पूछा "क्या आप ग्रिफिथ से सहमत नहीं है ?" उन्होंने कहा, "हां, किन्तु यह कहना उचित नहीं होगा।"

इस दफा वायसराय के साथ बापू की बातचीत का कोई नतीजा नहीं निकला। सर जगदीश प्रसाद ने मुझे बताया कि लार्ड लिनलिथगो ने बापू को अनुकूल नहीं पाया।

८ फरवरी, १९४०

प्रिय महादेवभाई

बापू के रवाना होने के बाद मुझे एक विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ कि बापू वायसराय के मन पर मित्रतापूर्ण असर नहीं छोड़ गये। धारणा थी कि बापू बहुत कड़े, समझौते के लिए अनिच्छुक और प्रतिकूल रहे। यह आशा की गई थी कि बापू एक-एक करके ठोस बातों को लेकर समझौते की कोशिश करेंगे। वायसराय ने सेना और नरेशों की चर्चा चलाने की कोशिश की। वह चाहते थे कि बापू इन लोगों से मिले और वायसराय की मदद से समस्याओं को हल करें। वायसराय ने अनुकूल प्रतिक्रिया की आशा की थी, और उन्हे यह देख कर निराशा हुई कि बापू ने, जो खाई नजर आती है उसे पाटने की कोशिश नहीं की।

इससे यही स्वाभाविक निष्कर्ष निकाला गया कि बापू वामपंथियों से प्रभावित हैं और 'लड़ाई' के लिए उतारू हैं। वायसराय ने यह भी आशा की थी कि यदि बापू से अनुरोध किया जायगा तो वह और अधिक मुलाकातों

के लिए ठहर जायंगे और बातचीत को खत्म करने के मामले में जल्दबाजी से काम नहीं लेंगे। चूंकि उन्होंने बेहद जल्दी की, इसलिए सरकारी पक्ष की धारणा है कि बापू शिकायत लेकर लौटे हैं और इसका नतीजा सविनय अवज्ञा आन्दोलन ही होगा।

बापू की यह धारणा ठीक नहीं थी कि वायसराय उनकी स्थिति को समझते हैं और दोनों के बीच कोई गलतफ़हमी नहीं है। वायसराय को बापू के रवैये से सचमुच निराशा हुई है। देवदास और मैं, दोनों वायसराय की भावना से सहमत हैं, क्योंकि हमारी भी यही धारणा है कि बापू का रुख अनुकूल और सहायतापूर्ण नहीं था।

परन्तु जब मैंने सर जगदीश से यह बात सुनी तो उनसे कहा कि वह वायसराय और लेथवेट के दिल से यह खयाल दूर करने की कोशिश करें कि बापू कोई शिकायत या निराशा लेकर लौटे हैं और सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू होने वाला है। सर जगदीश ने लेथवेट को सूचित किया और लैथवेट ने मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की। मैं लेथवेट से आज सुबह मिला और अब स्थिति स्पष्ट हो गई है।

मैंने लेथवेट को आमतौर पर बताया कि बापू के साथ मेरी क्या बात हुई है और कहा कि बापू का लक्ष्य कोई राजनैतिक समझौते का नहीं है। वह तो नैतिक परिवर्तन चाहते हैं। कोरे राजनैतिक समझौते की वही दुर्गति हो सकती है जो राजकोट-निर्णय की हुई।

मेरी बातचीत के बाद लेथवेट की प्रसन्नता लौट आई और उन्होंने कहा कि जो पृष्ठभूमि मैंने उन्हें बताई उससे वह सारी स्थिति को समझ गये हैं और उनके दिल में निराशा का भाव बाक़ी नहीं रह गया है। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मेरे पास कोई रचनात्मक सुझाव है। मुझे स्वीकार करना पड़ा कि नहीं है। शायद तुम मुझे बता सको कि क्या कोई सुझाव दिया जा सकता है। सामान्य विचार तो ठीक है, पर तुम्हें उन्हें व्यावहारिक रूप देना है, और मेरी राय में समय आ गया है, या रामगढ कांग्रेस के बाद आ जायगा, जब हमें अपने विचारों को ठोस रूप देने की चेष्टा करनी होगी। यदि हम सचमुच निकट भविष्य में समझौता चाहते हैं तो हमें प्रश्न के दोनों पहलुओं पर विचार करना होगा। नैतिक परिवर्तन भी तभी संभव होगा, जब हम विपक्षी की कठिनाइयों को समझेंगे और उसका हाथ बंटाने की चेष्टा करेंगे।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

पर बापू की कलम से लिखे गए एक लेख ने मेरी शंकाओं का समाधान कर दिया और मैंने जो कुछ लिखा था, उसे अगले दिन वापस ले लिया :

प्रिय महादेवभाई

मुझे 'हरिजन सेवक' का वह लेख पहले ही मिल गया, जो तुमने मुझे सीधे भेजा था। बापू एक नाजुक स्थिति को जिस खूबी के साथ सम्हाल लेते है देखकर चकित रह जाना पड़ता है। लेख सचमुच अद्भुत है। मैंने अपने कल के पत्र में बापू की आलोचना करके ग़लती की कि उन्होंने विपक्षी की कठिनाई को ध्यान मे नहीं रखा। लेख से जाहिर है कि उन्होंने विपक्षी की कठिनाई का लिहाज किया है। लोग कभी-कभी यह भूल जाते है कि बापू किस नैतिक स्तर पर रहते हुए काम करते है। स्वतन्त्रता की लगन और अपनी कमजोरियों के ज्ञान ने हमारी दृष्टि को साधनों की अपेक्षा साध्य पर अधिक केन्द्रित कर रखा है, पर बापू के लिए साधन और साध्य दोनों एक समान है। मै यह बात हृदयंगम करने की चेष्टा करूंगा कि यदि हम साधनों की चिन्ता रखेंगे तो साध्य अपने आप सिद्ध हो जायगा। मुझे तो व्यावहारिक दृष्टि से भी इस बात में संशय की गुंजायश नहीं दिखाई देती है कि ब्रिटेन का वास्तविक हृदय परिवर्तन हुए बिना औपनिवेशिक दर्जे वाला नुस्खा ग्वायर-निर्णय जैसा ही सिद्ध हो सकता है। मेरा खयाल है कि परिवर्तन के लिए हृदय प्रस्तुत हो चुका है। परमात्मा करे, भारत और इंगलैंड सहृदयता और मित्रता के निर्माण-कार्य मे एक-दूसरे से होड़ लेने लगें। इसलिए धीरज से काम लेने और प्रतीक्षा करने मे ही भलाई है।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

७ मार्च को मैंने कलकत्ते से एक पत्र लिखा, जिसमें अपने मन की बात कह डाली :

प्रिय महादेवभाई

तुमने बापू के लेख की जो अग्रिम प्रति बजरंग को भेजी थी, उसे मैंने पढ़ लिया है। बापू ने इस लेख मे अपने विचारों को आवश्यकता

से भी अधिक स्पष्टता के साथ खोलकर रख दिया है, अतः उनके मन की गतिविधि को कोई भी बड़े आकार में देख सकता है। मैं इस लेख को इसलिए भी पसन्द करता हूं कि वह सविनय अवज्ञा की संभावना को सर्वथा समाप्त कर देता है। तुम जानते ही हो कि मुझे सविनय अवज्ञा से अरुचि है। उसने अहिंसा के नाम पर हिंसा को प्रोत्साहन दिया है और निर्माण के नाम पर अनेक पदार्थ नष्ट कर डाले हैं। हां, उसके द्वारा देश में आश्चर्यजनक जागृति अवश्य हुई है। पर यदि यह मनोवृत्ति बनी रही तो किसी भी सरकार का, हमारी अपनी सरकार का भी, चलना असभव हो जायगा। सत्याग्रही रंगरूटों की कमी नहीं है। वे हमारी ही सरकार के खिलाफ उठ खड़े होंगे और आतंकवाद और भ्रष्टाचार के द्वारा सुव्यवस्थित शासनकार्य असम्भव बना देंगे। मैं मानता हूं कि अवज्ञा आन्दोलन का डक उसी समय टूट जाता है जब अहिंसा को उसका आधार मान लिया जाता है। पर क्या वास्तव में वह अहिंसात्मक रह पाता है? बापू मन, वचन और कर्म से अहिंसा पर जोर देते हैं। पर मुझे खेद के साथ लिखना पड़ता है कि बापू के निकटतम साथी भी इस भावना को नहीं अपना सके हैं, और कार्य विचार का प्रतिबिम्ब मात्र है ही। इसीलिए सविनय अवज्ञा की चर्चा चलते ही मेरा माथा ठनकने लगता है। अंशतः इन्ही विचारों के कारण मैंने इस लेख को पसन्द किया। साथ ही, मुझे बापू के लेख का अन्तिम पैरा भाया। मैं मानता हूं कि कांग्रेस के साथ बापू की पटरी नही बैठ सकती। उनका अनुचित लाभ उठाया जा रहा है, क्योंकि लोग जानते हैं कि वही देशव्यापी सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सफल नेतृत्व कर सकते हैं। पर एक ओर लोग बापू की मदद चाहते हैं और दूसरी ओर उनके कार्यक्रम को कभी पूरा नहीं करते। उनमें ऐसा करने की इच्छा तक का अभाव प्रतीत होता है। शायद सच्ची बात तो यह है कि अहिंसा में किसी की आस्था नही है। राजनैतिक हल्कों में हर कोई अहिंसात्मक संघर्ष नही, उथल-पुथल चाहता है। मैं अपने बारे में कह सकता हूं कि अहिंसा में मेरी बौद्धिक आस्था है। पर इससे तो कुछ अधिक सहायता नहीं मिली। बापू एक मध्यस्थ की हैसियत से अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। अपने आपको कांग्रेस के साथ मिलाकर उन्होंने अपने और वामपक्षियों के बीच का अन्तर मिटा दिया है। अहिंसा और हिंसा एक प्रकार से पर्यायवाची बन गये हैं। मेरे खयाल से यह अत्यन्त विषम स्थिति है और कभी-कभी तो मुझे इस पर बड़ी ऊब पैदा होती है।

चाहो तो मेरा यह पत्र बापूको दिखा सकते हो। यदि बापू अकेले ही रहें तो उनकी अहिंसा की सफलता की संभावना अधिक रहेगी। कैसे

मजे की बात है कि कांग्रेस अधिकारी न होते हुए भी अहिंसा व्रत का प्रतिनिधित्व करने की चेष्टा करती है।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

उत्तर में महादेवभाई ने लिखा :

सेगांव, वर्धा
मध्य प्रदेश
११.३.४०

प्रिय घनश्यामदासजी

आपका लम्बा पत्र मिला। आपने जो कुछ लिखा है, उसको मैं समझता हूँ। मैंने आपका पत्र बापू के सामने रखा था। उन्होंने पढ़ा, पर मै उनकी प्रतिक्रिया नही जान सका, क्योंकि उनका मौन था। आप सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बारे में जो कुछ कहते हैं, उसे यदि सच मान लिया जाय और इस बारे में आपके विचार आर्थर मूर के विचारों से बहुत-कुछ मिलते हैं—तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि सविनय अवज्ञा से, चाहे वह कितनी ही अपर्याप्त क्यों न हो, हिंसा ज्यादा अच्छी रहेगी? मेरा विचार भिन्न है। मानव प्रकृति की सारी कमजोरियों के बावजूद, उसके पास कोई ऐसा माध्यम तो होना ही चाहिए जिसके द्वारा वह अपना विरोध प्रकट कर सके, और यदि आप पददलित मानवता को सविनय अवज्ञा के अस्त्र से भी वंचित कर देते हैं तो आप उसका सर्वस्व छीन लेते हैं और उसे खालिस कायरता की शरण में भेज देते हैं। मै काफी कठोर भाषा का व्यवहार कर रहा हूं, पर यही मेरा आन्तरिक विश्वास है। मेरा तो विश्वास है कि हम नेकनीयती के साथ की गई भूल से सत्य की ओर, एवं सत्य से सत्य की ओर अग्रसर होंगे। मैंने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के कांग्रेस अंक के लिए कल एक लम्बा लेख लिखा है। देवदास या आप उसे पसन्द करेंगे या नहीं, सो तो मैं नहीं जानता, पर यदि देवदास उसे प्रकाशित करें तो मैं चाहता हूं कि आप उसे पढ़ें अवश्य ।

बापू आपके पत्र के सम्बन्ध में कुछ कहेगे तो मै आपको लिख दूंगा। क्या आप बजरंगलालजी को यह बताने की कृपा करेंगे कि एन्ड्रयूज के बारे में उन्होंने जो विस्तृत पत्र भेजा है, उसके लिए मै उनका बड़ा आभारी

हूं ? मैंने वह पत्र बापू को दिखाया था और इस बारे मे बापू के विचार आपको कल लिखूगा।

सप्रेम,

आपका ही
महादेव

कलकत्ता, १५ मार्च १६४०

प्रिय महादेवभाई

तुमने मेरे पत्र का यह अर्थ क्यों लगाया कि उसमे सविनय अवज्ञा से, चाहे वह कितनी ही अपर्याप्त क्यों न हो, हिंसा को अच्छा बताया गया है? मैं तुमसे इस बारे मे सहमत हूं कि मानव प्रकृति के पास अपना विरोध प्रकट करने के लिए कोई माध्यम होना चाहिए और इसके लिए सविनय अवज्ञा, चाहे वह थोड़ी अविनयपूर्ण ही हो, तो भी अहिंसा से अच्छी है। अपने विशुद्धरूप में सत्याग्रह निस्सदेह ही सम्मानपूर्ण समझौते के मार्गो की पूरी तरह खोज किये बिना हमारे विरोध की इच्छा को व्यक्त करता है। कभी-कभी मैं अनुभव करता हूं कि हम लोग अपने कार्यक्रम के संघर्ष वाले अंश पर जरूरत से ज्यादा जोर देते है और समझा-बुझा कर समझौते पर पहुंचने के मार्ग की उपेक्षा करते है। हमने अपनी मांगों को इतना बढ़ा-चढ़ा लिया है कि अंग्रेजों के लिए किसी सम्मानपूर्ण समझौते पर पहुंच सकना असंभव हो गया है। बस, मेरी शिकायत यही है। काग्रेस कार्य-समिति मे भी ऐसे लोग है जो मेरी ही तरह अनुभव करते है, पर बापू की उपस्थिति मे मैं, और शायद और भी कई लोग, एक प्रकार के आशावादी आत्मविश्वास की अनुभूति करते है। लेकिन मैं अपने सम्बंध में कह सकता हूं कि जब मै उनके सामने नही होता हू और स्थिति पर ठंडे दिल से विचार करने लगता हूं तो मेरा वह आत्मविश्वास गायब हो जाता है। मैं सोचता हूं कि यह तो हृदय के वशीभूत होना और मस्तिष्क की उपेक्षा करना हुआ, पर यह ईश्वर ही जानता होगा कि दोनों में से कौन अधिक मूर्ख है: हृदय या मस्तिष्क। पर हमारी वर्तमान नीति के औचित्य के बारे में शंकायें मेरा पीछा नही छोड़ती। हम एक नाजुक समय में से गुजर रहे हैं, इसीलिए मैंने सोचा कि मुझे अपनी शंकाएं बापू के सामने रख देनी चाहिए। अत-एव मैंने अपने विचारों को लिख डाला और एक प्रति तुम्हारे पास भेज दी—अब उसका जो भी मूल्य हो। जब मै अपने हृदय से परामर्श करता हूं तो अनुभूति होती है कि अन्त में बापू की ही जीत होगी, क्योंकि बापू ग़लतियां करेंगे तो भी उतनी नहीं, जितनी और लोग। भगवान उनका पथ-प्रदर्शन

करे। पर यह तो हुई श्रद्धा की बात। जब मैं अपने मस्तिष्क से परामर्श करता हूं और थोड़ा 'बुद्धि-संगत' विचार करता हूं तो मैं इसके अलावा और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता कि हमने ताश के पत्ते ठीक तरह से नहीं चले।

किन्तु तुम मुझे लेकर अपना समय व्यर्थ क्यों खोते हो। और यदि ऐसा करना ही हो तो केवल मुझे शिक्षा देने के लिए करो। पर मैं अच्छा-बुरा जो भी लिखूं उसे कम-से-कम बापू को अवश्य दिखा दिया करो। बापू ने मुझसे अनेक बार कहा है, "अपना प्रभाव डालते रहा करो, प्रकट में सफलता मिलती दिखाई न दे तो भी सम्भव है, अचेतनरूप में प्रभाव पड़ जाय।" इसीलिए मैं अपने विचारों को तुम्हारे पास भेजता रहता हूं। इससे मुझे कुछ मानसिक शान्ति मिलती है।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

प्रिय घनश्यामदास

मैंने तुम्हारा पत्र और नोट दोनों पढ़ लिये हैं। मैं भी तुम्हारी वेदना का भागीदार हूं। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यही वह समय है जब हम तिल-मात्र से भी कम पर सन्तुष्ट नहीं हो सकते। मुझे तो अपनी योजना में कोई दोष दिखाई नहीं देता है। इसके विपरीत इसमें उनका भी भला है। वे हमारी मांग को स्वीकार नहीं करते, इससे यही ज़ाहिर होता है कि वे हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता नहीं चाहते। राजाओं का रुख तो एकदम असहनीय रहा है। तुमसे किसने कहा कि मैं उनसे नहीं मिलना चाहता? उनके संकेत भर की देर है, मैं उनसे अवश्य मिलूंगा। असली बात तो यह है कि वे खुद ही मुझसे मिलना नहीं चाहते।

बापू के आशीर्वाद

पुनश्चः—तुम चाहो तो मैं सेवा सदन के लिए कलकत्ता आने को तैयार हूं।

सेगांव, वर्धा
१७.३.४०

प्रिय घनश्यामदासजी

मैंने आपके सारे पत्र बापू को पढ़वा दिये। मैंने यह कभी नहीं समझा कि आप केवल विचार-विनिमय की खातिर ही लम्बे पत्र लिखते हैं। मैंने तो हमेशा यही माना है कि मुझे पत्र लिखकर आप अप्रत्यक्ष रूप से

कुछ बाते बापू तक पहुंचा सकते हैं। यही कारण है कि मैं आपके सब पत्र ब.पू के सामने रख देता हूं।

मैंने यह कभी नहीं समझा कि आप अधूरे असहयोग से हिंसा को अच्छा समझते है। मैंने तो यह लिखा था कि आपकी स्थिति मूर के दृष्टिकोण से बहुत कुछ मेल खाती है और जहां तक मूर का संबंध है, वह हिंसा को पसन्द करते हैं। असल में पीड़ित मामवता को एक आदर्श माध्यम की आवश्यकता है। बापू ने इस माध्यम को पसन्द किया है, और वह उसे सहज अवस्थाओं के द्वारा पूर्ण बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। या तो वह इस प्रयास में समाप्त हो जायंगे या यह माध्यम पूर्ण बन कर ही रहेगा।

बापू ने अपने जीवन में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम उठाने का निश्चय किया है। यह पत्र मिल े के पहले ही शायद आपको उसका पता चला जायगा। आप बापू को कलकत्ता नही बुला रहे हों तो मै आपको विस्तृत विवरण देने एक दिन के लिए कलकत्ता आ सकता हूं।

आपका
महादेव

: २७ :

राजकोट-प्रकरण

राजकोट वाला प्रकरण भारत के लिए इतना सुपरिचित है कि उसका वर्णन करने की चेष्टा करमा अनावश्यक होगा। बापू का इतिहास-प्रसिद्ध अनशन, लार्ड लिनलिथिगो का सहानुभूति पूर्ण रुख, उनके द्वारा इस मामले का निर्णय भारत के प्रधान न्यायाधीश सर मारिस ग्वायर के सिपुर्द किया जाना, और प्रधान न्यायाधीश के द्वारा बापू के पक्ष में निर्णय किया जाना——ये सब बातें भूलीं नहीं है। न ऐसी कहानी सुनाने में आनन्द ही आयगा, जिसमें सरदार पटेल, बापू, वास्तव में हम सभी राजकोट के ठाकुर-साहब जैसे कमजोर और अज्ञानी नरेश और उनके वीरावाला जैसे कौशलप्रिय, षड़यंत्री दीवान का पक्ष लेने और ठाकुर की मंत्रणा परिषद के प्रधान सर पैट्रिक जैसे निर्दोष व्यक्ति को तथा वहां के पोलिटिकल एजेन्ट श्री गिब्सन को शरारत के पुतले समझने के चकमे में आ गये थे। यह भूल साधारण नहीं थी। इसका पता सरदार पटेल को तब लगा जब वीरावाला को दुरंगी चाल चलते पकड़ा गया। बापू ने इसकी चर्चा 'हरिजन' में भी की थी। इस भूल का बापू के परिवार के इतिहास के साथ बिल्कुल सम्बन्ध ही न हो, शायद ऐसी बात न थी। उनके पुरखे पीढ़ियों से काठियावाड़ (अब सौराष्ट्र) की रियासतों के दीवान होते आये थे और उनके प्रति उन्हें ममता-सी थी। वास्तव में बापू तो साधारणतया वहां के नरेशों के प्रति बड़ा आदर-भाव दिखाते थे।

किन्तु एक आनन्ददायक पहलू भी था और मैं उसी का जिक्र करना चाहता हूं। जब बापू और गिब्सन के बीच संपर्क

स्थापित हुआ तो बापू को यह देखकर शायद आश्चर्य हुआ होगा कि पोलिटिकल एजेन्ट कोई सींग, खुर और पूंछवाला जीव न होकर एक मौजी भावना वाला साधारण मनुष्य है।

एक समय वातावरण में कितनी उष्णता आ गई थी, यह मेरे मकान पर वायसराय के सेक्रेटरी श्री लेथवेट के साथ हुई मुलाकात के महादेवभाई द्वारा प्रस्तुत विवरण से प्रकट होगा :

५, फरवरी १९३९

श्री लेथवेट ५ बजे शाम चाय पर आये। करीब दो घंटे ठहरे। चर्चा चाय, फूलों, गायों और पशु-प्रदर्शनियों से आरम्भ हुई (बीच में हमारे वायसराय भवन जाने का भी जिक्र आया और श्री लेथवेट ने बापू के खिल-खिलाकर हंसने का खास तौर से जिक्र किया) और बा की गिरफ्तारी के प्रसंग पर आ गई।

"वे सब तो बड़े आराम से होंगी?" श्री लेथवेट ने कहा। "हां", मैंने कहा, "पर उन्हे यह सोचकर बड़ी परेशानी हो रही होगी कि उन दूसरों की क्या अवस्था होगी जिनके साथ दूसरे ढंग का व्यवहार किया जा रहा है?" और मैंने एक परेशान करने वाली खबर सुनाई जो मुझे आज सुबह ही मिली थी। आठ स्वयंसेवकों को राज्य के भीतरी भाग मे ले जाया गया, मारा-पीटा गया और उनसे माफीनामे पर हस्ताक्षर करने को कहा गया। जब उन्होंने ऐसा करने से इन्कार किया तो उन पर और मार पड़ी और उनमें से एक को कमरे मे बंद कर दिया गया जहा उसे थोड़ी-थोड़ी देर के बाद बिजली छुआकर कई घंटों तक सताया गया। मैंने कहा, "मै मानता हूं कि सारी बात पर विश्वास करना कठिन है, इसमें कुछ अतिरंजन भी हो सकता है, पर सारा-का-सारा किस्सा ही कैसे गढ़ा जा सकता है?" मैंने बात नापतोलकर कही, सो श्री लेथवेट ने सराहा। उन्होंने मारपीट के संबंध मे अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। मैंने यह भी कहा कि पिछला आन्दोलन तीन महीने चला, पर उसके दौरान मे ऐसी बाते सुनने मे नही आईं। इस पर तारीफ की बात यह है कि जहां एक ओर ये सब काण्ड हो रहे है, वहां दूसरी ओर जनता पूर्ण अहिंसा का आचरण कर रही है, उसकी ओर से अंगुली तक नहीं उठाई गई है।

इस पर श्री लेथवेट ने विस्तार के साथ बताया कि किस प्रकार अलग-अलग रियासतों की परिस्थितियां अलग-अलग है, किस प्रकार उनमें युगों से व्यक्तिगत शासन की परम्पराएं चली आरही है और किस प्रकार

वहां लोकतंत्रीय शासन-प्रणाली का विकास होने मे देर लगना अनिवार्य है। मैंने बटलर कमेटी की रिपोर्ट का उल्लेख किया, जिसमे कहा गया था कि जहां उत्तरदायी शासन की मांग व्यापक हो, वहां सार्वभौम सत्ता को उस मांग को संतुष्ट करने के लिए सुझाव पेश करने में मदद देनी होगी, बशर्तेकि उस मांग में राजा को हटाने की बात का समावेश न हो। "यह तो दस वर्ष पुरानी बात है", श्री लेथवेट ने कहा, "और मुझे यकीन है कि यदि वह रिपोर्ट आज लिखी जाती तो कमेटी को अपनी भाषा बदलनी पड़ती और उसे उत्तरदायी शासन की भी व्याख्या करनी पडती।" "यह परिवर्तन तो हमारे ही हित में होता।" मैंने कहा और हम सब हँस पड़े।

इस अवसर पर घनश्यामदासजी ने राजकोट का प्रश्न छेड़ा और कहा कि क्या इस दुःखद काण्ड का तुरन्त अन्त नही किया जा सकता है? श्री लेथवेट ने राजकोट पर 'हरिजन' के लेख और बापू की अति उग्र भाषा का जिक्र किया। मै बोला, "इस बारे में दो-तीन बातों को ध्यान मे रखना होगा। आपको यह याद रखना चाहिए कि उनके पास नित्य ही राजकोट की घटनाओं के समाचार पहुंचते रहते है। ये समाचार कैसे होते है, इसका एक उदाहरण मैं दे ही चुका हूं। बापू इन समाचारों को कुछ घटा कर ही ग्रहण करते है, पर वह यह नही मान सकते कि जो कुछ कहा जा रहा है, उसका कोई आधार ही नही है। और यदि इन कहानियों मे सच्चाई का पुट काफी हो तो मै नही जानता कि और कैसी भाषा का व्यवहार किया जा सकता था। फिर, यह भी नही भुलाया जाना चाहिए कि इन लेखों मे भी, चाहे उनकी भाषा कितनी ही कड़ी क्यों न रही हो, अन्त मे वायसराय के नाम अपील ही रहती है। गांधीजी दो वर्ष पहले ऐसा करने के अभ्यस्त नही थे।"

घनश्यामदासजी ने लेख के उस वाक्य का खासतौर से हवाला दिया जिसमें कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार का मित्र बताया गया था और जिसके द्वारा बापू की ब्रिटिश सरकार का सहयोग प्राप्त करने की उत्सुकता प्रकट होती थी। "किन्तु बापू को इसका उलटा ही मिल रहा है और इससे उनका खीझना स्वाभाविक ही है।"

मैंने एक तीसरी बात बताई। मैंने कहा, "वह लेख एक सप्ताह पहले लिखा गया था। इस बीच आपकी ओर से यह विज्ञप्ति प्रकाशित हुई, जिसमें सरकार और ठाकुरसाहब की स्थिति का स्पष्टीकरण करने की चेष्टा की गई है। उसके उत्तर मे गांधीजी ऐसा वक्तव्य देते है जिसे मै शान्ति का संकेत कह सकता हूं। उसमे उन्होने यह निश्चित रूप से कहा है कि यदि प्रश्न केवल व्यक्तियों का हो तो वह सरदार को ठाकुरसाहब के साथ मिल-बैठने को राजी कर सकते है।

पर श्री लेथवेट ने कहा, "जनता के सामने तो घटनाओं का यह टाइम टेबल है नहीं। जनता शनिवार को गांधीजी का वक्तव्य पढ़ती है और रविवार को उनका लेख। स्टेट्समैन का लेख देखिये न। उसके कथन में बहुत-कुछ तथ्य है और वायसराय को इस पर सचमुच आश्चर्य होता है कि एक और तो गांधीजी के पत्रों की भाषा अत्यन्त मैत्रीपूर्ण होती है और दूसरी ओर उनके लेख ऐसी भाषा मे लिखे गये होते हैं जिसका लहजा सर्वथा विपरीत होता है।"

मैंने कहा, "इसका कारण यह है कि पत्र वायसराय के नाम लिखे जाते हैं और लेख जनता को संबोधित करके लिखे जाते हैं। यदि वायसराय ही कोई आन्दोलन चलाते होते तो उनके निजी पत्र-व्यवहार की भाषा उनके लेखों की भाषा से सर्वथा भिन्न होती।"

श्री लेथवेट बोले "पर आपको यह तो मानना ही होगा, और मैं जानता ही हूँ कि श्री बिड़ला भी मानते हैं, कि इससे वायसराय की स्थिति बड़ी कठिन हो जाती है। ये लेख भारत तक ही सीमित नहीं रहते हैं, रायटर द्वारा इंगलैंड को तार से भेज दिये जाते हैं। और आपको जातीय विद्वेष के बारे में 'स्टेट्समैन' की टीका याद ही होगी। आप सोच सकते हैं कि ब्रिटिश जनता पर इसका क्या असर पड़ेगा। मैं तो कहूंगा कि गांधीजी वायसराय को भले ही इच्छानुसार कड़ा-से-कड़ा पत्र लिखते, समाचार-पत्रों के लिए लिखते समय उन्हें शक्ति भर नरम-से-नरम भाषा का उपयोग करना चाहिए था।" मै बोला, "यह स्टैट्समैन" वाली बात वाहियात-सी है। इसका जातीय प्रश्न के साथ क्या सम्बन्ध है? और 'स्टेट्समैन' को गांधीजी के लेख में जातीय विद्वेष कहां दिखाई दिया?"

"ब्रिटिश रेजिडेन्ट को जिस प्रकार आयेदिन शरारत का पुतला कहा जाता है और गुंडेपन के कामों के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है सो आप देख ही रहे हैं। आप एक बार श्री गिब्सन से मिलकर देखें। तब आपको पता चलेगा कि यह सबकुछ उनके द्वारा सम्भव नहीं है। वह इतने नरम आदमी हैं कि उनके बारे में कोई यह खयाल तक नहीं कर सकता कि नृशंसता के ऐसे काम उनके द्वारा संभव हैं।"

"गुंडेपन के इन कामों के लिए श्री गिब्सन व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार हैं, ऐसा आरोप न गांधीजी ने लगाया है, न किसी और ने ही। कम-से-कम गांधीजी ने नहीं लगाया। वह यह नहीं कह सकते कि गिब्सन इन मारपीटों को खुद देखते हैं। पर साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इस एजेन्सी पुलिस और इन मातहतों का यह विश्वास है कि वे जो कुछ कर रहे हैं ठीक ही कर रहे हैं।"

श्री लेथवेट ने पूछा, "क्या आपको पता है कि राजकोट में एजेंसी पुलिस

की संख्या कितनी है ?" मैंने कहा, "सो तो मैं नहीं जानता, पर राजकोट रियासत की पुलिस की संख्या अधिक नहीं होगी; अधिकांश में एजेन्सी पुलिस होनी चाहिए। पर मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता। हां, पता लगा सकता हूं। क्या श्री गिब्सन के साथ आपका व्यक्तिगत संपर्क है ?"

"नहीं, इस समय नहीं। मैं आखिरी बार उनसे नवम्बर में मिला था। पर मैं इतना तो कह ही दूं कि गांधीजी के लेखों का हम तीनों पर, और वायसराय पर भी, जो प्रभाव पड़ा, साधारण पाठक पर उससे भिन्न प्रभाव पड़ा होगा। औसत दर्जे का पाठक यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि यदि ये बातें सच्ची हैं तो उनके लिए श्री गिब्सन को व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। और यदि जातीय विद्वेष अभीष्ट नहीं है तो क्या गांधीजी को यह स्पष्ट नहीं कर देना चाहिए ?"

मैंने कहा, "निश्चय ही। गांधीजी ऐसा सबसे पहले करेंगे, क्योंकि उनके दिमाग में इस चीज का लेश तक नहीं है। ऐसा उनके स्वभाव में ही नहीं है। उग्र सविनय अवज्ञा आन्दोलन के ज़माने में भी यह अभियोग गंभीरतापूर्वक नहीं लगाया गया। गांधीजी यह भी कह देंगे कि श्री गिब्सन इस नृशंसता के लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार नहीं हैं। पर वह श्री गिब्सन को इस आरोप से मुक्त नहीं करेंगे कि उन्होंने ही यह वचन भंग कराया है, क्योंकि उनके पास आरोप की पुष्टि में वज़नदार प्रमाण मौजूद हैं। आप उन प्रमाणों का मूल्य कम भले ही आंकें, पर जो काग़ज़ात उन्हें विश्वस्त सूत्रों से मिले हैं, उनकी प्रामाणिकता में वह सन्देह नहीं कर सकते।"

बातचीत में गर्मी आने लगी थी। घनश्यामदासजी बीच ही में बोल उठे, "सार की बात यही है कि संधि-चर्चा फिर शुरू करने के लिए उचित वातावरण की आवश्यकता है। है न यही बात ?"

"हां, वातावरण बहुत खराब है। गांधीजी का लेख प्रकाशित होने के बाद से वह काफी बिगड़ गया है। वायसराय के नाम आप जो पत्र लाये, उसे पाकर उन्हें खुशी हुई। पर आज उन्होंने 'हरिजन' का लेख देखा तो कहने लगे, "इस मित्रतापूर्ण पत्र का क्या उपयोग है ?"

मैंने कहा, यदि "आपका अभिप्राय उन दो आरोपों से है जो 'स्टेट्समैन' ने लगाये हैं तो गांधीजी से वातावरण की सफाई कराने में बिल्कुल कठिनाई नहीं होगी।"

"पर, जब श्री गिब्सन को अनैतिक वचन भंग के लिए जिम्मेदार ठहराया जा रहा है और उनकी खिल्ली उड़ाई जा रही है तो उनसे आप कोई काम कैसे करा सकते हैं ?"

मैंने कहा, "मेरे पास कुछ कागज़ात है और मै यह दिखा सकता हूं कि हम लोग उन्हें दोषी कैसे मानते है। सर पैट्रिक कैडेल यहां होते तो बड़ी बात होती।"

"आप यह कहना चाहते है कि उन्हे इस समझौते की सारी बातों का पता है? आप यह भी कहना चाहते है कि उन्होंने श्री गिब्सन को बता दिया था?"

"सर पैट्रिक ने समझौते को खुद देखा, इसकी शपथ लेने को मै तैयार नहीं हूं। पर जब ठाकुरसाहब ने यह पत्र लिखा था तो वहे महल मे मौजूद थे। मुझे नहीं मालूम कि सर पैट्रिक ने श्री गिब्सन से उसके बारे में कहा या नही, पर बात जो भी हो, दुनिया में कौन विश्वास करेगा कि सरदार एक ऐसे समझौते को स्वीकार करने को तैयार हो गये, जिसकी व्याख्या ठाकुरसाहब इस ढंग से कर रहे है, जैसा कि आपने बताया? उस दशा में समझौते पर ठाकुरसाहब को नहीं, सरदार को हस्ताक्षर करने चाहिए थे।"

"मैंने यह अनोखा तर्क 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के लेख मे पढ़ा है। पर उस पत्र को प्रकाशित क्यों नहीं किया गया और उसे समझौते का अग क्यों नहीं बनाया गया?"

"आप समझे नही। सरदार को ठाकुरसाहब का लिहाज़ था। पर मै आपको बता दू कि यदि सरदार उसी समय नाम देने को तैयार हो जाते तो उस पत्र में नामों का भी समावेश हो गया होता। बात यह थी कि सरदार को अपने सहकर्मियों से परामर्श करना था।"

"पर क्या आपका यह खयाल नही है कि श्री माणेकलाल के नाम सरदार पटेल के पत्र से यह जाहिर होता है कि व्यक्तियों की नामावली आपस मे तय होनी थी और सरदार को केवल नामों का प्रस्ताव मात्र करना था।"

"नही, आपने बात को समझा नही। ठाकुरसाहब की सहमति केवल इस बात तक सीमित थी कि जिन व्यक्तियों के नाम सुझाये गए है, वे बाहर के नहीं, बल्कि रियासत के ही रहनेवाले है। मै आपके आगे यह साबित कर सकता हूं कि संधि-चर्चा मे विवाद का विषय केवल यही था कि सदस्य रियासत के प्रजाजन हों या रियासत के बाहर के भी हो सकते है।' यहां मैंने श्री लेथवेट को वह मसविदा दिखाया जिसे लेकर श्री पट्टनी सर पैट्रिक से मिले थे। उसमें की जिन चार बातों के बारे मे सर पैट्रिक ने स्पष्टीकरण चाहा था उनमे से एक यह थी कि सदस्य राज्य के प्रजाजन ही होंगे। मैंने उनका ध्यान मसविदे की उन पंक्तियों की ओर दिलाया जिनमे कहा गया था कि सरदार सात नाम पसन्द करेंगे और नियुक्ति ठाकुरसाहब द्वारा होगी। सर पैट्रिक ने मसविदे की भाषा पर कोई आपत्ति नही की थी।

मैंने कहा, "पर सर पैट्रिक अपने वचन से फिर गये, क्योंकि एक दिन पहले वह श्री गिब्सन से मिल चुके थे और श्री गिब्सन ने उस सारे व्यापार को ही नापसन्द किया था।"

घनश्यामदासजी ने कहा, "मैं गलती नहीं करता हूं तो सर पैट्रिक ने खुद सरदार या पट्टनी से कहा था कि श्री गिब्सन ने उसे नापसन्द किया है।"

मैंने कहा, "और आप वचन-भग के अन्य गम्भीर अंश को क्यों भूलते है? समझौता टूटने के बाद की विज्ञप्ति उस विज्ञप्ति से, बिल्कुल भिन्न है जो समझौते की घोषणा करते समय प्रकाशित की गई थी।

"हा, श्री बिडला ने इसकी चर्चा की है, पर मै जानना चाहता हूं कि अन्तर कहाँ है।"

मैंने वह अंश पढ़कर सुनाया, जिसमे 'व्यापकतम अधिकारों' की बात कही गई थी, ओर नई विज्ञप्ति का वह अश भी सुनाया, जिसमें 'शासन-कार्य मे जनता के हाथ बंटाने' का जिक्र था। मैंने इस बात का भी जिक्र किया कि किस प्रकार आपसी बातचीत के दौरान मे श्री गिब्सन ने व्यापकतम अधिकारों की बात पर आपत्ति की थी ओर किस प्रकार वह उसे निकलवाने में सफल हुए थे। मैंने यह भी कहा कि ठाकुरसाहब ने अपनी विज्ञप्ति मे ऐसे शब्दों का व्यवहार किया है, जिनका उन्होंने समझौते के समय कभी उपयोग नहीं किया होता। वे शब्द ये थे कि उन लोगों को बाहर वालों के उकसाने पर ऐसी वस्तु प्राप्त करने की कल्पना नहीं करनी चाहिए जिसे वे पचा न सके। इस सबमे श्री गिब्सन का हाथ है, यह सोचे बिना हम नहीं रह सकते।"

घनश्यामदासजी ने पुनः समझौते की चर्चा शुरू करने का सवाल उठाया और श्री लेथवेट ने बातचीत के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने का राग अलापा। घनश्यामदासजी ने पूछा, "आपका वातावरण सुधारने की बात से ठीक-ठीक अभिप्राय क्या है? कृपया मुझे निश्चित रूप से बता दीजिए कि वातावरण को सुधारने के लिए आप गांधीजी से से क्या कराना चाहते हैं?"

लेथवेट ने उत्तर दिया, "बात यह है कि व्यक्तिगत आक्रमण किये गए है, जिनसे जातीय विद्वेष की गध आती है। मेरी राय मे यह सबकुछ बिल्कुल बन्द हो जाना चाहिए। आप लोग वायसराय की कठिनाइयों को नहीं समझते है। वह कितनी ही सहानुभूति क्यों न रखते हों, जबतक वातावरण नहीं सुधरता है, तबतक वह मदद नहीं कर सकते।"

"मै स्वीकार करता हूं कि व्यक्तिगत कटुता नहीं रहनी चाहिए, क्योंकि मेरा अपना विश्वास है कि यदि समझौते की बात शुरू हुई तो श्री

गिब्सन से बेहद सहायता मिल सकती है। इसलिए उन्हे व्यर्थ ही खिझाना ठीक नहीं है।"

"इतने आक्रमणों के बाद गिब्सन कहांतक सहायक सिद्ध होंगे, यही देखना है। मेरा विश्वास है कि वह इन आक्रमणों के पात्र नहीं थे।"

"मै तो नही समझता कि गिब्सन के रुख के बारे में निराश होना ठीक रहेगा। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब लार्ड इर्विन ने बापू से इमरसन का परिचय कराया तो उसके बाद से उनका (इमरसन का) रुख खास तौर से सहायतापूर्ण हो गया था। फिर तो जो कुछ हुआ सबमे उनकी सहायता मिली। किसी मंजिल पर पहुंच कर सरदार और गिब्सन में समझौते के लिए बातचीत फिर शुरू न हो, इसका मै तो कोई कारण नही देखता। गिब्सन ठाकुरसाहब पर कोई दबाव डाले, सो मै नही चाहता। पर वह मित्रतापूर्ण सलाह तो दे ही सकते है, और सार्वभौम सत्ता के प्रतिनिधि की मित्रतापूर्ण सलाह का क्या महत्व है, सो मै जानता हूं। मैं तो इतना ही चाहता हूं कि यदि वातावरण में सुधार हो जाय और बातचीत फिर शुरू हो जाय तो वायसराय निजी तौर पर गिब्सन को निर्देश दे सकते है कि उन्हें पूर्व समझौते का पुनरुद्धार करने के लिए सभी तरह की मित्रता-पूर्ण सहायता देनी चाहिए।"

"हां, मै सहमत हूं। मै यह नही कहना चाहता कि वायसराय क्या करेंगे, पर मै यह निश्चय-पूर्वक कह सकता हूं कि यदि वातावरण मे सुधार हुआ तो उससे सन्तोषजनक हल ढूढ़ने मे अवश्य सहायता मिलेगी।"

यहां मैंने सुझाया कि घनश्यामदासजी वर्धा जा सकते हैं। लेथवेट ने कोई टिप्पणी नही की, चुपचाप सुनते रहे।

मैंने कहा "वातावरण को स्वच्छ किया जा सकता है, पर श्री लेथवेट को यह समझ लेना चाहिए कि मेरे खयाल से नृशंसतापूर्ण कार्यो के लिए व्यक्तिगतरूप से जिम्मेदार होने के आरोप की अपेक्षा वचन-भंग की जिम्मेदारी का आरोप अधिक गंभीर है। एक आरोप वापस लिया जा सकता है, क्योंकि वास्तव में वह कभी लगाया ही नही गया था, पर दूसरा आरोप मौजूद है और रहेगा। किंतु बापू को इस आरोप की सफाई पर बार-बार जोर देने की जरूरत नहीं है। उसे सब जानते है। अब दूसरे आरोप की सफाई हो जाय।" घनश्यामदासजी ने कहा, "तुम बापू के पास जाओ और यह करा डालो। मुझे यकीन है कि सरदार बापू के इस वक्तव्य को दोहरा कर बातचीत शुरू कर सकते हैं कि इस सवाल पर कि कौन-कौन से व्यक्ति लिये जायं। वह ठाकुरसाहब का लिहाज करने को तैयार है अर्थात् एक मुसलमान और एक भायात को भी शामिल किया जा

सकता है, बशर्तेकि उन्हे दो नाम अपनी ओर से और जोड़ने की स्वतन्त्रता रहे।"

"क्या समझौते मे यह बात भी शामिल थी कि कमेटी में सरदार का पांच का बहुमत रहना चाहिए ?"

मैं बोला "संख्या ७ और २ के उल्लेख का तो यही अर्थ निकलता है। किन्तु हम यहा संधि की चर्चा करने नहीं बैठे है। इसका निर्णय तो सरदार और ठाकुरसाहब ही करे, पर समझौते की मूल शर्तो को तो पुनर्जीवन देना ही होगा।"

श्री लेथवेट ने कहा, "आपके बताए ढग का वक्तव्य सरदार दे देगे तो उससे सहायता मिलेगी।"

महादेवभाई का विवरण सरदार के पास गया और अपने उत्तर में सरदार ने श्री गिब्सन के बारे में बहुत ही निराशाजनक विचार प्रकट किया :

८ फरवरी १९३९

प्रिय महादेव

मुझे तुम्हारा पत्र और उसके साथ श्री लेथबेट के साथ हुई तुम्हारी बातचीत का विवरण मिला। मुझे भय है कि उनके रवैये के बारे मे तुम्हारे अन्दाजे से मैं सहमत नही हो सकता। वह रवैया कूटनीतिक है, पर मुझे डर है कि वह ईमानदारी से भरा हुआ नहीं है। 'स्टेट्समैन' ने पिछला लेख ज्यादा सफाई के साथ लिखा है, पर यदि हम किसी गिब्सन या बीचमय के बारे में लिखते है तो वे हमारी नीयत पर सदेह करने लगते हैं। इसमें कोई जातीय प्रश्न शामिल नही है। यह तो उनके सुरक्षित किले पर रक्षात्मक आक्रमण है और इस पर वे क्रुद्ध हो उठे है। अपने अपराध का पूरा पता होने पर भी वे अपनी अनभिज्ञता जाहिर करते है। जो हो, मुझे तो आगे कड़ा संघर्ष नजर आता है। मुझे तनिक भी सन्देह नही है कि श्री गिब्सन ने तमाम काठियावाड़ की रियासतों में गुडेपन की शक्तियों को संगठित किया है। लीमडी में उनकी नीति पहली बार खुल कर खेली। कैसे, सो जानकर तुम्हे अफसोस होगा। तीन बड़े डाके पड़े है, जिनमें गांवों के अनेक आदमियों को लूटा और घायल किया गया है। सशस्त्र डाकुओं को देहातों की निर्दोष जनता पर आक्रमण करने के लिए पूरी छूट दे दी गई है, ताकि जो लोग रियासत के अत्याचार का विरोध कर रहे है, उन्हे भयभीत किया जा सके। गत दो-तीन दिनों से लोग महल के इर्द-गिर्द बैठे है और जांच की

मांग कर रहे हैं, पर रियासत कोई सुनवाई नहीं कर रही है। बा (कस्तूर बा) भी परेशान हैं। यह सब केवल गिब्सन की मिली भगत से ही नहीं हो रहा है, बल्कि इसमें प्रेरणा भी उसी-से मिली होगी।

तुम्हारा
वल्लभभाई

इसके बाद ठाकुरसाहब के प्रति गांधीजी की निराशा, उनका उपवास, वायसराय का सहानुभूतिपूर्ण रुख और मारिस ग्वायर का गांधीजी के हक में फैसला, सारी घटनाएं एक के बाद घटित हुईं। तनाव अप्रैल के मध्य तक कम नहीं हुआ था। महादेव ने मुझे लिखा :

सुशीला राजकोट से आज ही पहुंची। वह गुजरात के कुंजा नामक स्थान को जा रही हैं, जहां उसके भाई का विवाह है। उसने बताया कि एक दिन बापू और वल्लभभाई में झड़प हो गई। बापू ने तीन पत्र लिखे थे, जिनमे उन्होंने मुसलमानों और भायातो को सबकुछ समर्पण कर दिया था। वल्लभभाई बिगड़ गये। बापू ने कहा, "मैं जानता हूं, मेरी मूर्खताओं का फल तुम्हे भोगना पड़ता है।" इस पर वल्लभभाई ने कहा, "अभी तक तो मूर्खता का कोई काम नहीं हुआ है, पर ये तीन पत्र जिन्हे आप भेजने का विचार कर रहे है, मूर्खतापूर्ण अवश्य हैं।" बापू हँस पड़े, पर बाद को गम्भीरता-पूर्वक बोले, "इसलिए मुझे क्रियात्मक नेतृत्व से हट कर भगवान के भजन में दिन बिताने चाहिये।" पता नहीं इसके बाद बातचीत का क्या रुख रहा, पर परिणाम यह हुआ कि पत्र फाड़ डाले गये। सुशीला ने यह भी बताया कि बापू ने देख लिया है कि मनुष्य की कुत्सित प्रवृत्तियों का वल्लभभाई को उनकी अपेक्षा अधिक ज्ञान है—ज्ञान क्या आत्मप्रेरणा-सी है। बापू ने एक बार कहा भी, "यह क़दम आत्महत्या के समान है।" उनका मतलब यदि मुसलमान अपने वचन का पालन नही करें तो अनशन करने के विचार से था। इस प्रकार उस दिन प्रातःकाल के समय हमारा लम्बा तार भेजना बिल्कुल ठीक सिद्ध हुआ।

पर इस सारे व्यापार ने मुझे विचार-निमग्न कर दिया। आपको याद ही होगा, उस दिन हमने अहिंसा की भावनाओं और गूढ़ तत्वों के सम्बन्ध में बहुत देर तक बातचीत की थी, और मुझे सुशीला से जो कुछ मालूम हुआ उससे मैं इसी विचार में पड़ गया कि अहिंसा इहलौकिक अधिकारों

के प्रतिपादन के लिए उपयुक्त अस्त्र है या नहीं। श्री आर्थर मूर ने भी इस प्रसिद्ध वादविवाद के दौरान मे इसी तरह की बात कही थी। अब जब हम बापू से मिलें और उन्हें कुछ खाली पावें तो अहिंसा के इस पहलू पर खूब अच्छी तरह बातें करें। इस समय तो मै नहीं कह सकता कि भविष्य में हमारे भाग्य में क्या बदा है। हम एक रहस्यमय और वर्णनातीत होनी की ओर बलात् खिंचे चले जा रहे हैं।

मैं महादेवभाई की शंकाओं के साथ अपनी सहमति प्रकट किये बिना नहीं रह सका :

सच्ची बात तो यह है कि मै तुम्हारे इस कथन से तो सहमत हूं ही कि इहलौकिक लक्ष्यों की सिद्धि में अहिंसा के उपयोग का औचित्य संदिग्ध है, साथ ही मुझे इसमे भी सन्देह है कि राजकोट मे आरम्भ से अबतक जो कुछ हुआ है उसे अहिंसा कहा जा सकता है या नहीं। मैंने तो तुमसे उस दिन कहा भी था कि मै अभी तक इस बात में विश्वास नही करता हूं कि अनशन दूसरे की इच्छा के विरुद्ध कार्य कराने का एक ढंग मात्र नही है। मेरी तो समझ मे नही आता कि अपने विपक्षी का हृदय चुनौतियों से कैसे बदला जा सकता है। सरदार की स्थिति को समझा जा सकता है, क्योंकि उन्होंने कभी कोई गूढ़ दार्शनिक तत्व का निदर्शन करने का दावा नही किया। राजकोट में उनका सघर्ष एक प्रकार का निःशस्त्र विद्रोह था और वह पूर्णतया अहिंसात्मक ही रहा हो, ऐसी बात भी नहीं थी। इसलिए यदि वीरा-वाला और ठाकुर ने हमारे ही ढंग से उसका मुकाबला किया तो इसमे शिकायत का मौका ही क्या है ? गिब्सन भी हमारी मदद क्यों करता, क्योंकि हमने भी गिब्सन को कभी नही बख्शा। वायसराय का उत्तरदायित्व तो है ही, पर उनकी भी अपनी कठिनाइयां होंगी। उतावली से काम नही चलेगा। यदि वस्तुस्थिति को बापू के दार्शनिक दृष्टिकोण की कसौटी पर कसा जाय तो कहा जा सकता है कि हम बिल्कुल दूध के धोये हों, ऐसी बात नही है। मेरी तो दृढ़ धारणा है कि अब उपवास का प्रसंग समाप्त कर देना चाहिए। जब हम कलकत्ते में बापू से मिलेंगे, तो आशा है, बापू हमारी बात मान लेंगे। यदि निर्विघ्न वार्तालाप किया जाय तो उसमें बापू के, तुम्हारे, और मेरे सिवा और कोई न रहे। सरदार मौजूद रहेंगे तो मुझे बात करने का साहस नहीं होगा।

बापू और सरदार की बातचीत के सम्बन्ध में तुमने जो कुछ लिखा उसे पढ़ने में बड़ा आनन्द आया। सरदार बहुत कम बोलते हैं और जब बोलते

है तो ऐसा लगता है मानो उन्होंने धैर्य खो दिया हो, पर उनकी आत्म-प्रेरणा गलत नहीं होती। पर इतने पर भी वह वीरावाला से पार नहीं पा सके।

किन्तु अबकी बार चित्र एकदम बदल रहा था। महादेवभाई और गिब्सन की मुलाकात हुई। १९ मई को महादेवभाई ने लिखा :

पता नहीं, आप बापू के ताजा वक्तव्य के सम्बन्ध में क्या कहेंगे। हमारे दुर्भाग्य से पहले तो बापू अपनी कार्रवाई पर हमारी प्रतिक्रिया से रुष्ट होते हैं, पर बाद को वह भी उसी निष्कर्ष पर पहुचते हैं जिस पर हम पहुंचे थे, और उसे इतनी ओजस्विता से प्रकट करते हैं कि हम संकोच में पड़ जाते हैं। बहुधा हम उनकी उतावली का उनसे जिक्र करते है तो वह कहते हैं कि यह उतावली नहीं है, और यदि है, तो भी क्या हुआ। अब वह कहते हैं कि उनकी उतावली हिंसा का लक्षण थी, और उन्होंने सर्वोपरि सत्ता से जो अपील की, ठाकुर को निकम्मा और वीरावाला को चालबाज और रियासत के लिए अभिशाप बताया, सो उतावली का कार्य था, इसलिए वह हिंसा थी। वक्तव्य के ऊपर उनसे मेरी काफी बहस रही। मैंने कहा "क्या आपका यह विचार नहीं है कि आपका ठाकुरसाहब तक सीमित रहने के बजाय सर्वोपरि सत्ता से अपील करना, और उसके प्रधान न्यायाधीश द्वारा निर्णय किये जाने के सुझाव को स्वीकार करना, नैतिक और व्यावहारिक दृष्टि से अच्छा नहीं रहा। क्योंकि एक दास के विरुद्ध सत्याग्रह करना (और रियासती नरेश दास ही हैं) न्यायोचित नहीं है।" इसके उत्तर में उन्होंने कहा, "तुम केवल परिणाम देख कर ही यह बात कह रहे हो, और तुम्हारा यह कहना कि ठाकुर सर्वोपरि सत्ता का दास मात्र है, केवल अर्द्ध-सत्य है। और यदि वह दास हो तो भी यदि मेरा सत्याग्रह परमोत्कृष्ट प्रकार का हुआ तो वह उसे अपनी दासता का अन्त करने में सहायता देगा। जो हो, मैंने जो निर्णय को त्यागने का निश्चय किया है सो आत्म-निरीक्षण का फल है। मै हरदम इसी व्यथा से व्यथित रहता था और मुझे एकमात्र यही चिन्ता थी कि इस यन्त्रणा से कैसे त्राण पाया जाय।"

गिब्सन से कोई डेढ़ घंटे तक बातें होती रहीं। वह बड़ी शिष्टता, सरलता और आदर-भाव से पेश आया। वह पुरानी चोटें भूला नहीं है। उसे गुण्डेपन का दोषी ठहराया गया था और वार्तालाप का उसकी

समझ से असत्य विवरण छापा गया था, आदि। पर मैं इतना अवश्य कहूंगा कि वह मुझे अच्छा लगा, और मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मैं उससे मिला।

मैं इन लोगों से जितना मिलता हूं उतना ही विश्वास होता जाता है कि हमारा सारा आन्दोलन उतावली का व्यक्तरूप मात्र था। थोडे धैर्य से बहुत कुछ काम बन जाता। खैर, शिक्षा देर से मिली, मिली तो। देर आयद दुरुस्त आयद।

मैंने अपने उत्तर में श्री गिब्सन के बारे में महादेवभाई के विचारों की पुष्टि की :

मेरी ग्वालियर-मिल के मैनेजर और सैक्रेटरी ने श्री गिब्सन की मानव की हैसियत से सदा तारीफ की है। कहा जाता है कि वह सबके साथ, विशेषकर बच्चों के साथ, बहुत खुला और उत्तम व्यवहार करते थे। वह मिल में आ जाते थे और बच्चों के साथ खेला करते। आपसी व्यवहार में कुशल, बहुत भले, और राजनैतिक व्यवहार में बहुत बुरे, वह एक साथ ही दोनों नही हो सकते थे, और बापू की ओर से उन्हें काफी खरी-खोटी सुननी पड़ी है। क्या बापू को उनके बारे में अपनी राय नही बदलनी चाहिए ? मैं अलबत्ता यह मानता तो हूं कि श्री गिब्सन वचन-भंग के लिए अंशतः जिम्मेदार है। पर वह जितने के पात्र थे उन्हे उससे अधिक सुननी पड़ी। मेरे आदमी यह स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं कि श्री गिब्सन के लिए गुंडों जैसा आचरण करना सम्भव है।

लोदियन ने इस प्रकार लिखा :

ऐसा प्रतीत होता है, मानो महात्माजी धीरे-धीरे कांग्रेस को वही नीति अपनाने को प्रेरित कर रहे हैं जिसका उन्होंने मेरे सामने रेखाचित्र खींचा था। तब मैं सेगांव में उनके पास ठहरा हुआ था। पर मेरा ख़याल है कि रियासतों मे पूर्ण उत्तरदायी शासन के विकास की रफ्तार को सीमित करना होगा। लोगों को अभी प्रतिनिधि संस्थाओं का अनुभव नही है, और यदि कांग्रेस उन्हे बहुत दूर धकेलेगी तो वह मुसलमानों को तो, सम्भव है, हिन्दुस्तान से बिल्कुल ही बाहर धकेल दे। मेरा यह विश्वास पहले से भी दृढ़ हो गया है कि संघ के बुनियादी सिद्धान्तों पर ही हिन्दुस्तान आगे बढ़ सकता है और संकट से भी बच सकता है। आप

महात्माजी से मिलें तो कृपया उन्हें मेरा हार्दिक अभिनन्दन पहुंचा दीजिए।

क्या आप मेरा यह पत्र बापू के सामने रखने का कष्ट करेंगे?

बापू ने अब मेल की दिशा में पहल की और गिब्सन ने उन्हें यह पत्र लिखा:

रेजीडेन्सी, राजकोट
बालाचड़ी
२७.५.३९

प्रिय श्री गांधी

आपने जो लिखा सो लिखकर बड़ा सुन्दर काम किया। अनेक धन्यवाद। आप जिन दिनों की बात कहते हैं उन दिनों बड़ा काम था, पर यदि करने योग्य काम हो तो मुझे कार्यभार की कोई चिन्ता नहीं रहती। आज कल जो काम करना पड़ता है उसका काफी बड़ा हिस्सा वैसा काम नहीं है। उस समय जिन लोगों को सचमुच अत्यधिक काम करना पड़ा वे थे तार और टेलीफोन आपरेटर।

मैं राजकोट ३१ मई की रात को पहुंचने की आशा करता हूं। मैंने महादेव देसाई को लिखा है और बातचीत के लिए दूसरे दिन सुबह का समय सुझाया है और आपके विदा होने से पहले मैं आपसे भी एक बार फिर बातचीत करना चाहूंगा, पर उस दिन सुबह को शायद आप बड़े व्यस्त होंगे, इसलिए मैं प्रस्ताव नहीं कर रहा हूं। पर यदि आप कुछ समय निकाल सकें तो जो समय सुविधाजनक हो उसी समय आ जाइए।

आपका
ई० सी० गिब्सन

महादेवभाई के एक और पत्र का अंश:

श्री गिब्सन कल आ रहे हैं। बापू और मैं दोनों उनसे मिलेंगे। आपको शायद मालूम नहीं है कि जब मैं उनसे एक सप्ताह पहले मिला था तो मुलाकात का श्रीगणेश किस प्रकार हुआ था। मैंने उन्हें बताया

था कि मुझे उनके सम्बन्ध में जो कुछ जानकारी हासिल हुई है ग्वालियर मिल के मैनेजर द्वारा, जिसने मुझे बताया कि श्री गिब्सन बालकों को कितना प्यार करते थे, और किस प्रकार उनके साथ खेलने के लिए आने को तैयार रहते थे। बस, इतना कहना था कि उनका दिल पसीज गया। इसके बाद, जैसा कि में लिख ही चुका हूं, ६० मिनट तक दिल खोल कर बातचीत होती रही।

मैं यह लिखना भूल गया कि गिब्सन की प्रवृत्ति आनन्ददायी, पर शुष्क-विनोद की है। इस पत्र के साथ मैं उनका बापू के उस पत्र का उत्तर भेजता हूं जिसमें उन्होंने उपवास के दिनों में उसे इतना परेशान करने के लिए दुःख प्रकट किया था, यद्यपि वह उपवास अकारथ गया।

: २८ :

कुछ पहेलियां और उनके हल

उन दिनों बापू के विचारों और वक्तव्यों में जो विरोधाभास दिखाई देता था उससे हम सब उलझन में पड़ जाते थे। उस समय का सिंहावलोकन करने पर प्रतीत होता है कि उन्होंने हमारे राष्ट्रनायक के रूप में जो कुछ किया, उसमें वह मूलतः सही रास्ते पर थे। हम यह भी देख सकते हैं कि उनके बिना हम शायद अभीतक स्वतंत्र न हुए होते। पर यह स्पष्ट है कि उन दिनों भी उन्हें इसमें शक होने लगा था कि आम जनता में उनके अहिंसा के सिद्धान्त को पचाने या अहिंसा-व्रत का पालन करते रहने की सामर्थ्य भी है या नहीं। विभाजन के दुःखांत नाटक का और तत्सम्बन्धी और बाद की दुर्घटनाओं का उन्हें पूर्वाभास-सा होने लगा था। उन्होंने यह बात बड़े दुःख के साथ स्वीकार की कि जिस चीज को वह खालिस अहिंसा समझे बैठे थे, वह निष्क्रिय प्रतिरोध के रूप में उसकी घटिया नकल-मात्र निकली। पर हम सब तो साधारण कोटि के मनुष्य हैं। हमारे लिए तो इतना समझना ही काफी है कि यदि कोई जाति या राष्ट्र निष्क्रिय प्रतिरोध का आश्रय ले तो वह बड़ा ही प्रभावोत्पादक सिद्ध हो सकता है और जिनके पास बन्दूकें या संगीनें न हों वे कभी-कभी उनके बगैर ही सफल मनोरथ हो सकते हैं।

२ अप्रैल १९४० को लार्ड लिनलिथगो के साथ मेरी मुलाकात हुई थी। उसका जो विवरण मैंने बापू के लिए तैयार किया, उसमें मैंने लिखा :

उन्होंने (वायसराय ने) इस बात की शिकायत की कि जब कभी गांधीजी उनके साथ बात करते हे तो हमेशा यह कह देते हे कि वह कांग्रेस

के विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। इससे उन्हें (वायसराय को) बड़ी असुविधा की स्थिति में पड़ जाना पड़ता है। वह गांधीजी के पीछे चलने की कोशिश करते हैं तो उन्हें पता चलता है कि उन्हे त्रिशकु की भांति बीच मे ही छोड़ दिया गया है। अगली बार जब वायसराय गांधीजी से मिलेंगे तो उनसे कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से मिलेंगे। मुझे लगा कि वायसराय बहुत थक गये हैं और बहुत निराश हैं। उन्हे गांधीजी के विरुद्ध यह वास्तविक शिकायत है कि उन्होंने सहायक सिद्ध होने की अपनी ओर से शक्ति भर कोशिश की, पर दूसरी ओर से उन्हें अनुकूल प्रत्युत्तर नहीं मिला। उनकी यह मांग नहीं है कि मुसलमानों के साथ पूरा समझौता हो जाय। वह तो सिर्फ यही चाहते हैं कि गांधीजी को संतोष हो जाय कि जो भी योजना रखी जायगी, उसपर अमल किया जा सकेगा।

इसी समय के आसपास, ४ अप्रैल को, बापू ने वायसराय को इस प्रकार लिखा:

अगर मैंने आपके दिमाग पर यह असर छोड़ा हो कि कांग्रेस वेस्ट-मिन्स्टर के ढंग का औपनिवेशिक दरजा स्वीकार कर लेगी तो मुझे यह जान कर सचमुच ही बड़ा अफसोस होगा। जब मैं आपको यह पत्र लिख ही रहा हूं तो अपने मन की एक बात और बता दूं। मैं आपको बता ही चुका हूं कि मेरा पुत्र देवदास आपका जोशीला समर्थक है। वह मुझे लम्बी-लम्बी चिट्ठियां लिखकर यह समझाने की कोशिश कर रहा है कि मैंने आपके साथ अपनी पिछली बातचीत को हठात् खत्म करके आपके प्रति बड़ा अन्याय किया है। वह मेरे इस आश्वासन को नही मानता है कि बातचीत इसलिए समाप्त हुई कि आप और मै दोनों इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि हमारे बीच की खाई इतनी चौड़ी है कि उसे अभी बातचीत को जारी रखकर ही नहीं पाटा जा सकता। वास्तव में यह तो आप ही का उद्गार था कि हम लोगों के लिए यह ज्यादा मर्दानगी का काम होगा कि हम अपनी बातचीत को शुरू के दिन ही समाप्त कर दें और जनता को वस्तुस्थिति से अवगत कर दें। आपके कथन की यथार्थता को मैंने तुरन्त स्वीकार कर लिया। देवदास का कहना है कि आपके कथन के पीछे ब्रिटिश अभिमान नहीं, शिष्टाचार-मात्र था। वह कहता है कि वास्तव में आप वार्तालाप जारी रखना चाहते थे। इसलिए देवदास बहुत दुखी है और उसका खयाल है कि मैंने आपके रुख को गलत समझा। अब आप ही इस कौटुम्बिक विवाद का निपटारा करने में मेरी सहायता कर सकते हैं।

महादेव भी दुखी थे। १२ तारीख को उन्होंने मुझे लिखा :

बापू के साथ देवदास का मतभेद बना हुआ है। देवदास का कहना है :

"यदि आपने वायसराय से कहा होता, 'खुद हमें किसी तरह का औपनिवेशिक दर्जा नहीं चाहिए, पर यह तो आपही बतायेंगे कि आप हमें किस ढंग का दर्जा देना चाहते हैं' तो वायसराय ने जवाब दिया होता, 'अच्छा हो कि हम इस प्रश्न की चर्चा किसी अगली तारीख के लिए स्थगित कर दें, उसके बारे में अभी बातचीत करने से कोई लाभ नहीं होगा।' देवदास की तर्कधारा काफी ठोस है, किन्तु हम कर ही क्या सकते हैं ? कभी-कभी बापू ऐसी गलतफहमियां पैदा कर देते हैं कि वह स्वयं उनका निराकरण नहीं कर पाते। ऐसा वह जानबूझ कर नहीं करते, पर उनके मन में इतनी बातें रहती हैं कि विरोधी पक्ष एक बात समझता है, और बापू के मन में दूसरी ही बात होती है।

जब मैंने बापू को आपके प्रश्न की याद दिलाई तो उन्होंने कहा,"उसके बारे में वायसराय से क्या पूछना है ? पीछे देखा जायगा।" यही कारण है कि उन्होंने अपने उत्तर में उसका कोई उल्लेख नही किया है।

एक और पहेली ने मुझे १७ ता० को महादेवभाई को यह पत्र लिखने को बाध्य किया :

तुमने बापू का ध्यान लियाकतअली खां के प्रत्युत्तर की ओर दिलाया होगा। मुझे भय है कि लियाकतअली की आलोचना में कुछ तथ्य है। बापू के लेखों को शब्दशः लिया जाय तो उनमें विरोधाभास की झलक मिलती है। हमे मालूम है कि बापू को उनकी ठीक व्याख्या करने में कोई कठिनाई नहीं होगी, पर वस्तुस्थिति यह है कि बहुत बार बापू के विरोधी उन्हे गलत समझ लेते हैं और कभी-कभी तो उनके निकट के आदमियों के लिए भी उनके मन की बात का ठीक ठीक अनुमान लगाना कठिन हो जाता है।

जब मै वर्धा में था तो राजाजी विभाजन का प्रतिपादन कर रहे थे और बापू उनके तर्क के विरोध में बोल रहे थे। अब बापू कहते हैं कि वह विभाजन का मुकाबला करने में अपनी पूरी शक्ति लगा देंगे। हां, प्रतिरोध अहिंसापूर्ण होगा। इस प्रकार की गलतफहमी केवल वायसराय और लियाकतअली को ही नहीं, बल्कि और कइयों को भी हुई है। मैंने परसों मूर के मकान पर दोपहर का खाना खाया था। वह भी हैरान थे। उनका कहना है कि 'हरिजन' में वह इतनी परस्पर-विरोधी सामग्री पढ़ते हैं कि चक्कर में पड़ जाते हैं। कभी-कभी उनकी इच्छा होती है कि बापू का समर्थन

करें, पर उनको खुद पता नहीं चलता कि बापू निश्चित रूप से किस दिशा में जा रहे हैं। उनका खयाल है कि बापू के दिमाग में उलझन है। हम सब जानते हैं कि उनका यह खयाल ठीक नहीं है कि बापू के लेखों में उलझन होती है, पर साथ ही हमें इस बात की भी खबर रखनी चाहिए कि बापू के लेखों के बारे में लोग क्या अनुभव करते हैं और क्या सोचते हैं।

हिटलर ने यूरोप पर जो दबदबा बैठा रखा था उसका बापू पर कोई असर नहीं पड़ा। १६ मई को महादेव ने मुझे लिखा :

देवदास का टेलीफोन आया था। हॉलैण्ड ने आत्म-समर्पण कर दिया है। बेल्जियम का भी यही हाल होना है। अब बापू को ब्रिटिश मंत्रिमंडल के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहिए और वायसराय की मार्फत मंत्रिमंडल को एक लम्बा तार भेजना चाहिए। उसका कुछ नतीजा निकल सकता है। बापू ने कहा कि खबरों में कुछ नहीं रखा है। बापू की निगाह में हिटलर ऊंचा चढ़ता जा रहा है। मैंने कहा "जबतक आप सार्वजनिक रूप से इस बारे में कुछ नहीं कहते, तभी तक खैर है।"

२१ ता० को बापू ने मुझे स्वयं लिखा :

यूरोप इस समय ऐसे लोगों का संगम-स्थल बना हुआ है जो यादवों की भांति एक दूसरे का विनाश करने पर तुले हुए हैं। जो हो, मेरा दिल कठोर हो गया है।

बापू के आशीर्वाद

दुर्भाग्यवश बापू यह मान बैठे थे कि युद्ध में ब्रिटेन की हार हुई है और उन्होंने लार्ड लिनलिथगो को एक पत्र में अपना यह विचार लिख भी डाला। महादेवभाई को शायद यह बात पसन्द नहीं आई और उन्होंने मुझे ६ जून को लिखा :

उस पत्र का उत्तर आ गया है। बापू ने अपने पत्र में लिखा था: "यह नर-संहार बन्द होना चाहिए। आप हार रहे हैं। आप युद्ध जारी रखेंगे तो उसका एकमात्र परिणाम और अधिक रक्तपात होगा। हिटलर बुरा आदमी नहीं है। आप आज लड़ाई बन्द कर दें तो वह भी ऐसा ही करेगा। आप मुझे जर्मनी या और कहीं भेजना चाहें तो मैं हाजिर हूं।

आप इसकी सूचना ब्रिटिश मंत्रिमंडल को भी दे सकते हैं।" मेरा यह दृढ़ विचार था कि वे लोग इसे धृष्टता समझेंगे। जो उत्तर आया है, वह बढ़िया है: 'हम संघर्ष में जुटे हुए हैं, जबतक हम अपना लक्ष्य हासिल नहीं कर लेंगे, अपनी जगह से नहीं हटेंगे। मैं जानता हूं कि आप हमारे लिए चिन्तित हैं, पर सबकुछ ठीक ही होगा। आपने हमारे दो पुत्रों के लिए जो चिन्ता व्यक्त की है, उसका हमारे दिलों पर बड़ा असर पड़ा है।' बस, इतना ही।

इस बीच बापू उपवास की धमकी दे रहे थे, किसी बड़े राष्ट्रीय प्रश्न को लेकर नहीं, बल्कि इसलिए कि आश्रम में कोई मामूली-सी चोरी हो गई थी। इसपर सेवाग्राम में बड़ी खलबली मची हुई थी। महादेवभाई ने ३ जून को लिखा:

यहां तो हमेशा इस या उस तरह की कोई-न-कोई उत्तेजना बनी ही रहती है। एक लड़की ने बापू को एक पत्र लिखा था। पत्र के पास ही एक कलम पड़ी थी। किसी ने दोनों को चुरा लिया। बाद में कलम वहां मिल गई जहां उसे किसी ने फेंक दिया था। पत्र के फटे हुए टुकड़े भी मिले। इससे बापूको इतना आघात पहुंचा कि उन्होंने घोषणा करदी "यह काम नौकरों का नहीं हो सकता। अपराधी हमारे भीतर छिपा है। यदि शुक्रवार तक अपना अपराध स्वीकार करने के लिए कोई आगे नहीं आता है तो शनिवार से मैं उपवास शुरू कर दूंगा।" हम अपनी शक्ति भर अपराधी का पता लगाने की कोशिश कर रहे हैं और हरेक को समझा-बुझा रहे हैं, किन्तु अभीतक कोई सफलता नहीं मिली है। इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक कार्यों में हमारा बहुत-सा समय चला जाता है।

६ ता० को महादेवभाई ने पुनः लिखा:

चोरी के प्रकरण ने भद्दा रूप धारण कर लिया है। कल बापू ने अकस्मात् 'अ' से कहा, "मेरा सन्देह तुम्हारे ऊपर है। अपराध स्वीकार क्यों नहीं कर लेती हो?" मैं भी स्तंभित रह गया। 'अ' ने जवाब दिया, "मैंने नहीं लिया। मैं बेकसूर हूं। अल्लाह मेरा गवाह है।" उसने आज से अनशन शुरू कर दिया है। मैंने बापू से कहा, 'आपने उसपर इस तरह आरोप लगाकर उतनी ही जल्दबाजी से काम लिया है जितनी आपने उपवास की घोषणा करने में दिखाई थी।" बापू को जब यह महसूस होगा कि उन्होंने लड़की के प्रति अन्याय किया है तो वह उसके प्रति सौ बार न्याय करके इसका

परिमार्जन करने की चेष्टा करेंगे और यह भी एक अन्याय का काम होगा। और भी कई मामलों में बापू ने ऐसा ही किया है। मैंने बापू से यह सब कहा, पर उनपर कोई असर नही हुआ। अभी तक तो उनका उपवास करने का निश्चय कायम है। आप कल फोन करेंगे तो अधिक जानकारी हो सकेगी।

कहने की आवश्यकता नहीं कि मैंने महादेवभाई के सुझाव के अनुसार फोन किया और बापू से उपवास न करने का अनुरोध भी किया। महादेवभाई ने उत्तर में लिखा :

प्रिय घनश्यामदासजी

टेलीफोन पर आपका संदेश मिला। मैं बापू के साथ काफी दलील कर चुका हूं। मैंने कहा, "आपको यह पता हो कि किसने अपराध किया है तब तो आपका प्रायश्चित्त-स्वरूप उपवास करना समझ में आ भी सकता है, पर अपराधी का पता लगाने के लिए उपवास करना कुछ ठीक नहीं रहेगा। यदि हम सबकुछ जानने का दावा करें या जानने की कोशिश करें तो यह ईश्वर के गुणों को धारण करने जैसा होगा और हमारे अभिमान का परिचायक होगा। इसलिए आप उपवास करने का विचार छोड़ दीजिए। इसमें अनेक अनिश्चित तथ्य हैं।"

बापू ने लिखा :

"तुम्हारा दृष्टिकोण मेरे सामने है ही।"

इससे मुझे आशा होती है कि अन्त मे शायद बापू उपवास शुरू न भी करें। मैं यह मानने को तैयार नहीं हूं कि यहा के किसी आदमी ने पत्र या कलम चुराया है। हम सब अति लघु हो सकते है, पर मैं इस बात की तो कल्पना भी नही कर सकता कि एक साधारण चोरी का अपराध स्वीकार करने के पूर्व हम बापू के उपवास करने की नौबत आने देंगे।

१० ता० को महादेवभाई ने अच्छी खबर सुनाई :

बापू ने उपवास का विचार स्थगित कर दिया और इसका मुख्य श्रेय मेरी बड़ी कोशिशों और मेरे कड़े विरोध को है। मैंने इससे पहले बापू के किसी भी काम का इससे अधिक कड़ा विरोध नहीं किया। बापू ने उपवास शुरू कर दिया, उसके बाद भी मैंने बापू को एक लम्बा पत्र लिखा जिसमें मैंने कहा, "आपका यह उपवास धार्मिक उपवास नहीं है और जबतक

उसका अन्त नहीं कर दिया जायगा मैं बराबर विरोध करता रहूंगा।" दो घंटे बाद बापू ने उपवास त्यागने का निश्चय कर लिया।

पर इधर राजाजी, मैं और अन्य लोग, ब्रिटेन के साथ किसी-न-किसी प्रकार के समझौते के लिए प्रयत्नशील थे। काँग्रेस ने अपेक्षाकृत बड़े प्रश्नों की उपेक्षा नहीं की। काँग्रेस ने ऐसी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करने के लिए एक तर्क-संगत प्रस्ताव किया, जो युद्ध को उसके सफल अन्त तक चलाने में मदद देती रहती। किन्तु तबतक उन अंग्रेजों का अविश्बास बहुत गहरा हो गया था जो किसी समय हिटलर को संतुष्ट करने और प्रोत्साहन देने में सबसे आगे थे। काँग्रेस के प्रस्तावों को ठुकरा दिया गया। यहाँ यह कहना उचित होगा कि काँग्रेस को ब्रिटेन के कतिपय अंग्रेजों का और भारत में रहने वाले कुछ अंग्रेजों का समर्थन अवश्य मिला।

४८, बजलुल्ला रोड
त्यागरायनगर, मद्रास
१६ अगस्त १९४०

प्रिय घनश्यामदासजी

स्थानीय समाचार-पत्रों ने श्री आर्थर मूर के लेख का मुख्य अंश प्रकाशित किया है, जिसमें उन्होंने श्री एमरी के वक्तव्य की आलोचना की है और अस्थायी राष्ट्रीय सरकार कायम करने की कांग्रेस की मांग का समर्थन किया है। कृपया मेरा यह विचार उनतक पहुंचा दीजिए कि उन्होंने मामले को जिस लाजवाब तरीके से पेश किया है मैं उसकी सराहना करता हूं। मैं आशा करता हूं कि उनका यह लेख पूरा-का-पूरा इंग्लैंड गया है।

आपका
चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

: २६ :

एक व्यक्तिगत स्पष्टीकरण

यह अध्याय 'व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के लिए है,' जैसा कि पुरानी व्यवस्थापिका के सदस्य कहा करते थे।

१९४० के अन्त में लार्ड लिनलिथगो के साथ मेरा खासा झगड़ा हो गया। मैं इस प्रसंग का केवल इसीलिए जिक्र कर रहा हूं कि उस समय के मेरे अपने कार्यकलाप के बारे में प्रचलित धारणा से उसका घनिष्ट संबंध है। सीधी-सादी भाषा में लोगों की धारणा थी कि मैं अपने-आपको काँग्रेसवादी तो नहीं कहता हूं, पर उसे गुप्तरूप से खूब पैसे दे देता हूं और इस प्रकार दो किश्तियों पर सवार हूं।

कह नहीं सकता कि कुछ लोग मुझे शंका का लाभ देते थे या नहीं और यह मानते थे या नहीं कि मैं काँग्रेस का समर्थन देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर ही करता हूं। जब मैं सर गिलबर्ट लेथवेट के साथ अपनी अन्तिम मुलाकात का अपना विवरण फिर से पढ़ता हूं तो यह सोचने को मन कहता है कि वह और वायसराय दोनों ही मेरे इस कार्य को देशभक्ति से प्रेरित मानते थे और उनमें कोई बुराई नहीं देखते थे। उनका केवल यही कहना था कि काँग्रेस इस समय युद्ध-चेष्टा में सहायता नहीं दे रही है, बल्कि बाधा डाल रही है और चूंकि उनका विश्वास था कि मैं काँग्रेस की आर्थिक सहायता कर रहा हूं, इसलिए वायसराय सार्वजनिक रूप से मेरे साथ घनिष्ठ संबंध रखने में कठिनाई का अनुभव करते थे, क्योंकि उधर वह काँग्रेस-वादियों को जेल भेज रहे थे। इसका यह लाज़मी मतलब नहीं कि उन्हें मेरा या उन लोगों का, जिन्हें वह जेल भेजने को बाध्य होते थे और

जिनके साथ संघर्ष समाप्त हो जाने के बाद सामान्य मधुर संबंध कायम करने को वह तैयार हो जाते, कम लिहाज़ था। पर मैं भड़क उठा और मुझे बड़ा ही क्रोध आया, क्योंकि मुझे लगा कि कम-से-कम उन्हें यह तो पता होना चाहिए था कि मैं काँग्रेस के सविनय अवज्ञा-आंदोलन को आर्थिक सहायता नहीं दे रहा हूं। मेरी भक्ति बापू के प्रति थी और मैं उन्हें किसी भी चीज के लिए इंकार नहीं कर सकता था। वह अपनी सभी योजनाओं में मुझसे सहायता माँगा करते थे। पर बापू यह अच्छी तरह जानते थे कि मैं काँग्रेसवादी नहीं हूं, और उन्होंने मुझे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के लिए रुपया देने को कभी कहा भी नहीं। उन्हें मुझसे जो रुपया मिला उसे उन्होंने किसी ऐसे काम में लगाया भी नहीं। उन्होंने खुद काँग्रेस के लिए रुपया नहीं जुटाया और न वह साधारणतया काँग्रेस के लिए रुपए की अपील ही किया करते थे। जनता पर उनका इतना भारी प्रभाव था कि वह बहुत बड़े धन-संग्राहक बन गये थे, पर उनकी अपीलें हरिजनों, गृह-उद्योगों, बुनियादी तालीम और विविध रचनात्मक कामों के लिए ही होती थीं।

मैंने महादेवभाई को जो पत्र लिखा था, वह यह है:

२६ दिसम्बर १९४०

मैंने यहां आने के तुरन्त बाद लेथवेट को लिखा कि मेरी वायसराय के साथ मुलाकात तय करा दें और यह भी लिखा कि वायसराय से मिल लेने के बाद मैं उनसे भी मिलना चाहूंगा। लेथवेट का जवाब मिला कि उन्हें भय है कि वायसराय से तो मिलना नहीं हो सकेगा, पर वह स्वयं मुझसे मिलकर प्रसन्न होंगे। मुझे शक हुआ कि पुरानी नीति में परिवर्तन हुआ है, पर लेथवेट से मिलने के पहले मैंने कोई खयाल बनाने से इन्कार कर दिया।

अगले दिन एस० सी मित्रा वायसराय से मिलने जा रहे थे। वायसराय ने एक सप्ताह पहले ही उनसे कहा था कि वह मेरे द्वारा गांधीजी के साथ संपर्क बनाये हुए हैं। उन्होंने मेरे लिए 'मेरे मित्र श्री बिड़ला' शब्दों का प्रयोग किया था। स्वभावतया ही मित्रा ने यह जानना चाहा कि क्या

वह वायसराय के सामने कोई प्रस्ताव रख सकते हैं। मैंने उन्हें बताया कि तुमने लेथवेट को जो सुझाव दिया है, मित्रा को वायसराय से मिलते समय उसीपर जोर देना चाहिए। मित्रा वायसराय से मिलते समय उस प्रस्ताव के बारे मे कुछ भी याद नहीं रख पाये। किन्तु जब मित्रा ने वायसराय से कहा कि सम्भव है, मेरे साथ उस सुझाव के बारे में फिर चर्चा हो, तो वायसराय ने कहा, "श्री बिड़ला मेरे मित्र हैं, पर इन दिनों वह आन्दोलन को पैसा दे रहे हैं। उन्हे ऐसा करने का पूरा अधिकार है, क्योंकि उनका पैसा है। पर चूंकि वह आन्दोलन को आर्थिक सहायता दे रहे हैं, इसलिए अभी मैं उनसे मिलने में रुकावट महसूस करता हूं।" जब मैंने यह सुना तो मेरे सन्देह की पुष्टि हो गई। नीति मे परिवर्तन हो गया था। फिर भी मै लेथवेट से मिलने गया।

लेथवेट से मिलने पर मैंने उनसे कहा वैसे तो मै वर्तमान गतिरोध के बारे में कुछ रचनात्मक चर्चा करने आया हूं, पर मै समझता हूं कि पहले यह बता देना अच्छा रहेगा कि वायसराय ने मेरे बारे में मित्रा से जो कुछ कहा, उसे सुन कर मुझे बड़ा धक्का लगा है। "लेथवेट ने जवाब दिया, "पर क्या यही बात सबकी जबान पर नहीं है ?" मैंने कहा, "सबकी ज़बान पर क्या बात है, इससे तो मुझे कोई सरोकार नहीं है। प्रश्न तो यह है कि क्या आपका भी यही विश्वास है ?"

उन्होंने कहा, "नही।"

मैंने कहा, "नहीं, है।" और मैंने यह भी कहा कि चूंकि मुझे यह पता चल गया है कि वायसराय को मुझपर भरोसा नहीं है, इसलिए मै इस बात को आगे नहीं बढ़ाना चाहता। लेथवेट ने कहा, "पर क्या आप कांग्रेसवादी नहीं है ?" मैंने उत्तर दिया, "मै कांग्रेसवादी नही हूं। हां, गांधीवादी अवश्य हूं। गांधीजी मेरे लिए पिता के समान है। मै उनके सारे लोकोपकारी और रचनात्मक कार्यों में गहरी दिलचस्पी रखता हूं। गांधीजी ने मुझसे राजनैतिक लड़ाई में भाग लेने को कभी नहीं कहा। वायसराय को अबतक यह जान लेना चाहिए था कि समूचे भारत मे उनकी सहायता करने की जितनी चेष्टा मैंने की और उनका साथ देने के मामले में जितनी वफादारी मैंने दिखाई उतनी और किसीने नहीं दिखाई होगी, और वायसराय ने मुझे यह पुरस्कार दिया है ! यदि वायसराय की धारणा यह है कि एक ओर तो मैं उनके पास एक मित्र की हैसियत से आता हूं और दूसरी ओर गुप्तरूप से उनके खिलाफ काम कर रहा हूं, तो फिर उनका समय और अधिक बर्बाद करने की मेरी इच्छा नहीं है। वायसराय ने मेरी ईमानदारी पर शक करके मेरे प्रति अन्याय किया है, और मैं और अधिक लांछित होना नहीं चाहता।"

लेथवेट कुछ कट से गये। "पर अपनी पसन्द के राजनैतिक संपर्क रखने में क्या बुराई है ?" मैंने कहा, "कोई बुराई नहीं है। पर बुराई इसमें है कि आदमी हो कुछ और बने कुछ। मैंने वायसराय को और आपको (अर्थात् लेथवेट को) अपने बारे में जानकारी कराने की पूरी-पूरी कोशिश की है। पर पांच साल के बाद भी मेरे साथ मानवी सम्बन्ध कायम नहीं हो सका। अब मेरी ईमानदारी पर ही शक किया जा रहा है। इसलिए इस ढंग का नाता बनाए रखने की मेरी इच्छा नही है।"

लैथवेट ने मुझे शान्त करने की चेष्टा की और जानना चाहा कि वह रचनात्मक सुझाव क्या है, जो मैं उन्हे देना चाहता था। पर मैंने कहा, "किसी रचनात्मक प्रस्ताव पर चर्चा करने योग्य आत्मविश्वास अब मुझमें नहीं रहा है।" उन्होंने कहा, "इससे क्या फर्क पड़ता है कि आप एक मित्र की हैसियत से आते हैं या विपक्षी की हैसियत से ?" मैंने कहा, "फर्क जरूर पड़ता है। मैं विपक्षी की हैसियत से आऊंगा तो मेरी बात का आप पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा। मैं मित्र की हैसियत से ही तो कुछ असर डाल सकता हूं। और अब चूंकि मुझे मित्र नही समझा जा रहा है, इसलिए आगे बात चलाने की मेरी इच्छा नहीं है।" जब उन्होंने ज्यादा दबाव डाला तो मैंने उन्हें अन्यमनस्क भाव से बताया कि मैं उनसे किस विषय पर बात करना चाहता था। उन्होंने मुझे फिर ठंडा करने की कोशिश की।

वह मुझे विदा करने के लिए अपने दफ्तर के बाहरी अहाते तक आये। हर तरह का शिष्टाचार दिखाया, पर मैं शान्त होने की वृत्ति में न था। बस, मामला यहीं खत्म हो गया। उन्होंने कहा, 'हम चाहे जब मिल सकते हैं और बातचीत कर सकते हैं।" पर मैंने कह दिया कि वायसराय की ओर से यह प्रसाद पाने के बाद वायसराय भवन में फिर पांव रखने की मेरी इच्छा नहीं है और उनके साथ मेरी बातचीत का यह बिल्कुल अन्तिम अध्याय है।

मैंने बापू के आगे वायसराय की कितनी कुछ वकालत की है और ऐसा व्यवहार किया है मानों मैं वायसराय का ही प्रतिनिधि होऊं, सो तुम्हें बताना न होगा। और इस सबका वायसराय ने यह बदला दिया है। यह बौडमपन नहीं तो और क्या है ? पर बापू को वायसराय को गलत नही समझना चाहिए। कौन जाने, वह स्वयं परिस्थितियों के शिकार न बन गए हों।

जो हो, इसके साथ वायसराय के साथ मेरे सम्बंधों का अन्त होता है। कितने जड़ मानसवाले हैं ये लोग !

: ३० :

बापू पत्र-लेखक के रूप में

पाठकों ने देखा होगा कि मैंने बापू के पत्रों की अपेक्षा उनके निजी मंत्रियों के पत्रों से अधिक खुलकर उद्धरण दिये हैं। मैं उनके मंत्रियों को अधिक लिखा करता था, इसका कारण यह था कि मैं बापू पर उत्तर देने का बोझ नहीं डालना चाहता था। बापू स्वभाव से इतने मृदुल थे कि वह मेरे पत्रों का उत्तर निश्चय ही देते। मैं यह तो जानता ही था कि मैं बापू के मंत्रियों को जो पत्र लिखता हूं वे बापू के सामने रख दिये जाते हैं। दुर्भाग्यवश बापू के सैकड़ों सदाशयी प्रशंसक, जिनमें से अधिकाँश उनसे व्यक्तिगत रूप से परिचित नहीं होते थे, बराबर सीधे बापू को ही लिखा करते थे और उन्हें बापू खुद ही जवाब देते थे। इससे उनके समय और स्वास्थ्य दोनों पर बोझ पड़ता था, और चूंकि बापू के पत्र-लेखक बापू के पत्रों पर गर्व का अनुभव करते थे और उन्हें प्रायः बहुमुल्य वस्तुओं के रूप में अपने पास रखते थे, इसलिए बहुत कम ऐसे सार्वजनिक व्यक्ति हुए हैं जो इतना पत्र-व्यवहार अपने पीछे छोड़ गये हों, जितना बापू छोड़ गये हैं।

तो भी बापू समय-समय पर मुझे पत्र लिखते रहते थे। मज़े की बात यह है कि जहाँ एक ओर मुझे उनके स्वास्थ्य के बारे में गहरी दिलचस्पी रहती थी और जब वह दिल्ली में नहीं होते थे तो मैं बराबर यह जानने के लिए आश्रम तार भेजता रहता था कि उनका रक्तचाप बढ़ा तो नहीं या वजन कम तो नहीं हो गया, वहाँ दूसरी ओर बापू भी अपने पत्रों में बहुधा बिलकुल अनावश्यक रूप से मुख्यतः मेरे स्वास्थ्य के बारे में ही

लिखा करते थे। मैं यह पहले ही लिख चुका हूं कि कई वर्षों पहले जब मैं युवक था और पहली बार इंगलैण्ड गया था तो बापू ने किस प्रकार मुझे बड़ी सावधानी के साथ हिदायतें लिख भेजी थीं। उनकी यह रुचि बराबर बनी रही और उनके कुछ पत्र विस्तार के कारण और कुछ डाक्टरी सलाह लिये हुए होने के कारण प्रकाशन योग्य शायद ही सिद्ध हों। फिर भी उदाहरण के तौर पर कुछ ऐसे पत्र दे रहा हूं जो उन्होंने मुझे अपने जीवन-काल के अन्तिम चरण में लिखे थे।

सेगांव
२०. ३. ४५

चि० घनश्यामदास

तुमको तार एक्सप्रेस भेजा है। नकल साथ भी है। क्या, कितना कब खाते हे ? भाजी मे क्या ? कच्ची कि उबाली हुई ? पानी फेका तो नहीं जाता ? टोस्ट से बहतर खाकरा नही होगा ? आटा के साथ चोकर है ? दूध लेते हे तो कितना ? कुछ भी हो आधा आउन्स मक्खन टोस्ट खाकरा पर लगाकर सेलाड के साथ लेना। बदहजमी हो तो दूसरा खाना कम करो लेकिन मक्खन रखो। गहरा श्वास अत्यावश्यक है। एक नाक बन्द करके दूसरे नाक से स्वास खीचो। आस्ते आस्ते बढ़ाकर आध घंटे तक जा सकते हें। प्रत्येक स्वास के साथ राम नाम मिलाओ। स्वास लेने के समय चोमेर से हवा होनी चाहिये। खुले में हो तो अच्छा ही है। प्रातःकाल में लेना ही है, बाकी खाना हजम होने के बाद। कम से कम चार बार लेना। स्वास लेना है, निकालना है। यह क्रिया आराम से करनी चाहिये। पाखाना बराबर आता है ? नींद आती है ? यह सब समझपूर्वक होगा तो खांसी शीघ्र ही चली जायगी।

बापू के आशीर्वाद

९.४.४५

चि० घनश्यामदास

मेरे अक्षर पढ़ सकतें हे क्या ? मुश्किल लगे तो मैं लिखवाकर भविष्य में पहुँचा भेजूं।

दिन तो चले जाते हैं। समय पेटभर बातें करने का रहता नहीं इसलिये मुझे कहना है सो तो लिखूं क्योंकि मेरी बात तो मै लिखकर खतम कर सकूंगा।

उत्तर तो दो-चार शब्दों में दे सकते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि मैंने कहा है सो खींच लेता हूं। मैं तुमको वक्त न दूं तबतक यहां से नहीं हटूंगा। मेरी बात के लिये ठहरना नहीं चाहता।

१. मेरा काम बढ गया है। अब तो कोशिश कर रहा हूं कि मेरे पास पैसे की कोई आशा न करे और मैंने बनाई हैं वे सब संस्था स्वाश्रयी बन जायं। ऐसा होने मे कुछ समय तो जायगा और दरम्यान मुझे पैसा निकालना होगा। संस्थायें तो (१) चर्खा संघ (२) ग्राम उद्योग संघ (३) नई तालिम (४) हिन्दुस्तानी प्रचार और (५) आश्रम हैं। २,३,४,५ की हाजत आज है। पाचवी संस्था आश्रम तो कभी स्वाश्रयी नही बनेगी। कोशिश तो करता हूं। आश्रम में अस्पताल आता है। अस्पताल का खर्च अलग रहता है। उसके पैसे इधर उधर से आया करें ऐसी चेष्टा चल रही है तो भी आश्रम का खर्च प्रतिवर्ष एक लाख के नज़दीक जाता है। मै स्मरण से लिख रहा हूं। आश्रम को आज हाजत नहीं। रामेश्वरदास पैसे भेजते है। रहे २,३,४, उनके लिये पैसे चाहिये। रामेश्वरदास ने कुछ भेज दिये हैं ऐसा ख्याल है। हि० प्रचार और नयी तालिम के लिये चाहिये। शायद मुझको दो लाख की आवश्यकता रहे। यह खर्च उठाओगे क्या? सफरर्स फंड का रामेश्वरदास के खत में है ही। मेरा खयाल भी मैंने बताया है।

२. अब रही बात साथियों के साथ के सबन्ध की ओर मेरे प्रयोग की। प्रयोग तो अब साथियों के ख़ातिर बन्द ह। मुझको उसमें कुछ अनुचित नहीं लगता है। मै वही ब्रह्मचारी हूं जो १९०६ की साल में प्रतिज्ञा से रहा और १९०१ से ब्रह्मचारी की स्थिति मे रहा। आज मैं १९०१ से बहतर ब्रह्मचारी हूं। मेरे प्रयोग ने अगर कुछ किया है तो यह कि मै था इससे ज्यादा पक्का हुआ। प्रयोग पूर्ण ब्रह्मचारी बनने के लिये था और यदि ईश्वरेच्छा होगी तो संपूर्ण बनने के कारण होगा। अब इस बारे में तुम बातें करना और प्रश्न पूछना चाहते थे। दोनों चीज कर सकते है। संकोच की कोई बात है नही। जिसके साथ इतना घनिष्ट सबंध है और जिसके धन का मै इतना उपयोग करता हूं उसके मन में कुछ संकोच रहे सो मेरे असह्य होगा। अच्छा है कि दोनो भाई मौजूद है। यह पत्र दोनों के लिये तो है ही, लेकिन सब भाइयों के लिये और परिवार के लिये ऐसा समझो।

पत्र छोटा लिखना था लेकिन कुछ लम्बा तो हुआ ही। बात तो तीन है।

बापू के आशीर्वाद

एक बात रह गई। आश्रम की ज़मीन वि० गौशाला को दी गई इसके तुमने ५०,०००) दिये है। अब बात ऐसी है कि जब चिमनलाल ने

फेरिस्त भेजी तो उसमें आश्रम का खेत और जिसमें कुंआ है उसका कुछ जिकर है। अगर है तो सब मकान भी गये। ऐसे तो हो नहीं सकता। यह तो कुछ चूक ही थी। लेकिन खत तो जानकी देवी आदि ने लिखे। कुछ निकाल नहीं आया। अब प्रश्न यह है कि अगर तुमने ऐसा माना है कि सब जमीन और कुंआ गोशाला को दे दिया था तो तुम्हारे ५०,०००) में से कुछ काटना होगा। तुम्हारे जैसा करना है ऐसा किया जाय।

—बापू

किन्तु इसके बाद के दिनों में बापू मुझे और जल्दी-जल्दी पत्र लिखने लगे थे।

यह बात उल्लेखयोग्य है कि जो काल राजनैतिक उत्तेजना से परिपूर्ण था और जिस समय बापू के सिर पर भारी जिम्मे-दारियाँ थीं, उसमें भी वह अपने को धूम-घड़ाके से अलग कर लेते थे और अपनी लोकहितकारी योजनाओं की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बातों के बारे में लिख सकते थे। उन्होंने १६ अक्टूबर को मुझे एक लम्बा-सा पत्र लिखा, जिसका पहला भाग नासिक की स्कूल की इमारतों और सेनेटोरियम के बारे में था। उन्होंने आगे लिखा था :

सरदार का अभिप्राय मैं लिख दूं। वे मानते हैं कि इस काम में मुझे यहां तक रस नहीं लेना चाहिये। आर्थिक मदद देना है तो वह दिलवाकर शांत रहना चाहिये। सरदार मनुष्य स्वभाव को जाननेवाले हैं और मेरे प्रति उनका अतिशय भाव रहा है इसलिये उनकी वृत्ति को भी तुम्हारे सामने रखना मुझे अच्छा लगता है जिससे तुम तटस्थ भाव से इस चीज़ का निर्णय कर सको।

इसके बाद नासिक और प्राकृतिक चिकित्सा के संबंध में कुछ और बातें हैं। फिर निम्नलिखित रोचक पैरा आता है :

इस काम में मेरा बहुत रस होते हुये भी तटस्थ रूप से ही कार्य देख रहा हूं और कर रहा हूं ऐसा समझो। अगर मुझे १२५ वर्ष तक जिन्दा रहना है तो उसकी यह भी शर्त है कि मेरी तटस्थता यानी अनासक्ति की मात्रा दिन प्रतिदिन बढ़नी चाहिये और मनुष्य के लिये शक्य है वहां तक संपूर्णता को पहुंचनी चाहिये। यह कैसे हो सकता है, होगा या नहीं यह नहीं जानता हूं। जानने की इच्छा भी क्यों करूं ? उस आदर्श को दृष्टि में रखते हुए मैं जिसे कर्तव्य समझूं वही करना है। मै इतना समझता हूं कि इस

आदर्श को पहुँचना कठिन है, लेकिन कठिन कार्य करते हुये ही जीवन गुजरा है।

बापू के आशीर्वाद

बापू अपने विविध लोकोपकारी कार्यों की खातिर एक बहुत ही कुशल व्यापारी भी थे, इसका पता इस पत्र से चलता है:

पूना
ता० १२-७-४६

भाई घनश्यामदास

यह तो आपको पता है कि आप लोगों की मन्जूरी से कस्तूर बा ट्रस्ट का करीब १०, १२ लाख रुपया सेन्ट्रल और यूनाइटेड कमर्शियल बेंकों में फिक्स डिपाज़िट के रूप में लगा हुआ है। सेन्ट्रल बेंक १२ महीने की मियाद पर १।।। सैकडा ब्याज देता है और यूनाइडेट कमर्शियल बेंक २। सैकडा। ट्रस्ट चूंकि परमार्थिक कार्य के लिये है इसलिये मेरी तो यह इच्छा है कि बेंकों को जो कुछ ब्याज सरकारी लोन से या अन्य साधनों से मिलता है वह ट्रस्ट को दे। इसका अर्थ यह है कि ट्रस्ट को ३ सैकडा टका ब्याज तो मिलना ही चाहिये। मैं सेन्ट्रल बेंक से ब्याज के सम्बन्ध में सर होमी मोदी को लिख रहा हूं और यूनाइटेड कमर्शियल बेंक के सम्बन्ध में आप को लिख रहा हूं। आप उसके अध्यक्ष की हैसियत से ३ तीन सैकडा ब्याज दें तो अच्छा होगा।

मैं कल पंचगनी जा रहा हूं। उत्तर वहीं भेजना।

बापू के आशीर्वाद

बापू ने मुझे पंचगनी बुलाया और मैं वहाँ गया। उनके पास प्राकृतिक चिकित्सा की बहुत बड़ी योजनाएं थीं, जिनके बारे में उन्होंने चर्चा की, किन्तु बाद में उन्हें छोड़ दिया।

: ३१ :

स्वतंत्रता का आगमन

यह बात सभी जानते हैं कि युद्ध का अन्त होने पर १९४५ के पूर्वार्द्ध में हमें अशान्त समय में से होकर गुजरना पड़ा था। किन्तु अगस्त में जब इंग्लैंड में मजदूर-दलीय सरकार सत्तारूढ़ हुई तो दृश्य इतना बदल गया कि उन दिनों के घटना-चक्र-वेवल-योजना, शिमला-सम्मेलन और अन्य उत्तेजनाओं का जिक्र करना बेसूद-सा होगा। श्री जिन्ना के बारे में बहुत से लोगों ने यह समझने की भूल की कि वह झांसा-पट्टी देने वाले व्यक्ति हैं। पर वह अखिल भारतीय एकता के मार्ग में एक दुर्लंघ्य दीवार और निष्ठुर इरादों को पूरा करने के मामले में अडिग व्यक्ति, सिद्ध हुए। ब्रिटेन में सरकार का जो परिवर्तन हुआ उससे भी यह रुकावट दूर नहीं हुई और शुरू-शुरू में ब्रिटेन में हुए परिवर्तन के महत्व को भारत में पूरी तरह से नहीं समझा गया। सन्देह की जड़ का उखाड़ना कितना कठिन कार्य है:

सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने मुझे लिखा:

आशा करता हूं कि आपके कांग्रेसी मित्र सर्वथा नकारात्मक दृष्टिकोण न अपनाकर हमारी कुछ सहायता करेंगे।

कांग्रेस की ओर से जो वक्तव्य दिये जा रहे हैं वे उन लोगों के लिए अधिक सहायक सिद्ध नहीं हो रहे है, जो इस मामले का निपटारा करने की चेष्टा में लगे हुए हैं। इन वक्तव्यों से तो विरोधियों की दलीलें ही वजनदार होती जा रही हैं।

आपने मार्ग को निष्कटक बनाने के लिए जो कुछ किया है, और जो कुछ कर रहे है, उसके लिए मैं आपका अत्यंत आभारी हूं। ब्रिटिश सरकार

का निश्चय ही इस मामले में आगे बढ़ने का इरादा है, पर भारत की मदद के बिना हम सफल नहीं हो सकते।

उत्तर में मैंने लिखा:

चुनाव के समय आपको कुछ असंयत भाषण सुनने को मिलेंगे, पर उन्हें महत्व नहीं देना चाहिए। आखिर चुनाव तो चुनाव ही है। ब्रिटिश चुनाव हमारे चुनाव से कुछ कम कटुतापूर्ण नहीं था। इसके अलावा अतीत की पृष्ठभूमि मौजूद है ही। साथ ही इंगलैंड के अंग्रेजों की मनोदशा और यहां के अंग्रेजों की मनोदशा के अंतर की बात भी नहीं भूलनी चाहिए। इसके ऊपर इधर इन्डोनेशिया के उपद्रव को लेकर जनता का मन काफी उद्वेलित हो रहा है, सो भी दुर्भाग्य की ही बात है। मैं आशा करता हूं कि ब्रिटिश सरकार इस प्रश्न को हल करने मे भी सहायक कदम उठायेगी। लोकतंत्र और स्वशासन इंडोनेशिया के लोगों के लिए अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा कम जरूरी नही है। मै यह कहने का साहस करता हूं कि इस आकांक्षा के प्रति आपकी पूरी सहानुभूति है। इन सम्बन्धित प्रश्नों के हल का तमाम एशियाई राष्ट्रों पर गहरा प्रभाव पड़ेगा।

मुझे भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल और मित्रतापूर्ण नजर आता है। बहुत कुछ इसपर निर्भर करेगा कि दोनों पक्ष कैसा आचरण करते हैं, और यह भी सही दृष्टिकोण और व्यक्तिगत सम्पर्क पर ही निर्भर है।

इस समय व्यक्तिगत सम्पर्कों में वृद्धि हो तो बड़ी बात हो, क्योंकि आगामी छह महीने दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्धों के लिए बड़े ही महत्व के महीने सिद्ध होंगे। मैं यहाँ अपने कुछ मित्रो को यह सुझाव दे चुका हूं। पर वे सब इस समय चुनावों में बेतरह व्यस्त दिखाई देते हैं। यदि आपके पक्ष के कुछ लोग व्यक्तिगत हैसियत से भारत की यात्रा करें तो कितनी अच्छी बात हो।

जो हो, स्थिति को सरल बनाने की दोनो ओर से भरसक कोशिश होनी चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नहीं है कि भगवान के आशीर्वाद से दोनों देशों के बीच स्थायी मित्रता के सम्बन्ध स्थापित हो सकेंगे। इससे सारी दुनिया का भी मंगल होगा।

इस समय श्री आर्थर हेण्डर्सन के साथ मेरा काफी पत्र-व्यवहार हुआ। यथासमय मंत्रिमंडल मिशन, जिसमें लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टेफर्ड क्रिप्स और श्री एलेक्जेंडर थे, यहाँ आ पहुंचा। सर स्टेफर्ड क्रिप्स और पैथिक लारेंस भारत के जाने-बूझे मित्र थे और औसत दर्जे के समझदार आदमी ने यह जरूर समझ लिया होगा कि ब्रिटिश सरकार ने युद्धकाल में लड़ाई बन्द होते ही और शान्ति-संधि पर हस्ताक्षर होने की प्रतीक्षा किये बिना ही भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने का जो वादा किया था उसे पूरा करने का उसका पूरा-पूरा इरादा है। पर विधि का विधान किसी तरह की दया-ममता दिखाये बिना हमें विभाजन की ओर खींचे लिये जा रहा था। काँग्रेस यह मानने के लिए तैयार न थी कि मंत्रिमंडल मिशन की योजना का एकमात्र उद्देश्य देश को विभाजन से बचाना है। उसने तो इस योजना को फूट डालकर शासन करने की नीति का सबसे ताजा प्रदर्शन समझा। उसका लालन-पालन ही इस धारणा के वातावरण में हुआ था। इसमें संदेह नहीं कि कभी भारत-स्थित अंग्रेजों ने इस नीति का अनुसरण किया था, पर यह नीति वेस्टमिन्स्टर को कभी नहीं रुची । जो भी हो, मंत्रिमंडल मिशन की योजना को रद्द कर दिया गया। काँग्रेस का कहना यह था कि वह इस योजना को उसी दशा में स्वीकार कर सकती है, जब उसे उसकी अपनी ही व्याख्या करने की छूट रहे। यह व्याख्या ऐसी थी कि ब्रिटिश प्रधान मंत्री श्री एटली ने साफ-साफ कह दिया था कि वह सही नहीं है, क्योंकि योजना के प्रस्तावकों की व्याख्या वैसी नहीं है और उसके बारे में वही ज्यादा जान सकते हैं। राजाजी ने सदा की भांति इस अवसर पर भी अपने दिमाग को ठण्डा रखा। उन्होंने मुझे लिखा :

२०।५।४६

प्रिय घनश्यामदासजी

मैंने कार्य-समिति का प्रस्ताव आज प्रातःकाल पत्रों में पढ़ा। मुझे

जिसकी आशंका थी वही हुआ। यह रुपये में सोलह आने की मांग है और पुरानी कहानी की पुनरावृत्ति मात्र है।

आप कोई खुशखबरी दे सकें तो बात दूसरी है।

पर मेरी यह बद्धमूल धारणा थी कि विभाजन होकर रहेगा। साथ ही मैं यह भी समझता था कि हमारी कठिनाइयों से निस्तार पाने का यह एक अच्छा खासा तरीका है।

मैं सर स्टेफर्ड के स्वास्थ्य के बारे में खासतौर पर चिन्तित था, क्योंकि ये दिन बेहद गर्मियों के थे और उन्हें ऐसी आबहवा में रहने का अभ्यास नहीं था। वह इतने श्रान्त दिखाई देते थे कि जब मैंने इसका जिक्र गांधीजी से किया तो वह बोले, "सर स्टफर्ड से कहो कि मैं बिना फीस उनकी डाक्टरी कर सकता हूं।" बापू को दूसरों की चिकित्सा करने में बड़ा आनन्द आता था और उन्होंने अपने लिए भी खान-पान के सम्बन्ध में कड़े नियम बना रखे थे। अतएव मैंने सर स्टेफर्ड को खाने-पीने की सूचनाओं से भरा एक पत्र भेजा और साथ ही कुछ फल और सब्जियाँ भी। मेरे पत्र के उत्तर में सर स्टेफर्ड ने लिखा :

६, अप्रैल १९४६

गांधीजी ने मेरी चिकित्सा का भार लेने की जो बात कही उसका मेरे दिल पर खासतौर से असर हुआ। मैं उनके प्रस्ताव को गम्भीर भाव से ग्रहण करता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि उनके विचार उस महिला (बीट्रिस ब्रेट) के विचारों-जैसे हैं जो इंग्लैंड में मेरे स्वास्थ्य की देखभाल करती है। यदि मुझे किसी चिकित्सक की दरकार हुई तो उनसे अवश्य अनुरोध करूंगा।

आपने प्रोटीनों की जो चर्चा की है सो आपके कहने के बाद से ही मैंने छाछ की व्यवस्था कर ली है। मैंने पहले इस ओर ध्यान नहीं दिया था, पर मुझे इस रूप में दूध सचमुच अच्छा लगता है, और यह मेरे स्वास्थ्य के लिए भी हितकर है। इस प्रकार आपकी सलाह मेरे लिए बड़ी ही लाभदायक सिद्ध हुई है।

मंत्रिमंडल मिशन इंगलैंड लौट गया। उसे अधिक सफलता नहीं मिली। जिसे दीर्घकालीन योजना कहा जाता है उसे काँग्रेस ने स्वीकार कर लिया था, इसलिए उसे सरकार बनाने को कहा गया। इसपर श्री जिन्ना बिगड़ गये। ऐसा लगने लगा कि उन्होंने अपनी पार्टी की ओर से योजना के दोनों अंगों को—अर्थात् अल्पकालीन और दीर्घकालीन अंगों को—अंगीकार करके काँग्रेस को मात दे दी है। उन्होंने लार्ड वेवल को धिक्कारा और उनपर विश्वासघात का आरोप लगाया। प्रारम्भ में तो वह अन्तरिम सरकार की रचना में किसी प्रकार का सहयोग देने से बराबर इन्कार करते रहे, पर अन्त में उन्होंने स्वयं अलग रहते हुए अपनी पार्टी के प्रतिनिधियों को उसमें भाग लेने की अनुमति दे दी। यह जाहिर था कि उन्होंने अंतरिम सरकार में अपने प्रतिनिधियों को मेल-जोल की भावना से नहीं, बल्कि इस उद्देश्य से भेजा था कि वे चौकसी रखें और यह देखें कि उनके दावे अनसुने खारिज न हो जायं। इस कारण आरम्भ से ही अंतरिम मंत्रिमंडल एक सुखी परिवार सिद्ध नहीं हुआ। वह तो दो झगड़ने वाले तत्वों का अखाड़ा बन गया। तेल और पानी की तरह उनके भी मिलने की संभावना नहीं थी। इसके बाद कलकत्ते में जो भयंकर नर-संहार हुआ, वह अन्यत्र की निष्ठुरता का प्रतिबिम्ब मात्र था। राजनीतिज्ञों की योजनाओं में हजारों निर्दोष नर-नारियों के जीवन का मानो कोई मूल्य ही न हो। मैंने अक्तूबर में सर स्टेफर्ड क्रिप्स को लिखा :

लीग अन्तरिम सरकार में विरोधी मानस के साथ शामिल हो रही है। जिन्ना ने जवाहरलालजी की शर्तों को तो अस्वीकार कर दिया, पर जब वही शर्तें उनके सामने वायसराय ने रखीं तो उन्हें झट स्वीकार कर लिया। यह भावी मेल-मिलाप के लिए शुभ चिन्ह नहीं है।

पर हमारी सरकार को तो राजनीति की अपेक्षा जनता की गरीबी की ओर अधिक गंभीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिए। किन्तु सरकार आर्थिक

मामलों को हाथ में न ले पा रही है। वह तो राजनीति मे व्यस्त है और आज की राजनीति का एकमात्र अर्थ है जिन्ना।

उन आड़े दिनों में बापू और श्री नेहरू ने बंगाल और बिहार में बड़े शौर्य का परिचय दिया। वहाँ दोनों जातियाँ एक-दूसरे से बदला लेने में लगी हुई थीं। सर स्टेफर्ड ने १८ नवम्बर, १९४६ को मुझे लिखा :

मेरे ख़याल मे शांति-स्थापन के कार्य में गांधीजी का योग बहुत ही उल्लेखयोग्य रहा है और उन्होंने जो-कुछ किया है उसके लिए मै उनका अत्यन्त आभारी हूं।

मेरे नाम बापू का यह लम्बा पत्र अपनी कहानी स्वयं कहेगा :

२६।११।४६

चि० घनश्यामदास

तुम्हें पता है कि मै श्रीरामपुर में एकाकी रहता हूं। साथ में प्रो० निर्मल चंद और परसराम है। यहां के घरवाले सज्जन है। एक ही हिन्दू कुटम्ब इस देहात मे है, बाकी सब मुसलमान है। सब दूर दूर रहते है। यहां सैकड़ों देहात ऐसे है जो पानी सूखने के बाद एक-दूसरे से वाहन सम्बन्ध कम रखते है। नतीजा यह है कि पैदल काम हो सकता है इसलिये यों भी बदमाश लोग या शरीर से सशक्त साधु लोग ही एक दूसरों के साथ व्यवहार कर सकते है। ऐसी एक देहात में मै पड़ा हूं और यहा से जो ऐसी देहात में दिन व्यतीत करूंगा। जबतक यहाँ के हिन्दू-मुसलमान हार्दिक मैत्री से नहीं रहते तबतक तो यही रहने का इरादा है। भगवान ही मन स्थिर रख सकता है। आज तो दिल्ली छूटा, सेवाग्राम छूटा, उरूली, पंचगनी छूटा। इच्छा यहां मरना या करना है। इसमें मेरी अहिंसा की परीक्षा है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये आया हूं। मुझे मिलना चाहिये तो यहां आ सकते हें तो आना होगा। मै आवश्यकता महसूस नहीं करता हूं। किसीको पूछने के लिये भेजना है या हाथ से डाक भेजना है तो भेजो।

कन्स्टीट्यूयेंट असेम्बली में मै नहीं जाऊंगा। आवश्यकता भी कम है। जवाहरलाल, सरदार, राजेनबाबू, राजाजी, मौलाना सब जा सकते है, या पाचों या कृपलानी। उन सब को पैगाम भेजो। यदि मिलिटरी की मदद से ही क० असेम्बली बैठ सकती है तो नहीं बैठाना अच्छा होगा। शान्ति से बैठ सके तो जितने सूबे शरीक होवें उनके ही लिये कानून बन सकते हैं। मिलिटरी पुलिस का भविष्य में क्या होगा सो देखना होगा। मुसलिम सूबे क्या करेंगे ? जिन सूबों में मुसलिम संख्या कम है वहां क्या करना सो भी देखना होगा। अंग्रेजी सरकार क्या करेगी, राजा लोग क्या करेंगे यह सब देखना होगा। मेरा ख्याल है कि तब १६ अप्रैल का स्टेट पेपर बदलना होगा। काम मेरी निगाह में पेचीदा है अगर हम सब काम स्वतंत्र रूप से करना चाहें तो। मैने तो मेरे ख्यालों का दिग्दर्शन करवाया है।

यह भी मित्रवर्ग समझ लें कि यहां जो मैं कर रहा हूं वह, कांग्रेस के नाम से मन में भी नहीं है, निजी अहिंसा दृष्टि से है। मेरे कार्य का विरोध हर कोई आदमी जाहिर में भी कर सकता है। उनका अधिकार हैं। धर्म भी हो सकता है। इसलिये जो कुछ किसी को कहना करना है निडर रूप से कहा जाय, किया जाय। मझे किसी बात में सावधान करना है तो किया जाय।

इसकी नकल सरदार को भेजो और उपरोक्त और अन्य मित्रों को बतावे या इतनी करवा कर उन उन मित्रों को भेजो।

तुम्हारे कहना है सो कहो।

मुझको लिखना पड़े सो सीधा लिखो। प्या०, सुशीला, व०, सब अलग देहातों में है। प्या० कल से बीमार है। कुशल होंगे।

बापू के आशीर्वाद

इस दु:खद काल में मैंने एक बहुत लम्बा पत्र सर स्टेफर्ड क्रिप्स को लिखा। इतना लम्बा कि उसे पूरा उद्धृत करना सम्भव नहीं है। मैंने स्थिति का बहुत ही विषादपूर्ण चित्र खींचा :

कांग्रेस के अन्तरिम सरकार में जाने के बाद, वायसराय ने, जिनके सलाहकार श्री एबेल हैं, लीग के साथ किसी समझौते पर पहुंचने के लिए हमको एक क्षण का भी अवकाश नहीं दिया। अपनी चालों से वह मुस्लिम लीग की जिद का पोषण करते रहे। जिन्ना एक सिरे से सबको गालियां देते रह। 'डान' अखबार उग्र लेख लिखता रहा और वायसराय जिन्ना के आगे सिर झुकाते रहे।

इसके बाद लीग अन्तरिम सरकार में शामिल हुई। हमने संतोष की सांस ली और समझा कि अब संविधान सभा में लीग का सहयोग मिल जायेगा। हमें बताया गया कि जिन्ना से ऐसा आश्वासन ले लिया गया है। पर वास्तव में ऐसा कुछ नहीं किया गया था। ठीक मौके पर लीग ने अपना पंजा दिखाया और संविधान सभा में आने से इन्कार कर दिया। वायसराय ने इस स्थिति को चुपचाप स्वीकार कर लिया।

लीग के सरकार में शामिल होने के तुरंत बाद स्थिति कुछ जमती हुई नजर आई। दंगों ने शायद सभी को यह सबक सिखाया कि हिंसा से कुछ मिलने वाला नहीं। जैसा कि आपको मालूम ही है, दंगों की शुरूआत कलकत्ते में हुई। मुसलमानों ने 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' के दिन आक्रमण किया और हिन्दुओं ने जवाब दिया। मुसलमानों को हिन्दुओं से अधिक क्षति उठानी पड़ी। वे तड़प गये और उन्होंने कलकत्ते का बदला निकालने की योजना बनाई। अब नोआखाली काण्ड हुआ। लोगों को भारी संख्या में धर्मच्युत किया गया, स्त्रियां भगाई गईं और उन्हें निकाह करने को मजबूर किया गया। हिन्दू भड़क उठे। इस तरह बिहार और बिहार के बाद मेरठ के उपद्रव हुए।

जिन्ना ने आबादी की अदला-बदली का सुझाव रखा जो कि एक मूर्खतापूर्ण सुझाव था। एक भी प्रमुख मुसलमान ने उनका समर्थन नहीं किया। पर उत्तर प्रदेश, बिहार और अन्य स्थानों के लोगों को, जो लीग के सबसे बड़े स्तम्भ थे, यह दिखाई देने लगा कि पाकिस्तान कायम हो जाने के बाद भी हिन्दू क्षेत्रों में रहने वाले मुसलमानों को वहीं-के-वहीं रहना होगा और पाकिस्तान की स्थापना से उन्हें कोई मदद नहीं मिलेगी। उत्तर प्रदेश के लीगी समझौता करना चाहते थे और वहां मिला-जुला मंत्रि-मंडल बनाने के इशारे भी किये गए। यदि सफल होते तो अन्य स्थानों में भी समझौते हो गये होते।

परंतु ठीक इसी मनोवैज्ञानिक अवसर पर मानो सारी योजना को उलट देने के लिए ही वायसराय ने लंदन-यात्रा की यह योजना बनाई। जवाहरलालजी और प्रधान मंत्री के बीच तारों का जो आदान-प्रदान हुआ उससे हमारी धारणा हुई थी कि १६ मई के दस्तावेज पर पुनर्विचार का कोई सवाल नहीं उठता है, पर अब मेरी राय में, अप्रत्यक्ष रूप से सारी बात पर पुनर्विचार होगा। बहुत सारी बातों को अस्पष्ट छोड़ दिया गया है। मैंने ऊपर जो सवाल उठाये हैं उनके बारे में जिन्ना और ब्रिटिश सरकार की वास्तविक स्थिति क्या है, सो हमें आजतक मालूम नहीं हुआ है।

मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि कांग्रेस अधिक-से-अधिक

सदिच्छा से काम कर रही है। श्रीमती क्रिप्स की भांति आप भी सरदार पटेल के भाषणों की आलोचना कर सकते है, पर यदि वह चुप रह जाते तो स्थिति को बहुत गलत समझा जाता और मै आपसे सच कहता हूं कि उन भाषणों का मुसलमानों पर बुरा असर नहीं पड़ा। उन्होंने विरोध अवश्य किया है, पर स्थिति को समझ लिया है।

पर यदि हर मौके पर, जब कभी हम ठोस काम में जुटेंगे और वायसराय अमले के प्रतिगामी तत्वों की सलाह पर, और ब्रिटिश सरकार वायसराय की सलाह पर, संविधान सभा की प्रगति की राह मे रोड़े अटकाने लगेगी तो लोग हताश हो जायंगे और सारा ढांचा गिर पड़ेगा और इतने परिश्रम के साथ स्थापित किया गया विश्वास नष्ट हो जायगा। तब तो स्थिति पहले से भी अधिक गम्भीर हो जायगी।

श्रीमती क्रिप्स ने मुझसे पूछा कि स्थिति को सुधारने के लिए आखिर क्या किया जाय? मैंने उन्हे बताया कि निम्नलिखित बातें नितान्त आवश्यक हैं :

१. अन्तरिम सरकार एक टोली के रूप में काम करे। मुस्लिम लीग या तो संविधान सभा में भाग ले या अन्तरिम सरकार से अलग हो जाय। उससे यह बात साफ-साफ और दृढ़तापूर्वक कह देनी चाहिए।

२. यद्यपि मै आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर आपत्ति नहीं करता और यह स्वीकार करता हूं कि देश के किसी अनिच्छुक भाग पर कोई संविधान न लादा जाय, तथापि यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए, जैसा कि आपने १६ मई को राजकीय दस्तावेज में किया है, कि यदि मुसलमान शरीक नहीं होते हैं तो अन्तिम उपाय यही है कि वे उन्हीं स्थानों में अपनी पसन्द का संविधान लागू कर सकेंगे, जिनमें उनका बहुमत होगा—अर्थात् सारे पंजाब और सारे बंगाल मे नहीं। हमारी प्रभुत्व करने की कोई इच्छा नही है, पर साथ ही हम यह भी हर्गिज मंजूर नहीं करेंगे कि हमारे ऊपर उनका प्रभुत्व लादा जाय।

३. वायसराय और अमले को अपना काम ठीक तरह से करना चाहिए। लार्ड वेवल राजनीतिज्ञ नहीं है और उनके सलाहकार लीग का पक्षपात करते हैं और भारत को स्वतंत्र नहीं देखना चाहते। इस विषय में मुझे तनिक भी संदेह नहीं है।

४. हर हालत में अमुक तारीख को सत्ता भारतीय हाथों में सौंप दी जायगी, इसकी घोषणा होना बहुत जरूरी है। जबतक यह अनिश्चय की स्थिति बनी रहेगी, कोई समझौता सम्भव नहीं होगा।

मैं ब्रिटिश सरकार की कठिनाइयां समझता हूं। मुझे इस विषय में

कोई संदेह नहीं है कि आप भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु आपको हमारी कठिनाइयों को भी तो समझना चाहिए। सदिच्छाओं के बावजूद अबतक जो कुछ होता रहा है उससे खाई पटी नहीं है, उल्टे और चौड़ी हो गई है।

मेरा यह सोचना दुस्साहस होगा कि स्वतंत्रता की निश्चित तारीख या अवधि नियत करने के सम्बन्ध में मेरे सुझाव से प्रेरित होकर ही मजदूर सरकार ने वैसा करने का फैसला किया तथा लार्ड वेवल को वापस बुलाकर उनकी जगह लार्ड माउन्ट-बेटन को भेजा; पर मेरी धारणा है कि मेरे सुझाव का भी कुछ-न-कुछ असर पड़ा ही होगा।

तीन दिन बाद मैंने सर स्टेफर्ड क्रिप्स को फिर लिखा :

१५, दिसम्बर १९४६

प्रिय सर स्टेफर्ड

१२ ता० को आपको पत्र लिखने के बाद, आपका पूरा भाषण भारत में प्रकाशित हुआ। उसमें घटनाओं का ठीक-ठीक निचोड़ दिया गया है। कुल मिलाकर ब्रिटिश लोक सभा की बहस को सन्तोषजनक कहा जा सकता है। जब मै देखता हूं कि चर्चिल और जिन्ना तो आपको कोसते ही हैं, इधर हम भी आपकी आलोचना करते हैं तो आपके साथ मुझे बड़ी सहानुभूति होती है।

देखता हूं कि मैंने अपने पिछले पत्र मे जो मुद्दे उठाये थे, उनमे से एक का आपने अपने भाषण मे उत्तर दिया है। ६ दिसम्बर के वक्तव्य के अन्तिम वाक्य का जिक्र करते हुए आपने कहा है कि मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों में कोई संविधान नहीं लादा जायगा। इस बारे में मेरा कोई झगड़ा नहीं है। यह कोई नहीं चाहता कि मुसलमानों के सहयोग के बिना निर्मित संविधान पूर्वी बंगाल या पश्चिमी पंजाब या अन्य मुस्लिम क्षेत्रों पर लादा जाय। पर क्या सचमुच आपका यह विश्वास है कि जिन्ना सहयोग करेंगे ?

मुझे तो पूरा संदेह है कि जिन्ना अन्त में संविधान सभा में भाग लेने आ जायंगे और वह ऐसा करेंगे भी तो सिर्फ पाकिस्तान की लड़ाई लड़ने के लिए। इसलिए मुझे तो उनके और हमारे बीच कोई समान आधार दिखाई नहीं देता है। साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि कांग्रेस युक्तिसंगत रुख अख्तियार करेगी और उनके सहयोग का स्वागत करेगी।

मेरा अपना विचार तो यह है कि लीग के अन्य सदस्य उतनी कठिनाई पैदा नहीं करते है। बात उन्हीं तक सीमित हो तो वे युक्तिसंगत रुख अपना सकते हैं; पर जिन्ना कभी सहयोग करेंगे, ऐसी मेरी धारणा नहीं है। यथार्थवादियों को इस स्थिति का सामना करना ही होगा।

इधर बापू और सब समस्याओं को एक ओर रखकर हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए साहसपूर्वक सचेष्ट थे, पर उन्हें सफलता यदा-कदा ही मिल जाती थी। वह तब भी पूर्वी बंगाल की दलदल में फंसे पड़े थे। सरदार पटेल समेत उनके सभी मित्र पूर्वी बंगाल में उनके लम्बे समय तक फंसे रहने की बुद्धिमता को भारी सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे। बापू के इस प्रवास के फलस्वरूप उनके एकनिष्ठ सहकारियों पर भी असाधारण बोझ पड़ रहा था। उन्हें बड़ी तकलीफ में दिन गुजारने पड़ते थे। बापू के एक साथी ने उन स्थानों की तुलना चूहों के बिलों से की थी।

इन दिनों बापू और उनकी कुछ महिला सहकारियों के पारस्परिक सम्पर्क को लेकर कुछ विवाद-सा उठ खड़ा हुआ। वैसे इसमें कोई बुराई की बात नहीं थी, पर दोष निकालने वालों का भी अभाव न था। ये लोग तो बापू पर हर तरह का लाँछन लगाते ही रहते थे। बापू ने एक सार्वजनिक वक्तव्य देना चाहा, पर सरदार ने वैसा करना उचित नहीं समझा। सरदार का और दूसरों का विचार था कि ऐसी बातों के संबंध में जनता को अपना दृष्टिकोण बताने के बजाय पूर्णतया निर्दोष होते हुए भी बापू को दुनिया की इच्छा के अनुरूप आचरण करना चाहिए। बापू को यह बात पसन्द नहीं आई। उनकी वेदना मेरे नाम लिखे एक लम्बे पत्र में प्रकट हुई:

रामपुर
१४-२-४७

चि० घनश्यामदास

तुमको एक खत लिखकर सुशीला के मार्फत भेज दिया। लेकिन सरदार के खत से मैं कुछ अस्वस्थ हुआ हूं। देवदास का खत तो मेरे कानों

में गूंज रहा है। तुमको जो मैंने लिखा है वो याद तो नहीं है उसकी नकल नहीं रखी। आज तो इतना ही लिखना चाहता हूं कि तुम्हारी तटस्थता छोड़नी चाहिये। सरदार के मन में स्पष्ट है कि अधर्म को मैं धर्म मानकर बैठा हूं। देवदास तो ऐसा लिखता है ही। सरदार की बुद्धि पर मुझे बहुत विश्वास है। देवदास की बुद्धि पर भी है लेकिन मेरे नजदीक देवदास बड़ा होते हुये भी बालक है। सरदार के लिये ऐसा नहीं कहा जाता। किशोरीलाल और नरहरि भी बालक नही है, लेकिन उनका विरोध समझने में मुझको दिक्कत नही है। मेरा जीवन शुद्ध है, पवित्र है, धर्म पालने के लिये ही चलता है, ऐसी मान्यता ही तुम्हारे और मेरे बीच में गांठ है। अगर ये नहीं है तो कुछ नहीं है, इसलिये चाहता हूं कि इस काम मे पूरा हिस्सा लो भले अदृश्य रूप से ही क्योंकि तुम्हारे व्यापार मे खलल पहुंचे ऐसा मैं नहीं चाहता। लेकिन मै अधर्म का आचरण करता हूं तो मेरा सख्त विरोध करने का सब मित्रों का धर्म हो जाता है। सत्याग्रही अन्त में दुराग्रही भी बन सकता है। भेद तो इतना ही रहता है कि असत्य को सच मानकर बैठ जाय तो दुराग्रही बन गया। मै ऐसा नही हूं, ऐसे मानता हूं, लेकिन उससे क्या हुआ। परमेश्वर तो हूं नहीं। गलती कर सकता हूं। गलतियां की है। अन्तिम समय पर बड़ी भारी गलती हो सकती है। अगर हुई है तो जितने हितेच्छु हैं वे मेरा विरोध करके मेरी आंखें खोल सक्ते है। न करें तो मुझको ऐसे ही जाना तो है तो मैं चला जाऊंगा। जो कुछ भी मै यहां करता हूं वह सब मेरे यज्ञ का हिस्सा है। जानबूझकर ऐसा कुछ नही करता हूं कि जो इस यज्ञ में समाविष्ट न हो सके। आराम लेता हूं वो भी यज्ञ के ही लिये।

आंख और पेट पर मिट्टी है और इसे लिखवाता हूं। थोड़े समय में शाम की प्रार्थना में जाना है। म० प्रकरण मेरा काफी समय लेता है। उसमें मुझको आपत्ति नहीं है क्योंकि उसको भी यज्ञ के कारण रखा है। इसकी परीक्षा भी यज्ञ का हिस्सा है। यह सब मैं समझा न सकूं वह दूसरी बात है। मित्रों को समझाना तो इतना ही है कि मै म० को मेरी गोद में लेता हू तो एक पवित्र पिता की हैसियत से कि धर्मभ्रष्ट पिता की हैसियत से। जो मैं करता हूं वह मेरे लिये नई बात नहीं है। विचार सृष्टि में शायद ५० साल से, आचार में भी बरसों थोड़ा या बहुत किया ही है। मेरे साथ का सब सम्बन्ध तोड़ोगे तो भी मुझको दु:ख नही होगा। जैसे मै अपना धर्म पर कायम रहना चाहता हूं ठीक इसी तरह से तुम्हारे रहना है।

अभी दूसरा विषय पर आता हूं। यहां के हिन्दू जुलाहा है उनको तांती कहते हैं। वे लोग बेकार हो गये है। उनका घर के चरखा काफी जलाये गये हैं। मकान भी जलाये गये है। सूत न मिले तो बेकार बैठना है। या

तो कुदारी लेकर मजदूरी करना है। तो यहां के आफिसर ने मुझको कहा सूत गवर्नमेंट को मिल नहीं सकता। सेन्ट्रल गवर्नमेट दे तो हो सकता है। तो मैंने कहा अगर आप दाम दे तो मैं शायद सूत पैदा कर लूंगा। तो वह राजी हुआ। क्या आप लोग सूत दे सकते हैं? अगर दे सकते हैं तो कितना? और क्या दाम से? और कब दे सकेंगे? क्या वह सूत देने में मध्यवर्ती गवर्नमेंट की इजाजत लेनी पड़ती है? यह सब लिखो।

बापू के आशीर्वाद

यह कहने की जरूरत नहीं कि बापू के कथन की सराहना करते हुए भी मैंने उनकी दलीलों का प्रबल विरोध किया और अन्त में उन्होंने हम लोगों की सलाह मान ली, यद्यपि उनको उसका औचित्य जंचा नहीं। उनके शत्रु उस समय इसको कुचर्चा का रूप देने की चेष्टा कर रहे थे। हमने सोचा कि बापू का सार्वजनिक वक्तव्य सही और सीधा कदम होते हुए भी समयानुकूल नहीं होगा। हम सब दुनियादारों की तरह आचरण करते हैं। हम चाहते थे कि वह भी ऐसा ही करें। सौभाग्यवश वह हमारे दृष्टिकोण से सहमत हो गये और हमारी एक भारी चिन्ता दूर हुई।

बापू का उपरोक्त पत्र अन्तिम महत्वपूर्ण पत्र था जो मुझे प्राप्त हुआ; क्योंकि वह कुछ महीने बाद दिल्ली लौट आये थे और लगातार पाँच महीनें से कुछ अधिक मेरे मकान में मेरे साथ रहे थे और वहीं उनकी इहलीला समाप्त हुई थी।

उनके जीवन की अन्तिम घड़ियों से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन करने के बजाय मैं अपने रेडियो के एक भाषण का एक अंश उद्धृत करता हूं जो मैंने उनकी मृत्यु के कुछ ही बाद दिया था।

इस बार गांधीजी ने दिल्ली मे करीब पांच महीने मेरे साथ रहने का मुझे सौभाग्य प्रदान किया और उनके साथ काफी बड़ी संख्या मे स्त्री-पुरुष मेरे अतिथि हुए। साफ कहूं तो, उनके कुछ अतिथियों को मै पसन्द नहीं करता था और न बापू के साथी ही उन्हे पसन्द करते थे, पर मेरा मकान उन

सबके लिए खुला था जो गांधीजी के पास आते थे। सबेरे से लगातार बहुत रात तक मिलने आने वालों का अटूट तांता बंधा रहता था और गांधीजी इस बात की परवाह किये बिना कि उनपर कितना बोझ पड़ रहा है, हरएक से कुछ-न-कुछ कहते-सुनते रहते थे, चाहे वह उनके दर्शन के लिए आया हो या उनकी सलाह लेने।

बिड़ला भवन की बम-विस्फोट की घटना के बाद गांधीजी के निकटतम साथियों ने उनसे भीड़ को दूर रखने का अनुरोध किया। सरदार वल्लभभाई पटेल ने प्रार्थना-सभा की देखभाल और रक्षा के लिए करीब ३० फौजी और करीब २० पुलिस अधिकारी तैनात किये। उनके जिम्मे चौकसी करने और प्रार्थना-सभा पर निगाह रखने का काम था। पुलिस के अधिकारी प्रार्थना-सभा मे आने वालों की तलाशी भी लेना चाहते थे, पर गांधीजी ने इसकी इजाजत नही दी। मुझे आभास-सा हो रहा था कि ईश्वर की दूसरी ही इच्छा है तो सुरक्षा-सम्बन्धी उपायों से विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। जब कभी उनकी रक्षा के बारे में चिन्ता प्रकट की जाती तो उनका एकमात्र उत्तर यही होता : 'मेरा रक्षक तो बस एक राम है।'

इधर कुछ दिनों से राम-नाम की अचूक औषधि मे उन्हे बहुत अधिक आस्था हो गई थी। वह तो अपने शुभैषी चिकित्सकों की सलाह की ओर भी कान नही देते थे। पिछले उपवास के बाद उनका हाजमा बिगड़ गया था। मैंने उन्हे एक सीधी-सादी घरेलू दवा सुझाई। काफी समझाने-बुझाने के बाद उन्होंने उसे लेना स्वीकार किया। शोक, उनके महान् चिकित्सक राम ने उन्हे शीघ्र ही अपने पास बुला लिया।

अन्तिम उपवास के कारण उनके प्रिय शिष्यों को गहरी चिन्ता हुई। इस उपवास की उपयोगिता अथवा औचित्य के विरुद्ध मैंने भी उनके साथ तर्क करने की चेष्टा की, पर गांधीजी अचल रहे। यह बात नही कि गांधीजी हठी थे। वह सदा विचार-परिवर्तन के लिए तैयार रहते थे। जो लोग उनके साथ विचार-विमर्श करने आते थे, उनके विचारों को उद्दीप्त और जिज्ञासा को जागृत करने का उनका अपना तरीका था। वह रचनात्मक आलोचना को कितने धैर्य के साथ सुनते थे। उनके उपवास के दिनों में ही मुझे जरूरी काम से बम्बई जाना था, पर उन्हें उपवास करते छोड़कर मैं कैसे जाता?

मै उनकी अनुमति लेने गया। मैंने पूछा, "क्या आप मुझसे सहमत नहीं है कि यह उपवास जल्दी ही समाप्त होना चाहिए? मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि देश ने आपकी अभिलाषा का बड़ा ही अनुकूल उत्तर दिया है।" गांधीजी मुस्कराये, बोले, "तुम अपना काम देखो। मेरी अनुमति क्या लेते हो?" मैंने उनसे फिर पूछा, "आपके इस उपवास के जल्दी ही समाप्त

होने के बारे में आपकी क्या धारणा है ?"बापू मुस्कराते रहे। वह मेरे जाल में फंसने वाले नहीं थे। मैंने उन्हे नचिकेता और यम की कथा सुनाई और कहा, "जब नचिकेता ने यम के द्वार पर उपवास किया था तो यम भी घबरा गये थे। मै चिन्ता और प्रताड़ना की अनुभूति कैसे न करूं जब एक महात्मा मेरे घर मे उपवास कर रहा है।"मेरे सारे प्रश्नों का उनके पास एक ही उत्तर था, "मेरा जीवन राम के हाथ में है।"

शुक्रवार की उस विधि द्वारा नियत संध्या को करीब सवा पांच बजे गांधीजी पर गोली दागी गई और शीघ्र ही उन्होंने प्राण त्याग दिये। उस समय मैं पिलानी में था। करीब छः बजे शाम को कालेज के लड़के मेरे पास दौड़े आये और मुझे रेडियो पर सुनी वह दुखदायी खबर सुनाई। जी में आया कि मोटर से दिल्ली दौड़ पड़ूं, पर मेरे मित्रों ने सलाह दी कि दूसरे दिन तड़के ही वायुयान से जाना ठीक रहेगा। मैंने वह रात पिलानी मे कितनी बेचैनी से बिताई! मै सोया या नही, और सोया तो कब सोया, अथवा मैं स्वप्नावस्था मे था या मेरी आत्मा उड़कर गाधीजी के पास पहुंच गई थी, सो मुझे कुछ मालूम नही हुआ। मानो मै मूर्च्छित अवस्था में होऊं और अचानक गांधीजी के पास पहुंच गया होऊ।

मैंने देखा कि उनका शरीर ठीक वही पड़ा है जहां वह सोया करते थे। मैंने प्यारेलाल और सुशीला को उनके पास बैठे देखा। मुझे देखते ही गांधीजी उठ बैठे, मानो नीद से जागे हों और प्यार से मुझे थपथपाते हुए बोले, "तुम आ गये, अच्छा हुआ। मेरे लिए चिन्ता मत करो, मै षड्यंत्र का शिकार हुआ हूं, तो क्या हुआ ? मै तो खुशी के मारे नाचूंगा, क्योंकि मेरा मिशन अब पूरा हो गया है।" तब उन्होंने अपनी घड़ी निकाली और कहा, 'अब तो ११ बज रहे है, और तुमको मुझे जमना-घाट ले जाना है। इसलिए अब मुझे लेट जाना चाहिए।"

अचानक मै जग पड़ा और आश्चर्य करने लगा कि यह स्वप्न था अथवा पारलौकिक यथार्थता।

अगले दिन मैंने प्यारे बापू को चिर निद्रा में निद्रित पाया मानो उन्हे कुछ हुआ ही नहीं है। उनका मुख-मण्डल उसी सरल आकर्षण, प्रेम और पावनता की ज्योति से आलोकित हो रहा है। मुझे उनकी मुद्रा में करुणा और क्षमा की भी एक क्षीण-सी रेखा के दर्शन हुए। शोक, हमें मानवता और दयार्द्रता से दिपदिपाता-हुआ वह चेहरा अब देखने को नही मिलेगा।

वास्तव में एक महान् ज्योति विलीन हो गई, एक महारथी खेत रहा, एक महान् आत्मा मौन हो गई।

इस प्रकार बापू के साथ मेरे ३२ वर्ष के अटूट सम्बन्ध का अन्त हुआ।

: ३२ :

स्वतन्त्रता के बाद

जब स्वतन्त्रता का आगमन हुआ तो दो बातों का सबसे अधिक महत्व दिखाई दिया। उनमें से एक थी उत्पादन-कार्य में वेगशील-वृद्धि। वर्षा के मनमौजीपन के फलस्वरूप फसलों के नष्ट हो जाने से और कुछ अन्य कारणों से भी, हमारे लिए भूखों मरने का खतरा पैदा हो गया था और बंगाल के दुर्भिक्ष की बड़े पैमाने पर पुनरावृत्ति होने की संभावना दिखाई देने लगी थी। हम विदेशों से बड़ी मात्रा से खाद्यान्न का आयात कर रहे थे, पर उसका मूल्य चुकाने के लिए न तो हम निर्यात की सामग्री ही पर्याप्त मात्रा में तैयार कर रहे थे और न हमें ऐसे बाजार ही सुलभ थे, जिनमें हम अपने देश में तैयार की गई निर्यात की सामग्री को बेच पाते। फलस्वरूप हमें अपने आयात की कीमत चुकाने के लिए पौंड-पावने की अपनी संचित निधि को बड़ी तेजी के साथ खर्च करना पड़ रहा था।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि हमको पूंजी की आवश्यकता थी। देश में पर्याप्त पूंजी होने के साधन उपलब्ध नहीं थे और यह स्पष्ट ही था कि पूंजी बाहर से मंगानी होगी। मंत्रियों ने शुरू-शुरू के उत्साह में आकर अदूरदर्शितापूर्ण भाषण दिये, जिससे देशी और विदेशी पूंजी, दोनों ही सशंकित हो गईं। मंत्रीगण अनेक दिशाओं में ब्रिटेन की मजदूर सरकार का अनुकरण करना चाहते थे। पर बाद में जो स्थिति सामने आई, उससे पता चला कि उन्होंने उस सरकार की आर्थिक सफलताओं का मूल्य बहुत अधिक आँका था और जो कीमत उसे चुकानी पड़ी उसे बहुत कम करके माना था। इस अवस्था में सुधार

करने के उद्देश्य से मैंने उत्पादन बढ़ाने के साधन तलाश करने के लिए और भारत की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए भी, जिसे उस समय काफी गलत समझा जा रहा था, ब्रिटेन और अमरीका की यात्रा की। यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि ब्रिटेन में हमारी स्थिति को ज्यादा गलत समझा जा रहा था। अमरीका में न तो हमारी स्थिति को ठीक-ठीक समझा जा रहा था, न गलत ही। कुछ इनेगिने राजनेताओं को छोड़ कर बाकी अमरीकियों को हमारी स्थिति की ओर से उदासीनता मात्र थी। इन राजनेताओं को हमारी स्थिति से भौगोलिक और नैतिक दृष्टि से केवल इतना ही अनुराग था कि हम साम्य-वाद से मोर्चा लें।

सौभाग्य से इंग्लैंड में मुझे श्री चर्चिल के साथ लम्बी बात-चीत करने का अवसर मिला, पर मैंने देखा कि उन्हें भारत के बारे में जितनी गलत जानकारी पहले थी, उतनी ही अब भी है। मैंने अपनी इस मुलाकात का विवरण सरदार पटेल को लिख भेजा था। मेरे पत्र-व्यवहार में बापू का जो स्थान था, वह अब सरदार पटेल ने ले लिया था। उस पत्र का एक उद्धरण यहाँ देता हूँ :

वह (चर्चिल) अकस्मात् उबल पड़े—"आप लोगों ने हैदराबाद में जो कुछ किया सो मुझे पसन्द नहीं आया। आपको जनमत संग्रह करना चाहिये था।" मैंने उन्हें बताया कि अब भारत में शान्ति विराज रही है और जो अंग्रेज हाल में वहां गये हैं, उनका कहना है कि दुनिया का कोई भी मुल्क आज भारत जितना शान्त नहीं है। पंडित नेहरू और सरदार बहुत अच्छी तरह काम चला रहे हैं। हम साम्यवाद की बाढ़ को रोक रहे हैं, पर हमें लोगों की हालत को सुधारना है। हमें दो चीजों की दरकार है : पहली सशक्त रक्षा-व्यवस्था और दूसरी वेगशील औद्योगीकरण। ये दोनों बातें तुरन्त होनी चाहिए। हमारे नेता अब काफी बूढ़े हो चले हैं। आज तो उनका शब्द ही कानून है। पर यदि वे अगले दस वर्षों में भारत का निर्माण न कर सकें तो उसके बाद क्या होगा, सो मैं नहीं जानता।"

उन्होंने कहा, "मुझे दस वर्ष आगे की बात नहीं सोचनी चाहिए। सोचने के लिए एक साल बहुत काफी है।"

तब मैंने उन्हे मित्रता के उस संदेश की याद दिलाई जो सन् १९३५ में उन्होने मेरे द्वारा गांधीजी को भेजा था। "हम अब स्वतन्त्र हो चुके हैं। हम मित्र हैं और आगे भी मित्र रहना चाहेंगे। फिर आप इतनी गैरियत के साथ क्यों बातें करते हैं?" उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, "मैं गैरियत नही बरत रहा हूं। आप इंग्लैण्ड के साथ अच्छा बर्ताव करेंगे तो मैं निश्चित रूप से अनुकूल प्रत्युत्तर दूंगा। शायद हम सरकार मे लौट आयंगे। समाजवादी जनता मे अप्रिय होते जा रहे हैं, इसलिए मैं कोई ऐसा काम नहीं करना चाहता, जिसे भारत मे अमैत्रीपूर्ण समझा जाय। पिछली बातों को सोचना मेरी आदत मे दाखिल नहीं है। मुझे आगे की ओर देखना सिखाया गया है। भूतकाल भुला दिया गया है। अब यदि आप सहयोग करेंगे तो मैं भी सहयोग करने को तैयार हूं।" मैंने उन्हे बताया कि पं० नेहरू ने किस प्रकार अपनी तमाम पिछली कटुता के बावजूद राष्ट्रमंडल मे रहने का फैसला किया है। उन्होंने हृदय के पूरे योग के साथ उत्तर दिया, "मैं उनकी उदारता की बहुत सराहना करता हूं।" तब अकस्मात् उन्होने प्रश्न किया, "क्या आपके यहां अपना राष्ट्रीय गान है? क्या उसकी ध्वनि अच्छी है?" मैंने कहा, "बहुत अच्छी तो नही है।" "आप अपने राष्ट्रीय गान के साथ "ईश्वर राजा की रक्षा करे" क्यों नही बजाते? ये छोटी-छोटी बाते काफी सहायक होती है। कनाडा का अपना गान है, पर उसके साथ वे लोग हमारे गान की ध्वनि भी बजाते हैं। इससे मित्रता की भावना पैदा होती है।" मैंने कठिनाई बताई, पर साथ ही कहा, "यह तो इंग्लैण्ड पर ही निर्भर है। आप मित्र रहेंगे तो शायद इसकी भी नौबत आ जाय।" उन्होंने कहा, 'मेरी धारणा है कि समय आने पर ऐसा भी होगा।" मैंने उनसे कहा कि हमारी सबसे बड़ी कमजोरी हमारी दरिद्रता है जिसे हम थोड़े समय मे दूर करना चाहते हैं और यदि हम अपने लोगों का स्तर ऊंचा न उठा पाय तो साम्यवाद की बाढ़ किसीके रोके न रुकेगी। इंग्लैण्ड को इस काम मे हमारे साथ सहयोग करना चाहिए। उन्होंने कहा, "बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ आपकी गरीबी एक कठिन समस्या अवश्य है।"

मैंने उनसे पूछा कि श्री ईडन भारत के क्या संस्मरण लाये हैं? उन्होंने कहा, "उन्हें बड़ी खुशी हुई। उन्होंने आपके साथ हुई अपनी बातचीत का मुझसे जिक्र किया था।' तब उन्होने मुझसे पूछा कि क्या नेहरू राष्ट्रमंडल के विचार को मनवा सकेंगे? मैंने कहा, "मुझे इसमे कोई शक नहीं है। समाजवादी बहुत शक्तिशाली नही हैं। साम्यवादी छिपे हुए हैं।" मैंने उनसे कहा कि ब्रिटेन को और किसी देश की अपेक्षा हमारी सहायता अधिक करनी चाहिए। उन्होंने स्वीकार किया, पुनः अपनी मैत्री की

आकांक्षा की पुष्टि की, पर साथ ही कहा कि पाकिस्तान के पास जल और खाद्य के साधन प्रचुर मात्रा में हैं।

यहाँ हर कोई यह सोचता प्रतीत होता है कि समाजवादियों का प्रभाव कम होता जा रहा है। अतएव यदि अगले चुनाव में मजदूर दल के बहुमत में काफी कमी हो जाय तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा।

कल मैं श्री अलेक्जेन्डर से मिल रहा हूं।

६ मई, १९४९

कल मैं श्री ऐंथनी ईडन से आधे घंटे के लिए मिला। उन्होंने मुझे बताया कि जब दिल्ली में वह चाय पर आपके यहां थे तो आपने उनसे कहा था कि अपने संविधान की वर्तमान स्थिति को कायम रखते हुए आप राष्ट्रमंडल में बने रहने को तैयार होंगे। यह बात श्री ईडन ने एटली और चर्चिल से भी कह दी है और चर्चिल से सहायता की जोरदार सिफारिश की है। उन्हें परिणाम से भारी संतोष है।

मैंने उनसे इस विषय की भी चर्चा की कि भारत को सैनिक और औद्योगिक दृष्टि से मजबूत बनाने की जरूरत है और कहा कि ब्रिटेन को इस दिशा में हमें सहयोग देना चाहिए। उन्होंने कहा कि वह सैनिक सामग्री के बारे में लार्ड अलेक्जेन्डर से बात करेंगे और उद्योग के बारे में ब्रिटिश पूंजीपतियों से। उन्होंने कहा कि अब भारत राष्ट्रमंडल में है तो वे सभी तरह का सहयोग देंगे। वह अच्छे और सहृदय प्रतीत हुए।

अमरीका से लन्दन वापस लौटने पर, मैंने जुलाई में सरदार को लिखा :

११, जुलाई, १९४९

अबतक मैं यहां प्रधान मंत्री, श्री अलेक्जेन्डर, श्री बेविन, श्री नोएल बेकर, सर जान एण्डर्सन और श्री चर्चिल से मिल चुका हूं। इनमें से कुछ से दुबारा और दूसरों से आगामी सप्ताह में मिलने की आशा है। क्रिप्स से एक-दो दिन में मिलने वाला हूं।

मुडी के त्यागपत्र और लियाकत की संभावित मास्को-यात्रा को यहां विशेष महत्व नहीं दिया जा रहा है। उन्हें यह सबकुछ पसन्द नहीं है, पर वे इसे ब्रिटेन से रिआयतें ऐंठने के लिए एक झांसा-मात्र समझते हैं। पाकिस्तान को ध्यान में रखा जाय तो इन तौर-तरीकों का असर यहाँ कुल मिलाकर बुरा नहीं रहा। पाकिस्तान को अब भी निम्नकोटि का ही

समझा जाता है। हम लोग भले, विवेकशील और आदरणीय व्यक्ति समझे जाते हैं, साथ ही हमें सदा यही परामर्श दिया जाता है कि हमें पाकिस्तानियों को बहलाते रहना चाहिए। 'वे गिर पड़ें तो यह आपके ही हित में बुरा होगा', हमें ऐसी सलाह दी जाती है।

कश्मीर को लेकर ये सब बहुत चिन्तित हैं। यहां के लोग जम्मू और बौद्धों के क्षेत्र की स्थिति को तो समझते हैं, पर इनकी समझ में यह बात नही आती कि हम मुस्लिम-बहुल कश्मीर घाटी को भारत में शामिल करने का आग्रह क्यों कर रहे हैं।

यहां हैदराबाद को लेकर किसी को परेशानी नही है। उसे तो भुला ही दिया गया है। मुख्य प्रश्न कश्मीर का है और प्रायः हर कोई किसी-न-किसी प्रकार के विभाजन का पक्ष लेता दिखाई देता है।

यहां की आर्थिक अवस्था बहुत खराब है। पर जो बात सबसे अधिक उल्लेख-योग्य है वह यह है कि ये लोग इस अवस्था का मुकाबला लौह संकल्प के साथ और अत्यन्त वैज्ञानिक तरीकों से कर रहे हैं। संभव है, ये लोग वर्तमान जीवन-स्तर कायम न रख सकें, पर उसे कायम रखने के लिए कड़ा संघर्ष किये बिना ये उसे गिरने नहीं देंगे।

इंग्लैण्ड की पूंजी भारत में लगने के बारे मे अमरीका की अपेक्षा यहां की स्थिति अधिक अनुकूल है। मैंने यहां कुछ व्यवसायियों से बात की है और उनका रुख निराशाजनक नही था। कुछ कठिनाइयां है, जिन्हें हल करना ही होगा। किन्तु इस बारे में भी मेरा खयाल है कि मेरे लिए कुछ कर सकना संभव होगा।

१४ जुलाई, १९४९

आपको पिछला पत्र लिखने के बाद मैं लार्ड हेलीफैक्स और लन्दन के 'इकोनामिस्ट' के संपादक श्री क्रोथर से मिला। आज मैंने लेडी माउन्टबेटन के साथ दोपहर का भोजन किया। लेडी क्रिप्स और कुमारी पामेला माउन्टबेटन भी उपस्थित थीं। दोपहर को मैं लार्ड केमरोज और उनके संपादक अर्थात् डेली 'टेलीग्राफ' के संपादक से मिला।

लेडी माउन्टबेटन हमारे सामान्य शासन-कार्य से पूरे तौर से सन्तुष्ट नहीं थीं। उनका खयाल था कि हम आवश्यकता से अधिक केन्द्रीकरण कर रहे हैं और मंत्रियों पर काम का बोझ ज्यादा है। उनकी वार्ता में आलोचना का पुट था, पर वह आलोचना मैत्री की भावना से ओतप्रोत थी। उन्होंने मुझसे कहा, "आप मेरा सप्रेम अभिवादन सरदार को पहुंचा दीजिए।" रक्षा मंत्री श्री एलेक्जेन्डर और लेडी क्रिप्स ने भी ऐसा ही कहा है।

भोजन के समय करीब दस मिनट तक लेडी माउन्टबेटन, उनकी पुत्री और लेडी क्रिप्स मणिबहन की तारीफ करने मे एक-दूसरे की प्रतिस्पर्द्धा करती रहीं। अगर मणिबहन मौजूद होतीं तो सकुचा जातीं और घबरा उठतीं।

'डेली टेलीग्राफ' का और कभी-कभी 'डेली एक्सप्रेस' का भी रुख हमारे खिलाफ ही रहता है। कल भारत से प्राप्त एक शरारत-भरा संवाद प्रकाशित हुआ, जिसमे अंग्रेजों और पाकिस्तानियों के बिगड़ते जा रहे संबंधों की चर्चा थी और इसका दोष संवाददाताने भारत के मत्थे मढ़ा था। इस बारे मे केमरोज और उनके सपादक के साथ लम्बी बातचीत हुई।

नोएल बेकर कश्मीर को लेकर चिन्तित थे। वह जनमत-संग्रह में विश्वास रखते है, किन्तु मेरा खयाल है कि उनका विश्वास क्षेत्रीय जनमत संग्रह में है, सारी रियासत के लिए एक जनमत-सग्रह मे नही।

बस, मेरी कहानी पूरी हुई।

परिशिष्ट

'भारतीय वाणिज्य उद्योग संघ' का प्रस्ताव[1]

१. संघ की यह दृढ़ सम्मति है कि सरकार की वर्तमान दमन-नीति से देश की वर्तमान दुखद स्थिति नहीं सुधर सकती और वह सरकार से उसके बजाय समझौते की नीति अपनाने का अनुरोध करता है, ताकि ऐसा संविधान बनाने और उस संविधान पर अमल करने के लिए उपयुक्त वातावरण पैदा हो सके, जो जनता को स्वीकार हो।

२. संघ की कार्य-समिति के २२ जनवरी १६३२ के प्रस्ताव का जो अर्थ निकाला गया है, उसपर सघ खेद प्रकट करता है, क्योंकि प्रस्ताव के प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट मन्तव्य मौजूद है कि संघ की कार्य-समिति भारत के लिए उपयुक्त संविधान की रचना मे भाग लेना अपना कर्तव्य समझती है।

३. संघ की धारणा है कि दमन-नीति को और गोलमेज परिषद के गत अधिवेशन मे अपने प्रतिनिधि मंडल के अनुभव को, ध्यान में रखते हुए परामर्श-दायिनी समिति के काम में उसके प्रतिनिधियों के भाग लेने से उस समय तक कोई लाभ नहीं होगा, जबतक कि

(क) सरकार सच्चे दिल से उस नीति में परिवर्तन करने और वित्तीय स्वशासन संरक्षण और व्यापारिक अधिकार-संबंधी प्रश्नों की चर्चा करने और उनके बारे में देश के प्रगतिशील लोकमत के साथ समझौता करने को तैयार न हो,

(ख) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, परामर्शदायिनी समिति को यह अधिकार न रहे कि वह वित्त-संबन्धी विभिन्न प्रश्नों के बारे में खुली और पूरी चर्चा कर सकेगी तथा व्यापारिक अधिकारों, वित्तीय संरक्षणों आदि से संबन्ध रखने वाले प्रश्नों को ऐसी समिति के सिपुर्द न किया जाय जिसमें

---

१. चौथे अध्याय में जिस प्रस्ताव का उल्लेख है, वह यह था।

अंग्रेज और भारतीय विशेषज्ञों की संख्या एक समान हो और भारतीय विशेषज्ञ ऐसे हों, जिन्हें संघ का विश्वास प्राप्त हो।

पैरा ३ जैसा कि वह उपरोक्त प्रस्ताव के प्रारंभिक रूप में था।

३. इस समिति ने गोलमेज परिषद के अपने प्रतिनिधि की रिपोर्ट सुनी और उसे यह जान कर खेद हुआ कि आरक्षणों, वित्तीय संरक्षणों और व्यापारिक अधिकारों से संबन्ध रखने वाले प्रश्नों की जांच-पड़ताल करने और उनपर पूरी चर्चा करने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया। इस समिति का निश्चय है कि उसकी राय में वित्तीय संरक्षणों और व्यापारिक अधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों की पड़ताल व्यवसायियों की ऐसी समिति द्वारा की जाय, जिसके भारतीय सदस्यों की संख्या आधी से कम न हो और वे सदस्य ऐसे हों जिन्हें संघ का समर्थन प्राप्त हो, ताकि इन समस्याओं का सर्वसम्मत हल खोजा जा सके।

निर्देशिका